

BENARES SANSKRIT SERIES;

A

COLLECTION OF SANSKRIT WORKS

EDITED BY THE
PANDITS OF THE BENARES SANSKRIT COLLEGE,
UNDER THE SUPERINTENDENCE OF
R. T. H. GRIFFITH M. A.,
LATE DIRECTOR OF PUBLIC INSTRUCTION, N. W. P. & OUDH,
& G. THIBAUT PH. DR.,
PRINCIPAL, BENARES COLLEGE.
Nos. 8, 10, 18, 21, 26 & 31.

कात्यायनमहर्षिप्रणीतम् शुक्लयजुःप्रातिशाख्यम् ।
उव्वटकृतभाष्ययुतम् ।

प्रतिज्ञामूत्रं अनन्तदेवभाष्ययुतम् । त्रिकण्डिकाभाषिकसूत्रं
तट्टकृतभाष्याखितञ्च । जटायुष्टविकृतितिलक्षणं सोदाहरणं
सव्याख्यानम् । मूलमात्रं ऋग्यजुःपरिशिष्टसूत्रम् । ता-
वन्मात्रं अनुवाकाध्यायपरिशिष्टसूत्रञ्च । शौनकोक्तं च-
रणव्यूहपरिशिष्टसूत्रं महिदासविवृत्तिसमेतम् ।

श्रीकाशिकप्रधानपाठालयाधीतविशेन श्रीमथिलामण्डलाधीशतो लब्धवै-
दुष्यप्रतिष्ठेन पाठकोपाद्दश्रियुगलकिशोरशर्मणा निर्मितप्राति-
शाख्यकीर्तिप्रकाशाख्यटिप्पण्या समेतम् ।

KATYAYANA'S PRATISAKHIYA OF THE WHITE YAJUR
VEDA, WITH THE COMMENTARY OF UVATA;

THE PRATIJNÁ SÚTRAS WITH THE COMMENTARY OF ANANTA-
VA; THE TRIKANDIKÁ BHÁSHIKA SÚTRAS ALSO WITH ANANTA-
DEVA'S COMMENTARY; DEFINITIONS OF JATÁ &c. OR EIGHT-
FOLD PERMUTATIONS OF VAIDIK TEXT, WITH ILLUSTRATIONS
AND COMMENTARY; THE PARÍSISHṬA SÚTRAS OF RIK &
YAJUSH; THE PARÍSISHṬA SÚTRAS OF THE ANUVÁKÁ-
DHYÁYA; AND SAUNAKA'S CHARAṆAVYÚHA PARÍS-
ISHṬA SÚTRAS WITH THE EXPOSITION OF MAHIDÁSA.

EDITED BY PANDIT YUGALKIŚORA PÁTHAKA,
LATE SCHOLAR OF THE BENARES SANSKRIT COLLEGE.

BENARES:

PUBLISHED BY MESSRS. BRAJ B. DAS & CO.

1888.

REGISTERED ACCORDING TO ACT XXV. OF 1867.

PRINTED AT THE BENARES PRINTING PRESS
BY CHHANSULAL.

श्रीः विज्ञापः

श्रीमद्विश्वेश्वरपालितायां परमपवित्रायां वाराणस्यां प्रत्यग्दिशि
छोटीपीयरीनामवीथिकावास्तव्यसरयूपारिणः पाठकोपाह्वपण्डित
नाथूरामशर्मणः प्रपौत्रेण, श्रीमद्रामफलपाठकस्य पौत्रेण, श्रीम-
द्रामचन्द्रचरणभक्तसेवकव्यासोपाह्वश्रीमद्विश्वेश्वरपाठकस्य कनिष्ठ-
सुतन, विद्वद्वरमण्डलमण्डितेन, वेदशास्त्रसम्पन्नेन च श्रीतस्मार्तग्र-
न्थाध्ययनाध्यापनशीलेन, वेदविद्याप्रदसारस्वतान्वयाबालब्रह्मचारि-
श्रीमद्रामानन्दगुरुचरणारविन्दपादुकासेवकेन च, गवर्मेष्ट संस्था-
पितराजकीयपाठालयाधीतविद्यन रामचन्द्रस्यबालूजीफरमाभिधसु-
प्रसिद्धस्थानीयपुराणवाचकेन श्रीमद्भक्तानगराद्यनेकसुप्रतिष्ठधार्मि-
कगोष्ठोगरिष्ठवैदिकधर्मानुयानवरिष्ठमहारजिभ्यो लब्धवैदुष्यप्रति-
ष्ठेन च व्यासोपाह्वश्रीमद्युगलकिशोरपाठकेन श्रीमद्योगिवरयाज्ञव-
ल्क्यदत्तकपुत्रेण श्रीमत्कात्यायनप्रणीताष्टाध्याय्यात्मकं वज्रटसुतोञ्ज-
टकृतभाष्ययुतं शुक्लयजुर्वेदीयप्रातिशाख्यपुस्तकं सभाष्यप्रतिज्ञासू-
त्रसभाष्यत्रिकण्डिकाभाषिकसूत्रजटापटलग्यजुःपरिशिष्टसूत्रानुवा-
काध्यायपरिशिष्टसूत्रैः समेतं महर्षिशीनकप्रणीतचरणव्यूहपरिशि-
ष्टसूत्रं महिदामकृतभाष्यसहितं पूर्वममुद्रितं वेदशास्त्रव्युत्पन्नानां
विदुषां मैथिलान्दनेकदेशीयकात्राणां च सौकर्यायं आधुनिकशुष्क-
वैदिकस्वरवर्णीचारणपरिपाटीशोधनार्थं च आदर्शपञ्चकमाहाय्य-
मवलम्ब्य विषयमूचनपत्रशुद्धाशुद्धपत्रान्वितं च मीसकाचरैः संस्कृ-
त्य स्वरचित्रप्रातिशाख्यकीर्तिप्रकाशाख्यटिप्पण्या सह संविशोध्य
वैश्यवयंकन्नूलसंस्थापितसीरीजभागीयमुद्रालये शर्मण्यदेशीयसु-

प्रख्यातमहाशयडाक्टरथिवोसाहिबानुमत्या १६४५ पञ्चचत्वारिं-
 शदुत्तरैकोनविंशतिशततमवैक्रमाब्दीयमहमासावदातदलतिथितिथौ
 प्रकाशितम् ॥ अत्र च प्रथमपुस्तकं मया १६१६ एकोनविंशत्युत्तरै-
 कोनविंशतिशततमवैक्रमाब्दीयं पण्डितेश्वरीदत्तत्रिपाठिहस्तलिखि-
 तमतीवशुद्धं लब्धम् ॥ अपरं श्रीमन्नङ्गाधरपाठककनिष्ठापत्यश्रीगौ-
 रीनाथशास्त्रिहस्तादष्टनवत्युत्तराष्टादशशततम १८६८ वैक्रमाब्दीयं
 प्राप्तम् ॥ तृतीयपुस्तकं गवर्मेण्टसंस्थापितराजकीयपाठशालीयसं-
 स्कृतपुस्तकालयस्थपण्डितवरश्रीमद्रमानाथगर्मणः करकमलात्पा-
 चीनं काश्मीरलिपिकामिकाशीत्युत्तराष्टादशशततम १८८१ वैक्र-
 माब्दीयं गृहीतम् ॥ तुरीयं गोडगे उपाङ्ग श्रीप्रभाकरभट्टस्य हस्ता-
 दतीवशुद्धं सटिप्पणं षडशीत्युत्तरमष्टादशशततम १७८६ शालिवाहन-
 शाकाब्दीयम् ॥ पञ्चमपुस्तकं मन्मिन्वय्येवन्दावननगरवास्तव्यवेदा-
 र्थकरणचमस्वर्गवासिनः श्रीमखालालगर्मणः कृपयाऽतीवप्राचीनं
 शुद्धं श्रौतस्त्राख्यव्याख्यानयुतं वैदिकमानभञ्जिन्याख्यटिप्पणान्वितं
 च षोडशोत्तराष्टादशशततम १८१६ वैक्रमाब्दीयञ्चापलब्धम् ॥ अ-
 दन्मिन्ग्रन्थे प्रमादेनान्यथा स्याच्छोधने ग्रन्थे च तद्वृद्धिमन्तः सम्य-
 गध्ययनाध्यापनादिना प्रचारयन्तु कृपया शोधयन्तु चेति शम् ॥

अथ प्रातिशाख्यसूत्रप्रतिज्ञासूत्रभाषिकसूत्राणां विष-
यसूचनपत्रस्य अध्यायष्टष्ठसूत्राङ्का लिख्यन्ते ॥



| शक्तयजुर्वेदीयमाध्यन्दिनशाखायां स्वरसं- | प० | ष्ट० | सू० |
|---|-----|------|-----|
| स्काराधिकारः | ... | ... | ... |
| सौक्तिकवैदिकशब्दयोर्भेदः | ... | ... | ... |
| शब्दोत्पत्तिकथनम् | ... | ... | ... |
| वेदपठनादौ श्रीङ्गाराथकारोच्चारणभेदः | ... | ... | ... |
| वेदपठनविधिः | ... | ... | ... |
| वर्णनिर्देशः उपधासंज्ञा | ... | ... | ... |
| सवर्णसंज्ञा | ... | ... | ... |
| सिन्धुसंज्ञा | ... | ... | ... |
| सन्ध्यचरसंज्ञा | ... | ... | ... |
| भावीसंज्ञा | ... | ... | ... |
| व्यञ्जनसंज्ञा | ... | ... | ... |
| संयोगसंज्ञा | ... | ... | ... |
| सङ्ख्यासंज्ञा | ... | ... | ... |
| जिह्वसंज्ञा | ... | ... | ... |
| सुखसंज्ञा | ... | ... | ... |
| धिसंज्ञा | ... | ... | ... |
| सोमसंज्ञा | ... | ... | ... |
| ऋक्संज्ञा | ... | ... | ... |
| दीर्घसंज्ञा | ... | ... | ... |
| भुतसंज्ञा | ... | ... | ... |
| अक्षमात्रासंज्ञा | ... | ... | ... |
| अणुमात्रासंज्ञा | ... | ... | ... |
| परमाणुमात्रासंज्ञा | ... | ... | ... |
| स्थानाधिकारः | ... | ... | ... |

| | अ० | पृ० | सू० |
|---|----|-----|-----|
| ऋस्रग्रहणेन दीर्घप्लुतग्रहणपरिभाषा ... | १ | २३ | ६३ |
| आद्याक्षरग्रहणेन बर्गग्रहणपरिभाषा | १ | २२ | ६५ |
| सवर्णवद्वग्रहणकार्यम् ... | १ | २५। | ७२ |
| ऐकारौकारयोः सन्धिकथनम् ... | १ | २५। | ७३ |
| अथ करणानि ... | १ | २०। | ७६ |
| पदान्तीयवर्णाः स्पर्शान्ताः स्थानादिमुक्ताः | १ | २८ | ८५ |
| प्रगृह्यसंज्ञा ... | १ | ३१ | ८२ |
| अक्षरसंज्ञा ... | १ | ३३ | ८८ |
| पूर्वाङ्गपराङ्गचिन्ता ... | १ | २४ | १०२ |
| उदात्तानुदात्तस्वरितलक्षणम् ... | १ | ३६ | १०८ |
| जात्यस्वरितलक्षणम् ... | १ | ३७ | १११ |
| अभिनिहितस्वरितलक्षणम् ... | १ | ३८ | ११४ |
| क्षेप्रस्वरितलक्षणम् ... | १ | ३८। | ११५ |
| प्रक्षिप्तस्वरितलक्षणम् ... | १ | ३८ | ११६ |
| तैरोश्चञ्चनस्वरितलक्षणम् ... | १ | ४७ | ११७ |
| तैरोविरामस्वरितलक्षणम् ... | १ | ४० | ११८ |
| पादवृत्तस्वरितलक्षणम् ... | १ | ४१ | ११८ |
| तथाभाष्यस्वरितस्वरलक्षणम् ... | १ | ४१ | १२० |
| ह्रस्वस्वरलक्षणं यावज्जल्लक्ष्यम् ... | १ | ४२ | १२२ |
| यजुर्वेदेऽपि सप्तस्वराः ... | १ | ४२ | १२७ |
| विकारागमपरिभाषासूत्राणि ... | १ | ५० | १३३ |
| लोपलक्षणम् । ... | १ | ५१ | १४१ |
| सन्निकटविप्रकटपूर्वोत्तरीभावः ... | १ | ५४ | १४४ |
| आम्बेडितलक्षणम् ... | १ | ५४ | १४६ |
| स्थितोपस्थितलक्षणम् ... | १ | ५५ | १४७ |
| अपृक्तपदसंज्ञा ... | १ | ५८ | १५१ |
| आद्यन्तवद्भावलक्षणम् ... | १ | ५८ | १५२ |
| इति पदभिन्नावग्रहस्य पदान्तवद्भावः | १ | ५८ | १५३ |
| द्विपदसंहितालक्षणम् ... | १ | ५८ | १५५ |

| | प० | पृ० | सू० |
|--------------------------------|----|-----|-----|
| असंहितपदपाठलक्षणम् .. | १ | ५२ | १५६ |
| पादपरिचानम् .. | १ | ६० | १५७ |
| प्राथसंहितालक्षणम् .. | १ | ६० | १५८ |
| उत्तरशास्त्रस्य बलवत्वम् .. | १ | ६१ | १५९ |
| रिफितविसर्गविधिलक्षणाणि .. | १ | ६२ | १६० |
| प्रथमोऽध्यायः .. | १ | ६७ | १६२ |
| एकोदात्तलक्षणम् .. | २ | ६८ | १ |
| अनुदात्ताधिकारः .. | २ | ६९ | २ |
| षष्ठ्यामन्त्रितयोरिकस्वरः । .. | २ | ७८ | १८ |
| आमन्त्रितान्यननुदात्तानि .. | २ | ८२ | २० |
| आद्युदात्तानि .. | २ | ८४ | ४६ |
| द्व्युदात्तानि .. | २ | ८७ | ४८ |
| त्र्युदात्तानि .. | २ | १०० | ५१ |
| सर्वोदात्तानि .. | २ | १०० | ५२ |
| सर्वानुदात्तानि .. | १ | १०१ | ५४ |
| अन्तोदात्तानि .. | २ | १०२ | ६४ |
| अन्तोदात्ताद्युदात्तं वा .. | ३ | १०७ | ० |
| द्वितीयोऽध्यायः .. | | | |
| संहिताधिकारः .. | ३ | १०८ | १ |
| पदलक्षणम् । .. | ३ | १०८ | २ |
| पूर्वापरबाधकलक्षणम् .. | ३ | ११० | ४ |
| विसर्गकार्यम् .. | ३ | १११ | ६ |
| निलोपकार्यम् .. | ३ | ११६ | १८ |
| इति परे नागमविकाराः .. | ३ | ११७ | १८ |
| चर्चापरे नागमविकाराः .. | ३ | ११८ | २० |
| विसर्गस्य सकारमकारकार्यम् .. | ३ | ११८ | २१ |
| णत्वकार्यम् .. | ३ | १४२ | ८५ |
| दीर्घत्वकार्यम् .. | ३ | १५५ | ८७ |

| | अ० | पृ० | सू० |
|-----------------------------------|----|-----|-----|
| अन्तस्थाप्रागुपधाऽनुनासिकत्वम् .. | २ | १८४ | १३१ |
| नकारस्य कार्यम् ... | २ | १८६ | १३४ |
| तृतीयोऽध्यायः .. | २ | १८८ | १५२ |
| अनुस्वारकार्यम् .. | ४ | १८८ | १ |
| सोपधानुनासिकम् .. | ४ | २०२ | ४ |
| प्रसवर्णकार्यम् ... | ४ | २०४ | १२ |
| तकारस्य लकारकार्यम् .. | ४ | २०५ | १३ |
| छन्दयोः कतकार्यम् .. | ४ | २०६ | १५ |
| स्वरभक्तिकार्यम् .. | ४ | २०७ | १७ |
| इतिकारागमः .. | ४ | २०८ | १८ |
| यदावृत्तिकार्यम् .. | ४ | २०८ | २० |
| चकारागमकार्यम् .. | ४ | २१२ | ३५ |
| कभान्तकार्यम् .. | ४ | ११३ | २७ |
| स्वरान्तकार्यम् .. | ४ | २१५ | २८ |
| रिद्विसर्गकार्यम् .. | ४ | २२० | ३४ |
| विसर्गस्य रेफकार्यम् .. | ४ | २२१ | ३६ |
| कण्ठ्योपधविसर्गस्य यकारविधिः .. | ४ | २२१ | ३७ |
| विसर्गलोपकार्यम् .. | ४ | २२२ | ३८ |
| विसर्गस्थीकारकार्यम् .. | ४ | २२३ | ४२ |
| भाव्यन्तस्य कार्यम् .. | ४ | २२५ | ४६ |
| सन्ध्यक्षराणामयादिकार्यम् .. | ४ | २२६ | ४७ |
| कण्ठ्यस्वरस्य ऋस्वत्वम् .. | ४ | २२७ | ४८ |
| पूर्वोत्तरयोरैकत्वम् .. | ४ | २२८ | ५० |
| सिम्बर्णस्य दीर्घत्वम् .. | २ | २२८ | ५१ |
| पूर्वापरयोरनुनासिकत्वम् .. | ४ | २२८ | ५२ |
| एत्वौत्वकार्यम् .. | ४ | २२८ | ५३ |
| एकादेशस्य निपातनत्वम् .. | ३ | २३० | ५५ |
| सन्ध्यक्षरयोरैकत्वमौत्वं च .. | ४ | २३१ | ५७ |

| | | | अ० | पृ० | सू० |
|--------------------------------|-----|-----|----|-----|-----|
| ऋकारि आरास्कार्यम् | ... | ... | ४ | २३१ | ५२ |
| अभिनिधानकार्यम् | ... | ... | ४ | २३२ | ६१ |
| प्रकृतिभावत्वम् | ... | ... | ४ | २४८ | ८१ |
| अष्टकोकारस्य दीर्घानुनासिक्यम् | ... | ... | ४ | २५८ | ८२ |
| तवर्गस्य चवर्गत्वम् | ... | ... | ४ | २५८ | ८५ |
| ग्रस्य कृत्वम् | ... | ... | ४ | २६० | ८७ |
| उदःपरस्मन्लोपत्वम् | ... | ... | ४ | २६० | ८७ |
| अश्वस्ये तकारत्वम् | ... | ... | ४ | २६१ | ८८ |
| द्वित्वकार्यम् | ... | ... | ४ | २६१ | ८८ |
| स्वराणां द्विमात्रिकत्वम् | ... | ... | ४ | २६१ | १०० |
| द्वितीयचतुर्थयोर्द्वित्वम् | ... | ... | ४ | २६८ | १०७ |
| द्वित्वनिषेधकार्यम् | ... | ... | ४ | २६८ | १०८ |
| पञ्चमस्य तृतीयत्वम् | ... | ... | ४ | २७० | १०८ |
| अपञ्चमस्य प्रथमत्वम् | ... | ... | ४ | २७५ | ११८ |
| अपञ्चमस्य द्वितीयत्वम् | ... | ... | ४ | २७६ | ११८ |
| अपञ्चमस्य पञ्चमत्वम् | ... | ... | ४ | २७७ | |
| हस्य पूर्वचतुर्थत्वम् | ... | ... | ४ | २७७ | |
| यवयोर्लोपकार्यम् | ... | ... | ४ | २७८ | १२५ |
| नवकारलोपः | ... | ... | ४ | २८० | १२५ |
| प्रयुगमिति यलोपो वा | ... | ... | ४ | २८१ | १२८ |
| स्वराणामेकीभावत्वम् | ... | ... | ४ | २८२ | १३० |
| परत्वादुदात्तस्य बलत्वम् | ... | ... | ४ | २८३ | १३३ |
| उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितत्वम् | ... | ... | ४ | २८६ | १३५ |
| उदात्तस्वरपरिऽनुदात्तत्वम् | ... | ... | ४ | २८७ | १३६ |
| स्वरितस्य नीचीकरणम् | ... | ... | ४ | २८८ | १३८ |
| प्रचयस्वरत्वम् | ... | ... | ४ | २८८ | १३८ |
| उदात्तमयस्य निषेधः | ... | ... | ४ | २८० | १४१ |
| द्विवर्णमेकवर्णत्वम् | ... | ... | ४ | २८० | १४२ |
| एकारौकारयोरेकत्वम् | ... | ... | ४ | २८१ | १४३ |

| | | | अ० | पृ० | सू० |
|---|-----|-----|----|-----|-----|
| सङ्क्षयोर्द्धत्वम् | ... | ... | ४ | २८२ | १४४ |
| द्विसकारत्वम् | ... | ... | ४ | २८२ | १४५ |
| कलोरत्वत्वम् | ... | ... | ४ | २८४ | १४८ |
| कृत्वपूर्वकानुस्वारस्याध्यर्धमात्रिकत्वम् | | | ४ | २८४ | १४८ |
| दीर्घप्रागनुस्वारस्यार्धमात्रिकत्वम् | ... | ... | ४ | २८५ | १५० |
| द्वियकाराधिकारः | ... | ... | ४ | २८६ | १५२ |
| एकयकाराधिकारः | ... | ... | ४ | २८८ | १५७ |
| एकयकारनिषेधः | ... | ... | ४ | ३०२ | १६१ |
| यमवर्णापत्तिः | ... | ... | ४ | ३०३ | १६२ |
| यमापत्तिर्दोषः | ... | ... | ४ | ३०४ | १६३ |
| स्फोटनं दोषः | ... | ... | ४ | ३०५ | १६४ |
| जकारस्य यकारो वा | ... | ... | ४ | ३०६ | १६६ |
| सङ्क्रमाधिकारः | ... | ... | ४ | ३१६ | १७८ |
| क्रमप्रयोजनम् | ... | ... | ४ | ३१८ | १८२ |
| क्रमलक्षणम् | ... | ... | ४ | ३१९ | १८३ |
| त्रिक्रमलक्षणम् | ... | ... | ४ | ३२० | १८५ |
| चतुष्क्रमलक्षणम् | ... | ... | ४ | ३२२ | १८८ |
| स्थितोपस्थितप्रकारः | ... | ... | ४ | ३२६ | १९५ |
| क्रमसन्धानानि | ... | ... | ४ | ३२७ | १९५ |
| चतुर्थीध्यायः | | | | | |
| अवग्रहलक्षणम् | ... | ... | ५ | ३२८ | १ |
| अवग्रहनिषेधः | ... | ... | ५ | ३४४ | १ |
| पंचमोऽध्यायः | | | | | |
| आख्यातादीनामनुदात्तादिविशेषस्वराधिकारः | ... | ... | ६ | ३६३ | १ |
| उपसर्गस्वरकथनम् | ... | ... | ६ | ३६४ | २ |
| आख्यातस्वराभिधानम् | ... | ... | ६ | ३७० | ११ |
| द्विस्पर्शाधिकारः | ... | ... | ६ | ३७६ | २५ |
| त्रिस्पर्शविधानम् | ... | ... | ६ | ३८० | २८ |
| ङकारद्वयकार्यम् | ... | ... | ६ | ३८१ | ३० |

| | अ० | पृ० | सू० |
|---|----|-----|-----|
| षष्ठोऽध्यायः | | | |
| अवसानमितिकारेण स्वराणाम् ... | ७ | ३८२ | ८ |
| भाव्युपधरिद्विसर्गयोरेके, सन्धिः ... | ७ | ३८५ | ९ |
| प्रथमवर्णास्तृतीयेनावसानम् ... | ७ | ३८६ | १० |
| उत्तमवर्णाः पञ्चमेनेतिपदेन सहावसानम् | ७ | ३८६ | ११ |
| इतिसप्तमोऽध्यायः | | | |
| वर्णसमाम्नायसूत्रम् ... | ८ | ३८७ | १ |
| स्वरा व्याख्याताः ... | ८ | ३८७ | २ |
| सम्यक्स्वराणि व्याख्यातानि ... | ८ | ३८८ | ३ |
| अथ व्यञ्जनानि व्याख्यातानि ... | ८ | ३८८ | ४ |
| स्पर्शा व्याख्याताः ... | ८ | ३८८ | ५ |
| अन्तस्था व्याख्याताः ... | ८ | ३८९ | ६ |
| ऊंभाषो व्याख्याताः ... | ८ | ३८९ | ७ |
| अथायोगवाहा व्याख्याताः ... | ८ | ३८९ | ८ |
| जिह्वामूलीयो व्याख्यातः ... | ८ | ३८९ | ९ |
| उपधांतीयो व्याख्यातः ... | ८ | ३८९ | १० |
| अनुस्वारो व्याख्यातः ... | ८ | ३८९ | ११ |
| विसर्जनीयो व्याख्यातः ... | ८ | ३८९ | १२ |
| ह्रँ इति नासिक्यो व्याख्यातः ... | ८ | ३९० | १३ |
| यमा व्याख्याताः ... | ८ | ३९० | १४ |
| एते पञ्चषष्टिवर्णा व्याख्याताः ... | ८ | ३९० | १५ |
| वेदाध्ययनविधिः ... | ८ | ३९१ | १७ |
| ग्रन्थतोऽर्थतश्च वेदफलमाह ... | ८ | ३९१ | १८ |
| वर्णसमाम्नायवर्णा जिह्वामूलीयाद्या माध्यन्दि- | | | |
| नानां नेष्यन्ते ... | ८ | ३९२ | २९ |
| वर्णदेवता व्याख्याताः ... | ८ | ३९४ | ३१ |
| अक्षरसंज्ञा व्याख्याताः ... | ८ | ३९५ | ३२ |
| पदसंज्ञा व्याख्याताः ... | ८ | ३९६ | ४१ |
| पदस्य चतुर्भेदो व्याख्यातः ... | ८ | ३९६ | ४३ |

| | अ० | पृ० | सू० |
|--|----|-----|-----|
| अथ पदगोत्रा व्याख्याताः- ... | ८ | ३२८ | ४८ |
| पददेवता व्याख्याताः ... | ८ | ३२८ | ५० |
| स्वरसंस्कारप्रशंसा व्याख्याता ... | ८ | ४०० | ५४ |
| अष्टमोऽध्यायः समाप्तः ... | ८ | ४०१ | |
| | क० | पृ० | सू० |
| मन्त्रब्राह्मणयोर्वैदत्वम् ... | १ | ४०२ | २ |
| स्वरप्रक्रियाकथनम् ... | १ | ४०४ | ३ |
| अनुदात्तो व्याख्यातः ... | १ | ४०८ | ४ |
| उदात्तो व्याख्यातः ... | १ | ४०८ | ५ |
| स्वरितो व्याख्यातः ... | १ | ४०८ | ६ |
| जात्यादयः कथिताः ... | १ | ४१० | ७ |
| ब्राह्मणे वृदात्तानुदात्तो ... | १ | ४१२ | ८ |
| सूत्राणि तानस्वराणि व्याख्यातानि ... | १ | ४१३ | १२ |
| अन्तस्थप्रकारोच्चारणविधानम् । ... | २ | ४१४ | १ |
| द्वित्व्यकारोऽप्येवम् ... | २ | ४१८ | २ |
| अन्तस्थप्रकारोच्चारणविधिः ... | २ | ४१८ | ३ |
| द्वितीयान्तस्थस्य विधिः ... | २ | ४२१ | ४ |
| ऋकारस्य एकारसदृशोच्चारणविधिः ... | २ | ४२२ | ५ |
| वकारोच्चारणप्रकारस्त्रिधा ... | २ | ४२३ | ६ |
| षकारोच्चारणप्रकारः । ... | २ | ४२३ | ७ |
| अध्ययनादिकर्मसूच्यारणविधिः ... | २ | ४२५ | ८ |
| अनुस्वारस्य ठंकारादेशः ... | ३ | ४२६ | १ |
| ठं कारस्य चैविध्यप्रकारः ... | ३ | ४२६ | २ |
| परसवर्णस्य ईषत्वकृत्योच्चारणम् ... | ३ | ४२८ | ३ |
| विसर्गस्त्रिषद्विरतिः | ३ | ४२८ | ४ |
| संयुक्तस्य अकारस्त्रिषद्दीर्घता ... | ३ | ४३० | ५ |
| अथ भाषिकपरिशिष्टे ब्राह्मणस्वरसंस्कारनियमः । | | ४३१ | १ |
| मन्त्रस्वरो निरूपितः ... | १ | ४३३ | २ |
| ब्राह्मणे स्वरलक्षणम् ... | १ | ४३३ | ३ |

| | क० | पृ० | सू० |
|---|----|-----|-----|
| उदात्तानुदात्तयोर्भाषिकसञ्ज्ञा .. | १ | ४३४ | ४ |
| अनुदात्तोदात्तयोः पूर्वमेकादेशः .. | १ | ४३५ | ५ |
| आप्रपूर्वआख्यातपरो न भाषिकसञ्ज्ञा .. | १ | ४३५ | ६ |
| समासाख्यातपरो न भाषिकस्वरः .. | १ | ४३७ | ७ |
| अपूर्वसमासो न भाषिकस्वरः .. | १ | ४३८ | ८ |
| जात्याभिनिहितचैप्रप्रस्निष्टानां भाषिकसञ्ज्ञा १ | १ | ४३८ | ८ |
| उदात्तादीनां भाषिकसञ्ज्ञा .. | १ | ४४० | १० |
| ओकारस्य भाषिकसञ्ज्ञा | १ | ४४० | ११ |
| भाषिकसञ्ज्ञकानामुदात्तविधानम् .. | १ | ४४१ | १२ |
| स्वरितानुदात्तयोरुदात्तत्वम् .. | १ | ४४१ | १३ |
| उदात्तस्यानुदात्तविधानम् | १ | ४४२ | १४ |
| अन्तोदात्तस्यानुदात्तम् | १ | ४४२ | १५ |
| भाषिकेपरे उदात्तानुदात्तयोरनुदात्तम् | १ | ४४२ | १६ |
| स्वरितस्य भाषिके परेऽनुदात्तादेशत्वम् | १ | ४४४ | १७ |
| भाषिकस्य स्वरितस्याभिनिहितत्वम् । | १ | ४४५ | १८ |
| अनुदात्तानां कम्पनत्वविधानम् .. | १ | ४४६ | १९ |
| भाषिके परेऽनुदात्तस्य कम्पनत्वम् .. | १ | ४४६ | २० |
| उदात्तपूर्वस्य स्वरितस्य भाषिकपरे कम्पनत्वम् १ | १ | ४४७ | २१ |
| मुख्यमतेऽन्योदात्तस्यानुदात्तत्वम् .. | १ | ४४७ | २२ |
| आख्यातपदानां स्वरविकाराः .. | २ | ४४८ | १ |
| अर्थाख्यातविकारः | २ | ४४८ | २ |
| पदाद्याख्यातविकारः | २ | ४४८ | ३ |
| हिशब्दपराख्यातविकारः | २ | ४५० | ४ |
| हस्तपदाख्यातविकारः | २ | ४५० | ५ |
| नेत्पराख्यातविकारः | २ | ४५० | ६ |
| कुवित्पराख्यातविकारः | २ | ४५१ | ७ |
| अहःपराख्यातविकारः | २ | ४५१ | ८ |
| चपदात्परआख्यातविकारः | २ | ४५१ | ९ |
| आमन्त्रितस्वरपराख्यातविकारः .. | २ | ४५२ | १० |

| | कां० | पृ० | सू० |
|--|------|-----|-----|
| जिज्ञासिताख्यातविकारः ... | २ | ४५२ | ११ |
| विचारिताख्यातविकारः ... | २ | ४५३ | १२ |
| अवधारणार्थाख्यातविकारः ... | २ | ४५३ | १३ |
| यद्योगाख्यातविकारः ... | २ | ४५३ | १४ |
| विनियोगार्थाख्यातविकारः ... | २ | ४५४ | १५ |
| वाक्यशेषाख्यातविकारः ... | २ | ४५४ | १६ |
| अनुबन्धात्पराख्यातविकारः ... | २ | ४५५ | १७ |
| आषोडशाक्षरादाख्यातविकारः ... | २ | ४५५ | १८ |
| आपञ्चविंशाक्षराख्यातविकारः ... | २ | ४१६ | १९ |
| आद्वाविंशाक्षरादाख्यातविकारः ... | २ | ४५६ | २० |
| आमर्यादाख्यातपदविकारः ... | २ | ४५७ | २१ |
| विनियोगार्थकाख्यातविकारः ... | ३ | ४५८ | १ |
| जिज्ञासितयोः पूर्वाख्यातविकारः ... | ३ | ४५८ | २ |
| अन्यजातीययोः पूर्वाख्यातविकारः ... | ३ | ४५८ | ३ |
| विकारितसमुच्चयोः पूर्वपदविकारः ... | ३ | ४५८ | ४ |
| निर्वचनानुबन्धाख्यातपदस्य न विकारः | ३ | ४६० | ५ |
| भूयोवाद्यादिपदादाख्यातस्य न विकारः | ३ | ४६१ | ६ |
| समात्यर्थसमीपस्थानामाख्यातानां न विकारः | ३ | ४६२ | ७ |
| स्वराद्ययोरल्पतरस्य स्वरस्य प्रकृतिभावः | ३ | ४६२ | ८ |
| स्वरादिसममात्रयोर्यमपदयोर्न प्रकृतिभावः | ३ | ४६३ | ९ |
| नामाख्यातादीनां ब्राह्मणे स्वरविपर्ययः | ३ | ४६४ | १० |
| कण्ठदीर्घस्वस्वरयोरऋवर्णे ... | ३ | ४६४ | ११ |
| पदान्तीयवकारलोपो ब्राह्मणे ... | ३ | ४६५ | १२ |
| अन्यत्पदं पाणिनीयव्याकरणाक्षिप्तम् ... | ३ | ४६६ | १३ |
| अकारादीनां लुपर्थन्तानां स्वराणां अलवद्विधानम् ... | ३ | ४६६ | १४ |
| शतपथब्राह्मणस्वरवत्ताण्डिभाक्तविनां ब्राह्मणस्वरः ... | ३ | ४६७ | १५ |
| यजुर्वेदे ऽपि सप्तस्वरा भवन्ति ... | ३ | ४६७ | १६ |

| | कां० | पृ० | सू० |
|---|------|-----|-----|
| सप्तस्वराणामुत्पत्तिस्थानानि ... | ३ | ४६८ | १७ |
| चरकाणां मन्त्रस्वरवद्व्राह्मणस्वरो भवति | ३ | ४६९ | २५ |
| खाण्डिकेयौखीयानां शाखिनां चातुःस्वर्यम् | ३ | ४६९ | २६ |
| आश्वलायनादीनां तानस्वरो भवति ... | ३ | ४६९ | २७ |
| अङ्गीपाङ्गानां तानस्वरो भवति ... | ३ | ४७० | २८ |
| | कां० | पृ० | सू० |
| अष्टविक्रतीनां लक्षणानि ... | १ | ४७१ | १ |
| अष्टविक्रतीनां पाठे फलानि ... | १ | ४७१ | १ |
| जटालक्षणं सोदाहरणम् ... | २ | ४७२ | २ |
| जटानिपेक्षलक्षणम् ... | २ | ४७२ | २ |
| जटायां पञ्चसन्धयः सोदाहरणाः ... | ३ | ४७३ | ३ |
| स्थितोपस्थिते ये विधयस्त्ये व्युत्क्रमे न पठनीयाः | ४ | ४७३ | ४ |
| विश्वपतीव वर्ज्यम् ... | ४ | ४७५ | ४ |
| विकल्पविषयसन्धौ पाणिनीयव्याकरणं | | | |
| प्रमाणम् ... | ५ | ४७५ | ५ |
| अनुक्रमसङ्क्रमयोः सन्धौ स्वरेषु प्रतिशाख्यं | | | |
| प्रमाणम् ... | ५ | ४७८ | ५ |
| सवर्णे स्वरे परेऽपृक्तोकारस्य बलविधानम् | ६ | ४८० | ५ |
| सन्धिकारकसूत्रेण वर्णान्तरेणैक्येन | | | |
| उकारः प्रगृह्यः ... | ६ | ४८१ | ५ |
| निपातौकारस्य प्रगृह्यसञ्ज्ञा भवति ... | ७ | ४८२ | ५ |
| सपूर्वाकारोऽश्रोङ्गारोऽभ्यासत्वं याति ... | ७ | ४८३ | ५ |
| अयं सर्वोऽसु विकृतिषु शास्त्रार्थो बोध्यः | ८ | ४८३ | ६ |
| अथ पुष्पमालालक्षणम् ... | ८ | ४८३ | ६ |
| अथ क्रममालालक्षणम् ... | ८ | ४८४ | ६ |
| अथ शिखालक्षणम् ... | १० | ४८५ | १ |
| अथ रेखालक्षणम् ... | १० | ४८५ | १२ |
| अथ ध्वजलक्षणम् ... | ११ | ४८६ | ७ |
| अथ क्रमदण्डलक्षणम् ... | १२ | ४८७ | ३ |

| | का० | पृ० | सू० |
|---|-----|-----|-----|
| अथ रथलक्षणम् | १३ | ४८८ | ७ |
| अथ द्विविधघनलक्षणम् | १४ | ४८९ | १२ |
| अथ द्वितीयघनलक्षणम् | १५ | ४८२ | ७ |
| अथ ऋग्यजुःपरिशिष्टसूत्रम् | १५ | ४८४ | ३ |
| अथानुवाकाध्यायपरिशिष्टसूत्रम् | ३ | ५०१ | ५ |
| अथ ग्रीनकोक्तचरणव्यूहसूत्रम् | १ | १ | १ |
| चतुर्वेदसूत्रम् | १ | ५ | २ |
| ऋग्वेदस्याष्टौ स्थानानि | १ | ७ | ४ |
| अष्टविक्रतीनां लक्षणानि भाष्ये | १ | ८ | ६ |
| ऋग्वेदीयपञ्चशाखाः | १ | १० | ७ |
| चतुष्पष्टिरध्याया अष्टौ मण्डलानि | १ | १२ | ८ |
| अथ भाष्ये वेदपारायणधिः | १ | २३ | १० |
| अथ यजुर्वेदस्य शाखाङ्गोपाङ्गाष्टादशपरि- शिष्टानि | २ | २७ | १ |
| अथ महार्णवोक्तदेशमेदेन शाखामेदः | २ | २३ | २ |
| भागवतोक्तक्षणशुक्लवेदोत्पत्तिर्भाष्ये | २ | २३ | २ |
| अथ सामवेदखण्डव्याख्या | ३ | ४३ | ३ |
| अथाथर्ववेदखण्डव्याख्या | ४ | ५३ | ४ |
| अथ चतुर्वेदस्वरूपम् चरणव्यूहफलं च | ५ | ५४ | १ |
| अथ टिप्पण्यां वेदोपवेदाङ्गोपाङ्गादीनां हेमाद्रयुक्त- लक्षणानि | ५५ | | |
| अथ भाष्यकर्तृटिप्पणीकर्तृपद्यानि | ५८ | | |

इति प्रातिशाख्यादिग्रन्थविषयसूचीपत्रं समाप्तम् ॥

शुक्लयजुःप्रातिशाख्यम् ।

उल्लङ्घ्यतभाष्यसहितम् ॥

श्रीगणेशाय नमः ।

यस्य ऋङ्गावलिः कण्ठे स्तुतदानाम्बुपूरिते ।

भाति रुद्राक्षमालेव स वः पायाद् गणाधिपः ॥ १ ॥

प्रणम्य परमात्मानं व्याख्यास्ये प्रातिशाख्यकम् ।

सरस्वतीं च जगतस्तमोनाशनदीपिकाम् ॥ २ ॥

.. जपादौ नाधिकारो ऽस्ति सम्यक्पाठमजानतः ।

प्रातिशाख्यमतो ज्ञेयं सम्यक्पाठस्य सिद्धये (१) ॥ ३ ॥

स्वरसंस्कारयोश्छन्दसि नियमः ॥ १ ॥

स्वर उदात्तानुदात्तस्वरितप्रचितलक्षणः । संस्कारो
लोपागमवर्णविकारप्रकृतिभावलक्षणः । तयोः स्वरसं-
स्कारयोः छन्दसि विषये नियमो ऽधिकृतो वेदितव्यः ।
प्रतिज्ञास्त्वमेतत् प्रतिज्ञा च शिष्यबुद्धिसमाधानार्था ॥

लौकिकानामर्थपूर्वकत्वात् (२) ॥ २ ॥

लोके विदिता लौकिकाः लौकिकानां शब्दानाम-
र्थपूर्वकत्वात्प्रयोजनपूर्वकत्वादस्मिन् शास्त्रे नियमो न

(१) के विदिदं पदं मूले पठन्ति ॥

(२) उत्तरसूत्रादश्वतनकारः काकाक्षिवदत्र सम्बध्यते । लौकिकानां शब्दानां

क्रियते कथं प्रयोजनपूर्वकत्वम् कथं प्रयोजनपूर्वकाणां
शब्दानां नियमो न क्रियते आह देवदत्त गामभ्याज
शुक्लां दण्डेनेति यस्य पुरुषस्य देवदत्तकर्तृका गोत्वजा-
त्युपलक्षितशुक्लाद्रव्यकर्मिका द ७८कारणिका ऽभ्याजन-
क्रिया ऽभिप्रेता स एवैतद्वाक्यं ब्रवीति । न तत्सर्वः (१)
अतो ऽर्थपूर्वकत्वं लौकिकानां शब्दानाम् अर्थपूर्वकत्वे
सत्यर्थाभावे नोच्चारणं लौकिकानां शब्दानां, छन्दसि
पुनरहरहः स्वाध्यायमधीयीतेति श्रुतिचोदनात् अतः
सदाकालं छान्दसानां शब्दानामभ्यासः श्रुत्या विधी-
यते पुरुषस्याभ्युदयार्थम् अतस्तद्विषय एव स्वरसंस्का-
रयोर्नियम आरभ्यते न लौकिकानामर्थपूर्वकत्वात् ॥

न समत्वात् ॥ ३ ॥

नकारः प्रतिषेधवाच्युभयत्र सम्बध्यते काकाक्षिवत्
न चैतद् यद्वैदिकानां शब्दानां स्वरसंस्कारनियमोऽभ्यु-
दयहेतुः किं तर्हि लौकिकानामपि नियमो ऽभ्युदयहे-
तुरेव कुतः समत्वात् तुल्यत्वाच्छब्दानां यएव वैदिकास्त-
एव लौकिकास्त एव तेषामर्था इति अतो यदुक्तं वैदिका-
नामेव स्वरसंस्करणमभ्युदयहेतुरित्येतन्न समत्वात् (२) ॥

अर्थबोधनार्थं प्रयोगात्तत्तदनुसारिप्रकृतिप्रत्ययकल्पनया व्याकरणानुसारेण स्वरसंस्का-
रवर्णनिर्णयः । छन्दसस्तु अपौरुषेयत्वाद्यथोच्चारितं तस्यैव स्वरवर्णस्य च साधुत्वं क-
ल्पनीयम् । तदर्थमिदं प्रातिशाख्यम् । प्रातिशाख्यशब्दस्य व्युत्पत्तिमग्रे वादिष्यति ॥

(१) न सर्वतः । इति 'क' 'स' पुस्तके पाठः ॥

(२) साधून्नेव प्रयुञ्जीत नासाधूनिति । एकः शब्दः सम्यगुच्चारितः स्वर्गे लोके

स्यादाम्नायधर्मित्वाच्छन्दसि

नियमः ॥ ४ ॥

आम्नायो वेदस्तस्य धर्म आम्नायधर्मः आम्नायधर्मो विद्यते यस्य शब्दग्रामस्य स आम्नायधर्मी तस्य भाव आम्नायधर्मित्वम् तस्मादाम्नायधर्मित्वात् भवेद्वा छन्दसि शब्दानां स्वरसंस्कारनियमोऽभ्युदयाय महते स्याच्छन्दसि नियमो महोदयः कतमत्तदाम्नायधर्मित्वं नाम आह आम्नायः क्रियार्थो यज्ञार्थश्च । तद्यथा ब्राह्मणं विध्यर्थवादरूपम् मन्त्रस्तु कर्माङ्गभूतद्रव्यदेवतास्मारकः मन्त्रेण स्मृतं कर्म कर्तव्यमिति नियमार्थं वचनम् मन्त्रस्तु यदि मनागपि स्वरतो वर्णतो वा हीनो भवति अथ कर्मासम्बद्धिः न केवलं कर्मासम्बद्धिः किन्तर्हि दुरिष्टहेतुः प्रत्यवायः स्यात् । उक्तं च मन्त्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह । स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोपराधादिति दुष्प्रयुक्तमन्त्रविषयो निन्दार्थवादः तथा स्वाध्यायविषयः फलार्थवादो भवति घृतकुल्यामधुकुल्याः पितृन्स्वधा अभिवहन्तीति न तु लौकिकशब्दविषयमिदं (१) किञ्चिदुपलभ्यते अतः स्वरसं-

कामधुग् भवति इति भाष्यकारोक्तं यएव वैदिकास्तएव लौकिकास्तएव तेषामर्था इति अन्यथा पाणिन्यादिप्रणयनं व्यर्थमिव स्यादिति ।

(१) मीदृक् इति 'स्' 'ग' पुस्तके पाठः ।

स्कारयोश्छन्दसि नियमो महोदय इति (१) ॥

यत्तन्न (२) ॥ ५ ॥

एवं स्वरसंस्कारौ छन्दसि विषये प्रतिज्ञातौ छन्दोविषये महोदयफलावित्यवधार्य, अधुना शब्दस्वरूपजिज्ञाप्रविषयेदमाह । यत् न ज्ञायते शब्दस्य कारणभूतं तद् वक्ष्याम इति सूत्रशेषः ॥

(१) वा शब्दः पूर्वोक्तसमनियमत्वनिरासनेन निर्द्धारणार्थः ।

मन्त्रब्राह्मणात्मको यो वेदः सो ऽपि विधयर्थवादमन्त्रनामधेयभेदेऽनुविधौ यज्ञादिक्रियार्थः । विधिरस्तु प्रवर्तनात्मकः यावज्जीवमग्निहोत्रञ्जुहुयादिति । अग्न्यादिविधिस्तावकः प्ररोचनाविशेषजनकः । ब्रह्मवर्चसीहैव भवति य एवं विद्वानग्निहोत्रं जुहोतीत्यादि । मन्त्रस्तु कर्म्मोक्तभूतद्रव्यदेवतादिस्मारकः । मन्त्रेण स्मृतं कर्म्म कर्त्तव्यमिति नियमार्थं वचनम् । मन्त्रान्तैः कर्म्मादिः सान्निपत्यो ऽभिधानादिति । नामधेयानुगुणफलोपबन्धार्थं वेदः । अग्निहोत्रं जुहोतीत्यादि । एवं चतुर्विधस्यान्नाग्न्यस्य धर्मः । अहरहः स्वाध्यायमधीयीत । तस्मात् स्वाध्यायोऽध्येतव्य इत्यादि । घृतकृत्यामधुकृत्याः पितृन्स्त्वधाऽभिवहन्ति । प्रज्ञावृद्धियशोऽलोकापाकैरित्याद्यभ्युदयहेतुफलार्थवाद्भो भवति । अति ह वै पुनर्मृत्युमुच्यते गच्छति ब्रह्मणः सात्मतमित्युपक्रम्य तथा भूमेऽप्यो न हीयत इत्यादि दुरिष्ठहेतुः प्रत्यवायपरिहारो ऽपि भवतीत्याहम वेदः । तथा वर्णतः स्वरतो युक्तो महते ऽभ्युदयायेत्याह । तस्य हैतस्य साम्नो यो वेदो भवति हास्वत्वं तस्य वै स्वरएव स्वमित्युपक्रम्य भवति हास्यत्वमित्यादि । यथा वेद उक्तवान् उक्तोऽन्वद्वा कर्म्मोक्ततामित्यादि तद्वास्यां ततः क्षियतएवेति । तथा यन्ति वा आप-
एत्यादित्यएति चन्द्रमयान्ति नक्षत्राणि यथा ह वा एता देवता नेयुर्नकुट्युरेवैवैवैव तदहर्ब्राह्मणो भवति यदहः स्वाध्यायज्जाधीते तस्मात् स्वाध्यायज्जाधीते तस्मात् स्वाध्यायोऽध्येतव्यस्तेस्मादप्युचं वा यजुर्वी साम वा गाथां वा कुंठ्यां वा भिव्याहरेदूतस्याव्यवच्छेदायेति दुरिष्टपरिहारः ।

(२) वर्णात्मकश्छन्दस्तु स्वरसंस्कारनियमविधानाद् वर्णवच्छब्दकारणमुपक्रमते । पुनराधीयते न च व्याख्यायते यत् न ज्ञायते पृथिव्यादिभिश्चक्षुरादिभिः स चास्मात् तत्प्रभवं च त्वं च ज्ञेयम् एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूत इति श्रुतेः ।

वायुः खात् ॥ ६ ॥

वायुः कारणभूतः शब्दस्य स च खादाकाशादुत्पद्यते ॥

शब्दस्तत् (१) ॥ ७ ॥

शब्दस्तदात्मको वाय्वात्मक इत्यर्थः ॥

सङ्करोप (२) ॥ ८ ॥

यदि वाय्वात्मकः शब्दः वायोः सर्वगतत्वात् सदाकालं सर्वत्रोपलब्धिः प्राप्नोतीत्याशङ्क्याह । संकरोपेति । सम्यक्करणैरुपहितो हृदि वायुर्वेणुशङ्खादिभिः शब्दीभवति (३) ॥

ससङ्घातादीन् वाक् ॥ ९ ॥

यो वायुः सम्यक्करणैरुपहितो वेणुशङ्खादिभिः शब्दीभवति स एव सङ्घातादीन् प्राप्य वाग् भवति सङ्घतः पुरुषप्रयत्नः स आदौ येषां स्थानादीनां ते सङ्घातादयः

(१) तदिति प्रतिपादिकं साङ्ख्ये । यथाह याज्ञवल्क्यः । सर्गादी तु यथाकाशं वायुं ज्योतिर्मलं भूमीम् । सृजत्येकेजसगुणास्तथादने भवजर्पात् । वायोर्गुणद्वयत्वाद्गुणगुणोत्पत्तेर्भेदेन साङ्ख्येण शब्दात्मको वायुर्इत्यर्थः ।

(२) सङ्करोपहितः इति 'गे' 'षे' पुस्तकपाठः ।

(३) उक्तं च पाणिनिना । आत्मा बुद्ध्या समेत्यर्थान्मनो युङ्क्ते विवक्षया । मनः कायाभिमाहन्ति स प्रेरयति मातृतम् । मातृतस्तूयसि चरन्मन्द्रं जनयति स्वरमिति ॥

तान् प्राथ्य वाग्भवति वर्णो भवतीत्यर्थः (१) ॥

त्रीणि स्थानानि ॥ १० ॥

सङ्गतः पुरुषप्रयत्न इत्युक्तम् । अधुना सङ्गत आ-
दिभूतो येषां स्थानादीनां तान्युच्यन्ते त्रीणि स्थानानि
वायोर्भवन्ति उरःकण्ठशिरःआत्मकानि शरीरे ॥

द्वे करणे ॥ ११ ॥

संष्टतविष्टताख्ये वायोर्भवतः ॥

शरीरात् ॥ १२ ॥

ये एते करणे संष्टतविष्टताख्ये यानि च त्रीणि स्था-

(१) सा वाक् चतुर्द्धा । ऐन्द्रवायवग्रहत्राणे उक्तम् । मनुष्यपशुपक्षिक्षुद्रसरीसृपेषु
तुरीयभागेनावस्थिता परा पश्यन्ती मध्यमा वैखरीति । तथा च श्रुतिः । शतपथब्राह्मणे
४ काण्डे १ प्रगठके ३ ब्राह्मणे । वाग्भवा अस्यैन्द्रवायव इत्युपक्रम्य तौ प्रजापतिं प्रति-
प्रश्नएवेति च तुरीयमेव भाजयां चकारेत्याधिकृत्य तदेतत्तुरीयं वाचो निरुक्तं यन्मनुष्या
वदन्त्यथैतत्तुरीयं वाचो निरुक्तं यत्पशवो वदन्त्यथैतत्तुरीयं वाचो निरुक्तं यद्वयाश्च-
सि वदन्त्यथैतत्तुरीयं वाचो निरुक्तं यदिदं क्षुद्रर्धं सरीसृपन्तस्मादेतदृषिणाऽभ्यनु-
क्तम् ॥ चत्वारि वाक्प्रमितापदानि तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः ॥ गुहा त्रीणि नि-
हिता नेङ्गयन्ति तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति ॥ अथैतासां लक्षणानि ॥ वैखरी शब्द-
निष्पात्तिर्ध्वनिरूपा तु मध्यमा । पश्यन्ती ज्ञानरूपा च वाग्विशुद्धा परा स्मृता इति यथा ।
या सा मित्रावरुणसदनादुच्चरन्ती त्रिषष्टिवर्णान्तःकरणसदनैः प्राणसङ्गप्रसूती । तां
पश्यन्ती प्रथममुदितां मध्यमां बुद्धिसंस्थां वाचं वक्त्रे करणविज्ञां वैखरीं च प्रपद्ये ।
सो दीर्घो मूर्द्धन्यभिहतो वक्त्रमापद्य मासतः । वर्णान् जनयते तेषां विभागः पञ्चधा स्मृ-
तः । स्वरतः कालतः स्थानात्प्रयत्नानुपदानतः । इति वर्णविदः प्राहुर्नैपुणं तन्निबोधत
इति पाणिनिः ॥

नानि शरीराद्वायोर्निर्गच्छतस्तानि भवन्ति यानि पु-
नरुपरिष्ठाद्व्यति स्थानकरणानि तानि मुखस्थाना-
नि अत एवमाह शरीरादिति ॥

शरीरम् ॥ १३ ॥

एवमेतेन प्रकारेण शरीराद्वायुर्निर्गच्छन् कादिव-
र्णविशेषव्यक्तिमापद्यते ॥

शरीरे ॥ १४ ॥

किं शरीराद्वायुर्निर्गच्छन्मात्रादिवर्णविशेषव्यक्ति-
मापद्यते नेत्याह शरीरे शरीरैकदेशे मुखे प्राप्तो
वायुस्तात्वादिस्थानेषु निषक्तः करणेन विशेषव्यक्तिरू-
पेण वर्णत्वमापद्यते ॥

तेषां० समूहात् स उदयस्त्रैका-

ल्यम् ॥ १५ ॥

तेषां स्थानकरणप्रयत्नानां सम्बन्धिनः समूहात् स
उदयन् वायुरुद्गच्छन् त्रैकाल्यमभिधत्ते त्रयः कालाः
समाहृताः त्रिकालम् त्रिकालमेष त्रैकाल्यं स्वार्थं पृथक् ।
त्रिकालसम्बद्धमर्थजाते भवद्भूतभविष्यत्सम्बद्धमर्थजात-
म् । वायुर्वर्णीभूतः पदवाक्यैरभिधत्ते त्रिकालसम्बद्ध-
स्वार्थजातस्य वायुः शब्दरूपेण प्रकाशको भवतीत्यर्थः ।
वायोरियं विभक्तिर्या त्रयी विद्येति ॥

ओङ्कारः स्वाध्यायादौ ॥ १६ ॥

यत्तन्नेत्येवमादिना वायुः प्रदवाक्यरूपेण सर्वं प्रकाशयतीत्युक्तम् । अधुना स्वाध्यायविधिरुच्यते ओङ्कारः स्वाध्यायादौ कर्त्तव्य इति सूत्रशेषः । तथा चाह मनुः ब्रह्मणः प्रणवं कुर्यादादावन्ते च सर्वदा । क्षरत्यनोऽङ्गतं पूर्वं परस्ताच्च विशीर्यते इति (१) ॥

ओङ्काराथकारौ ॥ १७ ॥

ओङ्कारोच्चारणं स्वाध्यायादौ प्रतिज्ञातमेव तत्तुल्यफलोऽथशब्दो ऽपीति सूत्रार्थः । तथा चोक्तम् । ओङ्कारश्चाथकारश्च द्वावेतौ ब्रह्मणः पुरा । कण्ठं भित्त्वा विनिर्यातौ तेनेमौ मङ्गलावुभौ (२) ॥ .

ओङ्कारं वेदेषु ॥ १८ ॥

एवमधस्तनसूत्रेण ओङ्काराथशब्दयोः स्वाध्यायादावविशेषेणोच्चारणमुक्त्वाऽनेन सूत्रेण व्यवस्था क्रियते ओङ्कारं वेदेषु प्रयुञ्जीतेति सूत्रशेषः ॥

अथकारं भाष्येषु ॥ १९ ॥

भाष्येषु ग्रन्थेषु अथकारं प्रयुञ्जीतेति सूत्रशेषः (३) ॥

(१) शिक्षायां याज्ञवल्क्यो ऽपि । प्रणवं प्राक् प्रयुञ्जीत व्याहृतिस्तदनन्तरम् । सावित्रीं चानुपूर्व्येण ततो वेदं समारभेत् इति ।

(२) विनिष्क्रान्तौ तस्मान्माङ्गलिकावुभौ इति 'ग' 'व' पुस्तके पाठः ।

(३) वैदिको ऽर्थो भाष्यते वेषु कल्पसूत्रादिषु तेष्वथशब्दं प्रयुञ्जीतेति ।

प्रयतः ॥ २० ॥

प्रयतः शुचिरुच्यते पादशौचाचमनादिना शुचि-
रधीयीतेत्यर्थः (१) ॥

शुचौ ॥ २१ ॥

शुचौ विविक्तदेशेऽधीयीत । उक्तञ्च । द्वावेव वर्ज-
येन्नित्यमनध्यायौ प्रयत्नतः । स्वाध्यायभूमिं चाशुद्धा-
मात्मानं चाशुचिं द्विजः ॥

इष्टम् ॥ २२ ॥

अभिरुचितमासनमासीनः (२) ॥

ऋतुं प्राप्य ॥ २३ ॥

हेमन्तऋतुं प्राप्य रात्र्याश्चतुर्यप्रहरैः०धीयीत (३) ॥

योजनान्न परम् ॥ २४ ॥

अधीयानो योजनात् परमध्वानं न गच्छेत् (४) ॥

(१) प्राथमिकाष्टमिकाभ्यां सूत्राभ्यामन्तर्बहिर्वाचनमयद्वयसंन्यासादौ शुचिरधीया-
तेत्युच्यते ।

(२) मासीत इति 'घ' पुस्तकपाठः ।

(३) प्रथमेऽपि यामेऽध्ययनं कुर्वीत तदुक्तं याज्ञवल्क्येन । रात्रेः पूर्वोत्तरी यामौ
वेदाभ्यासेन यो नयेत । यामद्वयशयानश्च तदभ्यासं कल्पते । इत्यनेन मितं अध्ययनाय-
द्द्विरात्रार्द्धशायित्वम् । तर्हि विशायित्वा निद्रां चिरं नेत्रेषु निधाय ॥

(४) अत्र कश्चिद् अध्ययनं कुर्वन् योजनात् परमध्वानं न गच्छेदिति वदन् योज-

भोजनं मधुरं स्निग्धम् ॥ २५ ॥

मधुररसप्रायं घृतप्रायं चान्नं (१) भुञ्जीत ॥

वर्णदोषविवेकार्थम् ॥ २६ ॥

अकारादयो वर्णाः तेषां दोषाः तेषां विवेचनाय नानाकरणाय तद्यथा त्रिमात्रिकस्य स्वरस्य द्विमात्र-
ता द्विमात्रिकस्य मात्राकालता अनुनासिकस्य स्वर-
स्यैकदेशरङ्गता यथा महांद्न्द्र इति तथा व्यञ्जनानाम-
नेकप्रकारा दोषाः संभवन्ति अयमपि वक्ष्यति ऊष्णस्यः
पञ्चमेषु यमापत्तिर्दोष इति ॥

तिङ्कृतद्धितचतुष्टयसमासाः

नपर्यन्तं मध्ये मार्गं पठेदित्याह तत्र यदि ह वा अप्यभुक्तोऽलङ्कृतः सुहितः सुखे
शयने शयानः स्वाध्यायमधीयीत । आहैव सनत्वाग्नेभ्यस्तप्यत इति श्रुतावध्ययन-
स्यागममादर्शनात् । कूर्मपुराणे । नोच्छिष्टः संवसेज्जित्यं न नम्रः स्नानमाचरेत् । न
गच्छन्वै पठेद्वापि न चैव स्वशिरः स्पृशेत् । तथा भविष्योत्तरपुराणीयशिवरात्रिकथायां
मृगसंवादे शतपथब्राह्मणेषु चास्यार्थस्योक्तत्वात् । यः षठेत्स्वरहीनं तु लक्षणेन विव-
र्जितम् । रथ्यां च सञ्चरन्विप्रो वेदमुद्गीरयेत्तथा । विप्रस्य पठनं कापि शृणोति ताव-
तान्त्यजः । तेन पापेन लिप्यामि यदि नायामि ते गृहमिति ॥

(१) वाज्रमिति 'घ' पुस्तकपाठः । भोजनपरिमाणं चाह याज्ञवल्क्यः । अन्नव्यञ्ज-
नयोर्भागौ भागैकमुदकस्य च । वायोः सञ्चारणार्थाय भागैकमवशेषयेत् । तथा आन्नपा-
लाशविल्वानामपामार्गशरीषयोः । वाग्यतः प्रातरुत्थाय भक्षयेदन्तधावनम् । सदि-
रक्ष कदम्बक्ष करवीरकरञ्जकौ । सर्वे कण्टकिनः पुण्याः क्षीरिणश्च यशस्विनः । ते-
नास्यकरणं सूक्ष्मं माधुर्यं चोपजायते । आदरं कुरु यत्नेन करणं हितकाम्यया इति ॥

शब्दमयम् ॥ २७ ॥

यत्किञ्चिच्छब्दमयमुपलभ्यते त्रयीलक्षणं तत् ति-
ङ्कृतद्वितचतुष्टयसमासाः तिङ् खलु आख्यातका भव-
न्ति पचति पठतीत्येवमादयः । कृतः कर्त्ता कारक इ-
त्येवमादयः । तद्धिताः आग्नेयः सारस्वत इत्येवमाद-
यः । चतुःप्रकाराः समासाः अव्ययीभावतत्पुरुषद्वन्द्व-
बहुव्रीहयः । अव्ययीभावो यथा समंभूमि उपरिना-
भि । तत्पुरुषो यथा प्रजापतिः दृक्वा । द्वन्द्वो यथा
इन्द्राग्नी मित्रावरुणौ । बहुव्रीहिर्यथा शुद्धवालः स-
र्वशुद्धवालः (१) ॥

तां वाचमोङ्कारं पृच्छामः ॥ २८ ॥

तिङ्कृतद्वितचतुष्टयसमासलक्षणां तामित्यं भूतां-
वाचम् ओङ्कारं पृच्छामः ओङ्कारो वाचः पुत्रः स पृष्टः
सन् स्वाध्यायादाबुच्चारणेन स्वां मातरमर्थतो ग्रन्थतश्च
कथयिष्यति (२) अतः स्वाध्यायादौ प्रणवः कार्यः । द्वि-
कर्मा च पृच्छतिर्धातुः । अतो वाक्शब्दे ओङ्कारशब्दे
च द्वितीया । माणवकं पन्थानं पृच्छतीति यथा (३) ॥

(१) द्विगुल्फधारायौ तत्पुरुषान्तर्भूतौ ज्ञेयौ ॥

(२) तथा च शौनकः यथेह गौर्वत्सरुतं निशम्य हुं कृत्यवत्साभिमुखं प्रयाति ।
ब्रह्मापि तद्वत्प्रणवाभिज्ञं तं वक्तारमागच्छति चाप्यभुक्तिमिति फलम् ॥

(३) ओङ्कारोच्चारणं विना कर्मफलत्र भवति तदुक्तं नरसिंहपुराणे ब्रह्मयज्ञे जपे
होमे देवर्षिपितृकर्मणि । अनोङ्कृत्य कृतं सर्वं न भवेत्सद्विकारकमिति । ओङ्कारम्-

अथ शिक्षा विहिताः ॥ २९ ॥

अथेत्यं शब्दो विशेषाधिकारार्थः शिक्षाविहिताः स्थानकरणास्यप्रयत्नादयोऽभिधीयन्ते इत उत्तरमधिकारद्वयानुवृत्तिर्द्रष्टव्या । स्वरसंस्कारानुवृत्तिः शिक्षाविहितानुवृत्तिश्च ॥

सवनक्रमेणोरः कण्ठभ्रूमध्यानि ॥ ३० ॥

अधस्तादुक्तं सप्तङ्घातादीन् प्राप्य वाक् तस्यास्त्रीणि स्थानानि । ननु कतमानि तानीत्युक्तम् इह तु शिक्षाप्रक्रमात्तत्पर्यायेणोच्यन्ते सवनक्रमेणोरःकण्ठभ्रूमध्यानि । प्रातःसवनमाध्यन्दिनतृतीयसवनक्रमेण उरः-कण्ठभ्रूमध्यानि त्रीणि स्थानानि वायोर्भवन्ति (१) ॥

आयाममार्द्वाभिघाताः ॥ ३१ ॥

एवमेतेषु स्थानेषु वर्णेषूच्चार्यमाणेषु त्रयो विकाराः शरीरस्य पर्यायेण भवन्ति आयाममार्द्वाभिघाताः आयामो नाम ऊर्ध्वगमनं शरीरस्य । मार्द्वं नामाधोगमनं गात्राणाम् अभिघातस्तिर्यग्गमनं गात्राणाम् ॥

हात्म्यमुक्त्वाऽधुना हरिशब्दमाहत्म्यमुच्यते तदुक्तं हरिवंशे वेदे रामायणे चैव पुराणेषु च भारते । आदिमध्यावसानेषु हरिः सर्वत्र गीयत इति ॥

(१) अमुमेवार्थं पाणिनिरप्याह । प्रातः सवनयोगं तं छन्दो गायत्रमाश्रितम् । कण्ठे माध्यन्दिनयुगं मध्यमं त्रैष्टुभानुगम् । तारं तार्तीयसवनं शीर्षण्यं जागतानुगमिति ॥

उच्चनीचविशेषः ॥ ३२ ॥

योऽयन्नामाभिघातः स्वरितः स उच्चनीचविशेषः
उच्चनीचाभ्यामभिनिवर्त्यन्ते । एवं शरीरस्य प्रयत्नेन
ये निवर्त्यन्ते तेषामुपरिष्ठात् सञ्ज्ञां वक्ष्यति उच्चैरुदा-
त्त इत्येवमादिना ॥

अथाख्याः समाम्नायाधिकाः प्राग्नि- फितात् ॥ ३३ ॥

.अथशब्दो मङ्गलार्थः सञ्ज्ञाः समाम्नायाधिकाः वर्णसमाम्नायं वक्ष्यति अथातो वर्णसमाम्नायं व्याख्यास्याम इति । तस्मादधिकाः प्राग्निफितात् रिफितसंशब्दनात्प्राक् वक्ष्यति विसर्जनीयो रिफित इति तस्मात्प्राक् उपलक्षणार्थमेतत् परिभाषाप्यत्र भविष्यति तद्यथा ह्रस्वग्रहणे दीर्घप्लुतौ प्रतीयात् प्रथमग्रहणे वर्गमिति ॥

उपदिष्टा वर्णाः ॥ ३४ ॥

वर्णसमाम्नाये कथिता वर्णाः तद्यथा कितिखिति-
गितिधितिडिति कवर्गः अथवा ये पदेष्टूपदिष्टा वर्णास्तएव प्रत्येतव्याः अन्यद्वचनाद्भविष्यति तद्यथा इषे त्वा अत्र संहितायामपि न वर्णान्यत्वम् वचनात्संहितायां विकारा भविष्यन्ति तांस्तत्रैव वक्ष्यामः । अथवा पदेषु सङ्ख्योपदिष्टा वर्णाः कर्तव्याः तद्यथा इषे त्रिवर्णं पद-

म् । त्वा त्रिवर्णं । पदम् । ऊर्जं पञ्चवर्णं पदम् । उक्तं च
स्वरो वर्णोऽक्षरं मात्रा तत्प्रयोगार्थ एव च । मन्त्रं
जिज्ञासमानेन वेदितव्यं पदे पदे इति ॥

अन्त्याद्वर्णात्पूर्व उपधा ॥ ३५ ॥

अन्ते भवोऽन्त्यो वर्णः ककारादिः अन्त्याद्वर्णात्पूर्व
उपधासंज्ञो भवति तद्यथा महान् इन्द्र इति अत्र न-
कारस्याकार उपधासञ्ज्ञकः । सञ्ज्ञाकरणे प्रयोजनं
वक्ष्यति अनुनासिकमुपधा प्रागन्तस्थाया इति ॥

निर्देश इतिना ॥ ३६ ॥

वर्णानां निर्देश इतिना भवति तद्यथा कितिखिति-
गितिधितिङिति कवर्ग इति ॥

कारेण च ॥ ३७ ॥

कारप्रत्ययेन च वर्णानां निर्देशो भवति तद्यथा य-
कारवकारयोर्जास्यत्ये पद इति (१) ॥

अव्यवहितेन व्यञ्जनस्य ॥ ३८ ॥

अकारव्यवहितेन कारप्रत्ययेन व्यञ्जनस्य निर्देशो
भवति यथा ककारपकारयोः सकारमिति व्यञ्जनस्ये-
ति किम् अकार इकार उकार इति ॥

(१) अत्र पाणिनिनापि वर्णात्कार इत्यनेन रेफं विना व्यञ्जनानां निर्देशः कृतः ।
चकारादितिना स्वरैश्च निर्देशो ज्ञातव्यः ॥

र एफेन च ॥ ३९ ॥

रः रेफस्य एफेन च निर्द्दिश्यते यथा रेफठ० स्व-
रधाविति चशब्दादितिना च यथा यितिरितिलिति-
विति ॥

स्वरैरपि ॥ ४० ॥

स्वरैरपि व्यञ्जनानां निर्द्देशो भवति यथा नु चछ-
योः शम् तथयोः समिति (१) ॥

नानुस्वारयमविसर्जनीयजिह्वामूली- योपध्मानीयाः ॥ ४१ ॥

बध्यति अं इत्यनुस्वारः तथा कुंखुंगुंघुं इति य-
माः तथा अः इति विसर्जनीयः । तथाःक इति जि-
ह्वामूलीयः । ५ पद्वत्युपध्मानीयः एते न कारप्रत्ययेन
निर्द्देश्याः यथा अनुस्वारठ० रोष्मसु मकार इति
अनुस्वारस्य स्वशब्देनैव निर्द्देशः तथा ऊष्मस्यः पञ्चमे-
षु यमापत्तिर्द्दीर्घ इति यमस्य स्वशब्देनैवोपादानम् ।
तथा विसर्जनीयस्य विसर्जनीय इति । तथा जिह्वा-
मूलीयोपध्मानीयौ शाकटायन इति ॥

दन्त्यस्य मूर्द्धन्यापत्तिर्नतिः ॥ ४२ ॥

दन्यस्य मूर्ध्वन्यभावो नतिरुच्यते तद्यथा परिसि-
ञ्चन्ति परिधिञ्चन्ति सञ्ज्ञाकरणे प्रयोजनं स्थिति चा-
नतावित्यादि ॥

समानस्थानकरणास्यप्रयत्नः

सवर्णः ॥ ४३ ॥

समानमेकं स्थानं करणमास्यप्रयत्नश्च यस्य स एव
मुच्यते यो यस्य वर्णस्य समानस्थानः समानकरणः
समानमुखप्रयत्नः स तस्य सवर्णसञ्ज्ञो भवति । तद्यथा
प्र अर्पयतु प्रार्पयतु तव अयम् तवायठ० सोमः स्त्वुचि
इव सुचीव हतम् अभि इन्धताम् अभीन्धतां मुखे अनु
उज्जेषम् अनूज्जेषं वाजस्य अनु उज्जयताम् अनूज्जय-
ताम् ऋकारलृकारयोरपि सवर्णदीर्घत्वमेव भवति
यद्युदाहरणं कृन्दसि लभ्यते सञ्ज्ञाकरणे प्रयोजनं
वक्ष्यति । सिठे० सवर्णे दीर्घमिति ॥

सिमादितोऽष्टौ स्वराणाम् ॥ ४४ ॥

वर्णसमाम्नायस्यादौ अष्टानां स्वराणां सिम् सञ्ज्ञा
भवति अष्टाविति विभक्तिव्यत्ययेन षष्ठीबहुवचनं द्रष्टव्यं
स्वराणामितिसामानाधिकरण्यात् यथा अत्राद्द्वैउज्ज
ऋऋ वर्णसमाम्नाये त्रिमात्रा अपि वक्ष्यन्ते इह संधौ
तु तेषां ग्रहणं न संभवति प्रयोजनाभावात् (१) त्रिमा-

(१) आपिशलिमते ऋलृकारयोरविवेकेण दीर्घता महाभाष्ये तु लृकारस्य दीर्घभावः

वान् हि स्वयमेव वक्ष्यति सर्वमग्नाऽइ३ लाजीं३ छा-
ची३ निति विमात्राणि चेत्यादिना सवर्णदीर्घत्वं च
सञ्ज्ञाकरणे प्रयोजनम् न च सवर्णदीर्घत्वमुक्तानां स्नु-
तानां च संभवति अतः स्नुता न गृह्यन्ते । सञ्ज्ञाकरणे
प्रयोजनं वक्ष्यति सिठ० सवर्णे दीर्घमिति ॥

सन्ध्यक्षरं परम् ॥ ४५ ॥

स्वराणामित्यनुवर्तते स्वराणां यत्परमन्थमक्षरं त-
त्सन्ध्यक्षरसञ्ज्ञं भवति सन्ध्यक्षरमिति जातावेकवच-
नम् यथा प्रक्वो यव इति सन्ध्यक्षराणि पराणीत्यर्थः
तानि चत्वारि द्विमात्राणि गृह्यन्ते न स्नुतान्यपि प्र-
योजनाभावात् प्रयोजनार्थं च सञ्ज्ञापरिभाषाः क्रि-
यन्ते । अतो द्विमात्राण्येव गृह्यन्ते । न सर्वाणीति । व-
र्णसमाम्नाये तु सर्वेषां वर्णानां पाठो युक्तरूप एव त-
त्र हि एतावन्तो वर्णाः संभवन्तीत्येतदेव ख्यायते अत-
स्तत्र सर्वेषां पाठो युक्तरूप एवेत्यदोषः इह तु कार्यवन्त
एवोपदिश्यन्ते । तद्यथा ए ऐ ओ औ सञ्ज्ञायाः प्रयो-
जनं सन्ध्यक्षरमयवायावमिति ॥

प्रयोगाभावात् इति गुरोरनृतोऽनन्त्यस्याप्येकैकस्य प्राचामित्यनेन कृपज्ञिस्वेत्यादौ प्रयोगे
सत्वादस्ति वा सूत्रकारमते भाषिकमते च यथोक्तत्रयोऽपि भेदाः सन्ति । अकारेका-
रोकारर्कारलृकारा अवर्णधारणाः भइउऋलृ एते पञ्चवर्णा अवर्णेन समानधारणा इति
शतपथब्राह्मणस्य स्वरसंस्कारप्रतिपादकवक्ष्यमाणपरिशिष्टभाषिकसूत्रोक्तेन ऋकारस्ताव-
र्ण्यात् लृकारस्य ऋकारान्तर्भावः ॥

अकण्ठो भावी ॥ ४६ ॥

स्वराणामित्येव कण्ठगौ अकाराकारौ वर्जयित्वा
स्वराणां भाविसञ्ज्ञा भवति तद्यथा इ ई उ ऊ ऋ ॠ
लृ लृ ए ऐ ओ औ । सञ्ज्ञाकरणे प्रयोजनं वक्ष्यति भा-
व्युपधश्चरिद्विसर्जनीय इति ॥

व्यञ्जनं कादि ॥ ४७ ॥

ककारादि ऊष्मान्तं यद्वर्णजातं तद्यञ्जनसञ्ज्ञं भव-
ति कितिखितिगितिधितिङितिइत्यादि अं इत्यनुस्वार
एतदन्तम् सञ्ज्ञाकरणे प्रयोजनं व्यञ्जनमर्द्धमात्रेत्या-
दि ॥

अनन्तरर्थः संयोगः ॥ ४८ ॥

अनन्तरमव्यवहितं व्यञ्जनं व्यञ्जनेन सह संयोग-
सञ्ज्ञं भवति तद्यथा पङ्क्त्तम् कितिकितिविति अश्वः
धितिधितिधिति सञ्ज्ञाकरणे प्रयोजनं वक्ष्यति स्वरा
तु संयोगादिर्द्वयच्यते सर्ववेति ॥

स्पर्शेष्वेव सङ्ख्या ॥ ४९ ॥

ककारादयः पञ्चवर्गाः पञ्चवर्णाः समान्नाये स्पर्श-
सञ्ज्ञा उक्ताः तेषु वर्गेषु सङ्ख्या ज्ञातव्या वक्ष्यति
असंख्येयान् मुदि द्वितीयर्थः शौनकेन पञ्चमे पञ्चम-

मिति परिभाषास्त्वमेतत् ॥

द्वौद्वौ प्रथमौ जित् ॥ ५० ॥

स्पर्शेष्वेवसङ्ख्येति परिभाषितमेव अतस्तस्याः परि-
भाषाया इहोपस्थानम् द्वौद्वौ प्रथमौ वर्णौ वर्गे वर्गं जि-
त्सञ्ज्ञौ यथा । क ख च छ ट ठ त थ प फ सञ्ज्ञाकरणे
प्रयोजनम् लुङ् मुदि जित्पर इति ॥

ऊष्माणश्च हवर्ज्जम् ॥ ५१ ॥

ऊष्माणश्च जित्सञ्ज्ञका भवन्ति । हकारं वर्जयित्वा
तद्वया शषसाः च शब्दात् द्वौद्वौ प्रथमौ वर्गे वर्गे क ख
च छ ट ठ त थ प फ एते त्रयोदशवर्णा जित्सञ्ज्ञा
वेदितव्याः ॥

मुच्च ॥ ५२ ॥

मुत्सञ्ज्ञकाः शषसा भवन्ति च शब्दाज्जित्सञ्ज्ञकाश्च
शषसेष्वेव मुत्सञ्ज्ञा यथा स्यादिति पृथग्योगकरण-
म् । सञ्ज्ञायाः प्रयोजनं लुङ्मुदि जित्पर इति ॥

विशेषः ॥ ५३ ॥

कृतसञ्ज्ञकेतरवचनः शेषशब्दः शेषो यो वर्णरा-
शिः स विसञ्ज्ञो भवति तद्यथा वर्णाणामुत्तरास्त्रयो
यरलवहकाराश्चेति विंशतिवर्णा विसञ्ज्ञा भवन्ति

सञ्ज्ञाकरणे प्रयोजनम् रेफर्ठ० स्वरधाविति (१) ॥

द्वितीयचतुर्थाः सोष्माणः ॥ ५४ ॥

द्वितीयाः ख छ ठ थ फाः चतुर्था व भ ढ ध भाः
एते दशवर्णाः सोष्मसञ्ज्ञा भवन्ति इह यासां सञ्ज्ञा-
नां शास्त्रे संव्यवहारो नोपलभ्यते पूर्वाचार्य्यसञ्ज्ञास्ता-
वेदितव्याः शिष्यसंव्यवहारार्थाः शिष्या आभिः संव्यव-
हरेयुरिति पूर्वाचार्य्यसञ्ज्ञानुक्तधनमस्मिन् शास्त्रे म-
ङ्गलार्थं च पूर्वाचार्य्यशास्त्रकीर्त्यपरिणाशार्थं वा यद्वा
यथा एते वर्णा नित्या एवमेता अपि सञ्ज्ञा नित्या एव
एवं च कृत्वा सर्वशास्त्रेष्वेताएव सञ्ज्ञा उपलभ्यन्ते द्वि-

(१) आस्यप्रयत्नापरपट्यायं चतुर्विधं करणमाह स्पृष्टमसंस्पृष्टं संवृतं विवृतं चेति ।
स्पृष्टप्रयत्नाः कादिमान्ताः असंस्पृष्टप्रयत्नाः स्वराः तेषां मध्ये ऋलृकारौ ईषत्स्पृष्टौ द्वेयौ
ऋलोर्मध्ये भवत्यर्द्धमात्रा रेफलृकारयोः । तस्मादस्पृष्टता वञ्ज्या ऋलृकारस्य सम्भवे
१ ऋलृवर्णे रेफलृकारौ सर्ठ० भ्रिष्टावश्रुतिधरावेकवर्णाविति चतुर्थध्यायस्यवक्ष्यमाणसू-
त्रेण सूत्रकारज्ञापनात् पाणिनिस्तु ईषन्नेमस्पृष्टे अधिके आह उक्तं च अचोऽस्पृष्टा यण-
स्त्वीषन्नेमस्पृष्टाः शलस्तथा । शेषाः स्पृष्टा हळः प्रोक्ता निबोधानुप्रदातः । अनुप्रदानमिति
स्वस्थानादिना घोषादि अनुप्रकर्षेण दीयत इति अनुप्रदानतो हेतोर्निबोध जानीहि
वर्णानां भेदम् । अमोऽनुनासिका नादौ नादिनो ह्रस्वः स्मृता । ईषन्नादा यण् जशः आ
सिन्स्तु त्फादयः । ईषच्छ्वासांश्चरो विद्याहोर्धामैतत् प्रचक्षते । अमोऽनुनासिका इति
वा पाठः अम् इति प्रत्याहारः । अमङ्गण एत अनुनासिकामनुगताः सानुनासिका इ-
त्यर्थः । अमोऽनुनासिका इति पाठे अम् प्रत्याहारः तन्मध्ये हकाररेफौ न नादिनो ह-
्रस्वः स्मृताः गोर्धाम गोर्वाचः धाम स्थानं एतत् प्रचक्षते शब्दशास्त्रविदः, पाणिनिना च
निष्याद्यन्ते यमप्रभृतयः, अमोअम् पाठद्वयात् अमान्त रेफहकारवर्जितानां विकल्पेना-
नुनासिकत्वम् अमान्तु नित्यं पाणिनीयानां ये स्वरास्त्रयोदशविचारश्चासौषोषप्रयत्नास्तेऽत्र
जित्सञ्ज्ञाः ये तु ह्रस्वः विंशतिसम्भारनादौषप्रयत्नास्ते सञ्ज्ञा वर्गेषु ॥

तीयचतुर्थाः सोष्माणः तथा ककारादीनां स्पर्शसञ्ज्ञा
तथा यकारादीनामन्तस्यसञ्ज्ञा आभिः सञ्ज्ञाभिव्यव-
हरतां धर्मो भवति यद्वा नैव सञ्ज्ञा किन्तर्हि वर्णस्वरू-
पमनेन सूत्रेण कथ्यते ऊष्मा वायुः ऊष्मणा सहवर्त्तन्त-
इति सोष्माणः अतिशयार्थं वचनं महाप्राणा इत्यर्थः ।
अत एवैषां संयोगपीडने वायुर्निर्गच्छति तन्निर्द्धार-
येत् । यथा । दद्वा दकारो धकारप्रकृतिर्यमः नकार-
इतिसंयोगः अत्र धकारप्रकृतित्वात् यमस्य पीड-
ने ऊष्मा निष्क्रामति तं सन्धारयेत् तदात्मकत्वात्त-
स्य वर्णस्याचात्योपि यमस्य स्फोटने दोषं वक्ष्यति ऊ-
ष्मभ्यः पञ्चमेषु यमापत्तिर्दोष इति, स्फोटनं च कका-
रवर्गे वा स्पर्शादिति (१) ॥

अमात्रस्वरो ह्रस्वः ॥ ५५ ॥

अकारमात्रस्वरो ह्रस्वसञ्ज्ञो भवति तद्यथा अ इ
उ ऋ लृ सञ्ज्ञाकरणे प्रयोजनं वक्ष्यति अनुस्वारो ह्र-
स्वपूर्वोऽध्यर्द्धमात्रा पूर्वा चार्द्धमात्रेति ॥

मात्रा च ॥ ५६ ॥

मात्रा च यत्र श्रूयते तत्र अकारकालः मात्रस्वरः

(१) अन्वर्था चेयं सञ्ज्ञा एवं च सति वर्गेषु प्रथमतृतीयपञ्चमानां अङ्गणनमानां
परलवानां चाल्पप्राणरूपमेकप्रयत्नत्वं उक्तं च अयुग्मा वर्गयमगा यणश्चाल्पासवः स्मृ-
ताः । युग्माः शलोऽयोगवाहा महाप्राणा इतीरिताः ॥

प्रत्येतव्यः ह्रस्वो मात्रेति पर्यायावित्यर्थः ॥

द्विस्तावान् दीर्घः ॥ ५७ ॥

ह्रस्वात् द्विगुणकालो वर्णो दीर्घसञ्ज्ञो भवति यथा
आ ई ऊ ऋ लृ ए ऐ ओ औ इति सञ्ज्ञाकरणे प्रयो-
जनं दीर्घादीर्घमात्रा पूर्वा चाध्यर्हति ॥

पुतस्त्रिः ॥ ५८ ॥

ह्रस्वत्रिगुणकालः क्षुतसञ्ज्ञो भवतीति यथा आइ
ईइ ऊइ ऋइ लृइ एइ ऐइ ओइ औइ सञ्ज्ञाकरणे प्रयो-
जनं क्षुतमितावित्यादि ॥

व्यञ्जनमर्द्धमात्रा ॥ ५९ ॥

कादीनां व्यञ्जनसञ्ज्ञा कृता व्यञ्जनं कादीति अधु-
ना तस्यार्द्धमात्राकालतोच्यते यथा प्राड् प्रत्यङ् उका-
रावर्द्धमात्रौ ॥

तदर्द्धमणु ॥ ६० ॥

अर्द्धमात्रार्द्धमणुसञ्ज्ञं भवति सञ्ज्ञाकरणे प्रयोज-
नम् मात्रार्द्धमात्राणुमात्रावर्णापत्तीनामिति (१) ॥

परमाण्वर्द्धाणुमात्रा ॥ ६१ ॥

(१) अयस्पिण्डादिसप्तविधपिण्डा याज्ञवल्क्येनोक्ताः तेषां सोदाहरणलक्षणान्यभे-
कधायिष्यन्ते ॥

अर्द्धाणुमात्रा परमाणुसञ्ज्ञं भवति (१) ॥

स्थाने ॥ ६२ ॥

अधिकरणं वर्णानां स्थानशब्देनोच्यते यदित ऊ-
र्ध्वमनुक्रमिष्यामः स्थाने इत्येवं तद्देदितव्यम् अधिका-
रसूत्रमेतत् ॥

ह्रस्वग्रहणे दीर्घप्लुतौ प्रतीयान् ॥ ६३ ॥

ह्रस्वस्य वर्णस्य ग्रहणे दीर्घप्लुतावपि वर्णौ ग्रहीतौ
द्रष्टव्यौ परिभाषेयं स्थानाधिकारार्थं ॥

प्रथमग्रहणे वर्गम् ॥ ६४ ॥

वर्गदौ प्रथमवर्णग्रहणे वर्गं जानीयात् परिभाषे-
यम् ॥

ऋ५कौ जिह्वामूले ॥ ६५ ॥

ऋऌऋऌऌ ३ इति त्रयः जिह्वामूलीयः कवर्ग इत्येते
नव वर्णा जिह्वामूलस्थानाः ॥

इचशेयास्तालौ ॥ ६६ ॥

(१) तदतिसूक्ष्मं वाङ्मनसयोरगोचरं ब्रह्मैव तदुक्तं तेनैव । निमेषो मात्राकालः
स्याद्विशुक्तालोऽपि वा परे । अक्षरातुल्ययोगानु मतिः स्यात्सोमशर्मणः । सूर्यरश्मि-
प्रतीकाशाकणिका यत्र दृश्यते । अणुत्वस्य तु सा मात्रा मात्रा तु चतुराणवी । मान-
से चाणवं विद्यात्कण्ठे विद्याद्विराणवम् । त्रिराणवं तु जिह्वामे निःसृतं मात्रिकं विदुरिति ॥

इईई ३ इति त्रयः चवर्गः शकार एकारो यकार-
इत्येते एकादशवर्णास्तालुस्थानाः ॥

षठौ मूर्द्धनि ॥ ६७ ॥

षकारटवर्ग इत्येते षड्वर्णा मूर्द्धन्या द्रष्टव्याः ॥

रो दन्तमूले ॥ ६८ ॥

रेफो दन्तमूलस्थानः प्रत्येतव्यः ॥

ललसिता दन्ते ॥ ६९ ॥

लृलृलृ ३ एते त्रयः लकारः सकारस्तवर्ग इत्येते
दशवर्णा दन्त्याः ॥

उवोपोपध्मा ओष्ठे ॥ ७० ॥

उऊऊ ३ एते त्रयः वकार ओकार उपध्मानीयः
पवर्ग एते एकादशवर्णा औष्ठ्याः ॥

अहविसर्जनीयाः कण्ठे ॥ ७१ ॥

अकारो मात्रिको द्विमात्रिकस्त्रिमात्रिक इत्येते
त्रयः हकारविसर्जनीयौ इत्येते पञ्चवर्णाः कण्ठ्याः प्र-
त्येतव्याः (१) ॥

(१) सँव्युक्तस्तु हकार औरसः, हकारं पञ्चमैव्युक्तमन्तस्थापिथ सँव्युतम् । औ-
रस्यं तं विज्ञानीयात्कण्ठ्यमाहुरसँव्युतमिति याज्ञवल्क्येनैवोक्तम् ॥

सवर्णवच्च ॥ ७२ ॥

अहविसर्जनीयाः कण्ठे इति अकारस्य मात्रिकस्य
 द्विमात्रिकस्य त्रिमात्रिकस्य च कण्ठस्थानता उक्ता यथा
 कण्ठ्या मध्येनेति समानकरणता त्रयाणामपि आ-
 स्यप्रयत्नस्तु भिद्यते कोऽसावास्यप्रयत्नो नाम संवृतता
 विवृतता च असृष्टता सृष्टता च ईषत्सृष्टता अर्द्धसृष्ट-
 ता च इत्यास्यप्रयत्नः तद्यथा संवृतास्यप्रयत्न अकारः वि-
 वृतास्यप्रयत्ना इतरे (१) स्वराः यथा असृष्टास्यप्रयत्नाः
 स्वराः (२) सृष्टास्यप्रयत्नाः स्पर्शाः तथा ईषत्सृष्टास्यप्र-
 यत्ना अन्तस्थाः अर्द्धसृष्टास्यप्रयत्ना ऊष्माणः अनुस्वारश्च
 अयमास्यप्रयत्नः शिक्षाविद्धिरुक्त इह गृह्यते अतोऽका-
 रस्य मात्रिकस्य संवृतास्यप्रयत्नस्य इतरयोश्च विवृता-
 स्यप्रयत्नयोर्द्विमात्रिकात्रिमात्रिकयोः सह सावर्ण्यं तुल्यं
 न सम्भवतीति तदर्थमिदमारभ्यते सवर्णवच्च कार्यं भव-
 ति सवर्णदीर्घत्वं भवतीत्यर्थः तद्यथा सोमऽ आभूयो
 भर, मात्वा अग्निः मात्वाग्निर्हृध्नयीत् एवमन्वत्रा-
 पि सवर्णवत्कार्यं द्रष्टव्यम् ॥

ऐकारौकारयोः कण्ठ्या पूर्वामात्रा
 ताल्वोष्ठयोरुत्तरा ॥ ७३ ॥

(१) अत्रेतरशब्देन दीर्घाकारप्रुताकारयोर्ग्रहणम् ॥

(२) इकाराद्यौकारान्ताः ह्रस्वदीर्घभुतभेदयुताः ॥

ऐकारस्य औकारस्य च कण्ठ्यापूर्वमात्रा अकार-
मात्रा उभयोरपि पूर्वा उत्तरा प्रथमस्य तालुस्थाना
उत्तरा पूर्व एकार इत्यर्थः । तद्यथा अ ए ऐ इति द्वि-
तीयस्योत्तरा ओष्ठस्थाना द्वितीयस्योत्तरा ओकार इ-
त्यर्थः तद्यथा अ ओ औ इति । अत्र केचिदाहुः अकार-
स्यार्द्धमात्रा एकारस्यार्द्धा ऐकारे अकारस्यार्द्धमात्रा
ओकारस्यार्द्धा औकारे इति तथा चोक्तम् अर्द्धमात्रा
तु कण्ठ्यस्य ऐकारौकारयोर्भवेत् इति० अनेनैव क्रमे-
ण एकारौकारौ व्याख्यातौ ॥

यमानुस्वारनासिकयानां

नासिके ॥ ७४ ॥

चत्वारो यमाः अनुस्वारनासिक्यौ चेति षड्वर्णा ना-
सिकास्थाना इति (१) ॥

मुखनासिकाकरणोऽनु-

नासिकः ॥ ७५ ॥

मुखसहितया नासिकया क्रियते इति मुखनासि-
काकरणः मुखनासिकाकरणो वर्णोऽनुनासिकसञ्ज्ञो
भवति जातावेकवचनम् स्वराणामयं वैकल्पिको धर्मः

(१) कुं लुं गुं धुं इति चत्वारो यमाः । अम् इत्यनुस्वारः । ङुं इति नासिक्यः ।
एतेषां सूत्राणि अष्टमाध्याये वक्ष्यन्ते ॥

अन्तस्थानां रेफवर्जितानां च वाचनिकश्चायं धर्मः त-
द्यथा अनुनासिकमुपधा प्रागन्तस्थायाः यथा महां २ ॥
ऽइन्द्रः उन्नयामि स्वां २ ॥ ऽअहम् ये वा वनस्पती १ ॥
रनु अग्ने क्रत्वा क्रतू १ ॥ रनु अन्तस्थासु भवति वक्ष्य-
ति अन्तस्थामन्तस्थास्वनुनासिकां परसस्थानाम् (१) सं-
व्यौमि संवपामि तंल्लोकस्युण्यं प्रज्ञेष्मिति इत उत्तरं
करणाधिकारो भविष्यति ॥

दन्त्या जिह्वाग्रकरणाः ॥ ७६ ॥

दन्त्या जिह्वाग्रेण क्रियन्ते तद्यथा तथेति ॥

रश्च ॥ ७७ ॥

रेफश्च जिह्वाग्रेण क्रियते अन्यस्थानोऽपि ॥

मूर्धन्याः प्रतिवेष्ट्याग्रम् ॥ ७८ ॥

मूर्धन्याः षकारटवर्गौ एतौ प्रतिवेष्ट्य जिह्वाग्रेण
क्रियन्ते (२) ॥

तालुस्थाना मध्येन ॥ ७९ ॥

तालुस्थाना इचशेया एते जिह्वामध्येन क्रियन्ते (३) ॥

(१) परस्परसंस्थानामिति 'व' पुस्तकपाठः ।

(२) अभियुक्ता जिह्वामूलीयकवर्गीयप्रतिरूपकस्थानकरणापरित्यागेन नेमस्पृष्ट ष-
कारं परम्परया पठन्ति तदप्यावेरोधीति । सुष्ठु तृतीयवर्गसंयोगे तु स्पृष्टप्रयत्नस्य
प्राबल्यात् नेमस्पृष्टतानुपलब्धेः स्वरे पर एव तथेति ॥

(३) इकार अस्पृष्टप्रयत्नः, चवर्गः स्पृष्टप्रयत्नः, शकार अर्द्धस्पृष्टप्रयत्नः, एकारोऽ-

समानस्थानकरणा नासि-

क्यौष्ण्याः ॥ ८० ॥

ऊँकारो नासिक्यः स च नासिकास्थानः उवो
प्रोपश्मा ओष्ठ इत्योष्ठस्थानाः एतेषां यदेव स्थानं तदेव-
करणम् ॥

वो दन्ताग्रैः ॥ ८१ ॥

वकारस्तु ओष्ठोपि दन्ताग्रैः क्रियते (१) ॥

स्पृष्टः, वकार ईषत्स्पृष्टः, पादान्तादौ पादादौ पदादौ तु स्पृष्ट एव, तदुक्तं याज्ञव-
ल्क्येन यकारवकारावधिकृत्य, पादाद्यन्तं पदाद्यन्तं तथाऽवग्रहकालिकम् । संस्पृष्टं
तं विजानीयात् तस्मिन्काले तु कारयेत् । पदाद्यन्तमिति द्वे पदे यकारं वकारं च पा-
दाद्यभूतं पदाद्यभूतं अवग्रहकालिकं संस्पृष्टं विजानीयात् तस्मिन्काले अवग्रहकाले
तु संस्पृष्टप्रयत्नं कारयेत् । न संहिताकाले, पादादौ यथा यज्ञेन, पदादौ यथा यज्ञम्
तच्च किम्, अयजन्त, सैव्योगादिति आदेरनुवृत्तौ परन्तु रेफहकाराभ्यामित्यादि-
भूतस्वैव यः, नृपाय्यम् सूर्यः सिँहासि । तच्च किम् । अग्निज्योतिः, दुश्च्यवनः,
ऊवभ्यम्, पादान्तस्थं पदान्तस्थं तथाऽवग्रहकालिकम् । ईषत्स्पृष्टं विजानीयानस्मिन्
काले तु कारयेत् । उपसर्गात्परो यस्तु पदादिरपि दृश्यते । ईषत्स्पृष्टो यथा वियन्-
प्रयच्छेत् तु परं भवेत् । पादादौ च पदादौ च सैव्योगाऽवग्रहेषु च । यः शब्द इति
विज्ञेयो योऽन्यः स य इति स्मृतः । अतः सम्प्रदायविद एव विधे यकारे स्पृष्टप्रय-
त्नज्ञानाय मध्ये विन्दुं प्राक्षिपन्ति स्पृष्टप्रयत्नं पठन्ति च ॥

(१) एवं वकारो दन्त्योष्ठ्यः स च त्रिविधः, पदान्ते पदमध्ये च वकारो दृश्यते
यदि । संहितायां लघुर्ज्ञेयो ह्रस्वत्रापि लघूतरः । वकारस्त्रिविधः प्रोक्तो गुरुर्लघुलघूतरः ।
पदमिति सर्वत्रानुवर्त्तनीयम् छन्दोऽनुरोधेन, व्वोढव इति वोढवे, दीर्घत्वं पदादिगुरुः,
पदमध्ये लघुः, पदान्ते च वकारो लघूतरः, गुरुरिति संस्पृष्टप्रयत्न उच्चारयितव्यः,
पादाद्यन्तं पदाद्यन्तं तथाऽवग्रहकालिकम् । संस्पृष्टं तं विजानीयात्तस्मिन् काले तु

नासिकामूलेन यमाः ॥ ८२ ॥

यमाश्चत्वारो नासिकामूलेन क्रियन्ते यथा यज्ञः
याँश्च वक्त्र इति ॥

जिह्वामूलीयानुस्वारा ह-
नुमूलेन ॥ ८३ ॥

जिह्वामूलस्थाना अनुस्वारश्च हनुमूलेन क्रियते य-
था ऋक्छामयोः अर्धंशुना ते अर्धंशुः ॥

कण्ठ्या मध्येन ॥ ८४ ॥

कण्ठ्या वर्णा मध्येन हन्वोरेव क्रियन्ते यथा अह इति ॥

प्रथमोत्तमाः पदान्तीया अच्जौ ॥ ८५ ॥

एवं तावदधस्तनेन वर्णानां स्थानानि करणानि चो-
क्तानि आस्यप्रयत्नसु शिक्षान्तराद् गृह्यते सवर्णसञ्ज्ञा-
ङ्गभूतत्वात् अधुना पदान्तीयवर्णनिरूपणायाह प्रथ-
मोत्तमाः पदान्तीया भवन्ति चकारञ्कारौ वर्जयित्वा
प्रथमा यथा प्राक् अपाक् विराट् सम्वाट् यत् तत् त्रि-
ष्टुप् अनुष्टुप् उत्तमा यथा प्राङ् प्रत्यङ् लीन् समुद्रान्

कारयेत् । इति याज्ञवल्क्येनोक्तत्वात् अन्यत्र तु ईषत्स्पृष्टः, पादान्तस्थं पदान्तस्थं तथा-
ऽवग्रहकालिकम् । ईषत्स्पृष्टं विजानीयादिति चोक्तत्वात्, व्वसोः पवित्रम्, व्वायव-
स्थ, अत्रादिर्गुरुः, द्वितीयो लघुः, देवो वः, अत्रान्त्यो लघूतरः, चित्रश्रवस्तमसिति
चित्रश्रवः तमम्, अत्र संहितायामपि ॥

तम् यज्ञम् ॥

विसर्जनीयः ॥ ८६ ॥

विसर्जनीयः पदान्तीयो भवति यथा अग्निः वर्त्मः ॥

स्वराश्च लृकारवर्जम् ॥ ८७ ॥

स्वराश्च पदान्तीया भवन्ति लृकारं वर्जयित्वा यथा
दीषाय नीषाय अश्विना मित्रावरुणा सुचि इन्द्रा-
ग्नी मधु अनु वृषण्वसू चमू द्वे विरूपे पृथिव्यै भूम्यै
इन्द्रो अश्विनौ एतानि स्वरान्तान्युदाहरणानि ॥

णकारर्काराववग्रहे ॥ ८८ ॥

प्रथमोत्तमाः पदान्तीया इत्यनेन णकारः पदा-
न्तीयः प्राप्तः स्वराश्च लृकारवर्जमित्यनेन ऋकारश्च
पदान्तीयः प्राप्तः अतस्तावुभौ पदान्तीयावापद्येते अ-
वग्रहे एव स्थाप्येते यथा पूषण्वान् वृषण्वसू पितृसदनाः
पितृसदनम् (१) ॥

अनुनासिकाश्चोत्तमाः ॥ ८९ ॥

वर्गोत्तमाः डञ्जनमा अनुनासिका भवन्ति । चका-
रात्स्वस्थानाद्यपरित्यागद्वारेण नासिकास्थानं द्वि-

(१) समासेऽवग्रहो ह्रस्वसमकाल इति पञ्चमाध्यायस्थादिमसूत्रेणाऽवग्रहोऽभि-
हितः तस्मिन्नवग्रहकाले अवग्रहः पदान्तवदित्यनेन शास्त्रेण पदकालीनणकारकका-
रघटितोदाहरणचतुष्टये पदान्तत्वं बोध्यम् ॥

तीयमेषामित्यर्थः । वर्णस्वरूपज्ञापनार्थमिदम् । स-
ञ्ज्ञार्थमित्यपरे ॥

स्पर्शान्तस्य स्थानकरण-

विमोक्षः ॥ ९० ॥

स्पर्शान्तस्य पदस्य स्थानकरणविमोक्षः कर्त्तव्यः अन्ये-
न प्रयत्नेनान्यत्पदमारब्धव्यम् अन्यथा पदादेर्द्वित्वं भ-
वति तद्यथा तत् नः, तन्नो मित्रो वरुणः, सम् यौमि,
सँय्यौमीदमग्नेः ॥

अवसाने च ॥ ९१ ॥

समाप्तौ च अर्द्धर्चादौ स्वरान्तानामपि पदानां स्था-
नकरणविमोक्षः कर्त्तव्यः यथा संमधुमतीर्धुमतीभिः
पृच्चान्ताम् शुक्रन्दुद्धेऽअह्वयः ॥

प्रगृह्यम् ॥ ९२ ॥

प्रगृह्यमित्ययमधिकारः । यदित जङ्घमनुक्रमि-
ष्यामः प्रगृह्यमिति तदेदितव्यम् प्रगृह्यसञ्ज्ञायाः प्र-
योजनं प्रगृह्यं स्वरे इत्यादि ॥

एकारेकारोकारा द्विवचनान्ताः ॥ ९३ ॥

एकार ईकार ऊकार एते द्विवचनप्रतिपादकाः स-
न्तः प्रगृह्यसञ्ज्ञा भवन्ति यथा एकारस्य भवति द्वे इति

शीर्षे इति यथा ईकारान्तस्य भवति उर्वी इति पृथ्वीइ-
इति यथा ऊकारान्तस्य भवति अद्वय्यु इति बाहू इति ॥

ओकारश्च पदान्तेऽनवग्रहः ॥ ९४ ॥

ओकारश्च पदान्ते वर्त्तमानोऽवग्रहवर्जितः प्रगृह्य-
सञ्ज्ञो भवति यथा अद्वय्योऽअद्रिभिः चित्रभानो इति
इन्द्रायाहि चित्रभानो सुताः अनवग्रह इति किम् गो-
व्यच्छमिति गो । व्यच्छम् । गोघातमिति गो । घातम् (१)

उकारोऽष्टकः ॥ ९५ ॥

उकारोऽष्टकः प्रगृह्यसञ्ज्ञो भवति । उकारोऽष्टको
दीर्घमनुनासिकमिति वक्ष्यति एतेनेत्यं रूपं भवति
यथा ऊँ, मन्वेतवाउ नवाउऽएतत् अष्टक इति किम्
नु इन्द्र योजान्द्रिते ॥

चमू अस्मे त्वे ॥ ९६ ॥

चमू अस्मे त्वे एतानि पदानि प्रगृह्यसञ्ज्ञकानि भ-
वन्ति यथा चमू इति चमू सोममिन्द्रचमूसुतम् अस्मेइ-
त्यस्मे इन्द्रोऽअस्मेऽआरात् त्वेइति त्वे बन्धुस्त्वे रायः ॥

मे उदात्तम् ॥ ९७ ॥

(१) ऋग्यजुस्तैत्रातिरिकोऽयमारम्भः । अवग्रहइति किम् । ३४।२३ गविष्टाविति
गो । इष्टौ । अवग्रहत्वाद्वादेशः ॥ अत्राङ्गुलेसनस्यायमाशयः पूर्वाङ्गेन शुक्लयजुसं
हिताभ्यायपरिचयः द्वितीयाङ्गेन मन्त्रो ज्ञातव्य एवं सर्वत्रोद्धम् ॥

मे इत्येतत्पदमुदात्तं चेत्यगृह्यसञ्ज्ञं भवति यथा मे
इति मे, मे रायो मा व्ययम् उदात्त इति किं इमस्मै
व्यवृण ॥

अमी पदम् ॥ ९८ ॥

अमी इत्येतत्पदं चेत्यगृह्यसञ्ज्ञं भवति यथा अमी-
इत्यमी, एष वोऽमी राजा, ये वामी रोचने दिवः, प-
दमिति किम् पदावयवस्य माभूत् अमीषाञ्चित्तम् ॥

स्वरोऽक्षरम् ॥ ९९ ॥

स्वरोऽक्षरसञ्ज्ञो भवति यथा अइति इइति अक्ष-
रसञ्ज्ञायाः प्रयोजनम् प्रागुवर्णादक्षराणामेकीभाव
इति वक्ष्यति । तथा चोक्तम्, सव्यञ्जनः सानुस्वारः
शुद्धो वापि स्वरोऽक्षरमिति ॥

सहाद्यैर्व्यञ्जनैः ॥ १०० ॥

आद्यैर्व्यञ्जनैः सहितः स्वरोऽक्षरं प्रत्येतव्यम् यथा
मो ओकारसहितोऽक्षरं प्रत्येतव्यम् यथा हुअन्नः ह्र-
न्नः उकारो दकाररेफसहितोऽक्षरम् ॥

उत्तरैश्चावसितैः ॥ १०१ ॥

आद्यैर्व्यञ्जनैः उत्तरैश्चावसानगतैः सहितः स्वरो-
ऽक्षरम् यथा वाक् वकारककारसहित आकारोऽक्षरम्

प्राङ् पकाररेफङ्कारसहित आकारोऽक्षरम् एव-
न्तावद्यशेकः स्वरौ भवति तदधस्तनान्युपरितनानि च
व्यञ्जनानि तदङ्गानि भवन्तीत्येतत्प्रादिदम्, अधु-
ना स्वरयोर्मध्ये द्विप्रभृतोनां व्यञ्जनानामङ्गत्वनिरूप-
णायाह ॥

संय्योगादिः पूर्वस्य ॥ १०२ ॥

संय्योगादिभूतो वर्णः पूर्वस्य स्वरस्याङ्गं भवति यथा
अप्रश्चः द्वौ शकारौ वकारश्च संय्योगः तत्र संय्योगादिः
पूर्वस्येति कृत्वा पूर्वः शकारः पूर्वस्य स्वरस्याङ्गम् उत्त-
रशकारवकाराबुत्तरस्य स्वरस्याङ्गम् यथा ह्रस्वम् द्वौ-
वकारौ यकारश्च संय्योगः तत्रैको वकारः संय्योगादिः
पूर्वस्येति कृत्वा पूर्वस्याङ्गम् वकारयकाराबुत्तरस्य ॥

यमश्च ॥ १०३ ॥

यमः पूर्वस्याङ्गं भवति चशब्दात्पूर्ववर्णसहितः यथा
रक्त्वमम् ककारद्वययममकाराः संय्योगः तत्र कका-
रयमौ पूर्वस्य मकार उत्तरस्य ॥

क्रमजश्च ॥ १०४ ॥

क्रमाज्जातं क्रमजम् यत्संय्योगादेः परस्य वर्णस्य
द्विरुक्त्या जायते तत् क्रमजं मत्युच्यते यथा पाश्चश्चमम्
रेफो द्वौ शकारौ वकारो यकारश्च संय्योगः तत्र रेफः

संयोगादिः क्रमजश्च प्रथमः शकारः पूर्वाङ्गम्, द्वितीयः शकारो वकारो यकारश्चोत्तराङ्गम् व्यर्थाय रेफो द्वौ षकारौ यकारश्च संयोगः तत्र रेफः संयोगादिः पूर्वषकारः क्रमज एतौ पूर्वाङ्गम् अपरः षकारो यकारश्चोत्तराङ्गम् ॥

तस्माच्चोत्तरं स्पर्शं ॥ १०५ ॥

तस्मात् क्रमजाद्यदुत्तरं व्यञ्जनं तत्पूर्वाङ्गं भवति स्पर्शे परभूते यथा पाः र्श्या रेफषकारौ द्वौ णकारौ यकारश्च संयोगः तत्र रेफः संयोगादिरिति कृत्वा षकारेः क्रमजमिति कृत्वा तस्माच्चोत्तरं स्पर्श इति कृत्वा पूर्वणकारश्च एते पूर्वाङ्गम्, द्वितीयणकारो यकारश्चोत्तरस्य स्वरस्याङ्गम् ॥

अवसितं च ॥ १०६ ॥

अवसानगतं पूर्वाङ्गं भवति यथा वाक् ककारोऽवसितः, ऊर्क् अत्र रेफककारयोः संयोगः रेफः संयोगादिः ककारोऽवसितः एतौ पूर्वस्य स्वरस्याङ्गम्, पूर्वाङ्गपराङ्गचिन्तायाः प्रयोजनमाह ॥

व्यञ्जनं स्वरेण सस्वरम् ॥ १०७ ॥

व्यञ्जनं यद्यस्य स्वरस्याङ्गं तत्तेनैव स्वरेण समानस्वरम्भवति अधस्तनान्येवोदाहरणानि तथा चोक्तम् स्व-

र उच्चः स्वरो नीचः स्वरः स्वरित एव च, स्वरप्रधानं (१) तैस्वर्यं व्यञ्जनं तेन सस्वरमिति १ अथ शिक्षा विहिता इत्युपक्रम्य उरःकण्ठभ्रूमध्यानि प्रातःसवन-माध्यन्दिनतृतीयसवनेषु यथा क्रमं स्थानानि भवन्तीति प्रतिपादितम् तत एकैकस्मिन्स्थाने वर्णेषु उच्चार्यमाणेषु त्रयो विकाराः शरीरस्य भवन्ति पर्यायेण ते प्रतिपादिता एव आयाममार्हवाभिघाता इत्यनेन सूत्रेण, अधुना तेषु शरीरविकारेषु सत्सु ये स्वरा निष्पद्यन्ते तन्निरूपणायाह ॥

उच्चैरुदात्तः ॥ १०८ ॥

आयामेनोर्ध्वगमनेन गात्राणां यः स्वरो निष्पद्यते स उदात्तसञ्ज्ञो भवति यथा (२) अग्नाइ (३) ला-जीश्न् उदात्तवानुदात्त इत्येवमादयः ॥

नीचैरनुदात्तः ॥ १०९ ॥

नीचैर्मार्हवेणाधोगमनेन गात्राणां यः स्वरो निष्पद्यते सोऽनुदात्तसञ्ज्ञो भवति (४) यथा आर्षेयऽऋषीणाम् अनुदात्तप्रदेशाः उदात्तानुदात्तठं स्वरितमित्येवमादयः ॥

(१) स्वरप्रधाने इति 'व' पुस्तकपाठः ॥

(२) ८ । १० ॥

(३) २२ । ७ ॥

(४) २१ । ६१ ॥

उभयवान्तस्वरितः ॥ ११० ॥

उदात्तस्योर्ध्वगमनं गात्राणां प्रयत्न अनुदात्तस्या-
धो गमनं गात्राणां प्रयत्न आभ्यां प्रयत्नाभ्यां समाहा-
रीभूताभ्यां यः स्वर उच्चार्यते स स्वरितसञ्ज्ञो भवति
यथा (१) धान्नमसि, (२) वैष्णव्यौ स्थः (३) ॥

एकपदे नीचपूर्वः सयवो

जात्यः ॥ १११ ॥

एकस्मिन् पदे नीचपूर्वोऽनुदात्तपूर्वो यकारेण
वकारेण सहितो जात्यः स्वरः प्रत्येतव्यः नीचपूर्व इति
सम्भावद्विशेषणम् । अपूर्वोऽपि भवति नीचपूर्वो यथा
(४) कन्या इव (५) धान्नमसि । अपूर्वो (६) यथा
स्वर्देवेषु (७) ॥

(१) १ । २० ॥

(२) १ । १२ ॥

(३) अष्टानां स्वरितस्वराणां भेदो याज्ञवल्क्येनापि दर्शितः यथा अष्टौ स्वरान्
प्रवक्ष्यामि तेषामेव च लक्षणम् । जात्योऽभिनिहितः क्षैप्रः प्रलिङ्गश्च तथाऽपरः ।
तैरो व्यञ्जनसङ्गश्च तथा तैरो विरामकः । षाद्वृत्तो भवेत्तद्वत्ताथाभावाच्च इति स्वराः ।

(४) १७ । १७ ॥

(५) १ । २० ॥

(६) १८ । ६४ ॥

(७) एकपदे नीचपूर्वः सयवो जात्य इष्यते । अपूर्वोऽपि परस्तद्वद्वान्वं कन्या
स्वरित्यपि अमुमेवार्थं नारदोऽप्युक्तवान् स्वशिष्यायाम् ॥

उदात्तादयः परे सप्त ॥ ११२ ॥

उदात्तादयः परे सप्त स्वराः प्रत्येतव्या यथा अभि-
निहित, चैप्र, प्रक्षिष्ट, तैरोव्यञ्जन, तैरोविराम, पाददृत्त,
ताथाभाव्याः (१) ॥

त्रयो नीचस्वरपराः ॥ ११३ ॥

त्रयो नीचस्वरपरा (२) ज्ञेयाः अभिनिहित, चैप्र,-
प्रक्षिष्टाः ॥

एदोद्भ्यामकारो लुगभि-

निहितः ॥ ११४ ॥

एकारौकाराभ्यामुदात्ताभ्यामकारोऽनुदात्तो यत्र
लुक् लुप्यते तत्राभिनिहितः स्वरः भवति यथा एकार-
स्य भवति, (३) ते अक्षरसाम् तेष्वक्षरसाम्, (४) ते
अवन्तु तेवन्वस्मान् ओकारस्य भवति यथा (५) वेदः
असि वेदोसि, (६) तुयः असि तुयोऽसि (७) ॥

(१) परे वक्ष्यमाणाः स्वरितभेदा उदात्तादय उदात्त आदौ येषां स्वराणामिति ॥

(२) अनुदात्तस्वरपरा इति ॥

(३) २४ । ३७ ॥

(४) १९ । ५८ ॥

(५) २ । २१ ॥

(६) ५ । ३१ ॥

(७) ए ओ आभ्यामुदात्ताभ्यामकारो रिफितक्षयः । अकारो लुप्यते यत्र तं

युवर्णौ यवौ क्षैप्रः ॥ ११५ ॥

इञ्च उञ्च यू युवर्णौ उदात्तावनुदात्तसुरोदयौ य-
कारवकाराभ्यां यथासङ्ख्येन युक्तौ यदा तदा क्षैप्रसञ्ज्ञः
सुरो भवति इवर्णस्य यथा (१) त्रि अम्बकम् अम्बकं
युजामहे, (२) व्याजी अर्वन् आशुर्भव व्याज्जर्वन्
उवर्णस्य यथा (३) नु इन्द्र योजान्विन्द्र ते हरी, (४)
द्व अन्तः इन्तः सर्पिः (५) ॥

इवर्ण उभयतो ह्रस्वः प्रक्षिष्टः ॥ ११६ ॥

पूर्वौ ह्रस्व इकार उदात्तः परश्च ह्रस्व इकारोऽनु-
दात्तस्तयोः परस्परप्रक्षिष्टे प्रक्षिष्टः सुरो भवति यथा
(६) अभि इन्वताम् अभीन्वताम्, (७) सुचि इव सु-

चाभिनिहितं विदुरिति तौ चेदुदात्तावनुदात्ते स्वरिताविति चतुर्थाध्यायस्थसूत्रेण स्व-
रितो भवति ॥

(१) ३ । ६० ॥

(२) ११ । ४४ ॥

(३) ३ । ५१ ॥

(४) ११ । ७० ॥

(५) इ उ वर्णौ यदोदात्तावापयेते यवौ क्वचित् । अनुदात्ते परे नित्यं विद्यात्
क्षैप्रस्य लक्षणमिति । उदात्तस्यान्तस्थीभावे परमनुदात्त ११ स्वरितमिति तदध्याय-
स्थशास्त्रेण च स्वरितो विहितः ॥

(६) ११ । ६१ ॥

(७) २० । ७० ॥

चीव घृतम् (१) ॥

स्वरो व्यञ्जनयुतस्तैरो

व्यञ्जनः ॥ ११७ ॥

उदात्तात्पूर्वस्मात्परो यः खरो व्यञ्जनयुतः स तैरो-
व्यञ्जनसञ्ज्ञकः खरो भवति यथा (२) इडे' रन्ते' हव्ये'
काय्ये' (३) ॥

उदवग्रहस्तैरो विरामः ॥ ११८ ॥

उदात्तावग्रहस्तैरो विरामसञ्ज्ञकः खरो भवति
अयं च समस्तपदेषु भवति अवग्रहवचनात् अवग्रहा-
भावे तु तैरोव्यञ्जन एव यथा (४) गोप'ताविति' गो ।
प'तौ (५) य'ज्ञप'तिमिति' य'ज्ञ । प'तिम् (६) ॥

(१) इकारो दृश्यते यत्र इकारेण च सैव्युतः । उदात्तश्चानुदात्तेन प्रशिञ्जो भवति
स्वर इति । इवर्णमुभयतो ह्रस्वमुदात्तपूर्वमनुदात्तश्च स्वरितमित्यनेनापि तदध्यायस्थेनैव
सूत्रेण स्वरितः खरो भवति ॥

(२) ८ । ४३ ॥

(३) उदात्तपूर्वं यत्किञ्चिद्व्यञ्जनेन युतं पदम् । एष सर्वबहुस्वारस्तैरो व्यञ्जन
उच्यते इति ॥

(४) १ । १ ॥

(५) ६ । ११ ॥ यस्य यकारस्याधो भागे विन्दुरस्ति तस्य जकारोच्चारणमिति वक्ष्य-
माणप्रतिज्ञापरिशिष्टसूत्रभाष्यकारेण यकारस्य मध्ये विन्दुप्रक्षेपोऽभिहितः परन्तु तन्म-
ध्ये प्रक्षेपे सति षकारोच्चारणमितिस्तस्मात्तदधो भागे विन्दुचिह्नं विहितम् ॥

(६) अवग्रहात्परो यस्तु स्वरितः स्यादनन्तरम् । तैरो विरामं तं विद्यादुदात्तो य-

विवृत्तिलक्षणः पादवृत्तः ॥ ११९ ॥

स्वरयोरन्तरयोरन्तरं विष्टितिरुच्यते तथा लक्ष्यत इति विष्टितिलक्षणः स पादवृत्तसञ्ज्ञः स्वरौ भवति विष्टित्या व्यवहित इत्यर्थः । यथा (१) ध्रुवा ऽअसदनृतस्व (२) का ईम् काऽईमरे पिशङ्गिला (३) ॥

उदाद्यन्तो(४)न्यवग्रहस्ताथा-

भाव्यः ॥ १२० ॥

उदात्तादिरुदात्तान्तो नीचावग्रहस्ताथाभाव्यस-
ञ्ज्ञः स्वरौ भवति यथा (५) तनूनप्त्वाऽइति तनू । नप्ते-
(६) तनूनपादिति तनू । नपात् अयं तु स्वरितानां
मध्ये प्रच्यते नत्विह माध्यन्दिनानां स्वरित उपलभ्यते

ग्रहग्रहः इति । उदात्ताच्चानुदात्त १७ स्वरितमिति चतुर्थाध्यायस्थेनैव शास्त्रेणापि स्वरि-
तो विहितः ॥

(१) २ । ६ ॥

(२) २३ । ५५ ॥

(३) स्वरे च स्वरिते चैव विवृत्तिर्यत्र दृश्यते । पादवृत्तौ भवेत्स्वारो विनऽइन्द्रे-
ति निदर्शनमिति । स्वरयोरन्तरे काले विवृत्तिर्यत्र दृश्यते । स स्वारः पादवृत्तः स्या-
त्काऽईमिति निदर्शनमिति ॥

(४) उदात्ताद्यन्त इति 'घ, पुस्तकपाठः ॥

(५) ५ । ५ ॥

(६) २१ । १० । अयं दशमाङ्कः पदपाठादवगन्तव्यः कुतः वेष्टनस्य पदपाठे
सङ्गातात् ॥

उदात्तानुदात्तौ तु पृथग्भूतावुपलभ्येते स्वरितश्चोदा-
त्तानुदात्तयोरेकीभावे सति तस्मिँश्च तिर्य्यग्गमनं गा-
त्राणां भवति न च तदिह किञ्चिदुपलभ्यते अतो
माध्यन्दिनानां पदकाले ताथाभाव्यसञ्ज्ञकः कम्पो
(१) भवति तथा चोक्तमौज्जिहायनकैर्माध्यन्दिनमता-
नुसारिभिः । अवग्रहो यदा नीच उच्चयोर्मध्यतः क्व-
चित् । ताथाभाव्यो भवेत्कम्पस्तनूनप्ते निदर्शनम्,
यस्तु ताथाभाव्यस्य स्वरितानाम्मध्ये पाठः अयमन्येषा-
माचार्याणां मतेन तेषां हि मतेन तनूशब्दः संहि-
तावद्भवति अतोऽसौ स्वरितो भवति तदभिप्रायेण स्वरि-
तानां मध्ये पाठः (२) अयमपि चोपरिष्ठाद्वक्ष्यति,
निहितमुदात्तस्वरितपरमनवग्रहे, स्वरितस्य चोत्तरो
देशः प्रणिहन्त्यत इति तदभिप्रायेण वक्ष्यति; एवमु-
दात्तानुदात्तस्वरितलक्षणविधानानन्तरं हस्तलक्षण-
माह ॥

हस्तेन ते ॥ १२१ ॥

अनेन प्रकारेण हस्तेन ते स्वराः प्रदृश्यन्ते तत्रोदात्ते
ऊर्ध्वगमनं हस्तस्य अनुदात्तेऽधोगमनं हस्तस्य एतत्स-

(१) कम्पो नाम नीचत्वमिति ॥

(२) माध्यन्दिनविरोधी स्यात्ताथाभाव्यस्तु यः स्वरः । भिन्नौ यतोऽत्र दृश्येते
तावुदात्तानुदात्तौ । तस्मान्माध्यन्दिनीयानां पदे कम्पो विधीयते । संहिताकाळे विरो-
धः पदपाठे तु भवत्येवेति ॥

वैषामाचार्याणां मतेन स्थितं, (१) स्वरिते तु विप्रति-
पद्यन्ते तत्प्रकाशनार्थमिदमाह ॥

चत्वार स्तिर्यक्स्वरिताः ॥ १२२ ॥

(१) हस्तचालनलक्षणं याज्ञवल्क्येनोक्तम् । हस्तौ सुसंय्यतौ धार्यौ ज्ञानबोद्धि-
संस्थितौ । गुरोरनुमतिं कृत्वा पठन्नान्यमतिर्भवेत् । १ ऊरुभागे तृतीये तु करन्यस्या-
थ दक्षिणम् । प्रसन्नमानसो भूत्वा किञ्चिन्नम्रमधो मुखः २ कूर्मोऽङ्गानीव संहृत्य हस्त-
दृष्टिर्दृढं मनः । स्वस्थः प्रशान्तो निर्भोतो वर्णानुच्चारयेद् बुधः ३ नाभ्याहन्यान् निर्ह-
न्यान् गायत्रे च कम्पयेत् । यथादाबुच्चरेद्वर्णास्तथैवैतान् समापयेत् ४ निवेश्य दृष्टिं
हस्ताग्रे शास्त्रार्थमनुचिन्तयन् । सम्यगुच्चारयेद्वर्णान् हस्तेन च मुखेन च ५ स्वरश्चैव तु
हस्तश्च द्वावेतौ युगपत् स्थितौ । हस्तादभ्यष्टः स्वरादभ्यष्टो न वेदफलमश्रुते ६ न कराज्जो
न लङ्मूर्धो नाव्यको नानुनासिकः । गदगदो बद्धजिह्वश्च न वर्णान्वक्तुमर्हति ७ चुलुनौ-
का स्फुटो दण्डी स्वस्तिको मुष्टिकाकृतिः । एते वै हस्तदोषाः स्युः परशुश्चेति सप्तमः ८
हस्तहीनं तु योऽधीते मन्त्रं मन्त्रविदो विदुः । न साधयति यजूर् ० षि भुक्तमव्यञ्ज-
नं यथा । ९ ऋचौ यजूर् ० षि सामानि हस्तहीनानि यः पठेत् । अनुचो ब्राह्मणस्ताव-
द्यावत्स्वारं न विन्दति १० हस्तेनाधीयमानस्तु स्वरवर्णप्रयोगतः । ऋग्यजुःसामभिः पूतो
ब्रह्मलोके महीयते ११ न कुर्वीत पदं दीर्घं न चात्यन्ताविलम्बितम् । पदस्य ग्रहमो-
क्षस्तु यथा शीघ्रगतिर्हयः १२ यथा वाणी तथा पाणीरिक्तं तु परि वर्जयेत् । यत्र यत्र
स्थिता वाणी पाणिस्तत्रैव तिष्ठति १३ यथा धनुष्यावितते शरे क्षिप्ते पुनर्गुणः । स्वस्था-
नं प्रति पद्येत तद्वद्वस्तगतः स्वरः १४ उच्चानं सोज्जतं किञ्चित्सुव्यक्ताङ्गुलिरञ्जितम् ।
स्वरविच्च स्वरं कुर्यात्प्रादेशोद्देशगामिनम् १५ मनुष्यतीर्थोच्चं कृत्वा पितृतीर्थोदकं ब्रजे-
त् । नामितं करपृष्ठं तु सुव्यक्ताङ्गुलिमोक्षणम् १६ अङ्गुष्ठस्योत्तरे पर्वे (पर्वे इत्यार्षपा-
ठः) यवस्योपरि यद्वेत् । प्रादेशस्य तु सो देशस्तन्मात्रं (सो देश इत्यपि तथैव ज्ञात-
व्यः) चाळयेत्करम् १७ उदात्तं तु भ्रुवः प्रान्ते प्रचयं नासिकाग्रतः । हृत्प्रदेशोऽनु-
दात्तं तु तिर्यग्जात्यादिरीरितः १८ स्वरिते त्र्यङ्गुले विद्यान्निपाते तु षडङ्गुलम् । उ-
त्थाने तु नवाङ्गुल्यमेतत् स्वारस्य लक्षणम् १९ षडङ्गुलं तु जात्यस्य हस्तस्यानुपथस्य
च । तच्चतुर्भागमात्रं तु भूयस्तेनैव वर्त्तयति २० । दक्षिणजानूरुसन्धौ कूर्परं धृत्वा मिळि-
तचतुरङ्गल उच्चानो हस्तो धार्य इति ॥ उदात्तादस्वरेषु हस्तप्रक्षेपप्रकारः कात्यायनेना-
पि वक्ष्यमाणप्रतिज्ञापरिशिष्टसूत्रे बह्वनुदात्तो मूर्धन्युदात्तः श्रुतिमूले स्वरित इति कथितः ॥

जात्याभिनिहितच्चैप्रप्रसिष्टा एते चत्वारस्तिर्यग्घ-
स्तं कृत्वा खरणीयाः पितृदानवद्वस्तं कृत्वेत्यर्थः ॥

अनुदात्तं चेत्पूर्वं तिर्यङ् निहत्य
काण्वस्य ॥ १२३ ॥

एतेषां चतुर्णां जात्यादीनां यद्यनुदात्तं पूर्वं भवति
तदा तिर्यग्घस्तं कृत्वा खरयितव्याः काण्वाचार्यस्य
मतेन उदात्तपूर्वे अपूर्वे च न भवति अनुदात्तपूर्वो
यथा (१) वैष्णव्यौ (२) धान्यमसि (३) सुप्तोसि (४)
व्वेदोसि (५) अय्यर्षत (६) योजान्विन्द्र ते (७) अभी-
न्वतासुखे (८) सुचीव दृतम् एतेषु तिर्यग्घस्तः क्रि-
यते उदात्तपूर्वेष्वपूर्वेषु च जात्यादिषु तैरो व्यञ्जनव-
द्वस्तः क्रियते उदात्तपूर्वो भवति यथा (९) पञ्चदशो

(१) १ । १२ ॥

(२) १ । २० ॥

(३) ५ । ३१ ॥

(४) २ । २१ ॥

(५) १७ । ९८ ॥

(६) ३ । ५१ ॥

(७) ११ । ६१ ॥

(८) २० । ७९ ॥

(९) १४ । २३ ॥

व्योम (१) कतिधा व्यकल्पयन् अपूर्वो भवति (२) यथा
चम्बकम् (३) इन्द्रः सर्पिरासुतिः ॥

ऋजुनिहत्य प्रणिहन्यते

उदात्ते ॥ १२४ ॥

ऋजुनिहत्य (४) हस्तमनुदात्तवत् ततः प्रकर्षेण
निहन्यते नोची क्रियते जात्याभिनिहितक्षैप्रप्रक्षिष्टा
उदात्ते परभूते यथा (५) भूर्भुवः स्वर्द्यौरिव (६) दे-
वस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाज्जव्याम् (७) यास-
द्विश्वान्यविणम् (८) सुचीवेति उदात्त इति कस्मात्
(९) धान्यमसि धिनुहि देवान् (१०) पवित्रे स्थो वै-

(१) ३१ । १० ॥

(२) ३ । ६० ॥

(३) ११ । ७० । यत्र विसर्गसमीपे 'ऌ' एतच्चिह्नमस्ति तत्रोदात्तानुदात्तस्वारि-
तक्रमेणाकुलिप्रक्षेपः कर्तव्य इत्यत्र प्रमाणं विसर्जनीय इति सूत्रव्याख्याऽवसरे द्र-
ष्टव्यम् ॥

(४) उपरितो हस्तमवतार्येत्यर्थः ॥

(५) ३ । ५ ॥

(६) १ । १० ॥

(७) १७ । १६ ॥

(८) २० । ६९ । अयमङ्कः पदपाठादवगन्तव्यः ॥

(९) १ । २० ॥

(१०) १ । १२ ॥

घ्राव्यौ (१) ॥

तीक्ष्णोऽभिनिहितः परम्पर-

म्मृदुस्त्वन्यः ॥ १२५ ॥

तीक्ष्ण उच्चारणतो हस्तेन चाभिनिहितः स्वारो भ-
वति ततोऽन्यो मृदुप्रयत्नो भवति किमविशेषेणेत्याह
परम्परम् शब्दोऽव्ययम् पूर्वमपेक्ष्य परः परमपेक्ष्य पर
इत्येवम् यथा अभिनिहितमपेक्ष्य चैप्रः चैप्रमपेक्ष्य
प्रस्लिष्टः चैप्रे जात्यस्यान्तर्भावो द्रष्टव्यः तथा चोक्तम्
सर्वतीक्ष्णोऽभिनिहितः प्रस्लिष्टस्तदनन्तरम् । ततो मृ-
दुतरौ स्वारौ जात्यचैप्राबुभौ स्मृतौ १ ततो मृदुतरः
स्वारस्तैरो व्यञ्जन उच्यते । पाददृत्तो मृदुतमस्वेतत्
स्वारबलाबलमिति २ ॥

तस्यादित उदात्तः स्वरा-

र्द्धमात्रम् ॥ १२६ ॥

स्वरितस्य स्वरस्यादाबुदात्तं ज्ञातव्यं तच्च स्वरार्द्ध-
मात्राकालम् यद्येकमात्रो यदि द्विमात्रो यदि त्रि-
मात्रः स्वरस्तथाप्यर्द्धमुदात्तं परमनुदात्तं अयं तु स्व-

(१) निहितमुदात्तस्वरितपरमिति वक्ष्यमाणत्वात्स्वरिते च परे द्रष्टव्यम् । अनु-
दात्तपूर्ववति स्वरितपूर्वे चेदं नीचीकरणं हृदयादप्यधो मनुष्यदानवन्न्युब्जकरं कृत्वा
कर्त्तव्यमिति ॥

रिते उदात्तानुदात्तप्रविभागो द्रष्टव्यः स्वरितशब्दे
नोदात्तानुदात्तं निर्वर्त्य पृथक् श्रुतिस्वरान्तरमभिधी-
यते यथा त्रपुताम्बयोः संयोगे धात्वन्तरस्य कांश्चस्यो-
त्पत्तिः यथा च गुडदध्नेरेकीभावे मार्ज्जिकोत्पत्तिः
एवमुदात्तानुदात्तसंयोगे स्वरितोत्पत्तिः ॥

सप्त ॥ १२७ ॥

सामसु सप्तस्वरानाज्जः षड्-ऋषभ-गान्धार-मध्यम-
पञ्चम-धैवत-निषादान् (१) ननु यजुर्वेदलक्षणप्रक्रमे
एवं उदात्तानुदात्तसंयोगे स्वरितोत्पत्तौ कः सामल-
क्षणेप्रसङ्ग उच्यते अग्नौ यजुर्वेदे अध्वर्योः सामगानं
विहितम् । नान्योऽध्वर्योर्गायेदिष्टका वा एता विहि-
तचितो हस्याद्यदन्योऽध्वर्योर्गायेत् इति ब्रा० २ । शा-

(१) सप्तानां निषादादीनां स्वरानामुच्चारणप्रकारः तेषामुदात्तादिस्वरमध्येऽन्तर्भाव-
श्च पाणिनिर्याज्ञवल्क्यावुक्तवन्तौ । चाषस्तु वदते मात्रां द्विमात्रां वायसो ब्रवीत् । शिसी
रौति त्रिमात्रं तु नकुलस्त्वर्द्धमात्रिकम् । षड्जं मयूरो वदति ऋषभं वृषभो वदेत् । अ-
जा वदति गान्धारं मध्यमं दहुरो वदेत् । धैवतं चातको ब्रूते तत्तद्वायुगतः स्वरः ।
प्रावृट्काले तु सम्प्राप्ते कोकिला पञ्चमं वदेत् ॥ निषादं वदते हस्ती स्वरान् सप्त
विनिर्दिशेत् । अस्योत्पत्तिर्व्यथा । सङ्गीतदामोदरे । वायुः समुद्गतो नाभेः कण्ठशी-
र्षसमाहतः । नानागन्धवहः पुण्यो गान्धारस्तेन हेतुना ॥ नाभेः समुद्गतो वायुर्ग-
न्धश्रोत्रे च चालयन् । स शब्दस्तेन निर्व्याप्ति गान्धारस्तेन कथ्यते । चतस्रः पञ्चमे
षड्जे मध्यमे श्रुतयो मताः । ऋषभे धैवते तिस्रो द्वे गान्धारनिषादके इति एषां सर्वे-
षां लक्षणानि ग्रन्थविस्तरभिया न लिखितानीति, उदात्ते निषादगान्धारावनुदात्त ऋषभ-
धैवतौ । स्वरितप्रभवाः शेषाः षड्जमध्यमपञ्चमा इति । अथ च शतपथब्राह्मणी-
यबर्ह्यमाणत्रिकण्डिकासूत्रपरिशिष्टेऽपि कात्यायनेनोक्तम् ॥

तपथे ६ सञ्चितिकाण्डे, अतोऽध्वर्युकर्तृकमिति कृ-
त्वा कश्चिल्लक्षणंशः कृतः सामसु, अपरे त्वाङ्गः जा-
त्याभिनिहितक्षैप्रप्रसृष्टतैरोद्व्यञ्जनतैरोविरामपाद-
वृत्ताः सप्तस्वरा अत्रावधार्यन्ते ताथाभाव्यस्तु वाजस-
नेयिनां निवार्यते ॥

त्रीन् ॥ १२८ ॥

उदात्तानुदात्तस्वरितान्यजुर्वेदे त्रीन्स्वरानाङ्गः,
(१) तथा च उक्ता एव सन्तोऽनूद्यन्ते एवेदानीमपवा-
दार्थम् ॥

द्वौ ॥ १२९ ॥

किमविशेषेण यजुर्वेदे त्रीन्स्वरानाङ्गः नेत्युच्यते
द्वौ स्वराबुदात्तानुदात्तौ भाषितलक्षितौ शतपथब्रा-
ह्मणे आङ्गः । पारिशेष्यान्मन्त्रेषु त्रैस्वर्यम् (२) ॥

(१) प्रचितस्त्वनुदात्तान्तर्भूत एवेति पृथङ्लोकः तल्लक्षणं चतुर्थाध्याये स्वारिता-
त्परमनुदात्तमुदात्तमयमित्यनेन सूत्रेणोक्तम् तद्वस्तुचालनप्रकारः प्रतिज्ञापरिक्षिप्तसूत्री-
यकात्पायनकृताक्षिपायां सर्वास्ये प्रचयः स्मृत इति याज्ञवल्क्येन प्रचन्नासाम्र एव चे-
त्युक्तं पाणिनिनापि कात्यायनाकूलमेवोक्तं परन्तु याज्ञवल्क्योक्त्या सहाविरोध एवेति
बोध्यम् ॥

(२) अन्यब्राह्मणे तु भाषिकोक्ताः स्वरा ज्ञेयाः । ते चामन्त्रस्वरवद्ब्राह्मणस्वरक्ष-
रकाणां त्रैस्वर्यमित्यर्थः । तेषां साण्डिकीयौसीयानां चातुःस्वर्यमिति क्वचित् । तेषां
चरकाणां मध्ये अवान्तरभेदभिन्नानां साण्डिकीयानां औसीयानां शास्त्रिणामुदात्तानुदा-
त्तस्वरितप्रचितलक्षणं चातुःस्वर्यं भवति क्वचिद् ग्रहणात् त्रैस्वर्यं चेति ॥

एकम् ॥ १३० ॥

तानलक्षणमेकं स्वरमाङ्ग्यञ्चकर्मणि (१) ॥

सामजपन्न्यूखवर्जम् ॥ १३१ ॥

प्रगीतं मन्त्रवाक्यं सामशब्देनोच्यते विश्वेदेवाः शृणुतेति जपः, न्यूखो बह्वृचि प्रसिद्धः एतानि वर्जयित्वा यज्ञकर्मण्येकः स्वरः भवति तानलक्षणः (२) ॥

प्रावचनो वा यजुषि ॥ १३२ ॥

प्रवचनशब्देनार्घपाठ उच्यते तत्र भवः स्वरः प्रावचनः स च यजुषि भवति वा तान इति विकल्पः स च त्रैस्वर्थलक्षण एव भवति प्रगृह्यं चर्चायामितिना प्रदेष्टव्यत्वेनेकस्मात्पर्यार्ष इति (३) ॥

(१) तानोऽन्येषां ब्राह्मणस्वरः अतोऽन्येषां पञ्चविंशत् षड्विंशत् वाष्कलादि ब्राह्मणानां तान एकश्रुतिस्वरो भवति तान एवाङ्गोपाङ्गानामिति तानस्वराणि छन्दोवत् सूत्राणीति वक्ष्यमाणप्रतिज्ञासूत्रपरिशिष्टेऽप्युक्तम् ॥

(२) सुसमिद्धाद्येत्यादिः मयीदमित्यादिश्च जपः । न्यूखो बह्वृचशाखासु ऋग्वेदीयप्रणवोच्चारः । न्यूखः सम्यङ्मनोज्ञे च साम्नः षट् प्रवणेऽपि चेति मेदिनीकोशे । न्यूखः सामवेदे निपातित ओकार इति अमरकोशीयतृतीयकाण्डस्य रामानन्दकृतटीकायां स्पष्टमुक्तम् ॥

(३) एवं ज्ञातपथिकस्य मन्त्रस्य भाषिकस्वरेण पाठः । साहितिकस्य चातुःस्ववर्त्येण महासमाख्ययोपसङ्गहीतत्वात् । मन्त्रकाण्डपठितानामपि ब्राह्मणभागानामश्वस्तूपर इत्यादीनां त्रैस्वर्थमेव । ब्राह्मणकाण्डपठितानां विश्वेदेवाः शोस्तनमापथेत्यादीनां भाषिकस्वर एवेति । भाषिकस्वरलक्षणं अथ ब्राह्मणस्वरसंस्कारनियम इत्यारभ्य तान् एवाङ्गोपाङ्गानामित्यन्तेन त्रिकाण्डिकाभाषिकसूत्रवक्ष्यमाणपरिशिष्टका-

तमिति विकारः ॥ १३३ ॥

तमित्युत्सृष्टसर्वनामका द्वितीया विभक्तिर्गृह्यते द्वि-
तीयया यो निर्दिश्यते स विकारः प्रत्येतव्यः । यथा
अनुस्वारर्ठं रोष्मसु मकार इति मकारोऽनुस्वार-
विकारमापद्यते भाविभ्यः स षर्ठं समानपद इति
सकारः प्रकारविकारमापद्यते (१)

तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य ॥ १३४ ॥

तस्मिन्निति सप्तम्यन्तं परिगृह्यते सप्तम्या निर्दिष्टे
पूर्वस्य कार्यं वेदितव्यम् पूर्वस्य पदान्तस्य विधिः प्रत्ये-
तव्यः यथा ककारप्रकारयोः सकारमिति तथयोः
समिति ॥

तस्मादित्युत्तरस्यादेः ॥ १३५ ॥

तस्मादिति पञ्चमी निर्दिष्टात्परस्य कार्यं वेदि-
तव्यम् यथा ओकारात्सु, परेः सिञ्चतेः ॥

षष्ठीस्थाने योगा ॥ १३६ ॥

षष्ठी विभक्तिः स्थाने योगिनी वेदितव्या षष्ठ्यन्तस्य
कार्यं भवतीत्यर्थः यथा यवयोः पदान्तयोः स्वरमध्ये
लोपः ऐकारौकारयोः कण्ठ्यापूर्वाभावा तात्लोष्ठयो

त्यायनोक्तेन बोध्यम् ॥

(१) तमित्यादिभ्यः सूत्रसप्तकं पारिभाषीयम् । स्थाने जायमानो विकारो हात्वव्य इति ॥

रुत्तरा इति (१) ॥

तेनेत्यागमः ॥ १३७ ॥

तेनेति तृतीयाग्रहणम् तृतीयया यो निर्दिश्यते
स आगमः प्रत्येतव्यः यथा ङ्नौ क्ताभ्यां सकार इति
प्रगृह्यं चर्च्चायामितिना षट्पु (२)

अन्तरेण पर्वणी ॥ १३८ ॥

पर्वशब्देन पदमुच्यते पदयोर्मध्ये आगमो भवति
यथा प्राङ्सोमः (३) प्राङ्क्सोमः प्रत्यङ्सोमः (४) प्रत्य-
ङ्क्सोमः वीन्समुद्रान् (५) वीन्त्समुद्रान् अस्मान्सीते
(६) अस्मान्सीते ॥

पर एकस्मात् ॥ १३९ ॥

एकस्य पदस्य मध्ये य आगमो विधीयते स परो-
भवति यथा (७) हे इति शीर्षे इति प्रगृह्यं चर्च्चायामि-
तिना षट्पित्यनेनैकस्मात्पदात्पर इतिकार आगमो

(१) स्थानमुच्चारणप्रसङ्गः ।

(२) समीपे जायमान आगमो वेध्य इति ॥

(३) १० । ३१ ॥

(४) १९ । ३ ॥

(५) १३ । ३० ॥

(६) १२ । ७० ॥

(७) १७ । ९३ ॥

विधीयते इति ॥

उभयोर्विकारः ॥१४०॥

द्वितीयया निर्दिष्टो विकार इत्यधस्तादुक्तम् । स उभयोर्भवति अन्तरेण पर्वणी च पदान्तपदाद्योरित्यर्थः एकस्य वा वर्णस्य निर्दिश्यते यथा आ इदम् (१) एदम् इह ऊर्जम् (२) इहोर्जन्दधातन एकवर्णस्य भवति यथा मो सु नः (३) 'मोषूण्डइन्द्रात्' सुसाव (४) सुषाव सोमम् (५) ॥

वर्णस्यादर्शनं लोपः ॥१४१॥

दृशिरुपलब्धिवचनः । अनुपलब्धिरदर्शनं वर्णस्य लोप इत्युच्यते वक्ष्यति "लोपं धौ" यथा अयच्छामाः मा (६) अयच्छामा वस्तेनः, सत्याः नः (७) सत्या नः-सन्वाशिषः ॥

विकारी यथासन्नम् ॥१४२॥

(१) ४ । १ ॥

(२) १९ । ६३ ॥

(३) ३ । ४६ ॥

(४) १९ । २ ॥

(५) स्थाने जायमानो विकार इति भेदः ॥

(६) ४ । १२ ॥

(७) २ । १० ॥

विकारोऽस्यास्तीति विकारी विकारी वर्णोऽवचने
यथासन्नम् यो य आसन्नस्तमाप्रद्यते वक्ष्यति स्वरे भा-
व्यन्तस्थाम् यथा त्रि अ॒म्ब॒कम् त्रि॒म्ब॒कम् द्वि॒अ॒न्नः द्वि॒न्नः
वचनादन्यदपि भवति यथा अनसो वाचौ सकारो ड-
कारमिति अनङ्गान् वचनात् सकारस्य डकारः । परि-
भाषासूत्रमेतत् ॥

सङ्ख्यातानामनूदेशो यथास-

ङ्ख्यम् ॥ १४३ ॥

समानसङ्ख्यानां यः पञ्चादुद्देशः स यथासङ्ख्यम्
भवति यस्य या सङ्ख्या प्रथमस्य प्रथमः द्वितीयस्य द्वि-
तीयः तृतीयस्य तृतीय इत्यर्थः । वक्ष्यति सदो द्यौर्न-
मस्कृतं पिता पथेषु यथा (१) सदः कृतम् सदस्कृतम्
(२) तेभ्यः स॒र्पेभ्यो नमः (३) “द्यौः पिता” द्यौष्पितो-
पमाम् (४) नमः पथे, श॒र्म्मा स॒प्रथा नमः॒स्यथे परिभा-
षासूत्रमेतत् ॥

सन्निकृष्टविप्रकृष्टयोः सन्निकृ-

(१) १२।१०।

(२) १३।६।

(३) २।११।

(४) १०।५१।

ष्टस्य ॥१४४॥

यत्रोदाहरणसंशयः तत्रेयं परिभाषोच्यते सन्नि-
 कृष्टविप्रकृष्टयोरुदाहरणयोः सन्निकृष्टस्यैवोदाहरण-
 स्य कार्यं प्रत्येतव्यम् न तु विप्रकृष्टस्य यथा असि शिवा
 सुषदेत्येवमादिषु परभूतेषु असि शब्द आद्युदात्त उ-
 क्तः तत्र सन्देहः किं सुक्ष्मा चासि शिवा चासि स्यो-
 ना चासि सुषदेत्यत्रासि शब्द आद्युदात्तो भवति उत
 स्योना चासिसुषदेति उभयोरप्यसि शब्दः परभूतः
 तत्रानेनावधारणं क्रियते यत्रान्यत्रापि सन्निकृष्टानि
 पदानि भवन्ति तत्र कार्यं भवति तद्यथा असि शिवा
 सुषदा प्रयस्वतीत्यत्र प्रयस्वतीसन्निधानात् सुक्ष्मा चा-
 सि शिवा चासि स्योना चासि सुषदेत्ययमेवाद्युदात्तो
 भवति न तु स्योनासुषदेति विप्रकृष्टत्वात् (१) ॥

पूर्वोत्तरयोरुत्तरस्य ॥ १४५ ॥

यत्र पूर्वस्योत्तरस्य च युगपत्कार्यं प्राप्नोति तत्रोत्त-
 रस्यैव भवति न तु पूर्वस्य ऋग्यमुदाहरणम् (२) आ च
 शाखा च अत्र स्वरिताकार उदात्तः तत्र युगपत्कार्य-
 मुभयोः सन्धावुदात्त एव स्वरविषयकं चैतत्सूत्रम् ॥

द्विरुक्तमाग्नेडितं पदम् ॥ १४६ ॥

(१) सहचरितासहचरितयोर्मध्ये सहचरितस्यैव कार्यहेतुत्वं स्यात् ॥

(२) २१ । ६१ ॥

द्विरभ्यस्तं पदमान्वेडितसञ्ज्ञं भवति यथा (१) य-
ज्ञायज्ञावो ऽअग्नये, तत्र आन्वेडितसञ्ज्ञायाः प्रयोज-
नम् आन्वेडितं चोत्तरमित्यादि ॥

सठं० हित ॐ स्थितोपस्थितम् ॥ १४७ ॥

इत उत्तरं पदसंहिता वर्तिष्यते द्विरुक्तमित्यनुवर्त्त-
ते । द्विरुक्तं यत्पदमिति करणेन मध्यस्थितेन आद्यन्त-
संहितेन पूर्वमादिसंहितमुत्तरपदमन्तसंहितं स्थितो-
पस्थितसञ्ज्ञं भवति यथा (२) द्वे, इति द्वे, (३) शीर्षे
इति, शीर्षे, (४) पुनरिति पुनः । (५) वह्नितममिति व-
ह्नि । तमम् । (६) सञ्चितममिति सञ्चि । तमम् ।
(७) पप्रितममिति पप्रि । तमम् । तथा चोक्तम् ।
उपस्थितं सेतिकारं केवलं तु पदं स्थितम् । तत्स्थितो-
पस्थितन्नाम यत्रोभे आह संहिते । १ । अस्यार्थः ।
इतिकरणसहितमुपस्थितसञ्ज्ञं पदं भवति । केवल-
मिति करणसहितं स्थितसञ्ज्ञं भवति यत्र पदान्तप-

(१) २७ । ४२ ॥

(२) १७ । ९३ । अयमङ्कः पदपाठाद् ज्ञातव्यः ॥

(३) १७ । ९३ । अयमपि तथैव ॥

(४) ४ । १५ ॥

(५) १ । ८ ॥

(६) १ । ८ ॥

(७) १ । ८ ॥

दादी इतिकरणेन संहितौ आह । तत्स्थितोपस्थित-
पदमुच्यते । स्थितोपस्थितप्रदेशाः, । पूर्वोत्तरसंहित-
स्य स्थितोपस्थितमवगृह्यत्येति स्थितोपस्थितस्यैव साव-
ग्रहस्य स्वरविशेषविधानार्थमाह ॥

सं०हितावदवग्रहः स्वरविधौ परं
च सर्वं चेदनुदात्तम् ॥ १४८ ॥

अवग्रहशब्देन सावग्रहस्य पदस्य पूर्वपदमभिधीय-
ते । अवग्रहः स्वरविधौ स्वरचिन्तायां संहितावत्स्वरं
लभते । इतिकरणेन सह सन्धौ तस्मिंश्च सावग्रहे पदे
द्वे भवतः तत्र पूर्वपदं तावदिति करणेन सह सन्धौ सं-
हितावत्स्वरं लभते । परं च अवग्रहात्परं पदं संहि-
तावत्स्वरं लभते । यदि तत्सर्वमनुदात्तं भवति । यदि
स्वतन्त्रं किं चिदक्षरमुदात्तं वा स्वरितं वा भवति ।
तदा स्वकीयया प्रकृत्या भवति । यथा वह्नितममि-
ति वह्नि । तमम् । गृहपत इति गृह । पते । प्रजाव-
तीरिति प्रजा । वतीः । परं च सर्वञ्चेदनुदात्तमिति
कस्मात् ऊर्णासूत्रेणेत्यूर्णा । सूत्रेण । व्विरुचुरिति
वि । रुरुचुः । द्रोणकलश इति द्रोण । कलशः । उ-
दात्तोदाहरणम्, राजस्व इति राज । स्वः । स्वरित-
पदोदाहरणम्, स्वरविधाविति किम् । वर्णविधौ सं-
हितावन्न भवति । महद्भ्य इति महत् । व्यः । तिष्ठ-

इति तिष्ठत् । व्यः । (१) धावँइति धावँत् । व्यः ॥
इति परस्तिर्यङ्गीचोन्तोदात्ते मध्यो-
दात्ते पर्वणि काण्वस्य वा ॥१४९॥

इति परस्तिर्यङ्गीचो भवति अनुदात्तो भवतीत्य-
र्थः । अन्तोदात्ते मध्योदात्ते वा पदे वा शब्दो भि-
न्नक्रमो विकल्पार्थः । काण्वस्याचार्यस्य मतेन । (२) ऊ-
र्णासूत्रेणेत्यूर्णा । सूत्रेण, (३) द्रोणकलश इति द्रोण ।
कलशः ॥

उदात्तमयोऽन्यत्र नीच एव ॥१५०॥

काण्वस्येति वर्त्तते अन्तोदात्तमध्योदात्तयोः पर्व-
णोरन्यत्र इति करणात्परो नीच उदात्तमय एव भव-
ति । प्रचित एव भवतीत्यर्थः । यथा । (४) सोमगोपा
इति सोम । गोपाः । (५) सस्त्रितममिति सस्त्रि । त-
मम् । पप्रितममिति पप्रि । तमम् ॥

(१) १६ । २३ । अयमङ्कः पदपाठाद् ज्ञातव्यः ॥

(२) १९ । ७८ । तथा ॥

(३) १९ । २५ । अयमपि तथा ॥

(४) १२ । २० ॥

(५) १ । ७ ॥

एकवर्णः पदमपृक्तम् ॥ १५१ ॥

एकवर्णस्यापृक्तसञ्ज्ञा विधीयते पदस्य यथा (१) आ
(२) उ अपृक्तसञ्ज्ञायाः प्रयोजनं । अपृक्तमध्यानि
त्रीणि स विक्रमः ॥

स एवादिरन्तश्च ॥ १५२ ॥

स एवैको वर्णः पदसञ्ज्ञः सन् पदादिसम्बन्धीनि
पदान्तसम्बन्धीनि च कार्याणि लभते । यथा । (३)
इन्द्र आ इहि । इन्द्रे हि ॥

अवग्रहः पदान्तवत् ॥ १५३ ॥

अवग्रहशब्देन पूर्वपदमिहाभिधीयते । अवग्रहः
पदान्तसम्बन्धीनि कार्याणि लभते वर्णविधौ, स्वरवि-
धौ तु अधस्तादुक्तम् संहितावदवग्रहः स्वरविधाविति,
यथा (४) भरद्वाज इति भरत् । वाजः । (५) तिष्ठञ्ज्यः
इति तिष्ठत् । अयः ॥

(१) १ । १ ॥

(२) ७ । ४१ । तथा ॥

(३) ३३ । १५, अयमङ्कः पदपाठादवगन्तव्यः । एहीत्यादौ अन्तस्था दीर्घा-
कारादीनि स एवादिरन्तश्चेत्यतिदेशाद् भवन्ति २० । ७८ । इन्द्र आ याहीत्युदाह-
रणं बोध्यम् ॥

(४) १३ । ५० ॥

(५) १६ । २३ ॥

न त्विति करणम् ॥ १५४ ॥

अवग्रहः पदान्तवदित्युपदेशादिति करणमपि प्राप्नोति तन्निषिध्यते । यथा । (१) अन्तःस्त्रेषऽइत्यन्तः । स्त्रेषः । रिक्तं च संहितायामनिरुक्तं, मित्यनेनेति करणमपि प्राप्नोति तन्निषिध्यते (२) ॥

पूर्वेणोत्तरः सठं हितः ॥ १५५ ॥

इत उत्तरं संहितोच्यते पूर्वेण पदान्तेन उत्तरः पदादिः संहिता यदा क्रियते स्वरतो वर्णतश्च तदा द्विपदसंहितोच्यते यथा (३) इषे त्वा, त्वोर्जे क्रमसंहितेयम् ॥

पदविच्छेदोऽसठं हितः ॥ १५६ ॥

पदे पदे विच्छेदः पदविच्छेदः । पदविच्छेदो यदा क्रियते तदा असंहितः पाठः । यथा (४) इषे त्वा ऊर्जे त्वा ॥

(१) १३ । २३ ॥

(२) न त्विति करणा इति 'ष' पुस्तकपाठः वत्युपदेशादिति करणस्य पदान्तकप्राप्तौ प्रतिषेधः पदान्तधर्मेण उच्यते ॥

(३) १ । १ ॥

(४) १ । १ ॥

एकपदद्विपदत्रिपदचतुष्पदानेकप-

दाः पादाः ॥ १५७ ॥

एकं पदं यस्मिन् पादे स एकपदः पादः सा च प-
दसंहितोच्यते । छन्दसः पादपरिज्ञानार्थम् । एक प-
दः पादो यथा । (१) हृदि॒स्पृश॑म् । द्विपदः पादो यथा ।
(२) क्रतोः॑ भ॒द्रस्य॑ । क्रतोर्भ॒द्रस्य॑ । त्रिपदः पादो यथा ।
(३) अ॒ग्ने॑ तम् अ॒द्य । अ॒ग्ने॑ तम॒द्य । चतुष्पदः पादो
यथा । (४) अ॒ग्ने॑ वि॒श्वेभिः॑ सु॒मना॒ ऽअ॒नीकैः॑ । अ॒ग्ने-
कपदः पादो यथा । (५) वि॒धूम॑म् । अ॒ग्ने॑ । अ॒रुष॑म्
मि॒ये॒ध्य । वि॒धूम॑म॒ग्ने॒ ऽअ॒रुष॑मि॒ये॒ध्य ॥

वर्णानामेकप्राणयोगः सठ०

हिता ॥ १५८ ॥

एवं तावत्यादसंहिता ऋक्षु कर्तव्या यजुषु त्वयं
विधिः । वर्णानामेकोच्छ्वासोच्चारणयोगः पदे वा वा-
क्ये विश्रामः सा च प्राणसंहिता यत्र भूयांसि पदानि

(१) १५ । ४४ ॥

(२) १५ । ४५ ॥

(३) १५ । ४४ ॥

(४) १५ । ४६ ॥

(५) ११ । ३७ ॥

अतिक्रम्यावसानं भवति न त्वेकेन प्राणेन तान्विव्याप्तुं
शक्यन्ते तत्रायं विधिः । यथा । (१) “त्वामद्य ऽकृष्टं ऽ आ-
र्षेयऽकृष्टीणान्नपादवृणीतायं यजमानः” यत्र त्ववसानं
शक्यते व्याप्तुं, तत्रावसान एव विरतिः कर्तव्या यथा ।

(२) इन्द्रो विश्वस्य राजति ॥

विप्रतिषेधऽ उत्तरम्बलवदलोपे ॥१५६॥

शास्त्रद्वयमन्यत्र चरितार्थमेकस्मिन्नर्थे सङ्गच्छते यत्र
स तुल्यबलविरोधो विप्रतिषेध उक्तः । तत्रोत्तरं शास्त्रं
बलवद्भवति लोपं वर्जयित्वा लोपे तु यतो लोपस्तदेव
शास्त्रं बलवद्भवति यथा “स्वरितवान्त्स्वरित” इत्यस्याव-
काशः । अनुदात्तस्वरितसन्धौ स्वरितो भवति यथा (३)
स्वाहा अवक्रन्दाय । स्वाहाऽवक्रन्दाय, तथा च वक्ष्यति
उदात्तवानुदात्तः । अस्यावकाशः । उदात्तानुदात्तस-
न्धौ उदात्तो भवति । यथा । (४) सुच्छा च असि । सु-
च्छा चासि । स्वरितोदात्तसन्धौ परत्वादुदात्त एव भ-
वति । (५) यथा सुप्वा इति । सुप्वेति, (६) रात्र्या इन्द्र-

(१) २१ । ६१ ॥

(२) ३६ । ८ ॥

(३) २२ । ७ ॥

(४) १ । ७७ ॥

(५) १ । ३ ॥

(६) ३ । १० ॥

वत्या । रा॒ज्येन्द्र॑वत्या, अलोप इति किम् । स्य एष चेत्यनेन शास्त्रेण स्यशब्दस्य विसर्जनीयो व्यञ्जने परतो लुप्यते । यथा । (१) ए॒षः^१ । स्यः^२ । ब्रा॒जो, एतच्च पूर्वं शास्त्रम् । अतोऽन्यद्भवति । रेफे लुप्यते दीर्घञ्चोपधेत्यनेन शास्त्रेण रेफे परभूते लुप्यते विसर्जनीय उपधा च दीर्घमापद्यते । एतच्च परं शास्त्रम् ततो लोपस्य बलीयस्त्वाल्लोप एव भवति नोपधादीर्घत्वम् । यथा (२) ए॒षः^३ । स्यः^४ । रा॒ज्यः^५ । ए॒षस्य रा॒ज्यो वृषा^६, (३) ए॒षः^७ । क्कागः^८ । ए॒षक्कागः^९ । विसर्जनीयलोपः चक्षयोः शमिति न शकारः ॥

विसर्जनीयो रिफितः ॥ ॥ १६० ॥

इत उत्तरमकारोपध आकारोपधश्च विसर्जनीयो रिफितसञ्ज्ञो भवति । वक्ष्यति करमनुदात्तम् । यथा । (४) अ॒च्छि॒द्रा गा॒त्रा॒ण्य॒सिना॒ मिथू॑ कः । सञ्ज्ञाकरणे प्रयोजनम् । भाव्युपधश्च रिद्विसर्जनीय इति । क॒रिति॑ कः ॥

करमनुदात्तम् ॥ १६१ ॥

(१) ९ । १४ ॥

(२) २३ । १३ ॥

(३) २५ । २६ ॥

(४) २५ । ४१ ॥

करित्येतत्पदमनुदात्तं चेद्विफ्रितसञ्ज्ञं भवति । अधि-
कारसूत्रमेतत् । यथा (१) महि^१पार्थः- पूर्य^२ठं सध्य-
क्ताः । अनुदात्तमिति किम् । (२) कोऽ^३ अस्य वेद^४ सु-
वनस्य^५ नाभिम् ॥

अन्तरनाद्युदात्तम् ॥ १६२ ॥

अन्तरित्येतत्पदं रिफ्रितसञ्ज्ञं भवति आद्युदात्तं चे-
न्न भवति । अन्तरित्यन्तः^१ (३) । अन्तस्ते द्यावा^२र्थाधि^३वी ।
अनाद्युदात्तमिति किम् (४) । समुद्रश्च मध्यं चान्तश्च,
(५) इयं वेदिः^४ परोऽ^५ अन्तः ॥

अहरभकारपरम् ॥ १६३ ॥

अहरित्येतत्पदं रिफ्रितसञ्ज्ञं भवति भकारपरं^१ (६)
चेन्न भवति । यथा । (७) प्रवयान्हा^२र्ज्जिन्वा (८) ।
अहर^३हरित्यह^४ । अहः । अहर^५हरप्रयावम् । अभका-

(१) ३३ । ५२ ॥

(२) २३ । ५२ ॥

(३) ७ । ५ ॥

(४) १७ । १ ॥

(५) २३ । ६२ ॥

(६) भकारपरो न चेदित्यपि पाठान्तरं 'ग' चिह्नितपुस्तके ॥

(७) १५ । ६ ॥

(८) ११ । ७५ ॥

रपरमिति किम् (१) तत्ते शुध्यतु शमहोभ्यः (२) । द्यु-
भिरहोभिरक्तुभिर्व्यक्तम् ॥

आवर्वरिति समानर्चि ॥ १६४ ॥

आवः । वः । इत्येते पदे रिफिते भवतः । उभे अथे-
कस्यान्यच्च यदि भवतः । यथा (३) । आवरित्यावः
व्वि सोमतः सुवचो व्वेनऽआवः । व्वरिति वः । सत-
श्चयोनिमसतश्च व्वि वः । समानर्चीति किम् (४) ।
आ वो देवास ऽईमहे, (५) नमो वः किरिकेभ्यः ।
(६) अस्मे वोऽअस्विन्द्रियम् ॥

स्तोत-र्वस्तः सनुत-रभा-र्वाद्वाः ॥ १६५ ॥

स्तोतः वस्तः सनुतः अभाः वाः द्वाः । एतानि पदा-
नि रिफितसञ्ज्ञकानि भवन्ति । यथा (७) एत ए स्तो-

(१) ६ । १५ ॥

(२) ३५ । २ ॥

(३) १३ । ३ ॥

(४) ४ । ५ ॥

(५) १६ । ४६ ॥

(६) ९ । २२ ॥

(७) २३ । ७ ॥

तरनेन, । (१) दोषावस्तर्हि या व्ययम् । (२) आराञ्चिद्व-
वेषः सनुतयुयोतु । (३) अग्निं स्वे योनावभारु-
खा । (४) इदमहन्तं वार्वीहिर्द्वा । (५) द्वार्यः स्वामम् ॥

स्वः पदमनरणे ॥ १६६ ॥

स्वरित्येतत्पदं रिफितसञ्ज्ञं भवति । अरणशब्दो
यदि परो न भवति यथा (६) स्वः न । स्वर्णं घर्म्मः ।
(७) स्वः अभि विक्रय्येषम् । स्वरभि विक्रय्येषम्, पदमि-
तिक्रिम्, पदावयवस्य रिफितसञ्ज्ञा माभूत् । (८) राज-
स्वः इति राजः । स्वः । सोमस्य दातमसि स्वाहा राज-
स्वः, अनरण इति किम् । (९) स्वायचारणाय च ? प-
दादिश्चाजित्पर इति वक्ष्यति तस्यायं पुरस्तादपवादः ॥

पदादिश्चाजित्परः ॥ १६७ ॥

(१) ३ । २२ ॥

(२) २० । ५२ ॥

(३) १२ । ६१ ॥

(४) ५ । ११ ॥

(५) ३० । १० ॥

(६) १८ । ५० ॥

(७) १ । ११ ॥

(८) १० । ६ ॥

(९) २६ । २ । सर्वेष्वपि पुस्तकेष्वेवमेव पाठः ॥

पदादिश्च यदि स्वशब्दो भवति तदा रिफ्तिस-
ञ्ज्ञो भवति जित्परश्चेन्न स्यात् “द्वौद्वौ प्रथमौ जित्” ।
“ऊष्माणश्च हवर्जः” जिदित्युक्तम् (१) स्वग्यायेति स्वः ।
ग्याय । स्वग्याय शक्त्या । पदादिरिति किम् (२) स्वा-
हा राजस्वः । अजित्परमिति किम् (३) स्वः सामिति
स्वः साम् । पदसंहितोदाहरणम् ॥

द्वाः सवितः पुनस्त्वष्टर्नेष्टरकर्होत-
र्मातः प्रातर्जामातरजीगः प्रणे-

तरिति च ॥ १६८ ॥

द्वाः सवितः पुनः त्वाष्टः नेष्टः अकः होतः मातः
प्रातः जामातः अजीगः प्रणेतः एतेषां पदानां विसर्ज-
नीयो रिफ्तिसञ्ज्ञो भवति । यथा (४) मा ह्वाम्ना
ते । (५) देव सवितरिति सवितः । (६) पुनर्म्मनः ।
(७) देव त्वाष्टर्भूरिति ते । (८) ग्रावो नेष्टः पिब,

(१) ११।२ ॥

(२) १०।६ ॥

(३) ३४।२० ॥

(४) १।२ ॥

(५) ९।१ ॥

(६) ४।१५ ॥

(७) ६।२० ॥

(८) २६।२१ ॥

(१) सरस्वति तमिह धातवेऽकः । (२) सोमर्ठो हो तर्ह्य-
ज । (३) यथिवि मातर्मा मा हि ठो सीः । (४) इ-
न्द्र प्रातर्जुषस्व नः । (५) त्वष्टुर्जामातरङ्गुत । (६)
आदिद्ग्रसिष्ठोऽओषधीरजीगः । (७) भग प्रणेत-
र्भग सत्यराधः ॥

वृद्धं वृद्धिः ॥ १६९ ॥

वृद्धमिदं शास्त्रमन्यानि शास्त्राण्यपेक्ष्य । शिक्षा-
विहितं व्याकरणविहितं चास्मिन् शास्त्रे उभयं यतः
प्रक्रियते । अत एव हेतोः शिष्याणामेतच्छास्त्रावि-
णां वृद्धिर्भवति ॥

इति कात्यायनकृतौ प्रातिशाख्य
सूत्रे प्रथमोऽध्यायः ॥

इत्यानन्दपुरवास्तव्यश्रीवज्रटसुतोवटकतौ प्राति-
शाख्यसूत्रभाष्ये प्रथमोऽध्यायः ॥

(१) ३० । ५ ॥

(२) २३ । ६४ ॥

(३) १० । २३ ॥

(४) २० । २९ ॥

(५) २७ । ३४ ॥

(६) २९ । १० ॥

(७) ३४ । ३६ ॥

सञ्ज्ञाः परिभाषाञ्च प्रथमाध्याये शास्त्रसंयवहारार्थमुक्ताः । इदानीं स्वरसंस्कारयोश्चंदसि नियम इति प्रतिज्ञातौ । स्वरसंस्कारावारभ्येते तत्र च प्रथमं स्वरः प्रतिज्ञात इत्यतः स्वर एव प्रथममारभ्यते ॥

स्वरितवर्जमेकोदात्तं पदम् ॥ १ ॥

एकं स्वरितं प्रथमं वर्जयित्वा एकोदात्तं पदमभवति सर्वस्मिन्नेव पदे एकमक्षरं स्वरितमुदात्तं च भवति । अन्यान्यक्षराण्यनुदात्तानीति सूत्रार्थः । तत्र स्वरितस्य चत्वारो भेदा भवन्ति तद्यथा । आदिस्वरित-मध्यस्वरितान्तस्वरितसर्वस्वरितानि पदानि भवन्ति । आदिस्वरितम् । यथा (१) व्यु॒प्त॑केशायेति व्यु॒प्त॑ । केशाय । मध्यस्वरितं यथा (२) म॒नु॒ष्या॒णाम् । स्व॒ग॒र्या॒य । अन्तस्वरितं यथा (३) वै॒ष्ण॒व्यौ, (४) धा॒न्यम् । सर्वस्वरितं यथा (५) स्वः । उदात्तस्य चत्वारो भेदा भवन्ति तद्यथा । आद्युदात्तमध्योदात्तान्तोदात्तसर्वोदात्तानि पदानि भवन्ति । आद्युदात्तम् । यथा (६) अ॒श्वः, (७)

(१) १६ । २९ । अयमङ्कः पदपाठादवगन्तव्यः ॥

(२) ६ । ६ ॥

(३) १ । १२ ॥

(४) १ । २० ॥

(५) ३ । ५ ॥

(६) २४ । १ ॥

(७) ४ । ६ ॥

स्वाहा । मध्योदात्तं यथा (१) त्रितायं द्वितायं । अ-
नोदात्तं यथा (२) इषे ऊर्जे रथ्यै । सर्वोदात्तं यथा
(३) प्र तत् । एता अष्टौ पदभक्तयोऽनेन सूत्रेणोक्ताः
आद्युदात्तच्युदात्तसर्वोदात्तानि वक्ष्यति । एवमेता ए-
कादशपदभक्तयो भवन्ति सर्ववेदेषु ॥

अनुदात्तम् ॥ २ ॥

स्वरितादक्षरादुदात्ताद्वा यदवशिष्टं तदनुदात्तं
भवति । उक्तान्येवोदाहरणानि । अधिकारार्थमेतत् ॥

नौ नौ मे मदर्थे त्रिद्व्येकेषु ॥ ३ ॥

अनुदात्तमित्यनुवर्त्तते नः नौ मे । एतानि मदर्थे
वर्त्तमानानि अस्मदर्थं यदि ब्रुवन्ति । वज्रवचन-
द्विवचनैकवचनाभिधायकानि च यदि भवन्ति यथा-
सङ्ख्यं वर्त्तमानानि अनुदात्तानि भवन्ति । नः यथा,
(४) शन्नं ऽइन्द्राग्नी, (५) स्वस्ति न ऽइन्द्रः । नौ यथा
(६) अस्थुरि णौ गार्हपत्यानि सन्तु, मे यथा (७) इमा-

(१) १ । २३ ॥

(२) १४ । २२ ॥

(३) ५ । २० ॥

(४) ३६ । ११ ॥

(५) २५ । १९ ॥

(६) २ । २७ ॥

(७) १७ । २ ॥

मेऽ अ॒न ऽइ॒ष्टका धे॒नवः॑- । (१) इ॒मस् मे॑ व्व॒रुण॑ (२) ॥

मा च ॥ ४ ॥

मा इत्येतच्च पदमनुदात्तं भवति । अस्मदर्थे चेद्वर्त्तते । यथा (३) आ मा॑ गन्ता॒भ्यितरा॑ मा॒तरा च । म॒दर्थ इति॑ किम् (४) मापो म॑ौषधी॒र्हिर्ठि॑सीः ॥

वो वान्ते त्वदर्थे ॥ ५ ॥

वः वाम् ते एतानि पदानि युष्मदर्थे वर्त्तमानानि वज्रवचनद्विवचनैकवचनेषु यथासङ्ख्यं वर्त्तमानानि अनुदात्तानि भवन्ति, वः । यथा (५) तँ॒व्वो॑ द॒स्मम् । (६) आ वो॑ दे॒वासऽ ई॒महे॑ । वां यथा (७) अ॒यँ॒व्वं॑ मि॒त्राव॑रुणा सु॒तः॑ । (८) या वां क॒शा मधु॑मती, ते

(१) २१ । १ ॥

(२) पदपूर्वाणीति द्रष्टव्यम् । त्रिद्व्यकेष्विति । स्पष्टार्थम् । मदर्थ इत्युत्तरार्थम् । सन्देहे साहचर्यत्रियामकमिति सर्वादेशस्यैव ग्रहणम् । तेन मे इत्यादेशाविशिष्टस्य न यथा ४ । २२ । रायो मे ॥

(३) ९ । १९ ॥

(४) ६ । २२ ॥

(५) २६ । ११ ॥

(६) ४ । ५ ॥

(७) ७ । ९ ॥

(८) ७ । ११ ॥

यथा (१) एष ते रुद्र भागः । (२) अयं ते योनिः-
(३) ॥

त्वा च ॥ ६ ॥

त्वा इत्येतच्च पदं युष्मदर्थे वर्त्तमानमनुदात्तं भवति ।
यथा (४) मा त्वाग्निर्द्विनयीद्भूमगन्धिः । (५) तन्वा
शोचिष्ठ दीदिवः । नो नौ म इति यथाश्रुतेन सिद्धे
यन्मदर्थ इति लिङ्गेकेष्विति च वदति तच्छिष्यव्युत्पाद-
नार्थम् । मा इत्येतस्य तु पदस्य मदर्थ इति विशेषणं
कर्तव्यम् । प्रतिषेधार्थीयस्यापि सम्भवात् । वो वां ते
त्वा एतेषां च पदानां त्वदर्थ इति विशेषणं शिष्यव्यु-
त्पादनार्थमेव अन्यार्थस्याव्यभिचारात् ॥

पूर्ववाननुदेशः ॥ ७ ॥

पूर्वैः पदैः प्रज्ञापितस्यार्थस्य यत्पश्चात् । अस्मै एषां
अस्मिन्नित्यादि सर्वनामपदं तस्यैवार्थस्याभिधायक-
म्भवति तदनुदेशशब्देनोच्यते (६) । तदनुदात्तम्भव-

(१) ३ । ५७ ॥

(२) ३ । १३ ॥

(३) त्वदर्थे किम् । ९ । १७ । ते नो ऽअव्वन्तः ॥

(४) २५ । ३७ ॥

(५) ३ । २६ ॥

(६) पूर्वोऽस्यास्तीति पूर्ववान् । अनुदिश्यते अनेनेत्यनुदेशः । पूर्वमुद्दिष्टस्यार्थस्य
पुनर्निर्देशकः शब्दः ॥

ति अस्मै यथा (१) भरन्तोऽश्वायेव तिष्ठते घासमस्मै ।
 एषां यथा (२) इहेहैषां कृणुहि भोजनानि । अस्मिन्
 यथा (३) अस्मिन्नुद्या जुहोतन । पूर्ववानिति किम्,
 (४) सोमः- पवते सोमः- पवतेऽस्मै ब्रह्मणे । (५) आ-
 सां प्रजानामेषाम्यशूनाम् ॥

असि ॥ ८ ॥

असीत्येतत्पदमनुदात्तं भवति (६) कृष्णोऽस्याख-
 रेष्ठः, वेदिरसि बर्हिषि । आख्यातमसि शब्दस्तस्य
 वक्ष्यमाणोऽनुदात्तस्वरः प्राप्त एव इह यद्गृह्यं तदा-
 ख्यातप्रदानभिन्नस्यापि ज्ञानार्थम् ॥

यथा गृभो भुवोऽग्निभ्यः ॥ ९ ॥

यथा शब्दो गृभो भुवोऽग्निशब्देभ्यः परोऽनुदात्तो
 भवति । गृभः, यथा (७) पुरा जीव गृभो यथा । भुवः,

(१) ११ । ७४ ॥

(२) १० । ३२ ॥

(३) ३ । १ ॥

(४) ७ । २१ ॥

(५) १६ । ४७ ॥

(६) २ । १ ॥

(७) १२ । ८५ । त्रिदशेकेष्विति इह पूर्वर्त० श्रुतमित्यतः प्रागनुवर्त्तते ॥

यथा (१) सत्यस्याक्षिभुवो यथा । अग्निर्यथा (२) भ्रा-
जन्तोऽअग्नयो यथा । एतेभ्यः किम् (३) यथा नो व-
स्यसस्करत् ॥

गिर्व्वणः ॥ १० ॥

गिर्व्वण इत्येतत्पदमनुदात्तं भवति । (४) परि त्वा
गिर्व्वणो गिरः । एतच्चामन्वितत्वादेवानुदात्तं प्राप्तं य-
त्पुनरुच्यते तदामन्वितानभिन्नस्यापि प्रत्ययार्थम् ॥

अग्ने घृतेनेति च ॥ ११ ॥

अग्ने पूर्वं घृतेनेत्येतत्पदमनुदात्तं भवति । यथा (५)
अग्ने घृतेनाज्जत । अग्ने पूर्वमिति किम् । (६) अङ्गि-
रो घृतेन वर्द्धयामसि ॥

प्रचिकितश्च ॥ १२ ॥

प्रपूर्वं चिकित इत्येतत्पदमनुदात्तं भवति । यथा (७)

(१) २३ । २९ ॥

(२) ८ । ४० । असि क्षिवा सुषदेत्यादिषूत्रविहितवर्ज्यम् । अनुदात्तमाख्यातमा-
मन्त्रितवादित्यस्यैवायं प्रपञ्चः ॥

(३) ३ । ५८ ॥

(४) ५ । २९ ॥

(५) १७ । ५० ॥

(६) ३ । ३ ।

(७) १९ । ५२ । ननु पदपूर्वमामन्वितमनानार्थेऽपादादावित्युक्तत्वाच्च वाच्यमेत-

त्व० सोम प्रचिकितो मनीषा । प्रपूर्वमिति किम् ।
अन्यप्रदपूर्वमनुदात्तं न भवति । एतदप्यामन्वितत्वा-
देवानुदात्तं मन्द्बोप्रतिपत्त्यर्थमुच्यते ॥

एनोऽपापे ॥ १३ ॥

एन इत्येतत्पदमपापे वाच्येऽनुदात्तं भवति । अव-
शिष्टं चैतत्प्रातिपदिकमात्रं सर्वलिङ्गं गृह्यते पुल्लिङ्गं
भवति यथा (१) उदेनमुत्तरान्नय, स्त्रीलिङ्गं भवति
यथा (२) मैनान्तपसा मार्चिषाऽभि शोचीः, (३) नपुं-
सके भवति यथा । (४) मातेव पुत्रं विभ्रतास्तेनत् ।

दिति चेत् । श्रुतौ । इन्द्रोणेर्वा विशो गिर्वणाः । क्षत्रमेवैतद्विभाषा परिवृणोति । तादिदं
विशा परिवृतमिति काण्वपाठात् । माध्यन्दिनपाठे तु विशो गिर इति । गिर्वणशब्देन
व्यत्ययेन प्रथमावहुवचनस्थाने द्वितीयावहुवचनमिवाभाति । सान्तस्य प्रथमैकवचनं
सम्बुद्ध्यन्तं च । सन्देहे सम्बुद्ध्यन्तमेवेदम् । यतः परित्वेति मन्त्रस्य सदःकरणे
विनियुक्तत्वात् । इन्द्रसद इत्यभिधानाद्इन्द्रो गिर्वण इति सम्बोद्ध्यते । प्रमन्महे श-
वसानाय शूषमाङ्गूषं गिर्वणसे अङ्गिरस्वदितीन्द्रवाचकस्य गिर्वणशब्दस्य दर्शनात् ।
हे गिर्वण इन्द्र । इन्द्रो गिर्वेति श्रुतेः । इमा गिरः ऋग्यजुःसामलक्षणा वाचः विशो
मरुतः त्वा परिभवन्तु स्तोतुं परिगृह्णन्तु सेवितुं वा विश्वतः सर्वतः परिभवन्तु कीदृ-
शा अनुवृद्ध्यः इन्द्रमनुवृद्धिर्येषामित्यनुवृद्ध्यः कीदृशं त्वा वृद्धायुं वृद्धश्वासावायुश्चेति
आयुर्मनुष्यः महापुरुष इत्यर्थः । मनुष्यादिव्यवहारार्थं गिरः सम्भवा इति श्रुतितात्प-
र्येण अत्रमेवैतद्विशा परिवृणोति तादिदं क्षत्रं विशा परिवृतमित्युक्तम् ॥

(१) १७ । ५० ॥

(२) १२ । १५ ॥

(३) नपुंसकमिति 'ष' पुस्तकपाठान्तरम् ॥

(४) १२ । ३५ ॥

अपाप इति किम् । (१) देवकृतस्यैनसोऽवयजनमसि,
(२) यदेनश्चकृमा व्ययम् ॥ (३)

इह पूर्व्वर्ठ० श्रुतम् ॥ १४ ॥

इह पूर्वं श्रुतमित्येतदनुदात्तम्भवति । यथा (४) म-
मेदिह श्रुतर्ठ० हवम् । इह पूर्व्वमिति किम् । (५) श्रु-
तस्मै मित्रावरुणा हवेमा । एतद्व्याख्यातत्वादनुदात्तं
मन्द्भीप्रतिपत्त्यर्थमुच्यते ॥

मन्ये पदपूर्व्वर्ठ० सर्वत्र ॥ १५ ॥

मन्ये इत्येतत्पदं पदपूर्वं अनुदात्तं भवति सर्वत्र (६)
यथा (७) अग्निर्ठ० होतारं मन्ये दास्वन्तम् । आ-
ख्यातत्वादाख्यातवद्यद्योगादिभिः स्वरविकारो यः

(१) ८ । १३ ॥

(२) ३ । ४५ ॥

(३) द्वितीयाटौस्त्वेन इति वच्छब्दमात्रस्यानुकरणं लिङ्गाद्यविवक्षया तेन सर्वलि-
ङ्गं सर्ववचनं च गृह्यते अनुदेशवाचीत्यर्थः ॥

(४) ७ । ९ । श्रुतमिति कृदन्तादित्यपि सम्भवात् एतस्य आख्यातत्वादनुदात्त-
माख्यातमित्यनेनानुदात्तत्वे सिद्धे विधानं ज्ञापकम् । श्रुवातोसाख्यातस्य नानुदात्तत्व-
म् । तेन ववरुण, श्रुधी, हवमित्यस्य न निषातः ॥

(५) ७ । ९ ॥

(६) सर्वत्रेति यद्वृत्तोपपदाच्चेति निषेधवाधनार्थम् । १५ । ४१ । तस्मै यः ॥

(७) १५ । ४७ ॥

प्राप्तः सोऽनेन सर्वत्र ग्रहणेन निषिद्धते अपदपूर्वस्य
स्थाप्यते ॥

वा च कमु चित्समस्माद् घ ह स्म
त्व ईम्मर्या अरे स्विन्निपाताथे-
त् ॥ १६ ॥

वा च कम् उचित् । समस्मात् । घ । ह । स्म । त्व
ईम् । मर्याः । अरे । स्वित् । एतानि पदानि अनु-
दात्तानि भवन्ति यदि निपातानि भवन्ति । असत्त्ववच-
नानि भवन्तीत्यर्थः । वा यथा । (१) व्वातो वा मनो
वा । च यथा (२) अग्निश्च पृथिवी च सन्तते । कं य-
था । (३) इमानु कं भुवना सीषधाम, उ यथा (४)
यऽ उ संभूत्या रताः, । चिद्यथा । (५) उतापवक्ता
हृदया विधञ्चित्, । समस्माद्यथा । (६) उरुष्या णोऽ
अवायतः समस्मात्, घ (७) यथा । आ वा येऽ अग्निमि-

(१) ९ । ७ ॥

(२) २६ । १ ॥

(३) २५ । ४६ ॥

(४) ४० । ९ ॥

(५) ८ । २३ ॥

(६) ३ । २६ ॥

(७) ७ । ३२ ॥

न्धते । ह यथा (१) दधे ह गर्भं त्वयम् । स्म यथा ।
 (२) अस्ति हि आ ते शुष्मिन्नवयाः, त्वो यथा ।
 (३) पीयति त्वोऽनु त्वो गृणाति, ईम् यथा । (४)
 का ईमरे पिशङ्गिला । मर्याः यथा । (५) आविर्भ-
 योऽ आवित्तोऽअग्निर्गृहपतिः । अरे यथा । (६)
 अजारे पिशङ्गिला । सिद्यथा । (७) अधः सिदासी-
 शदुपरि सिदासीश्त् । निपाता इति किम् । (८) चि-
 दसि मनासि (९) ॥

पदपूर्वमामन्त्रितमनानार्थे

पादादौ ॥ १७ ॥

पदपूर्वमामन्त्रितं यत् पदं तदनुदात्तं भवति । यदि
 तन्नानाभूतस्यार्थस्याभिधायकन्न भवति । यदि तत्

(१) २३ । ६३ ॥

(२) ३ । ४६ ॥

(३) १२ । ४२ ॥

(४) २३ । ५५ ॥

(५) १० । ९ ॥

(६) २३ । ५७ ॥

(७) ३३ । ७४ ॥

(८) ४ । १९ ॥

(९) निपाता आशुदाना इत्येतत्सूत्रबाधनार्थमिदं सूत्रमुक्तम् ॥

द्विवचनवज्जवचनेनारभ्यत इत्यर्थः । (१) यदि च पा-
दादौ न भवति पदपूर्वं भवति यथा । (२) त्वमग्ने व्रत-
पाऽअसि । (३) व्यर्थं सोमं व्रते तव । अनानार्थ इ-
ति किम् । (४) मिच्छस्ये मा चक्षुषेक्षदध्वमग्नयः, (५)
आदित्यानां पत्वान्विहि देवाः । अपादादाविति
किम् । (६) या वां कशा मधुमत्यश्विना । (७) सठं-
समिद्युवसेष्टपन्नग्ने ॥

तेनानन्तरा षष्ठ्येकपदवत् ॥ १८ ॥

तेनामन्वितेनाव्यवहिता षष्ठ्येकपदवद् भवति ।
आनन्तर्यं चेह देऽकृतमर्थकृतं च गृह्यते । देशकृतं
पुरस्तादुपरिष्ठाद्वा षष्ठ्यन्तं पदमामन्वितस्य । अर्थकृ-
तमेकार्थीभावः । एतदुक्तं भवति । यदि तत्षष्ठ्यन्तमा-
मन्वितस्य विशेषणं भवति । अथैकपदवत्स्वरो भवति ।
एतदुक्तं भवति यदि षष्ठ्यन्तं वाक्यादौ पादादौ वा न
भवति पदपूर्वं भवति अथ तदप्यनुदात्तं भवति । अ-

(१) यदि तत्प्रभृत्यन्यद्वाक्यज्ञारभ्यत्य इत्यर्थः इति 'ग' पुस्तकपाठः ॥

(२) ४ । १६ ॥

(३) ३ । ५६ ॥

(४) ५ । ३४ ॥

(५) २२ । १२ ॥

(६) ७ । ११ । पादमहणादृक्षेव । यजुषु वाक्यादिर्ज्ञेयः ॥

(७) १५ । ३० ॥

तोऽन्यथात्वे आद्युदात्तं भवति । यथा (१) । अपान्नपा-
त् । देवीरापोऽअपान्नपात् । ऋषीणान्नपात् यथा ।
(२) ऋषीणान्नपाददृणीत । (३) विश्वासां सुवां पते,
(४) उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्यते । अनन्तरेति किं । (५) ब्रह्म-
णस्यते त्वमस्येत्यत्र एकपदवदिति च वदिति “व्युपदे-
शादन्यत्राद्युदात्तत्वं षष्ठ्या (६) भवति यथा । (७) ज-
ज्जो नपाज्जातवेद इत्यत्र जक् शब्दस्य षष्ठ्यन्तस्य तेना-
नन्तरा षष्ठ्येकपदवदित्यनेन सूत्रेणामन्वितस्थानन्तरा
षष्ठ्येकपदवत्स्वरं लभते इत्येतदुक्तं भवति ॥ अधुनाऽऽ-
मन्वितेन सह षष्ठ्या यत्रैकार्थीभावो न भवति तत्प्र-
त्युदाहरणभूतं सूत्रं शिष्यभ्रान्तिव्युदासार्थं स्वयमेव
सूत्रकारः पठति ॥

न पृथिवि देवयजन्योषध्या देव भूरेः
पवित्रपते पवित्रपूतस्यापान्नपान्-
णान्नपते सोमाग्नेः सोमेन्द्रस्य सोम

(१) ६ । २७ ॥

(२) २१ । ६१ ॥

(३) ३७ । १८ ॥

(४) ३४ । ५६ ॥

(५) ३४ । ५८ ॥

(६) वत्युपदेशादाद्युदात्तत्वं षष्ठ्यन्तस्य इति ‘व’ पुस्तकपाठः ॥

(७) १२ । १०८ ॥

सुवीर्य्यस्य सोम विश्वेषां देवानां
प्रजापते यस्य यस्य देवाग्ने तवाग्ने
व्वाजस्याग्ने व्वरुणस्यापो ऽअस्मा-
कम् ॥ १९ ॥

ए॒धि॒वि दे॒वय॒जन्योष॑ध्याः, दे॒व भू॒रेः । प॒वि॒त्र॒प॒ते
प॒वि॒त्र॒पू॒तस्य॑ । अ॒पां न॒पात् । नृ॒णां नृ॒प॒ते । सो॒माग्नेः॑ ।
सोमेन्द्र॑स्य । सोम सु॒वीर्य्य॑स्य, सोम विश्व॑ेषां दे॒वा-
नाम् । प्र॒जा॒प॒ते यस्य॑, यस्य॑ दे॒व । अ॒ग्ने तव॑ । अ॒ग्ने
व्वा॒ज॒स्य । अ॒ग्ने व्व॒रु॒णस्य॑ । आ॒पो ऽ अ॒स्माक॑म् । एते-
षामा॑मन्वितानां याऽनन्तरा ष॑ष्ठी साऽने॒का॒र्थीभा॒वा-
नैक॑पदवत्स्वरंल्लभते । यथा (१) ए॒धि॒वि दे॒वय॒जनी ।
ए॒धि॒वि दे॒वय॒जन्योष॑ध्यास्ते । दे॒व भू॒रेर्य॑था । (२) व्वा-
मस्य॑ हि क्ष॒यस्य॑ दे॒व भू॒रेः । प॒वि॒त्र॒प॒ते प॒वि॒त्र॒पू॒तस्य॑
यथा । (३) तस्य॑ ते प॒वि॒त्र॒प॒ते प॒वि॒त्र॒पू॒तस्य॑ । अ॒पान्न-
पा॒द्यथा । (४) अ॒पान्न॒पा॒त्प्रति॑र॒क्षन्नु॒र्थम् । नृ॒णानृ॒-

(१) १ । २५ ॥

(२) ८ । ६ ॥

(३) ४ । ४ ॥

(४) ८ । २४ ॥

पते॑ यथा । (१) त्व॒न्न॒णान् प॑ते जा॒यसे॒ शुचि॑ः, सोमा॒ग्नेर्य॑था । (२) उ॒शिक् त्वं दे॑व सोमा॒ग्नेः । सोमेन्द्र॒स्य यथा॑ । (३) व॒शी त्वं दे॑व सोमेन्द्र॒स्य । सोम सुवी॒र्यस्य॑ यथा । (४) अ॒च्छिन्न॑स्य ते दे॒व सोम सुवी॒र्यस्य॑ । सोम॒ विश्वे॑षां दे॒वानां॑ यथा । (५) अ॒स्मात्स॒खा त्वं दे॑व सोम॒ विश्वे॑षां दे॒वानां॑ । प्रजा॑पते॒ यस्य॑ यथा । (६) स नो॑ भुवनस्य॒ पते॑ पृ॒जाप॑ते॒ यस्य॑ । यस्य॑ यथा, (७) यस्य॑ दे॒व दधि॑षे पूर्वे॒पेयम् । अ॒ग्ने तव॑ यथा । (८) अ॒ग्ने तव॑ अ॒श्वो व्य॑ः । अ॒ग्ने वाज॑स्य॒ यथा॑ । (९) अ॒ग्ने वाज॑स्य॒ गोम॑तः । अ॒ग्ने व॒रुण॑स्य॒ यथा॑ । (१०) त्व॒न्नोऽ अ॒ग्ने व॒रुण॑स्य॒ वि॒द्वान् । आ॒पोऽ अ॒स्माकं॑ यथा । (११) आ॒पोऽ अ॒स्माक॑म॒न्तरु॑दरे॒ सुशे॑वाः । ए॒वमादी॑-

(१) ११ । २७ ॥

(२) ८ । ५० ॥

(३) ८ । ५० ॥

(४) ७ । १४ ॥

(५) ८ । ५० ॥

(६) १८ । ४४ ॥

(७) ७ । ७ ॥

(८) १२ । १०६ ॥

(९) १५ । ३५ ॥

(१०) २१ । ३ ॥

(११) ४ । १२ ॥

न्यन्यान्यपि प्रत्युदाहरणानि द्रष्टव्यानि, यथा । (१) य-
स्यौषधीः प्रसर्प्यथ ॥

सुमङ्गल सत्यराजन्विकिरिद्र विलो-
हित दरिद्र नीललोहित श्रेयस्कर भू-
यस्कराम्बे ऽअम्बिके ऽम्बालिके शर-
व्ये ब्रह्म सठंशिते मरुतो ऽअश्वि-
ना यव्ये गव्ये द्यावापृथिवी ऽउरो
ऽअग्ना ऽइ पत्नीवँल्लाजीश्छाचीश्-
न्मीदुष्टम शिवतम सहस्राक्ष शतेषुधे
व्वसुपते व्वसुदावन् ॥ २० ॥

सुमङ्गल सत्यराजन् । विकिरिद्र विलोहित । द-
रिद्र नीललोहित, श्रेयस्कर, भूयस्कर । अम्बे ऽअम्बि-
के ऽम्बालिके । शरव्ये ब्रह्म सठंशिते । मरुतो ऽ अ-
श्विना । यव्ये गव्ये । द्यावापृथिवी ऽ उरो । अग्ना इह
पत्नीवन् । लाजीश्न् । शाचीश्न् । मीदुष्टम शिवत-
म । सहस्राक्ष शतेषुधे, व्वसुपते व्वसुदावन् । एता-

न्यामन्वितानि, नानुदात्तानि (१) भवन्ति । पदपूर्व-
मित्यस्यापवादः । सुमङ्गल सत्यराजन्यथा (२) सुहोक्
सुमङ्गल सत्यराजन् । विकिरिद्र विलोहित यथा । (३)
विकिरिद्र विलोहित नमस्ते । दरिद्र नीललोहित य-
था । (४) अन्वसरम्पते दरिद्र नीललोहित । अत्र सुम-
ङ्गलविकिरिद्रशब्दस्य पादादित्वादाद्युदात्तत्वं सिद्धमेव
इति तद्विशेषणार्थं द्वितीयपदस्योच्यते । एवं सर्वत्रैत-
ज्जातीयकेषु द्विपदैषु प्रयोजनं द्रष्टव्यम् । श्वेत्स्वर
भूयस्वर यथा । (५) वज्रकार श्वेत्स्वर भूयस्वर । अ-
म्बेऽ अम्बिके यथा । (६) अम्बेऽ अम्बिकेस्वालिके न मा
नयति कश्चन, शरव्ये ब्रह्म सठंशिते यथा । (७) परा
पत शरव्ये ब्रह्म सठंशिते । मरुतोऽअश्विना यथा ।
(८) इता मरुतोऽअश्विना । यव्ये गव्ये यथा । (९) यू-

(१) आद्युदात्तानि भवन्तीत्यर्थः । पादादेराद्युदात्तत्वे सिद्धे उत्तरार्थयोगकरणम् ।
प्राणिनिनाऽपि उक्तमात्मन्वितं पूर्वमविद्यमानवदिति प्रतिपादितम् ॥

(२) २० । ४ ॥

(३) १६ । ५२ ॥

(४) १६ । ४७ ॥

(५) १० । २० ॥

(६) २३ । १० ॥

(७) १७ । ४५ ॥

(८) ३३ । ४७ ॥

(९) २३ । ८ । एतानि निपान्त्यन्ते समूहार्थं । यवमयः समूह उक्तो धानाः स-
र्वमावृत्त्याहुतस्य शेषस्याश्राय प्रदाने विनियुक्तं निपातनत्वादाद्युदात्तत्वम् ॥

व्ये गव्यः एतदन्नमत्तदेवाः, द्यावाष्टयिवीऽउरो यथा ।

(१) द्यावाष्टयिवीऽउरोऽअन्तरिक्ष । अग्नाऽ३ इ पत्नीवन्यथा । (२) अग्नाऽ३ इ पत्नीवन्सूः । लाजी-
३न् शाची३न् यथा । (३) भूर्भुवः स्वर्गाजी ३ ऋचाची-
३न् । मीदुष्टम शिवतम यथा । (४) मीदुष्टम शिव-
तम शिवो नः । सहस्राक्ष शतेषुधे यथा । (५) धनु-
षट्ठै० सहस्राक्ष शतेषुधे । वसुपते वसुदावन्यथा ।
(६) मघवा वसुपते वसुदावन् ॥

इडोत्तराणि नव स्वानोत्तराणि ष-
डग्न्युत्तराणि चत्वारि भगोत्तराणि
चेन्द्रोत्तरमेकठं० सिनीवात्युत्तरञ्च-
प्रजापतये ब्रह्मन्निति च ॥ २१ ॥

(१) ४ । ७ ॥

(२) ८ । १० । सर्वमग्ना ३ इ लाजी ३ ऋचाजी ३ नितिसर्वोदात्तस्य सुतस्य च
वक्ष्यमाणत्वात् । अग्ना ३ इ पत्नीवन्निति आमन्त्रितत्वाद्वा पाठः । आमन्त्रिते छन्दसि
सुतविकारोऽयं वक्तव्य इति वाचिकेन एचोऽप्रगृह्याऽदूराद्धूते पूर्वस्यार्द्धस्याऽऽदुत्तर-
स्येदुतौ । इत्यनेन पाणिन्युक्तसूत्रेण च अग्ना ३ इ इत्यस्य पदस्य सिद्धिः ॥

(३) २३ । ८ ॥

(४) १६ । ५१ ॥

(५) १६ । १३ ॥

(६) १२ । ४३ ॥

इडोत्तराणि नवामन्वितानि पदान्याद्युदात्तानि भवन्ति । यथा । (१) इडे, रन्ते । हव्ये, काव्ये । चन्द्रे, ज्योते । अदिति । सरस्वति । महि । विप्रश्रुति । खानोत्तराणि षडामन्वितानि पदान्याद्युदात्तानि भवन्ति । यथा । (२) खान । भाज । अङ्गारे । बम्भारे । हस्त । सुहस्त । कृशानो । अग्न्युत्तराणि चत्वार्यमन्वितानि पदान्याद्युदात्तानि भवन्ति । यथा (३) अग्ने । इन्द्र । वरुण । मित्र । देवाः, भगोत्तराणि च । चशब्दाच्चत्वार्यमन्वितान्याद्युदात्तानि भवन्ति । यथा । (४) भग । प्रणेतः । भग सत्यराधः । भग । इन्द्रोत्तरमेकं पदमाद्युदात्तं भवति यथा (५) इन्द्र । गोमन् । सिनीवात्युत्तरञ्च । च शब्दादेकममन्वितमाद्युदात्तं भवति । यथा (६) सिनीवालि पृथुष्टुके । प्रजापतये ब्रह्मन्निति च । अत्र ब्रह्मन्नित्यामन्वितमाद्युदात्तं भवति । यथा (७) प्रजापतये ब्रह्म-

(१) ८ । ४३ । कारावानां तु हव्योत्तराणीति ज्ञेयम् ॥

(२) ४ । २७ ॥

(३) ३३ । ४८ ॥

(४) ३४ । ३६ ॥

(५) २६ । ४ ॥

(६) ३४ । १० ॥

(७) २२ । ४ । एकं सिनीवात्युत्तरमित्येकशब्देऽनुवर्त्तमानेऽपि पुनरेकशब्दग्रहः

नम्रम् ॥

भूतिराद्युदात्तम् ॥ २२ ॥

अनुदात्ताधिकारो निवृत्तः । इत उत्तरमाद्युदात्ताधिकारः प्रवृत्तः, भूतिरित्येतत्पदमाद्युदात्तं भवति यथा (१) । भूत्यै जागरणम् । (२) नमो भूत्यै येदम् । भूतिरिति किम् । (३) भूतं च (४) मे भविष्यच्च मे ॥

कदा न रिष्येम पूर्वम् ॥ २३ ॥

कदेत्येतत्पदमाद्युदात्तं भवति । न रिष्येम पूर्वं चेद्भवति यथा (५) । न रिष्येम कदा चन । न रिष्येम पूर्वमिति किम् (६) । कदा चन स्तरीरसि ॥

आमन्त्रितञ्च ॥ २४ ॥

णेन ज्ञापयत्याब्रह्मन्निति क्वचिदेकशब्दो न पठ्यते तदा आब्रह्मन्निति ब्रह्मशब्दः सप्तम्यन्तो “निशब्दो बहुलः” मिति सूत्रकृदुक्तेः । आ राष्ट्रे राजन्य इत्युत्तरवाक्यनिदर्शनात् । “ब्राह्मणऽ एव ब्रह्मवर्चसन्दधाति योषित्येव रूपं दधाति” ब्राह्मणे इत्युक्तेश्च । इतरथा एतद् ब्रह्मन्निति वत्स्यात् ॥

(१) ३० । १७ ॥

(२) १२ । ६५ ॥

(३) १८ । ११ ॥

(४) भूतिरिति प्रथमानिर्देशात्सार्वाविभाक्तिको निर्देशः ॥

(५) ३४ । ४१ ॥

(६) ३ । ३२ ॥

आमन्वितमाद्युदात्तमभवति । यस्यामन्वितस्याध-
स्तात्स्वरो न विहितः । कस्य चाधस्तात्स्वरो न वि-
हितः । पदपूर्वं यन्न भवति । पादादौ वाक्यादौ वा
यद्भवति तदाद्युदात्तं भवति । अपदपूर्वमभवति यथा (१) ।
अग्ने' गृहपते । वाक्यादौ भवति यथा (२) । अग्नयः
सगराः (३) । देवा' आशा पालाः । पादादौ भवति
यथा (४) । या वाङ्मशा मधुमत्यग्निश्च'ना (५) । विप्रश्चे-
भिः सोम्यमध्वग्ने' । सुमङ्गलादि तु निपातितमेव ॥

कृष्णो मृगसंयोगे ॥ २५ ॥

कृष्णशब्दो मृगवचन आद्युदात्तो भवति । यथा । (६)
कृष्णो'स्याखरेण्डः' । (७) कृष्णो रात्र्या ऽवृत्तो' जतूः' ।
मृगसंयोग इति किम् । (८) अत्र कृष्णः' कर्णो' गर्हभः' ।
अत्र कृष्णशब्दो वर्णवचनः वर्णविशेषाभिमतत्वात् ॥

व्ययवांश्चान्तः ॥ २६ ॥

(१) ३ । ३८ ॥

(२) ५ । ३४ ॥

(३) २२ । १९ ॥

(४) ७ । ११ ॥

(५) ३३ । १० ॥

(६) २ । १ ॥

(७) २४ । ३६ ॥

(८) २४ । ४० ॥

अन्तःशब्दो द्विविधः व्ययवानव्ययवांश्च यस्य विम-
 क्त्यादिभिर्विकारो न क्रियते सोऽव्ययवान् । तथा चो-
 क्तम् । सदृशं त्रिषु लिङ्गेषु सर्वासु च विभक्तिषु । वच-
 नेषु च सर्वेषु यन्त्र व्येति तदव्ययमिति । यस्य पुनर्वि-
 भक्त्यादिभिर्विकारः क्रियते स व्ययवान् । स चाद्युदा-
 क्तो भवति । यथा (१) । समुद्रश्च मध्यं चान्तश्च (२) ।
 इयं वेदिः परोऽ अन्तः पृथिव्याः । व्ययवानिति किम् ।
 (३) अन्तर्यच्छ मघवन् ॥

परः प्रधाने ॥ २७ ॥

परशब्दः प्रधानवचनः अपरिमितवचन आद्युदात्तो
 भवति । यथा । (४) यस्मान्न जातः परोऽ अन्योऽ
 अस्ति । (५) इयं वेदिः परः । प्रधान इति किम् ।
 (६) परो दिवा परऽ एना पृथिव्या ॥

मात्रा च परिमाणे ॥ २८ ॥

मात्राशब्दश्च परिमाणवचन आद्युदात्तो भवति ।

(१) १७ । २ ॥

(२) २३ । ६२ ॥

(३) ७ । ४ ॥

(४) ८ । ३६ ॥

(५) २३ । ६२ ॥

(६) १७ । २९ ॥

यथा । (१) कस्य मात्रा न विद्यते । (२) गोस्तु मा-
त्रा न विद्यते । परिमाण इति किम् । (३) विभूष्मा-
त्रा प्रभूः पित्रा । अत्र मातृशब्दस्य सम्बन्धिवचनस्य
तृतीयान्तस्यैतद्रूपं भवति । अतः परिमाणवाची न
भवति ॥

दक्षिणा च ॥ २९ ॥

दक्षिणाशब्दश्चाद्युदात्तो भवति । यथा । (४)
तस्य दक्षिणाऽ अश्वरसः । (५) दक्षिणा युजः पुरः
एतु सोमः (६) ॥

न दश विश्वकर्मा निषद्येन्द्रस्य

पातु सदः सद्भ्येषु ॥ ३० ॥

दश विश्वकर्मा निषद्य । इन्द्रस्य । पातु । सदः ।
सद्भ्यः । एतेषु परभूतेषु दक्षिणाशब्दश्चाद्युदात्तो
न भवति । दश (७) यथा । दश दक्षिणा दश प्रती-

(१) २३ । ४७ ॥

(२) २३ । ४८ ॥

(३) २२ । १९ ॥

(४) १८ । ४२ ॥

(५) १७ । ४० ॥

(६) चशब्दोऽप्यर्थे ॥

(७) १६ । ६४ ॥

चीः । विश्वकर्मा यथा । (१) अयं दक्षिणा विश्वकर्मा । निषद्य यथा । (२) आचूच्या जानु दक्षिणतो निषद्य । इन्द्रस्य यथा । (३) पुत्तवती दक्षिणत इन्द्रस्याधिपत्ये । पातु यथा । (४) मनोजवास्त्वा पितृभिर्हक्षिणतः पातु । सदः यथा । (५) यमनेत्रा दक्षिणासदः । सद्यः यथा । (६) यमनेत्रेभ्यो देवेभ्यो दक्षिणासद्यः ॥

कर्णः स्वाङ्गे ॥ ३१ ॥

कर्षशब्दः स्वाङ्गाभिधाय्याद्युदात्तो भवति । यथा । (७) भद्रं कर्षेभिः शृणुयाम देवाः । (८) श्रोत्राभ्यां कर्षौ ते दन्वीमधरकर्णतेन । स्वाङ्ग इति किम् । (९) आ कर्षः कर्षो गर्हभः ॥

(१) १३ । ५५ ॥

(२) १९ । ६२ ॥

(३) ३७ । १२ ॥

(४) ५ । ११ ॥

(५) ९ । ३६ ॥

(६) ९ । ३५ ॥

(७) २५ । २१ ॥

(८) २५ । २ ॥

(९) २४ । ४० ॥

महो नपुठ०सके ॥ ३२ ॥

महःशब्दो नपुंसकाभिधाय्याद्युदात्तो भवति । यथा । (१) मह॑स्य महो॑ वो भक्षीय । नपुंसक इति किम् । (२) महो॑ दे॒वाय॒ तद्व॑तर्ठ० संपर्य्यत । (३) महो॑ऽअ॒ग्नेः॑ स॒मिधान॑स्य शर्माणि (४) ॥

श्रवश्च ॥ ३३ ॥

श्रवःशब्दो नपुंसकवाच्याद्युदात्तो भवति यथा । (५) अ॒ग्ने तव॑ श्र॒वो व्य॑- । नपुंसक इति किम् । (६) श्र॒वश्च॑ मे श्रुतिश्च॑ मे ॥

अन्धो वीर्य्ये ॥ ३४ ॥

(१) ३ । २० ॥

(२) ४ । ३५ ॥

(३) ३३ । १७ ॥

(४) महो देवायेत्यत्र महते देवायेति देवविशेषणत्वात्पुलिङ्गः । तस्माच्छान्दसत्वाच्चतुर्थ्या लुक् । महो अग्ने इत्यत्र महत अग्नेर्विशेषणीभूतो लुप्लषष्ठीको महः शब्दः पुल्लिङ्गः ॥ यद्यपि गां प्रति गमने विनियुक्तः स्त्रीलिङ्गमपेक्षते । तथापि ध्रुत्या नपुंसकलिङ्गो महःशब्दो व्याख्यातः ॥ तथा चोक्तं शतपथब्राह्मणस्य २ काण्डीयतृतीयप्रपाठकस्य २ ब्राह्मणस्य २५ काण्डिकायां यानि वो वीर्य्याणि यानि वो महाश्रुतिं तानि भक्षीयेति ॥

(५) १२ । १०६ ॥

(६) १० । १ ॥

अन्धशब्दो वीर्यवचन आद्युदात्तो भवति । यथा ।
 (१) अन्धस्त्यान्धो^१ वो भक्षीय । वीर्य इति किम् । (२)
 स्वप्नायान्धमधर्माय । (३) अन्धन्तमः^२ प्रविशन्ति ॥

एता वर्णे ॥ ३५ ॥

एताशब्दो वर्णवचन आद्युदात्तो भवति । यथा ।
 (४) एताऽ ऐन्द्राग्नाः^३ । वर्ण इति किम् । (५) एता
 मेऽअग्न इष्टकाः^४ ॥

रोहितश्च केवलः ॥ ३६ ॥

रोहितशब्दश्च वर्णवचनः केवलः असमासस्थ आ-
 द्युदात्तो भवति । यथा । (६) रोहितो धूमरोहितः^५ ।
 वर्णवाचीति किम् । (७) रोहितकुण्डूणाची^६ गोलत्ति-
 का । केवल इति किम् । (८) धूमरोहितः^७ कर्कन्धु-

(१) ३ । २० । वीर्यवाची श्रुत्या व्याख्यातः ॥

(२) ३० । १० ॥

(३) ४० । ९ । प्रत्युदाहरणद्वये प्रथमोऽन्धशब्दो नेत्रविकलवचनः । द्वितीयोऽन्ध-
 शब्दो निविडार्थकः ॥

(४) २४ । ८ ॥

(५) १७ । २ ॥

(६) २४ । २ ॥

(७) २४ । ३७ । अत्र रोहितशब्दो मृगविशेषवचनः ॥

(८) २४ । २ धूमश्चासौ रोहितश्चेति समासघटितोऽयं न केवलः ॥

रोहितः ॥

यन्त्री राट् ॥ ३७ ॥

यन्त्रीशब्द आद्युदात्तो भवति । राट् परश्चेद्भवति ।
यथा । (१) यन्त्री राट् । राट् पर इति किम् । (२)
यन्त्र्यसि यमनी ॥

ओषधीरनामन्त्रिते ॥ ३८ ॥

ओषधीशब्दोऽनामन्त्रितविषय आद्युदात्तो भव-
ति । यथा । (३) याऽ ओषधीः पूर्वी जाताः । अ-
नामन्त्रित इति किम् । (४) यस्यौषधीः प्रसर्प्यथ ॥

सर्व्वं विवश्व मानुषाशाः स्वाहा व्वा-
जः पयो नमः ॥ ३९ ॥

सर्व्वं । विवश्व । मानुषा । आशाः । स्वाहा । व्वाजः ।
पयः । नमः । एतानि पदान्याद्युदात्तानि भवन्ति । स-
र्व्वयथा । (५) सर्व्वे निमेषा जज्ञिरे । विवश्वयथा । (६)

(१) १४ । २३ ॥

(२) तथोदाहरणम् ॥

(३) १२ । ७५ ॥

(४) १२ । ८६ ॥

(५) ३२ । २ ॥

(६) ३२ । ८ ॥

यत्र वि॒श्वं भव॑त्येक॒नीडम् । मानु॑षा यथा । (१) दै॒व्यं
मानु॑षा यु॒गा । आ॒शा यथा । (२) वि॒श्ववा॑ऽ आ॒शाः
प्रसु॑ञ्चन्मानु॒षीभि॑यः । स्वा॒हा यथा । (३) हि॒ङ्क्ता॒रा-
य स्वा॒हा । वाजः॑ यथा । (४) वाज॑श्च॒ मे । पयः॑ यथा ।
(५) पयः॑ ष॒थिव्या॑म् । नमः॑ यथा । (६) नमो॑ हि॒र-
ण्यवा॑हवे ॥

असि॑ शि॒वा सु॒षदा॑ पय॒स्वती॑ य॒त्ते
मधु॑मती॒र्व्वर्च॑स्वानोजि॒ष्ठो भ्राजि॑ष्ठः
शुष्मि॑णी भद्र॒वाच्च्या॑य वन्द्यो मे-
ध्यो य॒मादि॑त्यस्त्रि॒तः सोमे॑न स्वसे॒त्ये-
तेषु ॥ ४० ॥

शि॒वा । सु॒षदा॑ । पय॒स्वती॑ । य॒त्ते । मधु॑मतीः । वर्च-
स्वान् । ओजि॒ष्ठः । भ्राजि॑ष्ठः । शुष्मि॑णी । भद्र॒वाच्च्या॑-
य । वन्द्यः । मेध्यः । य॒मः । आदि॑त्यः । त्रि॒तः । सोमे॑-

(१) १२ । १११ ॥

(२) २७ । ७ ॥

(३) २२ । ७ ॥

(४) १८ । १ ॥

(५) १८ । ३६ ॥

(६) १६ । १७ ॥

न । स्वसा । असीत्यधस्तादनुदात्त उक्तः स एतेषु प-
रभूतेषु आद्युदात्तो भवति । शिवा यथा । (१) सु॒क्ष्मा
चा॒सि॑ शि॒वा । सुष॒दा यथा । (२) स्यो॒ना चा॒सि॑ सुष॒-
दा । पय॒स्वती॑ यथा । (३) ज॒र्ज्ज॒स्वती॑ चा॒सि॑ पय॒स्व-
ती च । य॒त्ते यथा । (४) यो॒स्याम्पृ॒थिव्या॑म॒सि॒ य॒त्ते ।
मधु॒मती॑र्यथा । (५) यै॒षां भा॒गो॒सि॑ मधु॒मतीः॑ । वर्ध्वा-
स्वान्यथा । (६) त्व॒न्दे॒वेष्व॒सि॒ वर्ध्वा॑स्वान् । अ॒जि॒ष्ठः य-
था । (७) त्व॒न्दे॒वेष्व॒स्यो॒जि॒ष्ठः । अ॒जि॒ष्ठः यथा (८)
त्व॒न्दे॒वेष्व॒सि॒ अ॒जि॒ष्ठः । शु॒ष्मि॒णी यथा । (९) सु॒रा
त्व॒म॒सि॑ शु॒ष्मि॒णी । भद्र॒वाच्चा॑य यथा । (१०) हो-
त॒र॒सि॑ भद्र॒वाच्चा॑य । व॒न्द्यः यथा । (११) ई॒डा॒श्चा-
सि॒ व॒न्द्यः॑ । मे॒ध्यः यथा । (१२) आ॒शु॒श्चा॒सि॒ मे॒ध्यश्च॑ स-

(१) १ । २७ ॥

(२) १ । २७ ॥

(३) १ । २७ ॥

(४) ५ । ९ ॥

(५) ७ । १ ॥

(६) ८ । ३८ ॥

(७) ८ । ३८ ॥

(८) ८ । ३९ ॥

(९) १९ । ७ ॥

(१०) २१ । ६१ ॥

(११) २९ । ३ ॥

(१२) २९ । ३३ ॥

सप्ते । यमः यथा । (१) असिं यमः । आदित्यः यथा । (२) अस्यादित्योऽर्बन् । त्रितः यथा । (३) असिं त्रितो गुह्येन । सोमेन यथा । (४) असिं सोमेन । स्वसा यथा । (५) या देवानामसिं स्वसा ॥

धनदारत्नधाभ्याञ्च ॥ ४१ ॥

धनदारत्नधाभ्याम्परोऽसिशब्द आद्युदात्तो भवति । धनदा यथा । (६) त्वर्ठं हि धनदाऽअसिं । रत्नधा यथा । (७) त्वर्ठं हि रत्नधाऽअसिं ॥

रायोऽपोषे ॥ ४२ ॥

राय इत्येतत्पदमपोषे परे चाद्युदात्तं भवति यथा । (८) त्वे रायो मे रायः । अपोष इति किम् । (९) मा व्यर्ठं रायस्पोषेण वि यौष्म ॥

(१) २९ । १४ ॥

(२) २९ । १४ ॥

(३) २९ । १४ ॥

(४) २९ । १४ ॥

(५) ३४ । ३३ ॥

(६) ९ । २० ॥

(७) २६ । २१ ॥

(८) ४ । २२ ॥

(९) ४ । २२ ॥

न भागमीशिषयोः ॥ ४३ ॥

राय इत्येतत्पदं भागमीशिषयोः परयोराद्युदात्त-
न्न भवति । भागं यथा । (१) रा॒यो भा॒गम् । ईशिषे
यथा । (२) रा॒य ऽईशिषे ॥

त्रिधा बद्धहितयोः ॥ ४४ ॥

त्रिधा शब्दो बद्धहितयोः परयोराद्युदात्तो भवति
बद्धो यथा (३) त्रि॒धा ब॒द्धो वृ॒षभो रो॒रवीति । हितं
यथा (४) त्रि॒धा हि॒तं प॒णिभिर्गु॒ह्यमा॒नम् ॥

सुकृतम्भूते ॥ ४५ ॥

सुकृतशब्दो भूताभिधाय्याद्युदात्तो भवति, यथा
(५) उ॒रुः पृ॒थुः सु॒कृतः क॒र्तृभिर्भू॒त् । भू॒त इति किम् ।
सू॒क्तञ्च (६) मे सु॒कृतञ्च मे (७) ॥

द्विरुदात्तानि ॥ ४६ ॥

(१) ३४ । २३ ॥

(२) १७ । ७१ । न भागेशिषयोः इति 'ग' 'घ' पुस्तकपाठः ॥

(३) १७ । ९१ ॥

(४) १७ । ९२ ॥

(५) ७ । ३९ ॥

(६) १८ । ५ ॥

(७) अयं तु न प्राणिवचनः किन्तु पुण्यवाचकः ॥

द्विरुदात्तं येषु तानि पदानि वक्ष्यन्त इति सूत्रशेषः
अधिकारसूत्रमेतत् ॥

बृहस्पतिर्व्वनस्पतिर्नराशठं० सस्-
त्तनूनप्त्वे तनूनपान्नक्तोषासोषासा-
नक्ता द्यावापृथिवी द्यावाक्षामा क्र-
तूदक्षाब्ध्यामेतवाऽअन्वेतवा
इति च ॥ ४७ ॥

(१) बृहस्पतिः । (२) वनस्पतिः, (३) नराशठं
सः, (४) तनूनप्त्वे (५) तनूनपात्, (६) नक्तोषासा,
(७) उषासा नक्ता, (८) द्यावापृथिवी, (९) द्यावा-

(१) १७ । ४० ॥

(२) २० । ४५ ॥

(३) २० । ३७ ॥

(४) ४ । ५ ॥

(५) २० । ३७ ॥

(६) १२ । २ ॥

(७) २० । ४१ ॥

(८) १७ । २० ॥

(९) १२ । २ ॥

क्षामा, (१) क्रतूदक्षाब्ध्याम्, (२) एतवै, (३) अमृन्वे-
तवै, एतानि पदानि द्विरुदात्तानि भवन्ति अदेवताह-
न्वार्थं आरम्भः प्रचुराण्येवोदाहरणानि ॥

देवताद्वन्द्वानि चानामन्वितानि ॥४८॥

देवताद्वन्द्वानि च द्विरुदात्तानि भवन्ति आमन्वि-
तानि वर्जयित्वा, यथा (४) अग्नीषोमाब्ध्याञ्जुष्टृ-
ह्णामि (५) मित्रावरुणाब्ध्यां त्वा, देवताद्वन्द्वानीति
किम् (६) ऋक्क्षामयोः शिल्प्ये (७) दीक्षातपसो-
स्तनूरसि, अनामन्वितानीति किम् (८) तान्धेनुं मि-
त्रावरुणा, च शब्दादधस्तनसूत्रविहितान्यनामन्वि-
तानि द्विरुदात्तानि भवन्ति आमन्वितानि त्वामन्वि-
तस्वरल्लभन्ते यथा (९) बृहस्पते ऽअति यद्व्योऽ अ-

(१) ७ । २७ ॥

(२) १७ । ९७ ॥

(३) ८ । २३ । अविशेषात्सर्वविभक्त्यन्तानि क्रमेण द्रष्टव्यान्पुदाहरणानि ॥ प-
रन्तु तनूनपाच्छब्दो द्विरुदात्तउक्तः स च पथशब्दे परे न द्विरुदात्तः स्यात् । यथा २८ ।
२६ । ननूनपात्पथ ऽऋतस्य यानान् इति ॥

(४) २ । १० ॥

(५) ७ । २३ ॥

(६) ४ । ९ ॥

(७) ४ । २ ॥

(८) ७ । १० ॥

(९) २६ । ३ ॥

हीत् (१) तनूनपात्पथऽ ऋतस्य यानान् ॥

इन्द्रावृहस्पतिब्यामिन्द्रावृहस्पती
इति त्रीणि ॥ ४९ ॥

इन्द्रावृहस्पतिब्यामिन्द्रावृहस्पती इत्येतयोः पद-
योस्त्रीण्यक्षराण्युदात्तानि भवन्ति, इन्द्रावृहस्पति-
भ्यां यथा (२) इन्द्रावृहस्पतिब्यां त्वा देवाव्य्यञ्जस्य ।
इन्द्रावृहस्पती यथा (३) इन्द्रावृहस्पती ऽऊबभ्याम्
(४) ॥

सर्वमग्नाऽइ लाजीश्छाचीश्निति
त्रिमात्राणि च ॥ ५० ॥

अग्नाऽइ लाजीश्न् शाचीश्न् एतानि पदानि स-
र्वोदात्तानि भवन्ति त्रिमात्राणि च त्रीण्यक्षराण्येतेषु
पदेषु भवन्ति, यथा (५) अग्नाऽ इइ इह आकार-
स्त्रिमात्रः (६) लाजीश्निहेकारः शाचीश्निहेकारः ॥

(१) २० । २६ ॥

(२) ७ । २३ ॥

(३) २५ । ६ ॥

(४) इति शब्द उदाहरणद्वयसमाप्त्यर्थः । प्रायोऽन्यस्याकाभादिति ॥

(५) ८ । १० ॥

(६) २३ । ८ ॥

प्रणवश्च ॥ ५१ ॥

प्रणवश्च सर्वोदात्तो भवति त्रिमात्रश्च यथा (१) ओ-
म् इत्यम्बुह्रम् ॥

विवेशाश्च इति चानुदात्तम् ॥ ५२ ॥

विवेशाश्च इत्येतत्पदं सर्वानुदात्तं भवति अन्यमक्षरं
चास्य त्रिमात्रं भवति यथा (२) तेषु विष्णुं भुवनमा-
विवेशाश्च, इहाकारस्त्रिमात्रः, अनुदात्तमिति किम्,
(३) विष्णुं भुवनमाविवेश ॥

आसीदिति चोत्तरं विचारे ॥ ५३ ॥

आसीदित्येतत्पदं विचारे वर्त्तमानमुत्तरं सर्वानुदा-
त्तं भवति तस्य चान्यमक्षरं त्रिमात्रं भवति यथा (४)
उपरि खिदासीत्, इहाकारस्त्रिमात्रः, विचार इति
किम् । (५) का खिदासीत् ॥

(१) ४० । अन्त्ये ॥

(२) २३ । ४९ ॥

(३) २३ । ५० । उत्तरं पूर्वं इति पदद्वयं उत्तरसूत्राभ्यामपकृष्यते ॥ हिरण्यगर्भ-
इत्यध्याये विवेशपदस्य चतुर्वारं एकस्मिन् सन्दर्भे पठितत्वात्पूर्वत्वस्य सापेक्षत्वात्त-
दध्यायस्थस्यैव द्रुतत्वम् । तेन अन्यत्र अवराँऽऽविवेश । अभि सँविवेश इत्या-
दौ न भवति ॥

(४) ३३ । ७४ ॥

(५) २३ । ११ ॥

पूर्वमन्तोदात्तम् ॥ ५४ ॥

आसीदित्येतत्पदं पूर्वं विचारे वर्त्तमानमन्तोदात्तं
भवति त्रिमात्रं चास्यान्यमक्षरं भवति यथा (१) अ॒धः^१
खि॒दासी॒त् इहे॒कारस्त्रि॒मात्रः ॥

इन्द्रश्चेन्द्रसोमपूर्वं पूषाग्निवायुषु

॥ ५५ ॥

देवताद्वन्द्वं च इन्द्रसोमपूर्वं पूषाग्निवायुषु परभू-
तेष्वन्तोदात्तं भवति, द्विरुदात्तापवादः, इन्द्रपूर्वं यथा
(२) इन्द्रा॒पू॒ष्योः^२ प्रि॒यम॒प्येति॑ पा॒थः^३, (३) इन्द्रा॒ग्न्यो-
र॒ज्जि॒तिम॒नूज्जे॒षम्^४ (४) इन्द्र॒वा॒युव॒भ्यान्वै॒षते॑ यो॒निः^५ ।
सोमपूर्वस्य यथासम्भवमुदाहरणम् (५) बा॒ह्वोः^६ सौ-
मा॒प्रौ॒ष्यः^७ ॥

अग्निश्चेन्द्रे ॥ ५६ ॥

अग्निपूर्वश्चेन्द्रोत्तरपदो देवताद्वन्द्वसमासोऽन्तो-

(१) ३३ । ७४ । इत उत्तरं अन्तोदात्ताधिकारश्च द्रष्टव्यः ॥

(२) २५ । २५ ॥

(३) २ । १५ ॥

(४) ७ । ८ ॥

(५) २४ । १ ॥

दात्तो भवति यथा (१) अग्नीन्द्राब्ध्यान्वैषते योनिः ॥

ऋक्वसाम्नि च ॥ ५७ ॥

ऋक्पूर्वपदः सामशब्दोत्तरपदश्च इन्द्रसमासोऽन्तो-
दात्तो भवति यथा (२) ऋक्वसामाभ्यां सन्तरन्तः ॥

यतो गतौ ॥ ५८ ॥

यत इत्येतत्पदं गतौ वर्तमानमन्तोदात्तं भवति यथा
(३) स्वर्ग्यतो धिया दिवम्, इण्गतावित्यस्यैतद्रूपम्,
गताविति किम् (४) यतो जातः प्रजापतिः ॥

पायोर्विशः ॥ ५९ ॥

पायुशब्दात्परो विशः शब्दोऽन्तोदात्तो भवति यथा
(५) पायुर्विशोऽअस्याऽअदब्धः, पायोरिति किम् (६)
इन्द्रन्दैवीर्विशो मरुतः ॥

आयुर्यमोर्वश्यस्तिभ्यः ॥ ६० ॥

(१) ७ । ३२ ॥

(२) ४ । १ ॥

(३) ११ । ३ ॥

(४) २३ । ६३ । अत्र प्रत्युदाहरणे यतः शब्दस्तसिद्ध प्रत्ययान्तः ॥

(५) १३ । ११ ॥

(६) १७ । ८६ ॥

आयुरित्येतत्पदम् अर्थ्यमा उर्वशी अस्ति शब्देभ्यः
परमन्तोदात्तं भवति, अर्थ्यमा यथा (१) मा नो^१ मि-
त्तो वृणोऽ अर्थ्यमायुः, उर्वशी यथा (२) उर्वश्य-
स्यायुरसि, पदसंहितोदाहरणम्, अस्ति यथा (३)
अथ स्म ते वृजनं कृष्णमस्ति आयोष्ट्वा, एतेभ्य इ-
ति किम् (४) आयुश्च मे जरा च मे ॥

अस्य रोचनाऽसौ बोधा मे पारम्पु-
रऽएतारो दिवः कोऽहन्त्वम्महीय्य
ईशऽईशानेभ्यः ॥ ६१ ॥

रोचना असौ बोधा मे पारम्पुऽएतारः दिवः
कः अहम् त्वम् महीम् यऽईशे ईशानम् एतेभ्यः परः
अस्यशब्दोऽन्तोदात्तो भवति, रोचना यथा (५) अन्तश्च
रति रोचनास्य, असौ यथा (६) असावस्य पिता व-

(१) २५ । २४ ॥

(२) ५ । २ । अत्र यद्यपि उर्वशीशब्दात्परो अस्तिशब्दो न आयुः शब्दस्त-
थापि पदसंहितायां पाठादुदाहृतः ॥

(३) १५ । ६२ ॥

(४) १० । ३ ॥

(५) ३ । ७ ॥

(६) १० । २० ॥

य॒ ए॒ स्या॒म, बो॒धा मे॒ यथा॑ (१) बो॒धा मे॒ ऽअ॒स्य वृ॒च-
 सो॒ य॒वि॒ष्ट, पा॒रम् यथा॑ (२) अ॒ग॒न्त॒म् तम॑स॒स्पार-
 म॒स्य, पु॒रऽ ए॒ता॒रो यथा॑ (३) ये॒ ब्र॒ह्म॒णः पु॒रऽ ए॒ता-
 रो॒ऽ अ॒स्य, दि॒वः यथा॑ (४) ए॒के॒ना॒ङ्गे॒न दि॒वो॒ऽ अ॒स्य
 ष॒ष्टम्, कः॒ यथा॑ (५) को॒ ऽअ॒स्य वे॒द भु॒वन॑स्य ना॒भि-
 म्, अ॒हं यथा॑ (६) वे॒दा॒ह॒मस्य॑ भु॒वन॑स्य ना॒भिम्, त्वम्
 यथा॑ (७) ब्र॒ह्म॒णस्प॑ते त्व॒मस्य॑ य॒न्ता, म॒हीम् यथा॑ (८)
 इ॒मान्ते॒ धि॒य॒म॒भरे॒ म॒हो म॒ही॒मस्य॑, य॒ऽ ई॒शे यथा॑ (९)
 य॒ऽ ई॒शे ऽअ॒स्य इ॒द्वि॒पदे॑, ई॒शान॑म् यथा॑ (१०) ई॒शान॑-
 म॒स्य जग॑तः ॥

प्र॒त्त॒नां य॒ज्ञस्य॑ ह॒विषः॑ पा॒ही॒त्पातं॑
 म॒ध्वो य॒ज॒मान॑स्य हो॒तुर॑ज॒रा॒सो

(१) १२ । ४२ ॥

(२) १२ । ७३ ॥

(३) १७ । १४ ॥

(४) २३ । ५० ॥

(५) २३ । ५९ ॥

(६) २३ । ६० ॥

(७) ३४ । ५८ ॥

(८) ३३ । २९ ॥

(९) २३ । ३ ॥

(१०) २७ । ३५ ॥

लोकेषु च ॥ ६२ ॥

प्रत्नाम् यज्ञस्य हविषः पाहि इत् पातम् मध्वः य-
जमानस्य होतुः अजरासः लोकः इत्येतेषु च प्रत्ययेषु
अस्य शब्दोऽन्तोदात्तो भवति, प्रत्नां यथा (१) अस्य
प्रत्नामनु द्युतम्, यज्ञस्य यथा (२) आस्य यज्ञस्योद-
चः, हविषः यथा (३) अस्य हविषस्त्मना यज, पाहि
यथा (४) शश्वत्तमर्ठं सुमनाऽ अस्य पाहि । इत् यथा
(५) अयेदिन्द्रो वावृधे, पातम् यथा (६) अस्य पात-
न्वियेषिता, मध्वः यथा (७) अस्य मध्वः पिवत, यज-
मानस्य यथा (८) अस्य यजमानस्य वीरो जायताम्,
होतुर्यथा (९) अस्य होतुः प्रदिश्यृतस्य वाचि । अ-
जरासो यथा (१०) अस्याजरासो दमाम्, लोकः यथा

(१) ३ । १६ ॥

(२) ४ । १० ॥

(३) ६ । ११ ॥

(४) २६ । २३ ॥

(५) ३३ । ९७ ॥

(६) ७ । ३१ ॥

(७) ९ । १८ ॥

(८) २२ । २२ ॥

(९) २८ । ११ ॥

(१०) ३३ । १ ॥

(१) अस्य लोकः सुतावतः ॥

अनुदात्तमन्यत् ॥ ६३ ॥

अस्येतत्पदमुक्तादन्यदनुदात्तं भवति, यथा (२)
षडस्य विष्टाः शतम् (३) अद्यातमस्य, पूर्ववाननुदे-
शइत्येतस्यैवायं प्रपञ्चः (४) ॥

पक्तीर्हसयोरन्त उदात्तं आ-
दिर्वा ॥ ६४ ॥

पक्तीः शब्दस्य हसशब्दस्य चान्त उदात्तो भवति
आदिर्वा उदात्तो भवति स्वरविकल्पः, पक्तीर्यथा (५)
पचन्पक्तीः, हसः यथा (६) पञ्चलू हसाय ॥

वृद्धं वृद्धिः ॥ ६५ ॥

इत्युक्तार्थम् ॥

इति कात्यायनकृतौ प्रातिशाख्य-

(१) ३५ । १ ॥

(२) २३ । ५८ ॥

(३) ३३ । ९७ ॥

(४) इतोऽन्यदनन्वादेशस्थानित्यर्थः ॥

(५) २१ । ५९ ॥

(६) ३० । २० ॥

सूत्रे द्वितीयोऽध्यायः ॥

इत्यानन्दपुरवास्तव्यवज्जटसुतोव्वटकृतौ (१) प्राति-
शाख्यभाष्ये द्वितीयोऽध्यायः ॥

स्वरसंस्कारयोश्छन्दसि नियम इति प्रतिज्ञातम्,
तत्र प्रथमाध्याये स्वरसंस्कारयोरेवाङ्गभूताः सञ्ज्ञाः
परिभाषा उक्ताः, द्वितीये स्वरः । अधुना क्रमप्राप्तः
संस्कारोऽभिधीयते लोपागमवर्णविकारप्रकृतिभाव-
लक्षणः ॥

सठ्०हितायाम् ॥ १ ॥

इत्ययमधिकारः आसप्तमाध्यायपरिसमाप्तेः, यदित
जर्द्धमनुक्रमिष्यामः संहितायामित्येवं तद्वेदितव्यम् व-
क्ष्यति च “उदः स्तभाने लोपम्” उत्(२) स्तभान उत्-
त्तभान तेजसा दिशः उदृष्टं ० इ ॥

अर्थः पदम् ॥ २ ॥

संहितालक्षणमुक्तम् (३) “वर्णानामेकप्राणयोगः सठ्-
हितेति” अधुना पदलक्षणमुच्यते अर्थाभिधायि पदम्

(१) ‘सुतोव्वटकृतौ’ कचित्पुस्तक पाठः ॥

(२) १७ । ७२ । उदः स्तभाने लोपमिति सूत्रं चतुर्थाध्यायस्थं ९४ चतुर्णवति-
सङ्ख्याकम् ॥

(३) प्रा. अ. १ सू. १५८ ॥

(१) पद्यते गम्यते ज्ञायतेऽर्थोऽनेनेति पदम् यद्येवम् निपातस्थानर्थकस्य पदसञ्ज्ञा न प्राप्नोति नैष दोषः उपरिष्ठादर्थभेदनिबन्धनं पदचतुष्टयं वक्ष्यति “नामाख्यातोपसर्गनिपाताच्चेति” तत्रास्य पदसञ्ज्ञा भविष्यति यथा क्रियावाचकमाख्यातमुपसर्गो विशेष्यत् । सत्त्वाभिधायकन्नाम निपातः पादपूरण इति (२) सूत्रकारस्य त्वयमभिप्रायः पदप्रतिरूपकस्य (३) पदावयवस्य पदसञ्ज्ञा माभूदित्यतोऽर्थग्रहणं इहैव पदसञ्ज्ञा यथा स्यात् (४) गोव्यच्छमन्तकाय गोघातम्, इह माभूत् (५) गोधूमाश्च मे ॥

पदान्तपदाद्योः सन्धिः ॥ ३ ॥

यः कश्चिद्वैदिकशास्त्रसन्धिरुच्यते स पदान्तपदाद्योर्वैदित्य इति, (६) ते सन्धयश्चत्वारो भवन्ति स्वरयोः,

(१) अर्थोऽस्ति यस्मिन्नर्थवाचकः । अक्षरसमुदायोऽक्षरं वा पदं स्यात् । अक्षरसमुदायः पदमित्यष्टमेऽध्याये वक्ष्यति । तच्चार्थवत्पदमुच्यते । न पदावयवः ॥

(२) निपाताः पादपूरणा इति ‘स’ पुस्तकपाठः । तस्मान्निपातस्यापि पादपूरणार्थत्वेनार्थवत्त्वादर्थः पदमिति साधूक्तम् ॥

(३) पदसदृशस्य ॥

(४) ३० । १८ ॥

(५) १८ । १२ ॥

(६) अवग्रहयोग्ये पदे सन्धिकार्याणि ‘अवग्रहः पदान्तवत्’ इत्यतिदेशाद्भवन्ति । अवग्रहत्वत्राम किं ‘समासेऽवग्रहो ‘ह्रस्वसमकाल’ इति पञ्चमाध्यायस्थादिमसूत्रे वक्ष्यमाणरूपम् । अवग्रहणं अवग्रहः । अवान्तरपदसञ्ज्ञा सूचायितुं पदपाठकाले किञ्चित्कालमवसानमिति । याज्ञवल्क्योक्तमर्द्धमात्राकालिकं । अवग्रहे तु यः कालस्त्वर्द्ध-

व्यञ्जनयोः, स्वरव्यञ्जनयोस्तु द्विप्रकारः । पूर्वः स्वरो भवति पञ्चाद्व्यञ्जनानि, व्यञ्जनानि वा पूर्वोणि भवन्ति पञ्चात्स्वर इति, स्वरयोर्भवति यथा (१) आ इदम् एदम् । (२) व्वरुण इह व्वरुणेह । व्यञ्जनयोर्भवति यथा (३) सम् यौमि, सँय्यौमि (४) सम् व्वपामि सँव्वपामि, स्वरपूर्वो भवति यथा (५) इषे त्वा इषे त्वा, ऊर्जे त्वा ऊर्जे त्वा, व्यञ्जनपूर्वो भवति यथा (६) उत एनम् उदेनम्, परिभाषासूत्रमेतत् ॥

न परकालः पूर्वकाले पुनः ॥ ४ ॥

ह्यन्तराः काला इति वक्ष्यति तत्र यः परकालः सन्धिः पूर्वकाले सन्धौ सति पुनः प्राप्नुवन्न भवति यथा (७) “आकारोपधो यकारमिति, नकारस्याकारोपध-

मात्रा विधीयत इति । ग्रहउपादाने । अवपूर्वाद् ग्रहेर्ध्वजो भावे ग्रहवृद्धिनिश्चिगमश्चेत्यप् ॥ अतिदेशत्वं नाम । अन्यत्र श्रुतस्यान्यत्रान्वयित्वम् । यानि पदद्वयसम्बन्धीनि कार्याणि तत्रैवैतस्य परिभाषासूत्रस्योपस्थितेः व्यस्तपदे सन्धिकार्याणि न भवन्ति । एकपदस्थानि सन्धिकार्याणि तु अवग्रहे न भवन्ति ॥

(१) ४ । १ ॥

(२) १८ । ४५ । अयमङ्कः पदपाठात् ज्ञातव्यः ॥

(३) १ । २२ ॥

(४) १ । २१ ॥

(५) १ । १ ॥

(६) १७ । ५० ॥

(७) प्रा० अ० ३ । सू० १४२ ॥

स्य यकारो विहितः स्वरे प्रत्यये, (१) महा२॥५ इन्द्र
‘इति यथा (२) “कण्ठपूर्वो यकारमरिफित इति, अ-
वर्णपूर्वस्य विसर्जनीयस्य यकारो विहितः स्वरे प्रत्यये,
(३) याऽ ओषधीरिति ततो हिशब्दात्परं लक्षणमुक्तम्
(४) “यवयोः पदान्तयोः स्वरमध्ये लोपः,” ततो य-
लोपे द्यते हिशब्दात्पूर्वं शास्त्रं पुनः प्रवर्त्तते (५)
“कण्ठ्यादिवर्ण एकारम्” “उवर्ण ओकारमिति, । त-
त्प्रवर्त्तमानन्निषिध्यत इति सूत्रार्थः ॥

ह्यन्तराः कालाः ॥ ५ ॥

कालाधिकारः हिः अन्तरा येषां सन्धिकालानां
ते ह्यन्तराः कालाः कालशब्दः स्थानपर्यायः, उक्तमु-
दाहरणम् ॥

विसर्जनीयः ॥ ६ ॥

विसर्जनीयसन्धिरधिकृतइति सूत्रार्थः ॥

चछयोः शम् ॥ ७ ॥

चकारच्छकारयोः प्रत्यययोर्विसर्जनीयः शकारमा-

(१) ७ । ३९ ॥

(२) प्रा० अ० ४ । सू० ३६ ॥

(३) १२ । ९२ ॥

(४) प्रा० अ० ४ । सू० १२२ ॥

(५) प्रा० अ० ४ । सूत्रद्वयस्याङ्गौ ज्ञातव्यौ । ५२ । ५३ ॥

पद्यते, चकारे यथा (१) ब्वाजः च मे, ब्वाजश्च मे, छे
यथा (२) अस्त्रीवयः छन्दः अस्त्रीवयश्छन्दः ॥

तथयोः सम् ॥ ८ ॥

तकारथकारयोः प्रत्यययोर्विसर्जनीयः सकारमा-
पद्यते, तकारे यथा (३) आखुः ते पशुः आखुस्ते
पशुः, (४) नमः ते रुद्र नमस्ते रुद्र, विसर्जनी-
यथकारसन्धिस्तु संहितायां न विद्यते अतो रूपोदा-
हरणं दीयते, कः थकारः कस्यकारः ॥

प्रत्ययसवर्णम्मुदि शाकटायनः ॥ ९ ॥

शषसा सुत्सञ्ज्ञा उक्ताः, सुत्सञ्ज्ञकेषु परभूतेषु वि-
सर्जनीयः परसवर्णमापद्यते शाकटायनाचार्यस्य म-
तेन, यथा (५) आशुः शिशानः आशुशिशानः (६)
अदितिः षोडशाक्षरेण अदितिष्षोडशाक्षरेण, (७)
देवो वः सविता देवो वस्सविता ॥

(१) १८ । १ ॥

(२) १४ । १८ ॥

(३) ३ । ५७ ॥

(४) १६ । १ ॥

(५) १७ । ३३ ॥

(६) ९ । ३४ ॥

(७) १ । १ ॥

अविकारठं० शाकल्यः शषसेषु ॥१०॥

विसर्जनीयस्य विकारन्त मन्यते शाकल्यः शषसेषु परभूतेषु, यथा (१) आशुः^१ शिशा^२नः आशुः^३ शिशा^४नः, अदितिः^५ षोडशाक्षरेण अदितिः^६ षोडशाक्षरेण, देवो वः^७ सविता देवो वः^८ सविता ॥

प्रकृत्या कखयोः पफयोश्च ॥११॥

प्रकृत्या विसर्जनीयं मन्यते कखयोः पफयोश्च प्रत्यययोः शाकल्यः, कखयोर्भवति यथा (२) विष्णोः^१ क्रमः^२ विष्णोः^३ क्रमः^४, (३) ततः^५ खनेम, पफयोर्भवति यथा (४) देवः^६ सवितः^७ प्सु^८ देवः^९ सवितः^{१०} प्सु^{११}, (५) याः^{१२} फलिनीः^{१३} याः^{१४} फलिनीर्याः^{१५} अफलाः^{१६}, कखयोः पफयोश्चेति पृथक्समासकरणमुत्तरार्थम् ॥

जिह्वामूलीयोपद्धमानीयौ

शाकटायनः ॥१२॥

(१) अत्र पूर्वसूत्रोक्तोदाहरणानामङ्गा द्रष्टव्याः ॥

(२) १२ । ५ ॥

(३) ११ । २२ ॥

(४) ९ । १ ॥

(५) १२ । ८९ ॥

जिह्वामूलीयोपदृध्मानीयो विसर्जनीयप्रापद्यते
 यथासङ्ख्यम् कखयोर्जिह्वामूलीयमापद्यते पफयो-
 स्तूपदृध्मानीयम् शाकटायनाचार्यस्य मतेन, कखयो-
 र्यथा (१) विष्णोः क्रमः विष्णोः क्रमः, ततः खनेम
 ततः खनेम, पफयोर्यथा (२) वसोः पवित्रम् वसोः
 पवित्रम् (३) याः फलिनीः याः फलिनीर्याः अफलाः ॥

लुङ्ङमुदि जितपरे ॥ १३ ॥

सुत्सञ्ज्ञकाः शपसाः, जित्सञ्ज्ञका द्वौद्वौ प्रथमौ
 शपसाश्च, तत्र शपसेषु “प्रत्ययसवर्णमिति” विसर्जनी-
 यसन्धिरुक्तः अतइह दशैव जित्सञ्ज्ञका गृह्यन्ते, लुक्
 लुप्यते विसर्जनीयो सुत्सञ्ज्ञके जितपरे परतः, य-
 था (४) अन्धः स्थ । अन्धस्त्यान्धो वो भक्षीय, (५)
 स्थालीभिः स्थालीः । स्थालीभिस्त्यालीराप्नोति, सु-
 दि जित्परइति किम् (६) स्वस्ति नः तार्क्ष्यः । स्वस्ति
 नस्तार्क्ष्योऽअरिष्टनेमिः स्वस्ति ॥

(१) पूर्वोक्तसूत्रोदाहरणानामङ्गा ज्ञातव्याः ॥

(२) १ । २ ॥

(३) पूर्वोक्तसूत्रोदाहरणस्याङ्गो बोध्यइति ॥

(४) ३ । २० ॥

(५) १९ । २७ ॥

(६) २५ । १९ ॥

उपवसने पीवः ॥ १४ ॥

उपवसने (१) प्रत्यये पीवशब्दसम्बन्धी विसर्जनीयो लुप्यते, यथा (२) पीवः उपवसनानाम् पीवोपवसनानाम् ॥

सऽओषधीमयोः ॥ १५ ॥

सपदसम्बन्धी विसर्जनीयो लुप्यते (३) ओषधीमयोः प्रत्यययोः, ओषधी यथा (४) सः^५ ओषधीः सौषधीरनु^६रुद्धसे, इम यथा (५) सः^७ इमाम् सेमानो^८ हव्यदातिं जुषाणः^९ ॥

व्यञ्जने च ॥ १६ ॥

व्यञ्जने च प्रत्यये सपदसम्बन्धी विसर्जनीयो लुप्य-

(१) पदे क् चित् शब्दे इति (ग) (घ) पुस्तकपाठः ॥

(२) २१ । ४३ । पीवस् शब्दोऽसुन् प्रत्ययान्तः स्थूलवाची । अत्र प्रा. ४ अ. सू. ५३ । उवर्ण्णोकारमित्यनेन पूर्वपरयोः स्थाने ओकारादेश इति ॥

(३) ओषधी इमइत्येतयोः इति (ग) पुस्तकपाठः ॥

(४) १२ । ३६ । अत्र प्रा० ४ अ० सू० ५६ । सन्ध्यक्षर ऐकारौकारौ, इत्यनेन पूर्वपरयोः स्थानोकारः ॥

(५) २९ । ५४ । अत्र “कण्वपूर्वो यकारमरिफित इत्यनेन चतुर्धाध्यायस्थेन षट्-त्रिंशत्सङ्ख्याकसूत्रेण यत्वे यवयोरिति यकारलोपे च कृते न परकालः पूर्वकाले पुनरित्यनेन च स्वरसन्धितिषेधे प्राप्ते पुनर्विधानार्थमिदं सूत्रमेवमन्यत्राप्युद्धम ॥

ते, यथा (१) सः नः स नो बोधि शुधी हवम्, (२) सः जायसे स जायसे मत्थ्यमानः, व्यञ्जनइति किम्, (३) सः अग्निः सोऽअग्निव्यो वसुगृणे ॥

स्यएष च ॥ १७ ॥

स्यएषपदयोः सम्बन्धी विसर्जनीयो लुप्यते व्यञ्जनमात्रे, यथा (४) स्यः रात्थ्यः एष स्य रात्थ्यो वृषा, (५) स्यः वाजी एष स्य वाजी क्षिप्रणिम्, (६) एषः छागः एष छागः पुरोऽअश्वेन (७) ॥

निशब्दो बहुलम् ॥ १८ ॥

निशब्दः पदान्तीयो लुप्यते बहुलम्, शृङ्गा शृङ्गाणीति प्राप्ते यथा (८) चत्वारि शृङ्गा त्रयोऽअस्य पादाः

(१) ३ । २६ ॥

(२) १५ । २० ॥

(३) १५ । ४२ ॥

(४) २२ । १३ ॥

(५) ९ । १४ ॥

(६) २५ । २६ ॥

(७) इदं सूत्रद्वयं तथयोः समित्यादीनां बाधकम् । स्य वाजी स बोधीत्यादौ “सर्वोऽअकारओकारम्” प्रा. अ. ४ सू. ४१ इत्यनेन सूत्रेण पूर्वोन्विधीन्वाधन्ते नोचरानिति न्यायेन च “विप्रतिषेधउत्तरं बलवदलोपे” प्रा. अ. १ सू. १५० इत्युक्तत्वादेतस्य बाधः । मध्येऽपवादः प्राप्तः अलोपइत्युक्तत्वान्न भवतीति बोध्यम् । पा. सू. अ. ६ पा. १ सू. १३३ स्यशब्दसि बहुलमिति सोर्लोपो वैकल्पिकः ॥

(८) १७ । ९१ ॥

पदा पदानीति प्राप्ते यथा (१) लीणिं पदा विचक्रमे,
बज्जलग्रहणात्क्वचिन्न च लोपो भवति, यथा (२) एता
तेऽश्रग्धन्ते नामानि, क्वचिदिकारमात्रस्य भवति, एमन्
एमनीति प्राप्ते यथा (३) एमन्त्सादयामि, क्वचिन्नका-
रमात्रस्य भवति इष्क्कर्त्तारम् निष्क्कर्त्तारमिति प्राप्ते
यथा (४) इष्क्कर्त्तारमङ्गुरस्य, इत्थं भूतपदाद्यन्तप्रक्ष-
त्यर्थं बज्जलग्रहणम् (५) ॥

अनितावद्ध्याये ॥ १९ ॥

अस्मिन्नध्यायशेषे येऽन्तःपदआगमा विकाराश्च व-
क्ष्यन्ते ते अनितौ इतिकरणे परत्वावस्थिते न भव-
न्तीति सूत्रार्थः, यथा (६) श्रेयस्कर श्रेयः करेति, (७)

(१) ३४ । ४३ ॥

(२) ८ । ४३ ॥

(३) १३ । ५३ ॥

(४) १२ । ११० ॥

(५) कारिकायामपि । क्वचित्प्रवृत्तिः क्वचिदप्रवृत्तिः क्वचिद्विभाषा क्वचिदन्यतो-
ऽपि ॥ विधेर्विधानं बहुधा समीक्ष्यचतुर्विधं बाहुल्यकं वदन्ति इति व्याकरणशास्त्रे बहु-
लशब्दस्यैव निर्वचनात् । अपरं च पाणिनिना अ. ७ पा. १ सू. ३९ “सुपां सुलु-
क्पूर्वसवर्णाच्छेयाडाझायाजालः” इति सूत्रं विभक्तिविकारार्थं कृतम् । कात्यायनस्य
लेखनं तु स्वशास्त्रीयप्रयोगदृढीकरणार्थमिति ज्ञेयम् । सिद्धान्तकौमु. वै. ६ अ. एमन्ना-
दिषु छन्दसि पररूपं वक्तव्यमिति सर्ववैदिकसाधारणप्रयोगे भवति ॥

(६) ३ । ५८ ॥

(७) २ । १६ ॥

चक्षुष्माः^५ चक्षुः पादति, (१) स्वर्षाम् स्वः सामिति, (२)
 धूर्षाहौ धूः सहाविति, (३) दूडभः दुर्दभइति, (४) वन-
 षदः वनसदइति, (५) अवरस्वराय अवरपरायेति (६)
 दुडुक्षन् दुधुक्षन्निति, (७) सुषाव सुसावेति, (८) पुरी-
 षवाहणः पुरीषवाहनइति, (९) मामहानः ममहा-
 नइति, (१०) वृष्टिमां२ इव वृष्टिमानिवेति, अध्या-
 यशेषइति किम्, (११) तवस्तरमिति तवः । तरम्,
 (१२) अत्रेतिकरणे परत्वावस्थितेऽपि सकारो विद्यतएव
 (१३) अस्यावधेः प्राग्भूतत्वात् ॥

(१) ३४ । २० ॥

(२) ४ । ३३ ॥

(३) ३ । ३६ ॥

(४) ३३ । ११ ॥

(५) ३० । १९ ॥

(६) २९ । ५५ ॥

(७) १९ । २ ॥

(८) ११ । ४४ ॥

(९) १७ । ५५ ॥

(१०) ७ । ४० ।

(११) ११ । १५ । अत्र तथयोः समित्यनेन सकारो भवति ॥

(१२) उपस्थितं विना इतिपरत्वाऽसम्भवात् । स्थितोपस्थितस्य तु एकपदविषय-
 त्वादान्तःपदविकारागमविषयोऽयं निषेधः । अध्याये इत्यधिकारावध्यर्थम् ॥

(१३) अस्यावधेः परभूत्वादिति 'क' पुस्तकस्य पाठइति ॥ अध्याये किम् ३० ।
 १८ गोव्यच्छमिति गो । व्यच्छम् । इत्यादौ 'स्वरे भाव्यन्तस्था'मिति सूत्रेण यकारो
 भवति । अयं निषेधो विकारवतः पदस्यैव स्थितोपस्थिते नान्यत्र तेन ५ । १ । रा-

इतिवच्चर्चयाम् ॥ २० ॥

इतिकरणात्पुरतो यत्पुनः पदवचनं तच्चर्चाशब्देनो-
च्यते तत्रेतिवत् इताविव, यथा इतिकरणे परत्वावस्थि-
ते आगमविकाराश्च न भवन्ति एवमिहापि न भवन्ति,
यथा (१) श्रेयः कर, चक्षुः पाः । स्वः साम्, धूः सहौ,
दुः दभः । वन सदः । अवरः पराय । सु चन्द्र । दुधु-
क्षन् । सुसाव । पुरीषवाहनः । समहानः । दृष्टिमान्
इव । एवं ह्याहुः “लोपागमविकारांश्च नैवेतिकरणे
स्मृताः । अवग्रहस्तु चर्चयामितिना चोपदिश्यते ॥

ककारपकारयोः सकारम् ॥ २१ ॥

विसर्जनीयोऽधिकृतः स यथादिष्टं ककारपकार-
योः प्रत्यययोः सकारमापद्यते, यद्यप्यत्राविशेषेण स-
कारउक्तः तथापि कण्यपूर्वस्यैव सकारः, अकण्यपूर्वस्य
तु प्रकारोऽभिप्रेतः, यतः ‘कृषीश्च कृधौ सकारमिति’
अकण्यपूर्वस्य सकारं विदधाति, अतोऽकण्यपूर्वस्य प्र-
कारो भवतीति निश्चीयते ॥

भाव्युपधः प्रकारम् ॥ २२ ॥

यस्पोषदऽइति रायस्पोष । दे । अत्र “रायः सहसस्पोषपुत्रयोः” इत्यनेन प्राति-
शाख्यस्थसूत्रेण सकारो भवति ॥

(१) अत्र सूत्रे यान्युदाहरणानि दत्तानि तेषामङ्गाः पूर्वसूत्रोक्तोदाहरणाङ्गैर्ज्ञा-
तव्याः ॥

अकण्ठो भावीत्युक्तम् भाव्युपधो विसर्जनीयः प्र-
कारमापद्यते ककारप्रकारयोः प्रत्यययोः । कण्ठपूर्वस्य
तु सकारएव एतयोरुदाहरणान्यग्रेतनसूत्रेषु द्रष्टव्या-
नि अधिकारसूत्रमेतत् ॥

अविर्निरिडइडाया वसतिर्व-
रिवः ॥ २३ ॥

आविः निः इडः इडायाः वसतिः वरिवः इति ए-
तेषां विसर्जनीयः सकारं प्रकारं चापद्यते यथायोगं
ककारप्रकारयोः प्रत्यययोः, यथा (१) आविः कृणुष्व,
आविष्कृणुष्व, निः यथा (२) अम्बनिष्परसमरीर्षिदाम्,
इडः यथा (३) इडस्पदे समिद्धसे, इडायाः यथा (४)
इडायास्पदमसि । वसतिः यथा (५) पर्षेवो वसति-
ष्कृता, वरिवः यथा (६) अयन्नो ऽग्निर्वरिवस्कृ-
णोतु ॥

दिवोऽककुत्पृथिव्योः ॥ २४ ॥

(१) १३ । १३ ॥

(२) ६ । ३६ ॥

(३) १५ । ३० ॥

(४) ४ । २२ ॥

(५) १२ । ७२ ॥

(६) ५ । ३७ ॥

दिवद्रत्येतस्य सम्बन्धी विसर्जनीयः सकारमापद्यते
ककुत्पृथिवीशब्दौ वर्जयित्वा, यथा (१) दिवः पुत्राय
दिवस्पुत्राय सूर्याय, (२) दिवस्पृष्टे व्यचक्षतीम्, (३)
दिवस्पृष्टे ज्योतिष्मतीम्, अककुत्पृथिव्योरिति किम्
(४) अग्निर्मूर्द्ध्वा दिवः ककुत्, (५) दिवः पृथिव्याः
पर्योजः ॥

रायः सहसः पोषपुत्रयोः ॥ २५ ॥

रायः सहसद्रत्येतौ विसर्जनीयौ सकारमापद्यते
यथासङ्ख्यं पोषपुत्रयोः परयोः, रायः यथा (६)
रायः पोषेण, मा व्यर्थं रायस्पोषेण वि यौष्म, स-
हसः यथा (७) सहसः पुत्रः सहसस्पुत्रोऽद्भुतः ॥

तमसोऽपरसत्तात् ॥ २६ ॥

तमसद्रत्ययं विसर्जनीयः सकारमापद्यते परस्ता-

- (१) ४ । ३५ ॥
(२) १५ । ६५ ॥
(३) १५ । ५८ ॥
(४) ३ । १२ ॥
(५) २९ । ५३ ॥
(६) ४ । २२ ॥
(७) ११ । ७० ॥

च्छब्दं (१) सुक्ता, यथा (२) तमसः पारम् तमसस्प्या-
रमस्य, अपरस्तादिति किम् (३) आदित्यवर्षन्तमसः
परस्त्तात् ॥

तपसस्पृथिव्याम् ॥ २७ ॥

तपसइत्ययं विसर्जनीयः पृथिव्यां प्रत्यये सकार-
मापद्यते, यथा (४) धर्त्ता दिवो विभाति तपसस्पृ-
थिव्याम् ॥

अद्ध्वनो रजसो रिषः स्पृश-
स्पातौ ॥ २८ ॥

अद्ध्वनः रजसः रिषः स्पृशः एते विसर्जनीयाः पा-
तौ प्रत्यये सकारमापद्यन्ते, अद्ध्वनः यथा (५) अद्ध्वनः
पातु पूषाऽद्ध्वनस्प्यात्विन्द्राय । रजसः यथा (६) रजसः
पाति रजसस्प्यात्यनौ, रिषः यथा (७) रिषः पातु
स नो दिवा सरिषस्प्यातु नक्ताम्, पाताविति धा-

(१) वृज्जयित्वा इति, क, पुस्तकपाठः ॥

(२) १२ । ७३ ॥

(३) ३१ । १८ ॥

(४) ३७ । १६ ॥

(५) ३ । १२ ॥

(६) १७ । ६० ॥

(७) १८ । ७३ ॥

तुग्रहणम् अतद्दहापि भवति, (१) दे॒व रि॒षस्प॑प्माहि,
स्मृ॒शः यथा (२) स॒स्पृ॒शस्प॑प्माहि ॥

अ॒ध्व॒न॒स्क॒कुर्वि॑ति च ॥ २९ ॥

अध्वनइत्ययं विसर्जनीयः कुर्वित्येतस्मिंश्च प्रत्यये स-
कारमापद्यते, यथा (३) सका॑माँऽ२ ॥ अ॒ध्व॒न॒स्कुरु॑ ॥

स॒मा॒न॒प॒दे च ॥ ३० ॥

एकस्मिंश्च पदे यो विसर्जनीयः स ककारप्रकारयोः
प्रत्यययोर्यथायोगं सकारं षकारं चापद्यते, यथा (४)
श्रेयः॑ कर श्रेय॑स्कार, भूयः॑ कर भूय॑स्कार, (५) आ॒युः॑
पाः॑ आ॒युष्पाः॑ ॥

प॒रा॒व॒व॒सा॒ने ॥ ३१ ॥

अवसानस्ये परीत्येतस्मिन्पदे प्रत्यये अधस्तनपद-
सम्बन्धी विसर्जनीयः सकारमापद्यते, यथा (६) ओ-
ष॑धयः परि॑ दि॒वः॑ ओष॑धय॒स्प॒रि॑, अवसानइति किम्

(१) ३ । ४० ॥

(२) ३७ । ११ ॥

(३) २६ । १ ॥

(४) १० । २० ॥

(५) २२ । १ ॥

(६) १२ । ९१ ॥

(१) तमग्ने हेडः परि ते वृणक्तु ॥

कविष्करत्कृधिषु ॥ ३२ ॥

कविः कर्त्तु कृधि एतेषु च पदेषु प्रत्ययेषु अधस्त-
नपदसम्बन्धी विसर्जनीयः सकारं षकारं चापद्यते,
कविः यथा (२) वसुः कविः सऽद्विधानो वसुष्कविः,
कर्त्तु यथा (३) यथा नो वस्यसः कर्त्तु यथा नो
वस्यसस्कर्त्तु, कृधि यथा (४) पुनः कृधि प्रबुधे नः
पुनस्कर्त्तुधि ॥

कृषीश्च कृधौ सकारम् ॥ ३३ ॥

कृधौ च प्रत्यये कृषीरित्ययं विसर्जनीयः सकार-
मापद्यते यथा (५) कृषीः कृधि सुसस्याः कृषीष्कृधि,
ननु कविष्करत्कृधिष्विति कृधौ कृषीरिति विसर्जनी-
यस्य सकारः प्राप्तः किमनेन सूत्रेण क्रियते एवन्तर्ह्य-
कण्ठोपधस्य षकारो ऽभिप्रेतः स माभूदिति सकार-
विधानम् अस्माच्च ज्ञापकादकण्ठोपधः षकारमा-
पद्यते इत्येतदध्यवस्थामः ॥

(१) १३ । ४५ ॥

(२) १५ । ३६ ॥

(३) ३ । ५८ ॥

(४) ४ । १४ ॥

(५) ४ । १० ॥

सदो द्यौर्नमस्कृतम्पितापथेषु ॥३४॥

सदः द्यौः नमः एतेषां सम्बन्धी विसर्जनीयः यथा सङ्घं कृतं पिता पथ इत्येतेषु पदेषु प्रत्ययेषु सकार-
षकारावापद्यते सदः यथा (१) येषामाप्सुसदस्कृतम्,
द्यौः यथा (२) उपहृतो द्यौष्मिता, नमः यथा (३)
विश्वायः शर्मा सम्पथा नमस्पथे ॥

पतितालव्यस्वरोदये ॥ ३५ ॥

पतिशब्दे तालव्यस्वरोदये प्रत्ययेऽधस्तनपदसम्बन्धी
विसर्जनीयः सकारमापद्यते यथा (४) वाचः^५ प्रतिम्
वाचस्पतिं विश्वकर्माणमूतये, (५) ब्रह्मणः पते
ब्रह्मणस्पते त्वमस्य, (६) वाचः^५ पतये वाचस्पतये
पवस्व ॥

पदे च ॥ ३६ ॥

पतिशब्दे च पदे एतद्भवति न पदावयवे यथा (७)

-
- (१) १३ । ८ ॥
 (२) २ । ११ ॥
 (३) १८ । ५४ ॥
 (४) ८ । ४५ ॥
 (५) ३४ । ५८ ॥
 (६) ७ । १ ॥
 (७) ८ । ४५ ॥

व्वाचः^१ पतिम्, पद इति किम् (१) यतो^२जातः^३ प्प्रजा-
पतिः, (२) परमेष्ठ्यभिधीतः^४ प्प्रजापतिः ॥

न परुषः परुषि ॥ ३७ ॥

परुषइत्ययं विसर्जनीयः परुषि प्रत्यये न सकारमाप-
द्यते, यथा (३) परुषः परुषस्परि, समानपदे चेति
प्राप्तस्य प्रतिषेधः ॥

वाजपतिर्व्वासऽएदिधिषुरन्तःपर्श-
व्येनान्तःपाश्वर्यमिति च ॥ ३८ ॥

वाजपतिः वासः एदिधिषुः अन्तःपर्शव्येन अन्तः-
पाश्वर्यमित्येते विसर्जनीयाः यथा प्राप्तं न सकारष-
कारावापद्यते, (४) वाजपतिः कविः “कविः करत्क-
विष्विति” प्राप्तिः (५) व्वासः पत्न्युलीम्, (६) एदिधिषुः-
पतिम्, “समानपदे चे”त्युभयोः प्राप्तिः अन्तः पर्शव्येन

(१) २३ । ६३ ॥

(२) ८ । ५४ ॥

(३) १३ । २० ॥

(४) ११ । २५ ॥

(५) ३० । १२ ॥

(६) ३० । ९ ॥

यथा (१) अन्तः पशव्येनोग्रम्, अन्तः पाश्वर्यम् यथा
(२) अन्तः पाश्वर्यम्हादेवस्य, “समानपदे चे”त्युभयोः
प्राप्तिः ॥

अहः पतौ रेफम् ॥ ३९ ॥

अहरित्ययं विसर्जनीयः पतिशब्दे प्रत्यये रेफमा-
पद्यते यथा (३) अहर्षितये स्वाहा, समानपदइति प्राप्ते
सकारे तदपवादो रेफः ॥

परश्च मूर्द्धन्यम् ॥ ४० ॥

इतउत्तरं लोपागमवर्णविकारान्वक्ष्यामः ते ताव-
द्भविष्यन्ति परश्च दन्त्यो मूर्द्धन्यमापद्यते अधिकारसूत्र-
मेतत् ॥

स्वधूः साँसहयोः ॥ ४१ ॥

स्वः धूः एतौ विसर्जनीयौ रेफमापद्यते यथासङ्-
ख्यं साँसहयोः प्रत्यययोः परश्च दन्त्यो मूर्द्धन्यमापद्यते
स्वः यथा (४) स्वः साम् स्वर्षाम्प्राँ वृजनस्य गोपाम्,

(१) ३९ । ८ ॥

(२) ३९ । ९ ॥

(३) ९ । २० ॥

(४) ३४ । २० ॥

धूः यथा (१) धूः साहौ धूर्षाहौ युज्येथाम् (२) ॥

उकारं दुर्हे ॥ ४२ ॥

दुरित्ययं विसर्जनीय उकारमापद्यते दकारे प्रत्य-
ये उकारात्परञ्च दन्त्यो मूर्धन्यमापद्यते यथा (३) दुः
दभः परि ते दूढभो रथः ॥

नाशे च ॥ ४३ ॥

नाशे च प्रत्यये दुरित्ययं विसर्जनीय उकारमाप-
द्यते उकारात्परञ्च दन्त्यो मूर्धन्यमापद्यते यथा (४) दुः
नाशः दूणाशः ऋग्यसुदाहरणम् ॥

पुरो दाशे ॥ ४४ ॥

पुरइत्ययं विसर्जनीयो दाशे प्रत्यये उकारमापद्य-
ते परञ्च मूर्धन्यम् यथा पुरः दाशः अत्र रूपसिद्धिः
विसर्जनीयादेशस्योकारस्य चोपधाकारस्य च उवर्ण
ओकारमित्येकादेशोकारः ततः परस्य दकारस्य

(१) ४ । ३३ ॥

(२) साहसाहयोरिति 'क' पुस्तकपाठः ॥ धुर्वाहौ इति कण्वशास्त्रियानां च
पाठः ॥

(३) ३ । ३६ ॥

(४) दुर्जामाज्ञदो बहुदक्षिणो दूणासश्च इति सौत्रः । दूणाशं सख्य तव । अन्य-
शास्त्रियानामिदमुदाहरणम् ॥

डकारः, (१) पुरोडाशैर्हवींष्या ॥

अनसो वाहौ सकारो डकारम् ॥४५॥

अनशब्दः सान्तः तस्य वाहौ प्रत्यये सकारमापद्यते
यथा (२) अनस् वाहम् अनङ्वाहमन्वारभामहे ॥

उकारमितः सिञ्चतौ सोपधः ॥४६॥

इतः शब्दसम्बन्धी विसर्जनीय उपधासहित ओ-
कारमापद्यते सिञ्चतौ प्रत्यये परश्च मूर्धन्यम् यथा (३)
इतः सिञ्चत परीतो पिञ्चता सुतम् ॥

षड्दशदन्तयोः सङ्ख्यावयो

ऽर्थयोश्च ॥ ४७ ॥

षडित्येतस्य शब्दस्य च शब्दादन्यो वर्णः सोपध-
ओकारमापद्यते परश्च मूर्धन्यं दशदन्तयोः प्रत्यययो-
र्यथा सङ्ख्यं सङ्ख्यावयसोरभिधायकयोः । यथा (४)
षट् दश षोडश च मे, षट् दन्ता अस्थेति षोडन्तः
एतच्च शिष्यव्युत्पादनार्थम् न हि संहितायामुदाहर-

(१) १९ । २० ॥

(२) ३५ । १३ ॥

(३) १९ । २ ॥ अत्र विसर्गस्थाने परसवर्णस्य सकारस्यापवादो द्रष्टव्य इति ।

(४) १८ । २५ ॥

णं लभ्यते (१) ॥

तआघादनाडम्बरात् ॥ ४८ ॥

आघाशब्दात्परस्तकारः परश्च मूर्धन्यमित्यनेन मूर्धन्यमापद्यते स चेदाघाशब्द आडम्बरशब्दात्परो न भवति यथा (२) दा॒रु आ॒घातः' गो॒धा काल॑का दा॒र्वा-घा॒टः', अनाडम्बरादिति किम् (३) शब्दायाडम्बरा-घातम् ॥

वनसदोऽवेटो रेफेण ॥ ४९ ॥

वनशब्दः सदशब्दे प्रत्यये रेफेण व्यवधीयते स चेद्वनशब्दो वेट्शब्दात्परो न भवति यथा (४) व्वन॒सदः-व्वन॒र्षदे॑ वा॒यवो न सोमा॑, अवेट् इति किम् (५) ब॒र्हिषदे॑ व्वे॒ड्वन॒सदे॑ व्वेट् ॥

पत्यौ च सकारेण ॥ ५० ॥

पतिशब्दे च प्रत्यये वनशब्दः सकारेण व्यवधीयते,

(१) षोडश्व्यो अस्य महतो महित्वा । अन्यशास्त्रीयानां पाठः ॥

(२) २४ । ३५ ॥

(३) ३० । १९ ॥

(४) ३३ । १ ॥

(५) १७ । १२ ॥

यथा (१) वनपतिः वनस्पतिः शमिता देवः ॥

ऋतावरौ च पतिपरयोः ॥ ५१ ॥

ऋतः अवरश्च शब्दौ सकारेण व्यवधीयेते यथा-
सङ्घं पतिपरयोः प्रत्यययोः, यथा (२) ऋतपते ऋत-
स्पते त्वष्टृर्ज्जिमातरङ्गुत, (३) अवरपराय अवरस्पराय
शङ्खधूमम् ॥

तद्बृहतौ करपत्योस्तलोपश्च ॥ ५२ ॥

तत् बृहत् एतौ करपतिशब्दयोः प्रत्यययोर्यथास-
ङ्घं सकारेण व्यवधीयेते पूर्वपदयोश्च तकारलोपो
भवति, यथा (४) तत् करान् तस्करां २॥५ उत, (५)
बृहत् पतिः बृहस्पतिः ॥

परिकृते षकारेण ॥ ५३ ॥

परोत्येतत्पदं कृते प्रत्यये षकारेण व्यवधीयते, य-

(१) २९ । ३५ ॥ इदं शास्त्रान्तरविषयम् । अत्र छेत्तुं तु सकारेणेति पदस्या-
नुवृत्तिप्रदर्शनार्थम् ॥

(२) २७ । ३४ ॥

(३) ३० । १९ ॥

(४) ११ । ७८ ॥

(५) २५ । १९ ॥

या (१) परि॒क्षताः परि॑ष्कृताः शु॒क्लाः^५ ॥

चन्द्रे सु शकारेण ॥ ५४ ॥

चन्द्रे प्रत्यये सुशब्दः शकारेण व्यवधीयते, यथा (२)
सुचन्द्र उ॒भे सु॑च्चन्द्र स॒र्पि॒षः ॥

दुधुक्षन्धो दकारम् ॥ ५५ ॥

दुधुक्षन्धेतस्य शब्दस्य धकारो दकारमापद्यते,
यथा (३) दुधुक्षन् सहस्रधाराम्बृ॒हती॑न्दु॒क्षन् ॥

भाविब्भ्यः सः ष॑ठ० समानपदे ॥ ५६ ॥

अकण्ठ्यो भावीत्युक्तम् भाविभ्यउत्तरः सकारः ष-
कारमापद्यते एकपदस्थौ चेद्भावि॒सकारौ॑ भवतः, यथा
(४) गो॒स्थानम् व्रज॑ङ्गच्छ गो॒ष्ठानम्, (५) परमे॒स्थी
पर॒मे॒ष्ठ्यभिधी॑तः, (६) सु॒साव सु॒षाव सोम॑म्, (७) सी-

(१) २१ । ४२ ॥ परिष्कृण्वन्ति इत्युदाहरणं शास्त्रान्तरीणिम् ॥

(२) १५ । ४३ ॥

(३) ३३ । २८ ॥

(४) १ । २५ ॥

(५) ८ । ५४ ॥

(६) १९ । २ ॥

(७) २५ । ४६ । तस्मादित्युत्तरस्येत्यव्यवहितस्य तेन प्रेषितइत्यत्र तकारस्य
‘पात्तयौ’ मूर्द्धन्यमित्यनेन सूत्रेण टकारात्मको मूर्द्धन्यवर्णो न भवतीति सुज्ञेयः ॥

सधाम सीषधामेन्द्रश्च, भाविभ्यइति किम् (१) ध्रुवस-
दन्त्वा, समानपदइति किम् (२) वि सीमतः सुरुचः ॥

अनुस्वाराच्च तत्पूर्वात् ॥ ५७ ॥

अनुस्वाराच्च परः सकारः प्रकारमापद्यते, भावि-
पूर्वात् यथा (३) तपूँष्यग्ने, (४) पुरोडाशैर्हवीँष्या,
तत्पूर्वादिति किम् (५) उत्सत्त्वनाम्नामकानाम्नाँसि ॥

करेफाभ्याञ्च ॥ ५८ ॥

ककाररेफाभ्यां च परः सकारः प्रकारमापद्यते,
ककाराद्भवति यथा (६) दिक् सु ये चैनर्ठं रुद्राऽत्रभितो
दिक्षु, ऋक् सु ऋक्षु, रेफाद्भवति यथा (७) गीः सु
गीर्षु, धूः सु धूर्षु, ननु (८) च यत्र पदकारोऽन्यथाभूतं

(१) ९ । २ ॥

(२) १२ । ३ ॥

(३) १३ । ९ ॥

(४) १९ । २० ॥

(५) १७ । ४२ ॥

(६) १६ । ६ ॥

(७) रेफात्परो ३३ । १ । वनर्षदो व्वायवः चकाराद्वाविपूर्वात्परस्य सकार-
स्योदाहरणं ७ । ३८ अनुष्वधम्मदायोति ज्ञेयम् ॥

(८) ननु यदुदाहरणं व्याकरणसाध्यं न भवति तत्र प्रातिशाख्यलक्षणं कर्तुमुचितं
एवं कृते सति करेफाभ्यामित्यादीनां वैयर्थ्यामिति चेत्सत्यमित्येवं प्रसङ्गादाचार्येण

पदं करोति अन्यथा चार्घसंहिता तत्रैव लक्षणं कर्तुं
युज्यते, यथा सुसाव सुषाव, यत्र पुनः पदकारस्य (१)
चार्घसंहितायाश्च समानवाक्यत्वं तत्र लक्षणं न घटते
व्यारणस्य विषयः सत्यमेव यदि नाम प्रसङ्गमुपजीव-
दाचार्येण शिष्यव्युत्पत्त्यर्थं (२) कश्चिद्व्याकरणलक्षणइ-
हासञ्जितः एवं संहितायामविद्यमानेषु लक्षणं द्रष्ट-
व्यम्, अथवा यथा एधाहारस्य मध्वाहरणमुदकाहा-
रस्य मत्स्याहरणं पुष्पाहारस्य फलाहरणम् एवमेत-
दपि एवं च कृत्वा अदोषणवेति ॥

नेः सीदतेः ॥ ५९ ॥

नेः परस्य सीदतेः सकारः षकारमापद्यते यथा
(३) नि सीदत एदं बर्हिर्निषीदत ॥

ससाद च ॥ ६० ॥

नेः परस्य ससादशब्दस्य सकारः षकारमापद्यते,

शिष्यव्युत्पत्त्यर्थं कश्चिद्व्याकरणविषयोऽपि प्रदर्शितः । वस्तुतस्तु ऋक्सामयोरित्युदा-
हरणे हिर्दं० सीर्द्धक्सामयोरित्यादि वक्ष्यमाणनिषेधशास्त्रेण षत्वमपवादित्यति तत्र प्रा-
प्तिपूर्वकत्वात्प्रतिषेधस्येति तत्प्राप्त्यर्थमत्र लेखनं संहितायामविद्यमानपदव्युत्पादनम-
पि शिष्यव्युत्पत्त्यर्थञ्चेति न कश्चिदोषः यथा इध्मानयनार्थं प्रवृत्तस्य नरस्य प्रसङ्गा-
च्छाकानयनवत् । यद्वा पञ्चदशसु शाखासु लक्षणार्थमाचार्यस्य प्रवृत्तेः । अथ वा
तत्तच्छाखासिद्धौदाहरणसिद्धयर्थं सूत्राधिक्यकरणमिति द्रष्टव्यम् ॥

(१) आप्ट्याः संहिताया एकवाक्यत्वमिति 'ष' पुस्तकपाठः ॥

(२) कश्चिद्व्याकरणलक्ष्यलक्षणइहाशङ्कित इति 'य' पुस्तकपाठः ॥

(३) ७ । ३४ ॥

यथा (१) नि ससाद नि षसाद धृतवव्रतः, असमानप-
दार्थ आरम्भः ॥

ओकारात्सु ॥ ६१ ॥

ओकारात्पदात्परः सुसकारः षकारमापद्यते, यथा
(२) मो सुनः मो पूणः ॥

ऊश्चापृक्तात् ॥ ६२ ॥

एकवर्णं पदमष्टकमित्युक्तम् ऊकाराच्चापृक्तसञ्ज्ञात्प-
रः सुसकारः षकारमापद्यते, यथा (३) ऊँ इति ऊ सु
नः ऊँ ऽऊषुणः ॥

अभेश्च ॥ ६३ ॥

अभेरुपसर्गाच्च परः सुसकारः षकारमापद्यते, य-
था (४) अभि सु नः अभीषुणः सखीनाम् ॥

परेश्च सिञ्चतेः ॥ ६४ ॥

(१) १० । २७ ॥ एतस्य सदधातुजत्वात्स्पष्टार्थम् । सीदतीरति इकस्तिपौ धा-
तुर्निर्देशइति सिद्धे पुनर्ग्रहणं व्याकरणानभिज्ञस्य मन्दधियः परिज्ञापनार्थञ्चेति ॥

(२) ३ । ४६ ॥ ओषुधृष्टिराध्वरा । सहोषुणो वज्रहस्तैः । इदमुदाहरणद्वयमन्य-
शास्त्रीयं द्रष्टव्यम् ॥

(३) ११ । ४२ ॥

(४) ३६ । ६ ॥

परेरुपसर्गाच्च परः सिञ्चतेः सकारः षकारमाप-
द्यते, यथा (१) परि^१ सिञ्चन्ति ॥

अभेश्च ॥ ६५ ॥

अभेरुपसर्गाच्च परः सिञ्चतेः सकारः षकारमाप-
द्यते संहितायाम्, यथा (२) अभि सिञ्चामि अभिषि^१-
ञ्चाम्यसौ ॥

अव्यवहितोऽपि ॥ ६६ ॥

अकारव्यवहितोऽप्यभेरुत्तरः सिञ्चतेः सकारः ष-
कारमापद्यते संहितायाम्, यथा (३) अभ्यसिञ्चन् या-
भिर्भि^१त्रावरुणावभ्यषिञ्चन् ॥

वेर्युदयः ॥ ६७ ॥

वेरुपसर्गात्परः सकारो यकारोदयः षकारमाप-
द्यते, (४) विस्वामि तन्ते विविश्याम्यायुषो न मद्भ्यात्,
यकारोदयइति किम् (५) वि स्वः पश्यव्यन्तरि^१क्षम् ॥

(१) १९ । २८ ॥ परेः सिञ्चतेः, इति 'स्व' 'ग' पुस्तकपाठः ॥

(२) ९ । ३० ॥ अभेरित्येव 'ग' 'व' पुस्तकपाठः ॥

(३) १० । १ ॥

(४) १२ । ६५ ॥

(५) ७ । ४४ ॥

हेर्मिथोदयः ॥ ६८ ॥

हिशब्दात्परः सकारो मकारोदयो वा थकारोद-
यो वा षकारमापद्यते, मकारोदयो यथा (१) हि स्त
अस्ति हि ज्माते शुष्मिन्नवयाः, थकारोदयो यथा (२)
हि स्था आपो हि ष्ठा मयोभुवः ॥

द्यवेश्च ॥ ६९ ॥

द्यविशब्दाच्च परः सकारः षकारमापद्यते यथास-
म्भवं मकारोदयः थकारोदयश्च संहितायाम् यथा (३)
द्यवि स्थ ये ऽअन्तरिक्षे ऽयुऽउप द्यविष्ठ ॥

नेः स्त्यास्तनोः ॥ ७० ॥

नेरूपसर्गात्परयोः स्त्यास्तन्योर्धात्वोः सकारः षका-
रमापद्यते संहितायाम्, यथा (४) निः स्त्यायताम् आ-
प्यायतान्निष्ठायताम्, निस्तनिहि (५) निष्ठनिहि दु-
रिता बाधमानः ॥

(१) ३ । ४६ ॥

(२) ११ । ५० ॥

(३) ३३ । ५३ ॥ मकारस्तु पूर्वसूत्रान्न सम्बद्धयते कुतः उदाहरणस्यासम्भवात् ॥

(४) ६ । १५ ॥ ष्यै सङ्घाते इत्यस्मादातोरूपम् । परन्तु पदपाठे आर्षत्वात्
स्त्यायतामित्येतत्पदघटकीभूतस्य सकारस्य षत्वविधानादृषिमते तथैव धातुरस्ति ॥

(५) २९ । ५६ । निः स्तनिहि । इति स्थिते 'लुङ्मुदि जितपरे' इति विसर्गलोपे-
कृते सस्य षः । स्तनशब्दे चुरादिरदन्तः । नेस्त्यास्तन्योरिति 'स्' पुस्तकपाठः ॥

ततक्षौ ॥ ७१ ॥

ततक्षुरित्येतस्मिन्नुत्तरपदे निरूपसर्गसम्बन्धविसर्जनीयसकारः प्रकारमापद्यते यथा (१) निः ततक्षुः स्वधया निष्ठृतक्षुः ॥

अनोः स्तुवन्त्याम् ॥ ७२ ॥

अनोरूपसर्गात्परः स्तुवन्तिसकारः प्रकारमापद्यते यथा (२) अनु स्तुवन्ति अनुष्टुवन्ति पूर्वधा ॥

दुष्प्वान्यम् ॥ ७३ ॥

निपातनसूत्रमेतत् भाविभ्यउत्तरस्य सकारस्य षत्वमित्युक्तं समानपदे इह तु विसर्जनीयेन व्यवधानान्न प्राप्नोति अतः षत्वं निपात्यते संहितायाम्, यथा (३) दुष्प्वान्यम् अप्र दुष्प्वान्यठं सुव ॥

वन्दारुर्माकिः ॥ ७४ ॥

वन्दारुः माकिः अनयोर्विसर्जनीयस्य सकारः प्रकारमापद्यते संहितायाम् तथयोः समिति विसर्ज-

(१) १७ । ८२ ॥

(२) ३३ । ९७ ॥

(३) ३५ । ११ ॥

नीयस्य सकारउक्तस्तस्यैव षत्त्वम् यथा (१) वन्दाकः ते
वन्दाकष्टे तन्वँ वन्दे अग्ने, (२) माकिः ते माकिष्टे
व्यधिरादधर्षीत् ॥

सहेः पृतनायाः ॥ ७५ ॥

एतदपि निपातनसूत्रम् अभाविपूर्वत्वात्प्रकारो न
प्राप्नोति स निपात्यते । यथा (३) पृतनासाह्याय च पृ-
तनासाह्याय च ॥

सधिरठंशुरदितिः ॥ ७६ ॥

सधिः अंशुः अदितिः एतेषां विसर्जनीयसकारः
प्रकारमापद्यते संहितायाम्, सधिः (४) यथा सधिः तव
सधिष्टव सौषधीः, अंशुः यथा (५) अंशुः ते अं-
शुष्टे देव सोम, अदितिः यथा (६) अदितिः त्वा अ-
दितिष्टा देवी ॥

वायुरग्निरग्नेरेकाक्षरे ॥ ७७ ॥

(१) १२ । ४२ ॥

(२) १३ । ११ ॥

(३) १८ । ६८ ॥

(४) १२ । ३६ ॥

(५) ५ । ७ ॥

(६) ११ । ६१ ॥

वायुः अग्निः अग्नेः एतेषां विसर्जनीयसकारः ष-
कारमापद्यते एकाक्षरे पदे प्रत्यये, यथा (१) वायुः ते
व्वायुष्टेऽधिपतिः, (२) अग्निः ते अग्निष्टेऽधिपतिः,
(३) अग्नेः त्वा अग्नेष्ट्वास्येन, एकाक्षरइति किम् (४)
अग्निः तिग्मेन अग्निस्तिग्मेन शोचिषा, (५) अ-
ग्नेः तनूः अग्नेस्तनूरसि ॥

सकारपरे च ॥ ७८ ॥

सकारः परो यस्मादेकाक्षरात्स तथोक्तः तस्मिन्ने-
काक्षरे प्रत्यये च शब्दादधस्तनपदसम्बन्धी विसर्ज-
नीयसकारः षकारमापद्यते संहितायाम्, यथा (६)
बृहस्पतिः त्वा सुम्ने बृहस्पतिष्ट्वा सुम्ने, (७) प्रजा-
पतिः त्वा सादयतु प्रजापतिष्ट्वा सादयतु, सकारपर-
इति किम् (८) विष्णुस्त्वा ब्रमताम् (९) सवितुस्त्वा-
प्रसवे ॥

(१) १४।१४॥

(२) १३।२४॥

(३) २।११॥

(४) १७।१६॥

(५) १।१५॥

(६) ४।२१॥

(७) १३।१७॥

(८) २।९॥

(९) १।३१॥

मातृभिरर्चिभिः पायुभिर्व्वरू- त्रीः ॥ ७९ ॥

मातृभिः अर्चिभिः पायुभिः वरूत्रीः एतेषां च प्र-
दानां विसर्जनीयसकारः प्रकारमापद्यते एकाक्षरे
प्रत्यये, मातृभिः यथा (१) मातृभिः त्वम् मातृभिष्ट्वम्,
अर्चिभिः यथा (२) अर्चिभिः त्वम् अर्चिभिष्ट्वम्, पा-
युभिर्यथा (३) पायुभिः त्वम् पायुभिष्ट्वम्, वरूत्रीः
यथा (४) वरूत्रीः त्वा वरूत्रीष्ट्वा देवीः ॥

षात्तथौ मूर्द्धन्यम् ॥ ८० ॥

प्रकारात्परः तकारथकारौ मूर्द्धन्यमापद्यते विका-
री यथासन्नमिति परिभाषितत्वात् तकारस्य ठकारः
थकारस्य ठकारः यथा (५) वरूत्रीष्ट्वा (६) कृष्णोऽस्या-
खरोष्ठः

प्रकृत्या नानापदस्थे तकारे ॥ ८१ ॥

(१) १२ । ३८ ॥

(२) १२ । ३२ ॥

(३) ३३ । ६९ ॥

(४) ११ । ६१ ॥

(५) ११ । ६१ ॥

इतउत्तरं प्रकृत्या सकारो भविष्यति समानपदस्थः
नानापदस्थस्तु यः प्रकृतिभावः स (१) तकारे प्रत्येतव्यः
अपवादसूत्रमेतत् ॥

अनुसन्तनोतु बृहस्पतिसुतस्य सुस-
मिद्द्वाय सुसन्दशमभिसत्त्वाऽभिसं-
विशन्तु सुसस्याऽअतिस्थूलम्मुसले-
पत्क्रीसँय्याजान् क्रतुस्थलाञ्जिस-
क्वथो दिविस्पृशा हृदिस्पृशठे० हिष्-
सीर्क्वक्वसामयोर्क्वक्वसामाभ्यान्ति-
त्तिरिः सीसेन सीसाः सीसम्पशुस-
निगोसनि प्रतिसदृङ् प्रतिसदृक्षास-
श्चतुस्त्रिंशत् ॥ ८२ ॥

अनुसन्तनोतु बृहस्पतिसुतस्य सुसमिद्वाय सुसदृ-

(१) अतकारे इति छेदः । अकारपूर्वस्तकारः अतकारः सकारः प्रकृत्या स्यात्
नानापदे च । नानापदस्थेऽतकारे परिभूते पूर्वपदस्थान्निमित्तादुत्तरपदस्थः सदइत्यस्य
सकारः प्रकृत्या स्यात् इत्यर्थः तकारपदान्तीयाभिप्रायेण तेन सदो दकारत्वेऽपि न
दोषः । अत्राकारव्यवहिततकारपरत्वं बोध्यम् त्वव्यवधानेन । पृथिविसदम् । उर्गिर-
सदो दुवस्वन्तः । अनेन प्राप्ते पुनर्योगिकरणं विकल्पार्थम् ॥

शम् अभि सत्त्वा अभि संविशन्तु सुसस्याः अतिस्थूलम्
सुसले पत्नीसंयाजान् क्रतुस्थला अञ्जिसक्थः दिवि-
सृष्टाः हृदिस्सृष्टम् हिंसीः ऋक्सामयोः ऋक्सामा-
भ्याम् तित्तिरिः सीमेन सीसा सीसम् पशुसनि गो-
सनि प्रतिसदृङ् प्रतिसदृक्षासः चतुस्त्रिंशत् एते स-
काराः प्रकृत्या भवन्ति सकारः षकारं प्राप्नोति स
निषिध्यतइति सूत्रार्थः, इदानीमुदाहरणानि दीयन्ते
अनुसन्तनोतु यथा (१) इदम्मे कर्मेदं वीर्य्यम्बुवोऽनुस-
न्तनोतु, बृहस्पतिसुतस्य यथा (२) बृहस्पतिसुतस्य देव,
सुसमिदृङ्वाय यथा (३) सुसमिदृङ्वाय शोचिषे, सुस-
न्दृष्टम् यथा (४) सुसन्दृष्टन्वा व्यम्, अभि सत्त्वा
यथा (५) अभि वीरोऽ अभि सत्त्वा सहोजाः, अभि
संविशन्तु यथा (६) इन्द्रमिव देवाऽ अभि संविशन्तु,
सुसस्याः यथा (७) सुसस्याः कृषीस्कृधि, अतिस्थूलम्

(१) एकपादीनामके २ काण्डे ३ प्रपाठके ३ अध्याये २ ब्राह्मणे एकचत्वारिंशत्
काण्डकायाम् ॥

(२) ८ । ९ ॥

(३) ३ । २ ॥

(४) ३ । ५२ ॥

(५) १७ । ३७ ॥

(६) १३ । २५ ॥

(७) ४ । १० ॥

यथा (१) अति^१स्तूलञ्चाति^२क्षञ्च, सुसले यथा (२) उलूखलमुसले, पत्नीसंय्याजान् यथा (३) शय्युनां पत्नीसंय्याजान्, क्रतुस्थला यथा (४) पुञ्जिक स्थला च क्रतुस्थला च, अञ्जिसक्कथो यथा (५) शितिकचो^३ञ्जिसक्कथः^४, दिविस्सृशा यथा (६) दृतप्प्रतीको बृहता दिविस्सृशा, हृदिस्सृशम् यथा (७) क्रतुन्न भद्द् हृदिस्सृशम्, एतेषां पदानां सकारो भाव्युपधत्त्वात्पत्वं प्राप्नोति तस्यैतेन प्रकृतिभावः, हिंसीः यथा (८) खधिते मैन् हिंसीः अनुस्वाराच्च तत्पूर्वादिति प्राप्तिः ऋक्क्क्षामयोः यथा (९) ऋक्क्क्षामयोः शिल्पे ऋक्क्क्षामाब्ध्या^५ सन्तरन्तः^६, करेफाभ्याञ्चेति प्राप्तिः, तित्तिरिः यथा (१०) तित्तिरिस्ते सम्पीणाम्, एकाक्षरे सकारपरे चेति प्राप्तिः, इदमर्थेन च नाना-

(१) ३० । २२ ॥

(२) प्रथमकाण्डे शातपथीयहविर्यज्ञनामके १ ब्राह्मणे २२ द्वाविंशतिकण्डिकायाम् ॥

(३) १९ । २९ ॥

(४) १५ । १५ ॥

(५) २४ । ४ ॥

(६) १५ । २७ ॥

(७) १५ । ४४ ॥

(८) ४ । १ ॥

(९) ४ । ९ ॥

(१०) २४ । ३६ ॥

प्रदृश्ये तकारइति सूत्रावयवः कृतः अन्यथातित्तिरिपदे
 सकारो न विद्यतइति मोहः स्यात्, सीसेन यथा (१)
 सीसेन तन्वं मनसा, सीसाः यथा (२) रजता हरि-
 णीः सीसायुजो युज्यम्, सीसम् यथा (३) सीसञ्च
 मे, पशुसनि यथा (४) प्रजासनि पशुसनि, गोसनि-
 र्यथा (५) यो गोसनिस्तस्य ऽत इष्टयजुषः । प्रतिस-
 दृङ् यथा (६) सदृङ् च प्रतिसदृङ् च, प्रतिसदृक्षा-
 सः यथा (७) प्रतिसदृक्षास ऽएतन, चतुस्त्रिंशत् य-
 था (८) चतुस्त्रिंशद्वाजिनः, न चात्र भावीविसर्ज-
 नीयव्यवहितः अतो नैवेह षत्वशंका किमनेन सूत्रा-
 वयवेनेति एवन्तर्हि येऽन्येपि चतुः शब्दविसर्जनीय-
 व्यवहितास्तेषां षत्वार्थम् । (९) यथा चतुः स्तोमः च-
 तुष्टोमः ॥

ऋकाररेफारुदयश्च ॥ ८३ ॥

-
- (१) १९ । ८० ॥
 (२) २३ । ३७ ॥
 (३) १८ । १३ ॥
 (४) १२ । ४८ ॥
 (५) ८ । १२ ॥
 (६) १७ । ८१ ॥
 (७) १७ । ८४ ॥
 (८) २५ । ४१ ॥
 (९) १४ । २४ ॥

कृकारोदयः रेफोदयः अरुदयश्च सकारः प्रकृत्या-
भवति, कृकारोदयः यथा (१) तिसृभिरस्तुवत, रेफो-
दयः यथा (२) तिस्रश्चमे, अरुदयः यथा (३) व्वाचो
विसर्जनम् ॥

पृथिविदिव्युपरिचर्षणिशकुनिया-
सिन्धुः ॥ ८४ ॥

पृथिवि दिवि उपरि शकुनि यासि एतेभ्यो भावि-
भ्यः परः सकारः प्रकृत्या भवति संहितायाम्, पृ-
थिवि यथा (४) पृथिवि सदन्वा, दिवि यथा (५) दिवि
सदन्देवसदम्, उपरि यथा (६) उपरि सदो दुर्वसन्तः,
चर्षणि यथा (७) चर्षणीसहं वेत्तु, शकुनि यथा (८)
शकुनि सादेन, यासि यथा (९) अवयासि सिन्धु-
ष्ठाः (१०) ॥

(१) १४ । २० ॥

(२) १७ । २४ ॥

(३) १ । १५ ॥

(४) ९ । २ ॥

(५) ९ । २ ॥

(६) ९ । ३६ ॥

(७) २० । १ ॥

(८) २५ । ३ ॥

(९) २१ । ३ ॥

(१०) पृथिवि सदन्वेत्यादीनि त्रयाणामाद्यानामुदाहरणान्युक्तानि । तत्र सिद्धानाम-

ऋषरेभ्यो नकारो णकारश्च समा- नपदे ॥ ८५ ॥

ऋकारप्रकाररेफेभ्यउत्तरो नकारो णकारमापद्य-
ते समानपदे, ऋकाराङ्गवति यथा (१) नृणाम्, षका-
राङ्गवति यथा (२) पूष्णः, रेफाङ्गवति यथा (३) पूष्णी,
एते प्रत्ययनकाराः ऋषरेफेभ्यउत्तराः सन्तो णकारमा-
पद्यन्ते, अयं तावत्सूत्रार्थो व्याकरणविषयप्रदर्शनार्थं
क्रियते ॥

स्वरयवहकपैश्च ॥ ८६ ॥

स्वरैर्यकारवकारहकारैः कवर्गपवर्गाभ्याञ्च व्यवहि-
तो नकारः ऋषरेभ्यउत्तरो णकारमापद्यते संहिता-
याम्, यथा (४) नृमनाः तृतीयमप्यु नृमणाः, (५)

त्र पुनर्ग्रहणं सौत्रस्य विधेरनित्यत्वज्ञापनार्थं तेन शुचिषत् नृषदित्यादाविव पृथिवि-
षदमित्यादि न प्रकृतिभावप्राप्तिः । अनेन प्राप्तिश्चेति विकल्पः फलितो भवति अन्य-
था प्रकृतस्यैतावतैव सिद्धेऽनानापदस्थे तकारे इति व्यर्थं स्यात् । प्रयोजनान्तराभा-
वात् । विकल्पश्च व्यवस्थाप्यते । यथा चरणपाठः पृथिविषदमित्यादौ काण्वाः षत्वं
पठन्ति । माध्यन्दिनास्तु सत्वमेव पठन्तीति बोध्यम् ॥

(१) ११ । २७ ॥

(२) १ । १० ॥

(३) ३ । ४९ ॥

(४) १२ । २८ ॥

(५) ११ । ४४ ॥

पुरीषवाहनः अग्नेः॑ पुरीषवाहणः, (१) प्रवाहनः वि-
भूरसि प्रवाहणः, ऋषरेभ्यइति किम् (२) वहन्तिर-
सि हव्यवाहनः, समानपदइति किम् (३) प्र नो य-
च्छत्वर्थमा ॥

निषण्णाय रथवाहणमिन्द्रऽएणम्प-
रिणीयते समिन्द्रणऽउरुष्याणो र-
क्षाणः पूणः पुणः पुणासत्या स्वर्णा-
स्तथूरिणौ प्र णऽ आयूष्णि ॥ ८७ ॥

निषण्णाय रथवाहणम् इन्द्रएणम् परिणीयते समि-
न्द्रणः उरुष्याणः रक्षाणः पूणः पुणः पुणासत्या स्वर्ण-
स्तथूरिणौ प्र णऽ आयूष्णि एते च णकारा निपात्यन्ते
यदत्र लक्षणेनानुपपन्नं तत्सर्वं निपातनात्सिद्धम् यथा
निषण्णाय अत्र द्वयोर्नकारयोर्णत्वं निपात्यते प्रथमस्य
तवर्गे चेति निषेधः उत्तरस्य तु नकारव्यवहितत्वात्
नकारश्च स्वरयवहकपां मध्ये न प्रच्यते, (४) निषण्णाय
स्वाहोत्यिताय, रथवाहणं यथा (५) रथवाहनम् थका-

(१) ५ । ३१ ॥

(२) ५ । ३१ ॥

(३) ९ । २९ ॥

(४) २२ । ८ ॥

(५) २९ । ४५ ॥

रेण व्यवधानादप्राप्तिः अतो निपात्यते रथवाण्डं०
हविरस्य नाम, इन्द्रऽएणम् यथा (१) इन्द्रऽएनम् इत-
ऽउत्तरमसमानपदत्वादप्राप्तं णत्वं निपात्यते । इन्द्रऽए-
णं प्रथमोऽअद्यतिष्ठत्, परिणीयते यथा (२) परिनी-
यते सोऽअब्रूराय परिणीयते कविः, समिन्द्रणः यथा
(३) इन्द्र नः समिन्द्र णो मनसा नेषि गोभिः, उरु-
ध्याणः यथा (४) उरुध्यानः उरुध्याणोऽअवायतः
संसस्मात्, रक्षाणः यथा (५) रक्ष नः रक्षाणो ब्रह्म-
णस्पते, पूणः यथा (६) पूनः मोषूणऽइन्द्राव, पुणः
यथा (७) अभीषु नः अभीषु णः सखीनाम्, पुणा य-
था (८) गोमदूषु नासत्या गोमदूषुणा सत्या, खर्ष य-
था (९) खः न खर्ष घर्षः स्वाहा, अस्थूरि णौ यथा

(१) २९ । १३ ॥

(२) ३३ । ७४ ॥

(३) ८ । १५ ॥

(४) ३ । २७ ॥

(५) ३ । २९ ॥

(६) ३ । ४६ ॥

(७) २७ । ४१ । ऋषरेभ्यः समानपदत्वादप्राप्ते णत्वविधिः काण्वानां पथ्यते ।

तत्रोत्सर्गविधित्वेऽन्यानप्युदाहरणानि दीयन्ते ॥

(८) २० । ८१ ॥

(९) १८ । ५० ॥

(१) अ॒स्यूरि नौ अ॒स्यूरि णौ गा॒र्हप॒त्यानि सन्तु, प्र॒ण
आयू॒ष्णि यथा (२) प्र नः आयू॒ष्णि प्र॒ण आयू॒ष्णि
तारि॒षः, आयू॒ष्णीति किम् (३) भ॒ग॒ य्न नो॑ ज॒नय॒
गोभिः॑ ॥

परिणऽइति शाकटायनः ॥ ८८ ॥

परिणइति निपात्यते शाकटायनाचार्यस्य मतेन,
यथा (४) परि नः परि॑णो रु॒द्रस्य॑ हे॒तिःऽ, शाकटाय-
नइति किम् (५) परि॑ नो रु॒द्रस्य॑ हे॒तिःऽ ॥

प्र नेतिनुदातिहिनोमीनाम् ॥ ८९ ॥

प्रपूर्वाणाम् नेति नुदाति हिनोमि एषां शब्दरूपा-
णां नकारो णकारमापद्यते संहितायाम्, अब नेति
नुदात्योर्द्धावुग्रहणमतः सर्वप्रत्ययान्तयोर्भवति (६) हि-
नोतेस्तु विकरणनिर्देशाद्यत्र विकरणं तत्रैव भवति,

(१) २ । २७ ॥

(२) २३ । ३१ ॥

(३) ३४ । ३६ ॥

(४) इति काण्वानां पाठः । वाजसनेयिनां तु णत्वरहितः पाठस्तस्माच्छाकटायन-
ग्रहणं विकल्पार्थम् ॥

(५) १६ । ५० ॥

(६) हिनोमीति च विकरणनिर्देशात्तन्मात्रग्रहणमिति विवेकः, इति (ग) पुस्तक-
पाठः ॥

नेति यथा (१) प्र नय प्रणय देवाद्यम्, नुदाति यथा
(२) प्र नुदानः अग्ने जाताग्रणुदानः, हिनोमि यथा
(३) प्रहिनोमि क्रव्यादमग्निं प्रहिणोमि ॥

प्रकृत्या पदान्तीयः ॥ ९० ॥

पदान्तीयो नकारो हल् प्रकृत्या भवति, समानपद
इति प्राप्तिः यथा (४) पितृन्हविषे अत्तवे, (५) पूषन्तव
व्यते व्ययम्, (६) अक्वक्वर्म्म कर्म्मकृतः ॥

निवनिनसः प्रपीनम् ॥ ९१ ॥

नि वनि नसः प्रपीनम् एते नकाराः प्रकृत्या भव-
न्ति, समानपदइति प्राप्तिः नि यथा (७) कृष्णा बभ्रु-
नीकाशाः, वनि यथा (८) ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि,
नसः यथा (९) वाद्वीनसस्ते मत्या अरस्याय, प्रपी-

(१) ११ । ८ ॥

(२) १५ । १ ॥

(३) ३५ । १९ ॥

(४) १९ । ७० ॥

(५) ३४ । ४१ ॥

(६) ३ । ४७ ॥

(७) २४ । १८ ॥

(८) १ । १७ ॥

(९) २४ । ३९ ॥

नम् यथा (१) अपाम्प्रपीनमग्ने ॥

श्रीमनाऽ इत्येके ॥ ९२ ॥

अयञ्च नकारः प्रकृत्या भवति एकेषामाचार्याणा-
मतेन, यथा (२) श्रीमनाः शतपयाः, एकेषामिति
किम् (३) श्रीमणाः शतपयाः ॥

इन्द्राग्नी चित्रभानो वार्त्तग्नं न्दुःष्व-
प्यन्यन्ध्रुवयोनिः पुरोऽनुवाक्कयाभिः

रोऽनुवाक्कयाश्चर्मन्मम् ॥ ९३ ॥

इन्द्राग्नी चित्रभानो वार्त्तग्नम् न्दुःष्वप्यम् ध्रुवयोनिः
पुरोऽनुवाक्याभिः पुरोऽनुवाक्याः चर्मन्मम् एते च न-
काराः समानपदइति प्राप्तणकाराः प्रकृत्या भवन्ति,
इन्द्राग्नी यथा (४) इन्द्राग्न्योरुज्जितिम्, चित्रभानो
यथा (५) इन्द्रायाहि चित्रभानो, वार्त्तग्नम् यथा (६)

(१) १७ । ७८ ॥

(२) १७ । ५७ ॥

(३) यथा चरणानां पाठव्यवस्था नत्वणत्वे माभ्यन्दिनकाण्वयोर्ज्ञेयेति ॥

(४) २ । १५ ॥

(५) २० । ८७ ॥

(६) २ । ८ ॥

इन्द्रस्य बार्हस्पति, दुः श्वन्त्यम् यथा (१) अप' दुःश्व-
पत्यं सुव, ध्रुवयोनिर्यथा (२) ध्रुवक्षितिर्दुध्रुवयोनिः,
पुरोऽनुवाक्याभिः यथा (३) वृषः- पुरोऽनुवाक्क्या-
भिः, पुरोऽनुवाक्याः यथा (४) पुरोऽनुवाक्क्या याज्या-
भिः, चर्मन्त्रम् यथा (५) साँध्येर्धर्मन्त्रम् ॥

तवर्गे च ॥ ९४ ॥

तवर्गे च प्रत्यये वृषरेफेभ्योत्तरे नकारः प्रक्षत्या
भवति, यथा (६) तृप्पन्तु होत्राः, (७) अवक्रन्देन
तालु ॥

षादनन्तरकृकारे ॥ ९५ ॥

षकारादनन्तरो नकारकृकारे प्रत्यये प्रक्षत्या भ-
वति, यथा (८) उग्रस्त्वेष नृम्मणः ॥

(१) ३५ । ११ ॥

(२) १४ । ११ ॥

(३) २० । १२ ॥

(४) २० । १२ ॥

(५) ३० । १५ ॥

(६) ७ । १५ ॥

(७) २५ । १ ॥

(८) ३३ । ४० ॥

शिलिसिवर्गमध्यमव्यवहितो-

ऽपि ॥ ९६ ॥

शकारलकारसकारव्यवहितः वर्गाश्च ते मध्यमाश्च
 वर्गमध्यमाः चटतवर्गाः तैश्च व्यवहितो नकारऋषरेभ्य-
 उत्तरः प्रकृत्या भवति, शकारव्यवहितो यथा (१) ह-
 शानो रुक्कः, (२) सम्भाडसि कशानुः, लकारव्यव-
 हितः यथा (३) निर्वृतिर्निर्ज्जल्लयेन, सकारव्यवहि-
 तः यथा (४) अपा रसेन व्वरुणः, चवर्गव्यवहितः य-
 था (५) प्राचीनं ज्योतिः, (६) अन्तश्चरति रोचना, ट-
 वर्गव्यवहितः यथा (७) त्रैष्टुभेन च्छन्दसा, (८) अनु-
 ष्टुभेन च्छन्दसा, तवर्गव्यवहितो यथा (९) रथिनो
 जयन्तु, (१०) आक्ती इमे, ननु शिलिसिवर्गमध्यमव्य-
 वहितोऽपीत्यनेन सूत्रेण एतैर्वर्णैर्व्यवहितऋषरेभ्य-

(१) १२ । १ ॥

(२) ५ । ३२ ॥

(३) २५ । २ ॥

(४) १९ । ९४ ॥

(५) २० । ४२ ॥

(६) ३ । ७ ॥

(७) ११ । ९ ॥

(८) ११ । ११ ॥

(९) २९ । ५७ ॥

(१०) २९ । ४१ ॥

उत्तरो नकारः प्रकृत्या भवति समानपदइत्युक्तम्, तथा 'कृषरेफेभ्यो नकारो णकारः समानपदे' स्वर-
यवहकपैश्च' इत्यनेन (१) एतैर्वर्णैर्व्यवहितोऽपि नकारो
णकारमापद्यते समानपदे इत्युक्तम्, एवं यएव स्वर-
यवहकपव्यतिरिक्ता वर्णास्तएव शिलिसिवर्गमध्यमाः
अतोऽनेन सूत्रेण न प्रयोजनम् एवन्तर्ह्युभयथा लक्ष-
णानुकथनं शिष्यबुद्धिव्युत्पादनार्थम् ॥

दीर्घम् ॥ ९७ ॥

विसर्जनीयइत्युपक्रम्य द्वयोर्व्यञ्जनयोः सन्धौ ये
लोपागमवर्णविकारास्ते प्रतिपादिताः, अधुना स्वरस्य
व्यञ्जनेन सह सन्धौ यः स्वरविकारः स उच्यते ह्रस्वः
स्वरो दीर्घविकारमापद्यते अधिकारसूत्रमेतत् ॥

अश्चरश्चममतिसुमतिश्चसुतचारय-
घृणिसेदिमेन्द्रियधारयचित्रभङ्गु-
रवयुनाश्चस्यहृदयघुष्प्यत्ताभ्यवता-
द्ध्यर्चशक्तिपुरुशचि वकारे ॥ ९८ ॥

अश्च रश्चि मति सुमति श्व सुत चारय घृणि से-
दिम इन्द्रिय धारय चित्र भङ्गुर वयुनः अश्चस्य हृदय

घुष्य कृत अभि अत्रत अधि अर्ध शक्ति पुरु शचि एते
 ह्रस्वस्वरा वकारे प्रत्यये दीर्घमापद्यन्ते, अश्व यथा (१)
 सोमावतीम्, रश्मि यथा (२) रश्मि-
 तीन्मास्वतीम्, मति यथा (३) प्रदेवाय मतीविदे, सु-
 मति यथा (४) सुष्टुतिः सुमतीवृधः, अ यथा (५)
 आविद्वहामी, सुत यथा (६) विप्रजूतः सुतावतः, चा-
 रय यथा (७) समञ्जिञ्चारया वृषन्, वृणि यथा (८)
 उष्ट्रो वृणीवान् । सेदिम यथा (९) देवानां सक्ख्य-
 सुपसे दिमा व्ययम् । इन्द्रिय यथा (१०) इन्द्रियावान्म-
 दिन्तमः । धारय यथा (११) बृहस्सते धारया व्यस-
 नि, चित्र यथा (१२) चित्रावसो स्वस्ति ते प्रारमशीय,

(१) १२ । ०१ ॥

(२) १५ । ६३ ॥

(३) २२ । १२ ॥

(४) २२ । १२ ॥

(५) २४ । ३३ ॥

(६) २० । ०० ॥

(७) २३ । २१ ॥

(८) २४ । ३९ ॥

(९) २५ । १५ ॥

(१०) ६ । २७ ॥

(११) ६ । ० ॥

(१२) ३ । १० ॥

भङ्गुर यथा (१) हन्तारम्भङ्गुरा वताम् । व्युन
यथा (२) विहोवा दधे व्युनाविदेकः । अश्वस्य य-
था (३) एकस्त्वष्टुरश्वस्या विशस्ता, हृदय यथा (४)
उतापवक्ता हृदया विधंश्चित्, घृष्य यथा (५) परंष्प-
रनुघुष्या विशस्त, ऋत यथा (६) ऋतावांनमहि-
षम्, अभि यथा (७) अभीवर्त्तः सविर्ठोश्चो व्वर्चो
द्विवाविष्टः, अवत यथा (८) इदमे प्रावता व्वचः,
अधि यथा (९) अधीवासंय्या हिरस्यान्यरम्भे, अर्च
यथा (१०) अर्चो विश्वानराय विश्वा भुवे, शक्ति
यथा (११) छच्छे श्रितः शक्तीवन्तो गभीराः, पुरु
यथा (१२) इमाऽउत्ता पुरुवसो । शचि यथा (१३)

(१) ११ । २६ ॥

(२) ५ । १४ ॥

(३) २५ । ४२ ॥

(४) ८ । २३ ॥

(५) २५ । ४१ ॥

(६) १२ । १११ ॥

(७) १४ । २३ ॥

(८) १२ । ८८ ॥

(९) २५ । ३९ ॥

(१०) ३३ । २३ ॥

(११) २९ । ४६ ॥

(१२) ३३ । ८१ ॥

(१३) शास्त्रान्तरीयं मृग्यमुदाहरणम् ॥

शचीवसे ॥

नाश्चवद्विरण्ण्यात् ॥ ९९ ॥

अश्वर्षदित्येतत्पदन्त दीर्घमापद्यते हिरण्यशब्दाद्य
दि परं भवति, यथा (१) आपवस्व हिरण्यवदश्ववत् ॥

अभि विक्ख्येषँ वीर विश्व वत्स

वृत्त वाजयन्तेषु ॥ १०० ॥

अभीत्येतत्पदं विक्ख्येषम् वीर विश्व वत्स वृत्त वाज-
यन्त इत्येतेषु न दीर्घमापद्यते । विक्ख्येषं यथा (२) स्व-
रभिविक्ख्येषम् । वीर यथा (३) अभिवीरो ऽअभिसत्त्वा
सहोजाः, विश्व यथा (४) इमाँ वाचमभि विश्वे
गृणन्तः, वत्स यथा (५) अभि वत्सन्त स्वसरेषु धेनवः,
वृत्त यथा (६) अभि वृत्तं वर्द्धमानम्ययारुम्, वाजयन्तः
यथा (७) अश्याम वाजमभि वाजयन्तः ॥

(१) ८ । ६३ ॥

(२) १ । ११ ॥

(३) १७ । ३७ ॥

(४) २ । १८ ॥

(५) २६ । ११ ॥

(६) १८ । ६९ ॥

(७) १८ । ७४ ॥

अश्चस्य वाजिनइति च ॥ १०१ ॥

अश्चस्य वाजिनइति च द्विपदस्य न पूर्वपदान्तो दीर्घमापद्यते, यथा (१) अश्चस्य वाजिनस्त्वचि सि-
माः, (२) ॥

विश्व सहभुवपुषवसुषु ॥ १०२ ॥

विश्वइत्येतत्पदं सहइत्येतेषु प्रत्ययेषु दीर्घमापद्यते,
सह यथा (३) विश्वा साहमवसे नूतनाय, भुव यथा
(४) अर्वा विश्वा नराय विश्वाभुवे, पुष यथा (५)
विश्व पुष रयिम्, वसु यथा (६) गन्धर्वस्त्वा वि-
श्व वसुः ॥

नरहामित्रेषु च ॥ १०३ ॥

नरहामित्रेषु च प्रत्ययेषु विश्वशब्दो दीर्घमापद्यते,

(१) २२ । ३७ ॥

(२) आस्मिन्सूत्रे इति पदं एवं विधान्योदाहरणसूचनार्थम् । तेन अधिवक्तैति न
दीर्घः ॥

(३) नेति नात्रानुवर्तते । ७ । ३६ ॥

(४) ३३ । २३ ॥

(५) २५ । ४५ ॥

(६) २ । ३ ॥

नर यथा (१) अर्वा^१ वि॒श्वा न॑राय, हा यथा (२) वि॒श्वाहा शर्मा^२ यच्छतु, मित्र यथा (३) वि॒श्वा मि॑त्रऋ॒षिः । एतद्योगकरणं शिष्याणामवग्रहत् व्युदासप्रज्ञ-
तत्पर्यम् । अर्थव्याख्यानार्थं त्वय्यवदर्शनम् ॥

तिष्ठद्वाद्युदात्तम् ॥ १०४ ॥

तिष्ठेत्येतत्पदं दीर्घमापद्यते यद्याद्युदात्तं भवति,
यथा (४) तिष्ठा^३ दे॒वो न॑ स॒विता, (५) तिष्ठा^४ रथ॒मधि॒यं
वज्र॒हस्ता, आद्युदात्तमिति किम् (६) आतिष्ठ॑ व्यु॒तह॒-
न्वय॑म् ॥

प्र वणशृङ्गायासेषु ॥ १०५ ॥

प्र इत्येतत्पदं वन शृङ्ग यास इत्येतेषु प्रत्ययेषु दीर्घ-
मापद्यते, वन यथा (७) प्रा॒ व॒णेभिः॑ स॒जोष॑सः । शृङ्ग
यथा (८) प्रा॑ शृ॒ङ्गा मा॑हेन्द्राः, यास यथा (९) प्रा॒ या-

(१) ३३ । २३ ॥

(२) १७ । ४० ॥

(३) १३ । ५७ ॥

(४) ११ । ४२ ॥

(५) १० । २२ ॥

(६) ८ । ३३ ॥

(७) १२ । ५० ॥

(८) २४ । १७ ॥

(९) ३९ । ११ ॥

साय स्वाहा (१) ॥

नि वारहारयोरनवग्रहे ॥१०६॥

नि इत्ययमुपसर्गो वारहारयोः प्रत्यययोर्दीर्घिमाप-
द्यते अवग्रवर्जिते, वार यथा (२) नीवाराग्रञ्च मे, हा-
रयथा (३) नीहारेण प्राट्ता, अवयवव्युत्पत्त्यर्थं वचनम्
अनवग्रहाणां हि मध्ये वक्ष्यति (४) ॥

नाऽवनयामि ॥१०७॥

अवेत्येतत्पदं न दीर्घिमापद्यते नयामीत्येतस्मिन्प्र-
त्यये यथा (५) अव नयामि वैष्णवान् । धारयामेत्येत-
स्मिन्सूत्रेऽवग्रहस्य नकारे दीर्घत्वं वक्ष्यति तस्यायं
पुरस्तादपवादः ॥

धारयाम योजाव सचस्व नुद मोषु
जयतोरुष्य रक्ष यज यच्छ मत्सथ

(१) क्वचित्पुस्तके प्र वनेति पाठः ॥

(२) १० । १२ ॥

(३) १७ । ३२ ॥

(४) अनवग्रहाणां मध्ये (क) पुस्तकपाठः । अनवग्रहे इत्येतद्ग्रहणं किमर्थम् ।

३ । ५० । निहारन्नि हराणि ते स्वाहा । इत्यस्मिन्मन्त्रीयपदपाठे निहारमिति नि ।
हारम् इत्यवग्रहघटिते पदे निहारमित्यत्र दीर्घोपत्तिरतोऽनवग्रहग्रहणम् ॥

(५) ५ । २५ ॥

पिपृत गायता तु येन नकारे ॥१०८॥

धारयाम योज अव सचस्व नुद मोषु जयत उरुष्य
 रक्ष यज यच्छ मत्सथ पिपृत गायत आतु येन एते
 ह्रस्वा नकारे प्रत्यये दीर्घमापद्यन्ते, धारयाम यथा (१)
 धारयामा नमोभिः, योज यथा (२) योजान्विन्द्र ते
 हरी, अव यथा (३) अवा नो देव्या धिया, सचस्व य-
 था (४) सचस्वा नः स्वस्तये, नुद यथा (५) अग्ने जा-
 तान्प्रणुदा नः, मोषु यथा (६) मो षूण्डन्द्राव षत्सु
 देवैः, मोऽदिति किम् (७) ऊर्ध्वऽ ऊषुणऽ ऊतये, जय-
 त यथा (८) प्रेता जयता नरः, उरुष्य यथा (९) उ-
 रुष्या णोऽअवायतः । रक्ष यथा (१०) रक्षा णो ब्र-
 ह्मण्यस्त, यज यथा (११) यजा नो मित्रावरुणा,

(१) १७ । ९० ॥

(२) ३ । ५२ ॥

(३) ११ । ४१ ॥

(४) ३ । २४ ॥

(५) १५ । १ ॥

(६) ३ । ४६ ॥

(७) ११ । ४२ ॥

(८) १७ । ४६ ॥

(९) ३ । २६ ॥

(१०) ३ । ३० ॥

(११) ३३ । ३ ॥

यच्छ यथा (१) यच्छा नः शर्मा सप्रथाः, मत्स्य यथा
 (२) अपि यथा युवानो मत्स्यथा नः, पिष्टत यथा
 (३) निरहसः पिष्टता निरवदद्यात्, गायत यथा
 (४) उपास्मै गायता नरः, आतु यथा (५) आ तू
 न इन्द्र वृत्रहन्, (६) येन यथा (७) येना नः पूर्वे
 पितरः ॥

भव च ॥ १०९ ॥

भवेत्ययं ह्रस्वो दीर्घमापद्यते नकारे प्रत्यये, यथा
 (८) भवा नः सप्रथस्तमः सखा दृधे, दृधयोगकरण-
 मुत्तरार्थम् ॥

सचावरूथ्यवाजस्य पायुषु च ॥ ११० ॥

सचावरूथ्य वाजस्य पायुः एषु च प्रत्ययेषु भवेत्ये-

(१) ३६ । १३ ॥

(२) ३३ । ३४ ॥

(३) ३३ । ४२ ॥

(४) ३३ । ६२ ॥

(५) ३३ । ६५ ॥

(६) अस्मिन्सूत्रे आ तु ग्रहणं किमर्थं नोचेत्तदा ३३ । ९७ अपरन्तुचे तु लो
 भवन्तु । इत्यत्रापि द्वितीयतुकारस्य नकारे दीर्घो न भवेदतऽआ तु पदग्रहणम् ॥

(७) ३४ । १७ ॥

(८) १२ । ११४ । अत्र सूत्रे पूर्वसूत्रान्नकारे इति पदं सम्बध्यते ॥

तत्पदं दीर्घमापद्यते, सचा यथा (१) इन्द्रं प्राश्नर्भ-
वा सचा, वरूथ्य यथा (२) उत वाता शिवो भवा व-
रूथ्यः, वाजस्य यथा (३) भवा वाजस्य सङ्कथे,
पायुः यथा (४) भवा पायुर्विशो ऽत्रस्या ऽत्रदब्धः ॥

अपृक्तः सौ ॥ १११ ॥

अष्टकग्रहणेनेह उकारो गृह्यते नाकारो दीर्घवि-
धानात्, अष्टकउकारो दीर्घमापद्यते सुप्रत्यये, यथा
(५) उ सु नः ऊर्ध्वं ऽजपुणः, (६) गोमदूषुणा सत्या ॥

रथि तकारनकारयोः ॥ ११२ ॥

रथीत्येतत्पदं तकारनकारयोः प्रत्यययोर्दीर्घमापद्य-
ते, यथा (७) रथी तमथ रथी नाम् ॥

अथोदारिथ शोच पनय सादयर्जुवृ-

(१) ३४ । ५६ ॥

(२) ३ । २५ ॥

(३) १२ । ११२ ॥

(४) १३ । ११ ॥

(५) ११ । ४२ ॥

(६) २० । ८१ । अन्यान्यप्युदाहरणानि महीमूषु एता वृक्षासऽजपुणऽइत्यादी-
नि द्रष्टव्यानि । सौ किमर्थम् ११ । ४१ उर्ध्वतिष्ठेत्यत्रापि दीर्घो न स्यादतः सौ पद-
ग्रहणम् ॥

(७) १२ । ५६ ॥

षशत्त्वुसलक्ष्मावारात्यृतभवत य- कारे ॥ ११३ ॥

अथ उदारिथ शोच पनय सादय ऋजु वृष शत्रु
सलक्ष्म आ व अव अराति ऋत भवत एते ह्रस्वा य-
कारे प्रत्यये दीर्घमापद्यन्ते, अथ यथा (१) अवाधमं
व्विमद्वाम ७ अथाय, उदारिथ यथा (२) अस्माद्व्योने
रुदारिथा यज्, शोच यथा (३) बृहच्छोचा यविष्टा,
पनय यथा (४) देवता पनया युजम्, सादय यथा (५)
सादया यउन्न ७ सुकृतस्य योनौ, ऋजु यथा (६) देवानां
भद्रा सुमतिर्ऋजु यताम्, वृष यथा (७) वृषायमाणो
वृषभसुरापाट्, शत्रु यथा (८) शत्रू यतो हन्ता, सलक्ष्म
यथा (९) सलक्ष्मा यद्विषुरूपं भवाति, व यथा (१०)

(१) १२ । १२ ॥

(२) १७ । ७५ ॥

(३) ३ । ३ ॥

(४) १९ । ६४ ॥

(५) ११ । ३५ ॥

(६) २५ । १५ ॥

(७) २० । ४६ ॥

(८) १२ । ५ ॥

(९) ६ । २० ॥

(१०) ७ । ३२ ॥

आघा ये ऽअग्निम्, अघ यथा (१) अघायतः^५ संम-
स्मात्, अराति यथा (२) अराती यतो हन्ता, कृत
यथा (३) मधु वाता ऽकृता यते, भवत यथा (४)
अर्वाञ्चोऽअद्वा भवता यजन्ताः ॥

व वृधवृजोः ॥ ११४ ॥

व इत्ययं द्वस्रो वृधवृजोः प्रत्यययोर्दीर्घमापद्यते, वृध
यथा (५) अस्माद्वाग्वावृधे, वृज यथा (६) प्र वावृजे ॥

अद्वा तर्ठ० हकारचकारभवत वृ-
णीमहे देवेषु ॥ ११५ ॥

अद्य इत्ययं द्वस्वस्तकार हकार चकार भवत वृणी
महे देव इत्येतेषु प्रत्ययेषु दीर्घमापद्यते, तम् यथा (७)
अद्वा तमस्य महिमानम्, हकार यथा (८) अद्वा

(१) ३ । २७ ॥

(२) १२ । ५ ॥

(३) १३ । २७ ॥

(४) ३३ । ५१ ॥

(५) ७ । ३९ ॥

(६) ३३ । ४४ ॥

(७) ३३ । ९७ ॥

(८) ८ । ४५ ॥

ऊँवेम, चकार यथा (१) हवमद्दद्या च ऋडय, भवत
यथा (२) अद्दद्या भवता यजत्ताः, टणीमहे यथा (३)
तद्देवानामवोऽ अद्दद्या टणीमहे, देव यथा (४) अद्दद्या
देवाः (५) ॥

न होतरि ॥ ११६ ॥

होतृशब्दे प्रत्यये अद्येत्यं ह्रस्वो न दीर्घमापद्यते,
अधस्तनसूत्रेण प्राप्तस्य प्रतिषेधः, यथा (६) तमद्दद्या
होतरिषितः (७) अग्निमद्दद्या होतारमटणीतायम् ॥

शृणुत त्विषि ध्रजि भवत पिबेत स्म
तिष्ठ रक्षा मकारे ॥ ११७ ॥

शृणुत त्विषि ध्रजि भवत पिब इत स्म तिष्ठ रक्ष
एते ह्रस्वा मकारे प्रत्यये दीर्घमापद्यन्ते, शृणुत यथा

(१) २१ । १ ॥

(२) ३३ । ५१ ॥

(३) ३३ । १७ ॥

(४) ३३ । ४२ ॥

(५) तमिति किम् । ३३ । ९४ ॥ अथ ते ऽअपरम् ॥ अत्रापि दीर्घो न भवेद-
तस्तमिति पद ग्रहणम् ॥

(६) २९ । ३४ ॥

(७) २१ । ५९ ॥

(१) शृणुता म॑ऽइमं॑ हव॑म्, त्विषि यथा (२) शृण्वि॑ञ्ज-
 राय॑ त्विषी॑ मते । धनि यथा (३) चित्तं॑ व्वात॑ऽइव॑ ह्वजी॑
 मानु, भवत यथा (४) आदि॑त्यासो भव॑ता नृ॒ड्यन्तः॑,
 पिब । यथा (५) पिबा॑ मि॒त्तस्य॑ धाम॑भिः, इत यथा (६)
 इता॑ म॒रुतो॑ अ॒विश्व॑ना, स्म यथा (७) दे॒वासो॑ हि॒ष्मा
 मन॑वे॒ सम॑न्यवः । तिष्ठ यथा (८) शृ॒त्त॒यता॑म॒भि ति॑ष्ठता
 म॒हा॑सि, तिष्ठ॑ताद्यु॒दात्त॑मित्याद्यु॒दात्त॑स्य दी॒र्घभा॑वउ-
 क्तः, अनु॒दात्ता॑र्थ॒आर॑म्भः, रक्ष यथा (९) रक्षा॑ माकि-
 र्नाऽअ॒वश॑ स॒ईश॑त (१०) ॥

वि॒श्वदे॒व्यसो॑मौ व॒त्स्याम् ॥ ११८ ॥

वि॒श्वदे॒व्यसो॑मावेतौ ह॒स्वौ व॑ति प्रत्यये दी॒र्घमा॑पद्ये-

(१) ७ । ३४ ॥

(२) १६ । १७ ॥

(३) २९ । २२ । इदं शास्त्रान्तरविषयं । माध्यन्दिनानां तु दीर्घान्तादेव मतुप् ।
 अतएवात्र 'अन्तःपददीर्घभावे' ४ अ० । ८४ सू० । इति वक्ष्यमाणसूत्रेण पदपा-
 ठे स्थितोपस्थितञ्च भवति । इति ज्ञेयम् ॥

(४) ८ । ४ ॥

(५) ३३ । १० ॥

(६) ३३ । ४७ ॥

(७) ३३ । ९४ ॥

(८) ३३ । १३ ॥

(९) २९ । ४७ ॥

(१०) रक्षा मकारे (क) इति पुस्तकपाठः ॥

ते, विश्वदेव्य यथा (१) अदि॑ति॒ष्ठा दे॒वी वि॒श्वदे॑व्या-
वती, सोम यथा (२) अ॒श्व॒वा॒वती॑ सो॒माव॒तीम्, व-
त्स्यामि॑ति किम् (३) पि॒तृ॒णां सोम॑वताम् (४) ॥

उष महोभिर्नक्तमीकारैकारौकारन-
कारेभ्यः ॥ ११९ ॥

उषइत्ययं ह्रस्वो दीर्घमापद्यते महोभिः नक्त ईम् ई-
कारएकारौकारनकारेभ्यः परश्चेद्भवति, महोभिः यथा
(५) प्र॒थ॒मा॒नाम॒हे॒भिः, उ॒षा॒सा नक्ता॑ बृ॒हती॑, नक्त
यथा (६) नक्ता॑षासा समनसा, ईम् यथा (७) प्रति॑ धे-
नुमि॑वायतीमुषासम्, ईकारात् यथा (८) दे॒वीऽ उ॒षा-
सा नक्ता॑, एकारात् यथा (९) य॒ज॒तेऽ उ॒पा॒केऽ उ॒षा॒सा
नक्ता॑, औकारात् यथा (१०) दि॒व्येन॑ योना॑ऽउ॒षा॒सा

(१) ११ । ६१ ॥

(२) १२ । ८१ ॥

(३) २४ । १८ ॥

(४) वत्स्यामिति स्त्रीलिङ्गनिर्देशाद्विज्ञान्तरविशिष्टे पदे मा भूदीर्घत्वम् ॥

(५) २० । ४० । ४१ । प्रकरणानुसारादन्त्यस्य व्याख्यानादीर्घत्वं बोध्यम् ॥

(६) १२ । २ ॥

(७) १५ । २४ ॥

(८) २८ । १४ ॥

(९) २९ । ३१ ॥

(१०) २७ । १७ ॥

नक्त्ता, नकारात् यथा (१) अ॒व॒वती॒र्गो॒मती॒र्न॒उ॒षा-
सः, एतेभ्यः परइति किम् (२) समि॒हऽ इन्द्र॑ऽउ॒षसा॑म् ॥

पूरुषोऽवसाने ॥ १२० ॥

पूरुषइति (३) दीर्घो निपात्यते अवसाने चेद्भवति,
यथा (४) न सरि॑ष्याति पू॒रुषः, अवसानइति किम्
(५) पू॒रुषऽए॒व ॥

पूष्णो जहीमस्तेष्वत्तू ॥ १२१ ॥

अत्रेत्ययं ह्रस्वो दीर्घमापद्यते पू॒ष्णः जही॑मः ते
इत्येतेषु प्रत्ययेषु, पू॒ष्णः यथा (६) अ॒त्ता पू॒ष्णः, जही॑-
मः यथा (७) अ॒त्ता जही॑मोऽशि॒वा ये, ते यथा (८)
अ॒त्ता ते रू॒पसु॑त्तमम् ॥

(१) ३४ । ४० ॥

(२) २० । ३६ । अस्मिन्दीर्घप्रकरणे यानि ह्रस्वान्तान्यवग्रहविशिष्टानि स्थितो-
पस्थितघटितानि पदानि पदपाठे सन्ति तेषां पदानां अव्यवहितस्यासम्भवाद्ग्रन्थधाने-
ऽपि दीर्घत्वं बोध्यम् ॥

(३) पुरुष इति 'क' पुस्तकपाठः । आदिदीर्घमापद्यते 'ख' पुस्तकपाठः ॥

(४) १२ । २१ ॥

(५) ३१ । २ ॥

(६) २५ । २७ ॥

(७) ३५ । १० ॥

(८) २९ । १८ ॥

नरस्सप्तऽऋषीन्स्तऽआहुर्नियुद्भिषु

यत्र ॥ १२२ ॥

नरः सप्तऽऋषीन् नः तऽआहुः नियुद्भिः एतेषु प्र-
त्येषु यत्रेत्ययं द्वयोर्दीर्घमापद्यते, नरः यथा (१) य-
त्रानरः सञ्च विचद्भवन्ति, सप्तऽऋषीन् यथा (२) यत्रा-
सप्तऽऋषीन्परः, नः यथा (३) यत्रा नञ्चक्रा जरसं त-
नूनाम्, तऽआहुः यथा (४) यत्रा तऽआहुः परमं ज-
नित्तम्, नियुद्भिः यथा (५) यत्रा नियुद्भिः सचसे शि-
वाभिः (६) ॥

अभिमाति पृतनासु सपत्क्रधूर्विश्व-
समत्सु पृतना व्रातेभ्यः सहेः ॥ १२३ ॥

अभिमाति पृतनासु सपत्न धूः विश्व समत्सु पृतना

(१) २९ । ४० ॥

(२) १७ । २६ ॥

(३) २५ । २२ ॥

(४) २९ । १५ ॥

(५) १३ । १५ ॥

(६) तऽआहुरिति किमर्थम् । २३ । १६ यत्र ते युयुतिर्यत्र पदे दीर्घो न भवेदत-
स्तऽआहुरिति पदग्रहणम् ॥ एतेष्विति किम् । ३२ । ८ । यत्र विश्वम्भवत्येकनी-
उमित्यत्रापि दीर्घो मा भूदतएतेषु पदेषु परेष्वेवेति ग्रहणम् । अत्र यत्र पदे तकारस्य
द्वित्वम्न भवति कुतः ६ अ० सू० २७ वक्ष्यमाणसूत्रेण निषेधात् ॥

व्रात इत्येतेभ्यउत्तरस्य सहेर्द्ध्वो दीर्घमापद्यते, अ-
भिमाति यथा (१) सँवृष्या॑न्यभिमाति॒षाहं॑ः, एतनासु
यथा (२) जेतार॑मग्नि॒मृत॑नासु सास॒हिम्, सपत्न य-
था (३) सि॒न्धु॑सि सपत्न॒साही॑, धूः यथा (४) उ॒खावे-
तं॑ धूर्षा॒हौ, विश्वे॑ यथा (५) वि॒श्व॒सा॒हमव॑से नूत॑नाय,
समत्सु॑ यथा (६) येना॑ समत्सु॑ सास॒हं॑ः, एतना यथा (७)
एत॒ना॒षा॒ह्याय॑ च, व्रात यथा (८) स॒तो वी॒राऽउ॒रवो॑
व्रात॒साहाः॑ ॥

उक्कथाच्च शसेः ॥ १२४ ॥

उक्कथशब्दात्परस्य शसेर्द्ध्वो दीर्घमापद्यते, य-
था (९) उक्कथ॑शसः उक्कथ॑शास॒श्चर॑न्ति ॥

एवाच्छ चकृमाथ ॥ १२५ ॥

एव अच्छ चक्रम अथ एते ह्रस्वा व्यञ्जनमात्रे दी-

(१) १२ । ११३ ॥

(२) ११ । ७६ ॥

(३) ५ । १० ॥

(४) ४ । ३३ ॥

(५) ७ । ३६ ॥

(६) १५ । ४० ॥

(७) १८ । ६८ ॥

(८) २२ । ४६ ॥

(९) १७ । ३१ ॥

दीर्घमापद्यन्ते, एव यथा (१) ए॒वा नो॑ दूर्ध्वे॒ प्रत॑नु, अच्छ
यथा (२) गिरि॒शाच्छा॑ वदामसि, चक्षुम॑ यथा (३)
य॒देन॑श्चक्षु॒मा व्य॑म्, अय॑ यथा (४) अथा॑ म॒न्दस्व
जुजुषा॑णः (५) ॥

विद्वा॑ सौ॒त्राम॑ण्याम् ॥ १२६ ॥

विद्मद्वत्ययं ह्रस्वो दीर्घमापद्यते सौत्रामणीमन्त्रं सु-
क्ता, यथा (६) वि॒द्वद्वा॑ तेऽ॒ अग्ने, असौ॒त्राम॑ण्यामिति
किम् (७) या॒श्च॑ वि॒द्वद्वा॑ या॒ ॥ ऽ॒उ॒ च॒ न प्र॑वि॒द्वद्वा॑ ॥

अथा॑ यत्स्मग्ग॒नावा॑युषु ॥ १२७ ॥

अध्वद्वत्ययं ह्रस्वो व्यञ्जनमात्रे दीर्घमापद्यते, यथा

(१) १३ । २० ॥

(२) १६ । ४ ॥

(३) ३ । ४५ ॥

(४) २६ । २५ ॥

(५) एव शब्दोऽत्र उपमानार्थेव कुतः सर्वैरुवटायाचाव्यैर्व्याख्यानात् । अव-
धारणार्थस्य तु न भवति । ३२ । १ । तदे॒व शु॒क्रम् । सऽए॒व जा॒तः । संहिताऽधि-
कारान्मन्त्रावसाने तु न दीर्घो भवति । यथा ३३ । ७८ ॥ ता नो॑ऽअच्छ, प्रायः पदा-
दावेव एवशब्दो गृह्यते । व्यञ्जनमात्रे नो चेत्तदा ३१ । १ एवमित्यत्रापि दीर्घः
स्यात्तदर्थं व्यञ्जनमात्रग्रहणं भाष्ये कृतमिति ॥

(६) १२ । १९ ॥

(७) १९ । ६८ ॥

(१) अधा सपत्नानिन्द्राग्नी मे, यत् स्म ग्ना वायुः
 इत्येतेषु प्रत्ययेषु न दीर्घमापद्यते, यत् यथा (२) अ-
 मुत्त्र भूयादध यद्व्यमस्य, स्म यथा (३) अध स्म ते
 व्यजनम्, ग्ना यथा (४) रुद्रोऽ अधग्नाः, वायुम् यथा
 (५) अध वायुं नियुतः, अयत्स्मग्नावायुष्विति किम् (६)
 अधा यथा नः पितरः ॥

पूर्वो द्वन्द्वेष्ववायुषु ॥ १२८ ॥

द्वन्द्वेषु समासेषु वायुरहितेषु पूर्वः पदान्तो दीर्घमा-
 पद्यते, यथा (७) अग्नीषोमौ, (८) मित्रावरुणौ, (९)
 इन्द्रावृहस्पती, द्वन्द्वेष्विति किम् (१०) अवोरहणौ ब्र-
 ह्मचोदनौ, अवायुष्विति किम् (११) इन्द्रवायुभ्यान्वा ॥

(१) १७ । ६४ ॥

(२) २७ । ९ ॥

(३) १५ । ६२ ॥

(४) ३३ । ४० ॥

(५) २७ । २४ ॥

(६) १९ । ६० । अधेति चत्वारि पदादिभूतानि पदानि व्यञ्जनमात्रे दीर्घमेति
 नो चेत्तदा २७ । ९ । अमुत्र भूयादध यत् । इत्यादिषु चतुर्षु पदेष्वपि दीर्घः स्यात्त-
 दर्थमयदित्यादिग्रहणम् ॥

(७) २ । १५ ॥

(८) २ । ३ ॥

(९) २५ । ६ ॥

(१०) ४ । ३३ ॥

(११) ७ । ८ ॥

हरि शयेत्येके ॥ १२९ ॥

हरि इत्यस्य एके आचार्यो दीर्घमिच्छन्ति शयप्रत्य-
ये, यथा (१) हरि शया हरी शया, एकइति किम् (२)
या तेऽ अग्ने हरि शया ॥

पिबा सोमं पिबा सुतस्य स्त्था मयो
भुवो नूरणे शमीष्व मामहानो माम-
हन्तामशीतम रीरिषो रीरिषत या-
मयन्ति हि ष्मा ते वर्द्धया रयिष्श्रु-
धी हव चरा सोम सूयवसिनी श्रो-
ता ग्रावाणो धर्षा मानुषः पाथा दि-
वो युक्ष्वा हि गमया तमः सिञ्चता
सुतम्परीवापऽ उक्क्था शस्त्राण्य-
त्ता हवीष्प्याच्चयाजानु क्षामा रेरि-
हत्क्षामा भिन्दन्तो रुहेमा स्वस्तये

(१) ५।८॥

(२) यथा पाठे व्यवस्था काण्वमाध्यन्दिनयोः शास्त्रिनोर्ज्ञातव्या ॥

जनयथा च धारयाम पितरा मृधो
 बोधा मे विचृता बन्धमवता हवेषु
 शृणुधी गिरो रक्षातोकञ्चर्षणीस-
 हाञ्चर्षणीधृतो येना समत्सु वनेमा
 तऽऋद्ध्यामा ते शिक्षासखिभ्यस्त-
 त्वा रथ न्दीया रथेनेता जयत वर्द्धया
 त्वं प्रब्रवा मा घृतस्या जगन्था पर-
 स्या ररिमा हि पुरी तता प्लीहाक-
 ण्णशुण्ठाकण्णौ प्रकृतिदीर्घावित्ये-
 के नी काशाऽअनू काशेन चक्क्रा
 जरसम्मिथूकस्तरता सखायः सास-
 ह्वानपामागर्गोभयादतऽऋतीषहम-
 भीषु सुष्टरीमा जुषाणा यजा देवा-
 न्येना पावकाश्चायन्तो यदी सरमा
 स्वदया सुजिह्व निषद्द्या दधिष्व

सदतना रणिष्ट न भरा चिकित्वाँश्
चिकित्सा गविष्टाववाददद्रक्षा चा-
युनक्वसृजा रराणः सादन्न्यमिति

च ॥ १३० ॥

पिवा सोमम्, पिवा सुतस्य, स्या मयो भुवः, नूरणे,
शमीष्व, मामहानः, मामहन्ताम्, अशीतम, रिरि-
षः, रीरिषत, यामयन्ति, हिष्मा ते, वर्डयारयिम्,
शुधी हवम्, चरा सोम, सूयवसिनी, श्रोता ग्रावा-
णः, धर्षा मानुषः, पाथा दिवः, युच्चा हि, गमयातमः,
सिञ्चता सुतम्, परीवापः, उक्था शस्त्राणि, अत्ता
हवीष्मि, आच्या जानु, क्षामा रेरिहत्, क्षामा भि-
न्दन्तः, रुहेमा खस्तये, जनयथा च, धारयाम, पित-
रा मृधः, बोधा मे, विचृताबन्धम्, अवता ह्वेषु, शृ-
णुधी गिरः, रक्षा तोकम्, चर्षणीसहाम्, चर्षणीधृ-
तः, येना समत्सु, वनेमा ते, ऋध्यामा ते, शिञ्जा स-
खिभ्यः, तत्वारथम्, दीया रथेन, इता जयत, वर्डया
त्वम्, प्रब्रवामा घृतस्य, आजगन्था परस्याः, ररिमा
हि, पुरी तता, लीहाकर्षः, शुण्ठाकर्णः, नी काशाः,
अनू काशेन, चक्राजरसम्, मिथू कः, तरता सखायः,
सा सद्धान्, अपा मार्गः, उभया दतः, ऋती षहम्,
अभीषु, सुष्टरीमा जुषाणा, यजा देवान्, येना पा-

वक्, अश्वायन्तः, यदी सरमा, स्वदया सुजिह्व, निषद्या
 दधिष्व, सदतना रणिष्टन, भरा चिकित्वान्, चिकि-
 त्सा गविष्टौ, अवा ददत्, रक्षा च, आयुनक् सृजा
 रराणः, सादन्यम्, एते ह्रस्वादीर्वमापद्यन्ते, पिब सो-
 मम् यथा (१) पिबा सोमं^१ शतक्रतो, (२) पिबा सोमं
 मनुष्वधं मदाय, पिब सुतस्य यथा (३) पिबा सुतस्या-
 न्नसो मदाय, स्थ मयो भुवः यथा (४) आपो हि ष्ठा
 मयो भुवः, नु रणे यथा (५) तूर्बन्तयामन्नेतशस्य नू
 रणे, शमीष्व यथा (६) हविः^२ शमीष्व, समहानः यथा
 (७) समिद्वेऽ^३ अग्नावधि^४ मामहानः^५, समहन्ताम् यथा
 (८) तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्ताम्, अशितम यथा
 (९) अग्ने दब्धायोऽशीतम, रीरिषः यथा (१०) मा

(१) २६।४॥ केचिदेतानि द्विपदैकपदान्यष्टसप्ततिरूपानि कृतदीर्घाणि निपात्यन्ते ॥

(२) ७।३६॥

(३) ३३।७०॥

(४) ११।५०॥

(५) १७।१०॥

(६) १।१५॥

(७) १७।५५॥

(८) ३३।४२॥

(९) २।२०॥ ५ अ० ३७ सू० प्रातिशाख्यवक्ष्यमाणसूत्रे वायुरसजातह-
 त्यन्त्रानवग्रहे चापपाठात् विकाररवाच्चावग्रहः । यथा चरणं पाठव्यवस्था । काण्वा
 नावगृह्णन्ति । माध्यन्दिनास्त्ववगृह्णन्ति । अशितमेत्यशि । तम । एवमभ्यन्त्राप्य-
 यग्रहचटितपदपाठो ज्ञातव्यः ॥

(१०) १६।१६॥

नोऽ अश्वेषु रीरिषः, रिरिषत यथा (१) मा नो मद्धा
रीरिषतायुः, यमयन्ति यथा (२) प्रिया देवेष्वायाम-
यन्ति, हि स्म ते यथा (३) अस्ति हिष्म ते, हीति
किम् (४) अध स्म ते ब्रजनम्, वर्जय रयिम् यथा (५)
अथा नो वर्जया रयिम्, शुधि हवम् यथा (६) इमं मे
वरुण शुधी हवम्, चर सोम यथा (७) प्रचरा सोम
दुय्यान्, श्रोत ग्रावाणः यथा (८) श्रोता ग्रावाणो
विदुषो न युज्जम्, धर्ष मानुषः यथा (९) मुञ्चामि
धर्षा मानुषः, पाथ दिवः यथा (१०) पाथा दिवो वि-
महसः, युच्वा हि यथा (११) युच्वा हि केशिना हरी,
गमय तमः यथा (१२) अधरं गमया तमः, सिञ्चत

(१) २५ । २२ ॥

(२) २५ । ३९ ॥

(३) ३ । ४६ ॥

(४) १५ । ६२ ॥

(५) ३ । १४ ॥

(६) २१ । १ ॥

(७) ४ । ३७ ॥

(८) ६ । २६ ॥

(९) ६ । ८ ॥

(१०) ८ । ३१ ॥

(११) ८ । ३४ ॥

(१२) ८ । ४४ ॥

यथा (१) परीतो ऽञ्जिता सुतम्, परि वापः यथा (२) परी वापः प्रयो दधि, उक्थ शस्त्राणि यथा (३) छन्दोभिरुक्थ्या शस्त्राणि, अत्त हवींषि यथा (४) अत्ता हवींषि प्रयतानि बर्हिषि, आच्य जानु यथा (५) आच्य्या जाबु दक्षिणतः । क्षाम रेरिहत् यथा (६) क्षामा रेरिहद्वीरुधः, क्षाम भिन्दन्तः यथा (७) क्षामा भिन्दन्तोऽ अरुणीः । रुहेम स्वस्तये यथा (८) अस्वन्तोमा रुहेमा स्वस्तये, जनयथ च नः यथा (९) आपो जनयथा च नः, धारय मयि यथा (१०) धारया मयि प्रजाम्, तर नृधः यथा (११) अग्ने त्वन्तरा नृधः, बोध मे यथा (१२) बोधा मे अस्य, विवृत बन्धम् य-

(१) १९ । ३ ॥

(२) १९ । २१ ॥

(३) १९ । १८ ॥

(४) १९ । ६९ ॥

(५) १९ । ६२ ॥

(६) १२ । ६ ॥

(७) १९ । ६९ ॥

(८) २१ । ६ ॥

(९) ११ । ५२ ॥

(१०) ११ । ५८ ॥

(११) ११ । ७२ ॥

(१२) १२ । ४२ ॥

था (१) व्विचृता बन्धमेतम्, अवत ह्वेषु यथा (२) देवा
अवता ह्वेषु, ष्टणुधि गिरः यथा (३) पाहि ष्ट-
णुधी गिरः, रक्ष तोकम् यथा (४) रक्षा तोकमुत
क्वन्ना, चर्षणिसहाम् यथा (५) चर्षणीसह्वा व्वेत्वाज्य-
स्य, चर्षणिधृतः यथा (६) ओमासश्चर्षणीधृतः, येन
समत्सु यथा (७) येना समत्सु सासहः, वनेम ते य-
था (८) व्वनेमा तेऽ अभिष्टिभिः, कृध्याम ते यथा
(९) कृध्यामा तऽओहैः, शिच्छ सखिभ्यः यथा (१०)
शिच्छा सखिभ्यो हविषि, तत्र रथम् यथा (११) तत्रा
रथमुप शग्मठं सदेम, दीय रथेन यथा (१२) बृहस्पते
परि दीया रथेन, इत जयत यथा (१३) प्रेता जयता

(१) ११ । ६३ ॥

(२) १७ । ४३ ॥

(३) १३ । ५२ ॥

(४) १३ । ५२ ॥

(५) २८ । १ ॥

(६) ७ । ३३ ॥

(७) १५ । ४० ॥

(८) १५ । ४० ॥

(९) १५ । ४४ ॥

(१०) १७ । २१ ॥

(११) २९ । ४५ ॥

(१२) १७ । ३६ ॥

(१३) १७ । ४६ ॥

नरः, वर्द्धय त्वम् यथा (१) तमग्ने वर्द्धया त्वम्, प्रब्र-
 वाम हतस्य यथा (२) व्यन्ताम प्रब्रवामा हतस्य,
 जगन्ध परस्याः यथा (३) परावत ऽआजगन्धा पर-
 स्याः, ररिम हि कामम् यथा (४) व्यन्तेऽ अद्दय
 ररिमा हि कामम्, पुरि तता यथा (५) अन्तरिचं
 पुरी तता, अस्य पदस्यापवादोऽभिप्रेतः तथा हि, (६)
 प्रशुपतेः पुरीतदित्येतदपि भवति, स्त्रीहाकर्णः शुगठा-
 कर्णः एतौ शब्दौ प्रकृतिदीर्घावित्येके आचार्या मन्यन्ते,
 यथा (७) स्त्रीहाकर्णः शुगठाकर्णः, नि काशाः यथा
 (८) बन्धुनी काशाः पितृणाम्, अनु काशेन यथा (९)
 अन्तरमनू काशेन, चक्र जरसम् यथा (१०) यत्वा नश्च
 क्वा जरसन्तनूनाम्, मिथु कः यथा (११) गात्रास्यसिना

(१) १७।५२ ॥

(२) १७।९० ॥

(३) १८।७१ ॥

(४) १७।७५ ॥

(५) १५।८ ॥

(६) ३९।९ । अत्र विभक्तिरविवक्षिता । कुत्रचित् सर्वाविभक्त्यन्तं पुरीततेति
 पदं गृह्यते ॥

(७) २४।४ । तत्पक्षे नावग्रहः । यथा चरणं पाठव्यवस्था ॥

(८) २४।१८ ॥

(९) २५।२ ॥

(१०) २५।२२ ॥

(११) २५।४३ ॥

मिथू कः, तरत सखायः यथा (१) प्रतरता सखायः,
ससहान् यथा (२) सासह्वान्पञ्चाभियुग्वा च, अप-
मार्गं यथा (३) अपा मार्गं त्वमस्मत्, उभय दतः य-
था (४) ये के चोभयादतः, ऋति षहम् यथा (५)
तँवो दस्मन्तृतीषहम्, अभि सु यथा (६) अभी पुणः
सखीनाम्, सुष्टरीम जुषाणा यथा (७) बर्हिः सुष्ट-
रीमा जुषाणा, यज देवान् यथा (८) यजा देवा २ ॥ ५
ऋतम्बृहत्, येन पावक यथा (९) येना पावक चक्षसा,
अश्वयन्तः यथा (१०) अश्वायन्तो मघवन्, यदि सर-
मा यथा (११) विदद्वदी सरमा, स्वदय सुजिह्व
यथा (१२) समञ्जनस्वदया सुजिह्व, निषद्वद्व दधिष्व

(१) ३५ । १० ॥

(२) ३९ । ७ ॥

(३) ३५ । ११ ॥

(४) ३१ । ८ ॥

(५) २६ । ११ ॥

(६) ३६ । ६ ॥

(७) २९ । ४ ॥

(८) ३३ । ३ ॥

(९) ३३ । ३२ ॥

(१०) २७ । ३६ ॥

(११) ३३ । ५९ ॥

(१२) २९ । २६ ॥

यथा (१) ब॒र्हि॒ष्या नि॒षद्वा॑ द॒धिष्व । सद॑तन र-
 णि॒ष्टन॑ यथा (२) सद॑तना रणि॒ष्टन॑, भर चि॒कित्वा॑न्
 यथा (३) उ॒त्ता॒नाया॒मव॑भरा चि॒कित्वा॑न्, चि॒कित्स॑
 गवि॒ष्टौ यथा (४) प्रचि॑कित्सा गवि॒ष्टौ, अव॑दत् य-
 था (५) भगे॑मां धिय॒मुद॑वा द॒दन्, रक्ष॑ च यथा (६)
 रक्षा॑ च नोऽ॒धि च॑ ब्रूहि दे॒व, अ॒युनक्॑ यथा (७)
 यु॒मेन॑ दत्तं त्रि॒तऽए॑नमायुनक्, सृ॒ज ररा॑णः यथा (८)
 व्वन॑स्प॒तेऽव॑सृ॒जा ररा॑णः, स॒दन्य॑म् यथा (९) सा॒द॒न्यं
 वि॒द॒त्यम्, ॥

अनुनासिकमुपधा प्रागन्तस्था-

याः ॥ १३१ ॥

(१) २६ । २३ ॥

(२) २६ । २४ ॥

(३) ३४ । १४ ॥

(४) ३४ । २३ ॥

(५) ३४ । ३६ ॥

(६) ३४ । २७ ॥

(७) २९ । १३ ॥

(८) २७ । २१ ॥

(९) ३४ । २१ । इतिशब्दश्चकारशब्दश्चानुक्तसमुच्चयार्थः । तेन ३७ । १६ ।

य॒च्छ दे॒वायु॑व॒मित्यत्रा॑पि दीर्घः । य॒च्छेति॑ ग्रहणं नो चेत्तदा १ । १२ । य॒ज्ञप॑तिन्दे-
 वयु॒व॒मित्यत्रा॑पि दीर्घः स्यात्तदर्थं यच्छपदग्रहणम् ॥

ह्रस्वो दीर्घः सुतः सानुनासिको निरनुनासिकउ-
दात्तोऽनुदात्तः स्वरितइति स्वरधर्माः तत्र पदे दृष्ट्या-
न्यथाभावो विकारउच्यते सचात्र स्वरे एवाधिकृतो
न व्यञ्जने यतो दीर्घमित्यारभ्यते अतइहापि स्वरस्यै-
वानुनासिकं विकारउच्यते इयांस्तु विशेषः यत्र नका-
रमकारावेवपरभूतौ तयोश्च विकारे सति स्वरस्य वि-
कारः । यत्र तु तयोः प्रकृतिभावो वा लोपो वा तत्र
स्वरस्यापि विकारो न भवति यथा (१) अस्मान्त्सीते
इत्येवमादि, (२) यत्प्रागन्तस्यासंशब्दनात्, (३) यदित-
ऊर्ध्वमनुक्रमिष्यामस्तत्रोपधाभूतः स्वरोऽनुनासिकं स्वरं
विकारमापद्यते इत्येतदधिकृतं वेदितव्यम् वक्ष्यति (४)
“नुः” “चच्छयोः शम्” यथा (५) लुषीन् चक्षुषे व्याचे
लुषीश्चक्षुषे, गवयान् त्वष्ट्रे वृहस्पतये गवयांस्त्वष्ट्रेऽ-
उष्ट्रान् ॥

स्वरऔपशविः ॥ १३२ ॥

औपशविराचार्यः स्वरएव प्रत्ययउपधानुनासिक-
मिच्छति, नुरिति वक्ष्यति अतस्तस्यैव परभूतो यः स्व-

(१) १२ । ७० ॥

(२) ४ अ. ९ सू. अन्तस्थामन्तस्थास्वनुनासिकां परसस्थानामिति सूत्रात्प्रागधि-
कारोऽयम् ॥

(३) अधिकारउपधायाः प्राक् अन्तस्थासंशब्दनात् इति “स” पुस्तक पाठः ॥

(४) अ. ३ । सू. १३४ । १३५ ॥

(५) २४ । २९ ॥ २४ । २८ ॥

रउक्तः उपधा च तस्यैव ग्राह्या, यथा (१) महान् इन्द्रः
महँ २॥५ इन्द्रो व्यञ्जहस्तः, (२) खान् अहम् उन्न-
यामि स्वां २॥५ अहम्, (३) शत्तून् अप जहि शत्रूँ ॥
रप ऋधो नुदस्व, खरइति किम् (४) गवयान् त्वष्ट्रे
गवयाँस्त्वष्ट्रे ॥

अनुस्वारेण व्यञ्जने ॥ १३३ ॥

नकारात्परे व्यञ्जनेऽनुस्वारेण व्यवधानमिच्छत्या-
गमिकेन औपश्रविराचार्यः, अवञ्च उपधानकारयोरि-
तरो भवति यत्र नकारस्य शकारः सकारो वा विहि-
तस्तत्रापि भवति, (५) “अनुस्वार ठं० रोष्मिस्वति” वच-
नात्, यथा (६) सुषीन् चक्षुषे सुषीँश्चक्षुषे, गवयान्
त्वष्ट्रे गवयाँस्त्वष्ट्रे ॥

नुः ॥ १३४ ॥

नकारो ऽधिकृतो वेदितव्यः ॥

(१) २६ । १० ॥

(२) ११ । ८२ ॥

(३) ७ । ३७ ॥

(४) २४ । २० ॥

(५) ४ अ. १ । सू. १ ॥

(६) पूर्ववदङ्गो बोध्यः ॥

चच्छयोः शम् ॥ १३५ ॥

चकारच्छकारयोः प्रत्यययोर्नकारः शकारमापद्यते
अनुनासिकं चोपधा यथा (१) अहीन् च अहीँश्च स-
र्वीन्, लुषीँश्चक्षुषे, छकारोदाहरणं न्ययम्, रूपोदा-
हरणन्तु विद्यते यथा विद्वान् छकारः विद्वँश्छकारः ॥

तथयोः सम् ॥ १३६ ॥

तकारथकारयोः प्रत्यययोर्नकारः सकारमापद्यते
अनुनासिकं चोपधा, यथा (२) गवयान् त्वष्ट्रे गवयँ-
स्त्वष्ट्रे, (३) अन्यान् ते अन्याँस्ते, थकारस्य रूपोदाह-
रणम् यथा विद्वान् थकारः विद्वँस्थकारः ॥

दधन्वान्त्स्ववान्यकारे लोपम् ॥ १३७ ॥

दधन्वान् स्ववान् एतौ नकारौ यकारे प्रत्यये लो-
पमापद्यते, अत्र च लोपविधानादुपधानुनासिकमपि
न भवति, यथा (४) चोक्तम् स्वराणामानुनासिकं
प्रतिजानन्ति सर्वदा, वर्जयित्वा तमाकारं यत्र लोपो

(१) १६ । ५ ॥

(२) २४ । २० ॥

(३) १७ । ११ ॥

(४) एतत्पद्यं वासिष्ठीशिक्षायाम् ॥

विधीयते, यथा (१) दधन्वान् यः दधन्वा यो नर्थ्योऽ
अप्स्वन्नरा, खवान् यथा (२) खवायात्त्वर्वाङ् ॥

रयिवृधे च ॥ १३८ ॥

रयिवृधइत्येतस्मिँश्च प्रत्यये पूर्वी नकारो लोपमाप्-
द्यते यथा (३) अन्नान् रयिवृधः प्रीवोऽ अन्ना रयिवृधः,
उक्तहेतुत्वादवाप्युपधानुनासिक्क्यन्न भवति (४) ॥

नपुठं सकादिकारस्य ॥ १३९ ॥

नपुंसकादुत्तरो यो नकारस्तस्य संबन्धिनइकारस्य
लोपो भवति, यथा (५) एमन्त्सादयामि, भस्मन्त्साद-
यामि, एमनि भस्मनीति प्राप्ते इकारलोपश्छान्दसः,
नपुंसकादुत्तरस्येकारस्य लोपउक्तोऽनपुंसकादपि भवति
यथा (६) अश्वन्नुर्जम् अश्वनीति प्राप्ते ॥

(१) १९ । २ ॥

(२) ३४ । २६ । नकारविकारसंहिताचरितमुपधानुनासिक्क्यमपि न प्रवर्त्तते । त-
थाचोक्तम् पाराशरीशिक्षायाम् । उपधारञ्जनं कुर्यान्मनोविकरणे सति ॥ लोपे प्रकृत-
भावे वा नोपधारञ्जनं भवेदिति ॥

(३) २७ । २३ ॥

(४) नैतान्युदाहरणानि मनोऽवगाहते उत्तरसूत्रविरोधात् ॥

(५) १३ । ५३ ॥

(६) १७ । १ ॥

न सप्तम्यामन्वितयोः ॥ १४० ॥

सप्तम्यामन्वितयोर्विभक्तयोः सम्बन्धिनङ्कारस्य न लोपो भवति, यथा (१) अपान्त्वा सधिषि, अपान्त्वा पाथसि, एते सप्तम्याउदाहरणे (२) हे षथिवि आ-मन्वितविभक्तेरुदाहरणम् अनकारार्थआरम्भः (३) ॥

नृन्पकारे विसर्जनीयम् ॥ १४१ ॥

नृनित्यं नकारः पकारे प्रत्यये विसर्जनीयमापद्यते अनुनासिकं चोपधा, यथा (४) नृन् पाहि नृः^५ पाहि ष्टुधी गिरः (५) ॥

शत्तून् परिधीन् क्रतून् वनस्पती-
न्तस्वरे रेफम् ॥ १४२ ॥

शत्तून् परिधीन् क्रतून् वनस्पतीन् एते नकाराः स्वरे प्रत्यये रेफमापद्यन्ते अनुनासिकं चोपधा, शत्तून्

(१) १३ । ५३ ॥

(२) १ । २५ । उभयथा लक्ष्यलक्षणदर्शनात् यथालक्षणं योज्यमिति निरवद्यम् ॥

(३) पूर्वोक्तसूत्रोदाहरणे अश्मन् शब्दः पुङ्क्तिः “पाषाणप्रस्तरमावोपलाशमान-इत्यभिधानात् । यच्च निशब्दो बहुलमिति पूर्वमुक्तन्त्रिशब्दस्येति न पौनरुक्त्यमिति ॥

(४) १३ । ५२ । न व्याकरणान्तरसिद्धोपध्मानीयप्रकृतिभावौ विधातव्यौ ॥

(५) ४ अ. ३ सू. अनुनासिकमुपधा, इति वक्ष्यमाणसूत्रेण पूर्वोत्तरयोर्दुदाहरणयो-रुपधाया आनुनासिक्यं भवति ॥

यथा (१) शतून् अप जहि शतूँ॥रपमृधः॥ परिधीन्
 यथा (२) व्वन्वन्न वातः परिधीँ॥ रपः, क्रतून् यथा
 (३) अग्ने कृत्वा क्रतूँ॥ रनु, व्वनस्पतीन् यथा (४) ये
 वा व्वनस्पतीँ॥रनु ॥

आकारोपधो यकारम् ॥ १४३ ॥

आकारोपधो नकारो यकारमापद्यते स्वरइत्यनुव-
 र्तते अनुनासिकं चोपधा, यथा (५) महान् इन्द्रः महा-
 न्यइन्द्रइत्येवं संहिता प्राप्नोति ततो (६) “यवयोः प्रदा-
 न्तयोः स्वरमध्ये लोप”इति यकारलोपे कृते (७) “न

(१) ७ । ३७ ॥

(२) १९ । ५३ ॥

(३) १९ । ४० ॥

(४) १३ । ७ । अत्रोदाहरणचतुष्टये सर्वप्राचीनसंहितापुस्तके साङ्खिका मात्रा लि-
 खिता तत्र प्रमाणं बृहदमोघनन्दिनीशिक्षावचनं “अनुरङ्गाः पञ्चैकाङ्क्षमात्रिका भवन्ति
 इति ज्ञेयम् ॥

(५) ७ । ४० ॥

(६) ४ अ. । १२५ सू. ॥

(७) ३ अ. । ३ सू. । प्रा. ३ अ. ४ सू. । प्रा. ४ अ. ५२ सू. वक्ष्यमाणेन
 “कण्वादिवर्णएकारमित्यनेन सूत्रेण सन्धिः प्राप्ता सा न भवति “न परकालइति पू-
 र्वोक्तसूत्रसामर्थ्यान्नैकवद्भावो भवति । ननु महौ २॥५ इन्द्रइत्यत्र यकारलोपे कृते
 सति उपधारञ्जनं न भवति तत्कथं लुप्तत्वादुपधारञ्जनमिति चेत् इत्थं यत्र साक्षा-
 न्नकारमकारलोपस्तत्रोपधारञ्जनं न भवति यत्र वर्णान्तरापत्या लुप्यते तत्र भवत्ये-
 वेत्यदोषः । अन्यथा स्वरयोः सन्धिरपि स्यात् अतउपधारञ्जनं भवत्येवेति ज्ञेयम् ।
 किन्नाम रङ्गत्वमिति सन्देहे याज्ञवल्क्येनोक्तम् । रङ्गे चैव समुत्पन्ने न प्रसेत्पूर्वमक्षर-
 म् । स्वरं दीर्घं प्रयुञ्जीत पश्चान्नासिक्यमुच्चरेत् १ द्विमात्रो मात्रिको वाऽपि नासासू-

परकालः पूर्वकाले पुनरिति” सन्धिर्न भवति ततो मङ्गा
२॥५ इन्द्रइत्येतद्रूपं सम्भवति, ननु यथा (१) “दधन्वा-
न्तस्त्वान्यकारे लोपं” इति नकारलोपे कृते सत्युपधानु-
नासिक्यन्त प्रवर्त्तते एवमिहापि नकारस्य यकारीभूत-
स्याथवणादुपधानुनासिक्यन्त प्रवर्त्तते तत्कथमुपधानु-
नासिक्यमिति लुप्तस्यापि स्वकार्यकरणादित्यदोषः, यदि

लमुपस्थितः । अन्ते प्रयुज्यते रङ्गः पञ्चमैः सर्वनासिकः २ यथा सौराष्ट्रका नारी-
अरौ २॥५ इत्यभिभाषते । एवं रङ्गं विजानीयात् ङकारं परिवर्जयेत् ३ अनन्तरो म-
कारस्तु यो रङ्गस्तत्र रज्यते । सर्वानुनासिकं विद्याच्छेषमन्योपधानिका ४ यरलवाः
शषसहा रज्यन्ते चोपधानिकाः । वर्गान्ते रज्यते यस्तु सवैः सर्वानुनासिकः ५ न स
उत्पद्यते रङ्गः कास्येन च समन्वितः । मृदुः सार्द्धद्विमात्रः स्याद्दृष्टिमानिति दर्शनात् ६
अस्यार्थः । रङ्गे उत्पन्ने इति । रङ्गो नाम स्वरयोरन्तरा नकारस्य लोपादौ विकारे उ-
पधानुनासिक्यं च । उक्तं च । उच्चारं कर्त्तव्ये पूर्वमक्षरं न भवेत् क्षिप्रोच्चारणं कुर्या-
त् । किन्तूपधास्वरं दीर्घं प्रयुज्जीत अनन्तरं नासिक्यं नासिकास्थानं कृत्वोच्चरेत् ।
द्विमात्रो मात्रिकइति दीर्घो ह्रस्वो वा नासामूलमाश्रितः वर्गपञ्चमैर्युक्तः स्वरान्ते सर्व-
नासिक्यं प्रयुज्यते । तदेव स्पष्टयति । अनन्तरेऽपीति । मकारव्यवहितस्वरे रङ्गः
सर्वानुनासिको ज्ञेयः । शेषोऽन्यः यरलवादौ उपधानुनासिकं नासिकयोच्चार्यते स च
मृदुद्विमात्रः स्यात् । अधोदाहरणानि वर्गान्ते मकारो ७ । ४० । ‘वृष्टिम्’ २॥५ ईव, ।
६ । २४ । हविष्मौ २॥५ आविवासाति, । यरलवान्ते इति । ८ । १९ । यौ २॥५
आवहः, । ७ । ३७ । जहि शत्रूँ १॥ रपमृधः, । १७ । १७ । प्रथमच्छदवर्षा २॥५
आविवेश, । २३ । १६ । देवाँ २॥५ इदोषि पथिभिः, । ३ । ५२ । ववशाँ २॥५
अनु, मङ्गाँ २॥५ इन्द्रं, । एते द्विमात्रप्रायाः । एतच्छास्त्रीयानां द्विमात्राएव । बहुचानां
एकमात्रा अपि पठ्यन्ते । उग्रं इत्यादि ज्ञेयम् । अत्र रङ्गोच्चारणे शुष्कवैदिका दा-
क्षिणात्याः प्रमादेन तर्जनीमध्यमयोरङ्गुल्याः प्रक्षेपं कुर्वन्ति तदसङ्गतं कुतः “दीर्घं
रङ्गे च तर्ज्ज्याः प्रसारः परिकीर्त्तित” इति याज्ञवल्क्यशिक्षायामुक्तत्वात् । अतस्तर्ज-
न्याएवैकाङ्गुल्याः प्रसारणं कथितमिति पण्डितैर्ज्ञेयम् ॥

(१) प्रा. ३ अ. १३७ सू. ॥

हि यकारो व्यञ्जनकार्यं न कुर्यात् कथमिह स्वरयोः स-
न्धिर्न स्यात् अतः स्वकार्यकरणादुपधानुनासिक्यमपि
भवति यथा (१) वृष्टिमान् इव पर्ज्जग्न्यो वृष्टिमा २ ॥ ५
इव ॥

न तमे ॥ १४४ ॥

यन्त्रकारस्य तकारे प्रत्यये विहितन्तत्तमप्रत्यये न
भवति, यथा (२) मदिन् तमानाम् मदिन्तमानान्त्वा,
मधुन् तमानाम् मधुन्तमानान्त्वा, तथयोः समित्यस्या-
पवादः ॥

निर्ज्जगन्त्वान् तमसि ॥ १४५ ॥

निर्ज्जगन्वानित्ययं नकारस्तमसि प्रत्यये न विकार-
माप्रद्यते, यथा (३) निर्जगन्त्वान् तमसः निर्ज्जगन्त्वान्त-
मसो ज्योतिषागात् ॥

धामञ्छ्रूँश्चिकित्वाँस्त्वं पूषन्नर्व-

निति च ॥ १४६ ॥

(१) ७ । ४० । अस्मिन् सूत्रे स्वरे इति पदानुवृत्तिः (प्रा. ३ अ. १३२) रेत-
दङ्गसूत्राजो चेत्तदा गवयान् त्वष्ट्रे इत्यत्र दोषः स्यात्तदर्थं तत्पदग्रहणम् ॥

(२) ८ । ४८ ॥

(३) १२ । १३ ॥

धामन् शत्रून् चिकित्त्वान् त्वम् पूषन् अर्वन् एते
नकारा न विकारमापद्यन्ते । धामन् यथा (१) धामन्ते
व्विश्स्वम् भुवनम् । शत्रून् यथा (२) शत्रून्ताडि व्विष्टधो
नुदस्व । चिकित्त्वान् त्वम् यथा (३) आ च व्वह मित्र
महश्चिकित्त्वान्त्वम् । त्वमिति किम् (४) स प्रथमो बृह-
स्पतिश्चिकित्वास्तस्मै । पूषन् यथा (५) पूषन्तव व्व्रते
व्वयम् । अर्वन् यथा (६) तव शरीरं पतयिष्वर्वन्तव
चित्तम् । इति चेत्यस्यावयवस्यार्थः । इति शब्दः प्रकार-
दर्शनार्थः । यथा (७) अधस्तनसूत्रयोस्तकारे नकारस्य
प्रकृतिभावः एवमिहापि नकारस्य प्रकृतिभाव एव तथा
च व्याख्यातम् । चकारस्तकारापवादावधिद्योतनार्थः ॥

अश्वादौ चाद्ध्याये ॥ १४७ ॥

(१) १७ । २९ ॥

(२) १८ । ७१ ॥

(३) २९ । २५ ॥

(४) ७ । १५ ॥

(५) ३४ । ४१ । अयं नकारविकारनिषेधो मन्त्रे न तु ब्राह्मणे । ब्राह्मणे तु तथ-
योः समिति प्रा० ३ अ० १३६ पूर्वेण सूत्रेण नकारस्य सकारे जाते पूर्वस्तव श्रुते व-
यमिति तदुक्तं माण्डवीशिक्षायाम् । पूषन्तवेत्यृचो मन्त्रे तस्य प्रकृतिरिष्यते । नेष्यते
ब्राह्मणे तेन संस्कारो म्रियते तयोरिति, तस्य नकारस्य प्रकृतिभावइत्यर्थः ॥

(६) २९ । २२ ॥

(७) प्रा० ३ अ० १४४ । १४५ । २ । ३ । व्वाचो युन्तुर्व्यन्त्रिये दधामीत्यादौ
तस्य विकारो न भवतीति ज्ञेयम् ॥

खरइति वर्त्तते अश्वस्तूपरइत्येतस्मिन्नध्याये नकार-
 आकारोपधः खरे प्रत्यये प्रकृत्या भवति । 'आकारो-
 पधो यकार'मित्यस्यापवादः । यथा (१) शिशुमारान्
 आलभते समुद्राय शिशुमारानालभते । मण्डूकान्
 अह्वयः मण्डूकानह्वयः । खरानुवृत्तिरिति किम् (२)
 गवयांस्त्वष्ट्रे, लुषीश्चक्षुषे ॥

मनुष्याँस्ताँल्लोकानमित्वानुदि

॥ १४८ ॥

मनुष्यान् तान् लोकान् अमित्वान् एते नकाराः
 प्रकृत्या भवन्ति उदि उपसर्गे प्रत्यये । मनुष्यान् यथा
 (३) मनुष्यान् उत् मनुष्यानुदजयताम् । तान् यथा (४)
 तान् उत् तानुज्जेषम् । लोकान् यथा (५) वील्लोकानु-
 दजयताम् । अमित्वान् यथा (६) क्षिणोमि ब्रह्मणा-
 मित्वानुन्नयामि खान् ॥

आप्नोतीत्योश्च ॥ १४९ ॥

(१) २४ । १९ । उदाहरणद्वयं तस्यैव मन्त्रस्य ॥

(२) उदाहरणद्वयं पूर्वोक्ताङ्गस्यैव ॥

(३) ९ । ३१ ॥

(४) तथा ॥

(५) उदाहरणत्रयमेकस्याः कण्डिकाया ज्ञातव्यमिति ॥

(६) ११ । ४२ ॥

आप्नोतौ प्रत्यये इतौ च नकारो न विकारमापद्यते ।
आप्नोति यथा (१) भक्षान् आप्नोति दृडाभिर्भक्षाना-
प्नोति । इति यथा (२) अपयान् इति अदितिः श्अप-
यानिति ॥

सङ्क्रमे च वैष्णवान् ॥ १५० ॥

वैष्णवानित्ययं नकारो न विकारमापद्यते स्वरे प्र-
त्यये । सङ्क्रमश्च क्रमे भवति अतः क्रमसंहितायामित्य-
र्थः यथा (३) वैष्णवान् अव वैष्णवानव ॥

गृहानैमि गृहानुपह्वयामहे ऽवर्च-
स्वानहम्मनुष्यान्तरिक्षमग्निष्वा-
त्तानृतुमतः पयस्वानग्ने तानश्निश्चना
पतङ्गानसन्दिदतः स्वर्गानिपां पतिः
सपत्न्यानिन्द्रसपत्न्यानिन्द्राग्नी नभ-
स्वानाद्देवानुर्व्विद्वानग्नेर्देवानस्त्रेधा-

(१) १९ । २९ ॥

(२) ११ । ५९ ॥

(३) ५ । २६ सङ्क्रमलक्षणं भाष्यकारेण चतुर्थाध्याये 'सङ्क्रमे च सर्वत्र' इति
सूत्रे गलत्पदमतिक्रम्यागलता सह सन्धानं सङ्क्रम इति कथितं तज्ज्ञातव्यम् ॥

नङ्कानाशुरथैतानष्टौ विवरूपानाल-
 भतएतावानस्यायुष्मानग्ने व्वाय-
 व्व्यानारण्याः प्रविद्वानग्निनान-
 द्धानधोरामौ शत्रूननुयँय्यातुधानान-
 स्थादस्मानरिष्टेभिरिति ॥ ५१ ॥

एतेषां द्विपदानां पूर्वं पदान्तीया नकाराः प्रकृत्या
 भवन्ति । (१) गृहानैमि मनसा मोदमानः । (२) गृहा-
 नुपह्वयामहे । (३) वव्रस्वानहं मनुष्येषु । (४) मनु-
 ष्यानन्तरिक्षमगन् । (५) अग्निष्वात्तानृतुमतो हवा-
 महे । (६) प्रयस्वानग्नः प्रागमन्तम् । (७) तानश्वि-
 ना सरस्वती । (८) तपूँष्यग्ने जुह्वा पतङ्गानसन्दि-

(१) ३ । ४१ ॥

(२) ३ । ४२ ॥

(३) ८ । ३८ ॥

(४) ८ । ६० ॥

(५) १९ । ६१ ॥

(६) २० । २२ ॥

(७) २१ । ४२ ॥

(८) १३ । १० ॥

तः' । (१) स्वर्गानपां पतिवृषभः' । (२) अधा सपत्नानि-
न्द्राग्नी मे' । (३) समुद्रोऽसि नभस्वानाहृदानुः ।
(४) प्राचीमनुप्रदिशं प्रेहि विद्वानग्नेः' । (५) देवा-
नस्त्वेधता मन्मना । (६) अनङ्गानाशुः सप्तिः पुर-
न्धिः । (७) अथैतानष्टौ विरूपानालभते । (८) ए-
तावानस्य महिमा । (९) आयुष्मानग्ने हविषा वृधा-
नः' । (१०) व्यायव्या नारस्या ग्राम्याश्च ये । (११) प्र-
विद्वानग्निना । (१२) अनङ्गानधो रामौ । (१३) शत्रू-
ननु यंविश्ये मदन्त्युमाः । नकारस्य रेफापवादः ।
दूतरत्र तु सर्वत्र यकारापवादः । (१४) अपसेधन्नुक्षसो'

(१) १३ । ३१ ॥

(२) १७ । ६४ ॥

(३) १८ । ४५ ॥

(४) १७ । ६६ ॥

(५) १८ । ७५ ॥

(६) २२ । २२ ॥

(७) ३० । २२ ॥

(८) ३१ । ३ ॥

(९) ३५ । १७ ॥

(१०) ३१ । ६ ॥

(११) इदमुदाहरणं शास्त्रान्तरीणम् ॥

(१२) २९ । ५९ ॥

(१३) ३३ । ८० ॥

(१४) ३४ । २६ ॥

यातुधानानस्त्यात् । (१) द्युभिरक्तुभिः परिपातम-
स्मानरिष्टेभिः ॥

वृद्धं वृद्धिः ॥ ५२ ॥

इत्युक्तार्थम् ॥

इति कात्यायनकृतौ प्रातिशाख्य-
सूत्रे तृतीयोऽध्यायः ॥

आनन्दपुरवास्तव्यवज्जटसूनुना उवटेन कृते मातृ-
मोदाख्ये प्रातिशाख्यनिर्मलभाष्ये तृतीयोऽध्यायः स-
माप्तः ॥

अनुस्वारठं रोष्मसु मकारः ॥ १ ॥

अनितावध्यायइत्यनेन सूत्रेण योऽवधित्वेन वर्णि-
तः । अतोऽवधिपरिज्ञापनार्थमध्यायसमाप्तिः कृता
कात्यायनाचार्येण । आह च । अनितावध्यायइति कृतं
सूत्रं यतः पुरा । अतस्तदवधिज्ञप्तिः क्रियतेऽध्यायस-
ङ्ख्याया । (२) अत्रावधिसमाधीतं पदमन्तर्विकारिमत् ।
आचार्येणोच्यते तस्य प्रागुक्त्यादिप्रयोजनम् । मकारो

ऽनुस्वारमापद्यते रोष्मसु प्रत्ययेषु । रेफे यथा (१)
अग्राम् रसेन । अपां रसेन वरुणः । जघ्मसु यथा (२)
त्वाम् शश्वन्तः त्वां शश्वन्तऽउपयन्ति वाजाः । (३)
देवर्ठं सवितारमोस्योः । (४) तपूँषि । (५) उरुर्ठं
हि राजा (६) ॥

नुश्रान्तःपदेऽरेफे ॥ २ ॥

(१) २ । ३ ॥

(२) १७ । ७६ ॥

(३) ४ । २५ ॥

(४) १३ । १० ॥

(५) ८ । २३ ॥

(६) अनुस्वारर्ठं रोष्मस्वित्यनेन सूत्रेण मकारोऽनुस्वारमापद्यते । स कीदृशो
ऽनुस्वारः यस्यानुस्वारस्य वक्ष्यमाणप्रतिज्ञासूत्रेण “अनुस्वारस्य र्ठं मित्यादेशः शष-
सहरेफेबु” इत्यनेन सूत्रेण र्ठंकाररूपो योऽनुस्वारो ह्रस्वपूर्वः असंयुक्तपरः सार्धमात्रा-
कालः पूर्वश्च स्वरोऽत्राद्विमात्राकालः कार्यः । तां सवितुः । सिं हृद्यसि । इमं
स्तनम् । ऋपरे तु । उक्तं च भगवता याज्ञवल्क्येन शिक्षायाम् । अनुस्वारोपरिष्ठात्तु सं-
य्योगो यत्र दृश्यते । ह्रस्वं तं तु विजानीयात्संस्थेति निदर्शनम् ॥ १ ॥ अनुस्वा-
रोपरिष्ठात्तु संवृतं यत्र दृश्यते । दीर्घं तं तु विजानीयात्संस्थेति निदर्शनम् ॥ २ ॥
अनुस्वारोपरिष्ठात्तु संवृतं यत्र दृश्यते । दीर्घं तं तु विजानीयात् श्रोता प्रावाण इति नि-
र्दर्शनम् ॥ ३ ॥ अनुस्वारस्तु यो दीर्घादक्षराच्च भवेत्परः । स तु ह्रस्वइति ज्ञेयो मन्त्रे-
ष्वेव विभाषया ॥ ४ ॥ वर्णे तु मात्रिके पूर्वे अनुस्वारो द्विमात्रिकः । द्विमात्रो मात्रिको
ज्ञेयः संय्योगाच्च यो भवेत् ॥ ५ ॥ अनुस्वारो द्विमात्रस्तु ऋवर्णे व्यञ्जनोदये । ह्रस्वो-
ऽपि दीर्घो ज्ञातव्यो देवानार्ठं हृदयेभ्य इति निदर्शनम् ॥ ६ ॥ इदमनुस्वाररूपर्ठं-
कारोच्चारणं भिन्नपदेष्वेव दृश्यते । प्रतिज्ञासूत्रेष्वस्य र्ठंकारस्य त्रैविध्यमाख्यातमुच्चा-
रणं महर्षिणा कात्यायनेन तदग्रे द्रष्टव्यमिति ॥

नकारोऽनुस्वारमापद्यते । चशब्दान् मकारश्च ।
 पदस्य मध्ये अरेफे रेफशब्दस्य पर्युदासात् । ऊष्मस्वे-
 वानुस्वारापत्तिर्भवति । यथा (१) ज॒क्षि॒वान् सः । ज॒-
 क्षि॒वाँ॑ सः । (२) प॒पि॒वान् सः । प॒पि॒वाँ॑ सः । (३)
 त॒पू॒म् षि त॒पू॒ँ॑ ष्यग्ने । (४) ह॒वी॒न् षि । ह॒वी॒ँ॑ षि ।
 एते नकारप्रकृतयोऽनुस्वाराः ॥

व॒ठ०शः ॥ ३ ॥

वनतेर्धातोर्वमतेरुणादेर्यो वश्प्रत्ययः । वनतेर्वम-
 तेर्धातोरौणादिकशप्रत्यये नकारप्रकृतिर्मकारप्रकृति-
 र्वाऽनुस्वारः । सन्देहात्सूत्रकारेण कण्ठरवेण सूत्रं
 कृत्वा पठितः । अतो नकारप्रकृतिर्वा मकारप्रकृतिर्वा-
 ऽनुस्वारः । (५) कि॒म् शि॒लाय॑ कि॒ठ०॑ शि॒लाय॑ (६) अ॒-
 क्क॑ँ॒स्त॒ । (७) पु॒ठ०॑ सः । एते मकारप्रकृतयोऽनु-
 स्वारा भवन्ति । एवमन्येऽप्यन्वेषितव्याः । अरेफइति

(१) ८ । १९ ॥

(२) ८ । १९ ॥

(३) १३ । १० ॥

(४) १७ । ७५ ॥

(५) १६ । ४३ ॥

(६) २ । २५ ॥

(७) २५ । ४५ ॥

किम् । वृत्तः । (१) यद्दृष्टोऽतिरूपति । (२) ॥

अनुनासिका चोपधा ॥ ४ ॥

अतोऽधिकाराद्यमन्यं विकारं वक्ष्यामो मकारन-
कारयोस्तत्रानुनासिका चोपधा भविष्यतीत्यधिकृतं
वेदितव्यम् । ननु 'अनुनासिकमुपधा प्रागन्तस्थाया'
इति उपधाऽनुनासिक्यं विहितमेव किमनेन सूत्रेण
क्रियते । एवन्तर्हि व्यवस्थार्थं वचनम् । यस्मिन्पक्षे अ-
नुस्वारो न भविष्यति । तस्मिन्पक्षे उपधायाश्चानुना-
सिक्यं भविष्यति । अधिकारार्थोऽयमारम्भः ॥

लोपं काश्यपशाकटायनौ ॥ ५ ॥

काश्यपशाकटायनात्राचार्यौ मकारनकारयोर्लोपं
मन्येते । अस्मिन्पक्षे वाक्यद्वयम् । अनुनासिका चोप-
धा भवति । यथा अपा रसेन । पक्षे अपाए रसेन ।
त्वां शश्वन्तः । त्वाए शश्वन्तः । तां सवितुः । ताए
सवितुः । त्वां हि । त्वाए हि । तपूषि । तपूएष्यग्ने ।
अक्वस्त । अक्वएस्त । किं शिलाय । किठं शिलाय ।
(३) यजूषि । यजूएषि सामभिः ॥

(१) ११ । ७४ ॥

(२) इदं सूत्रमष्टाध्याय्यां न दृश्यते व्याख्याकर्त्रा तु लिख्यते ॥

(३) २० । १२ । अयं विकल्पपाठो यथाशास्त्रीयो बोध्यः ॥

अन्तस्थामन्तस्थास्वनुनासिकां

परसस्थानाम् ॥ १० ॥

अन्तस्थामापद्यते मकारः अन्तस्थासु परभूतासु
परस्था अन्तस्थायाः समानस्थानां यदि नामानुनासि-
कां समानाम् । यथा (१) सम् यौमि । सँय्यौमीदम् ।
(२) रासभम् युवम् । युञ्जाथाँरासभँय्युवम् । (३)
सम् वंपामि । सँवंपामि । (४) तम् लोकम् । तँल्लोकं
पुण्यम् । रेफेऽनुस्वारौ विहितः ।

हि ॥ ११ ॥

‘ह्यन्तराः काला’ इत्युक्तम् । अतस्तत्कालावधिद्योत-
नार्थं हिशब्दः ॥

स्पर्शं परपञ्चमम् ॥ १२ ॥

मकारः स्पर्शं प्रत्यये परस्य प्रत्ययभूतस्य पञ्चममा-
पद्यते । परः स्पर्शो यस्मिन्वर्गे तस्य वर्गस्य पञ्चममि-

(१) १ । २२ ॥

(२) ११ । १३ ॥

(३) १ । २१ ॥

(४) २० । २५ ॥

त्यर्थः । यथा (१) व्युतम् कृणुत । व्युतङ्कृणुत । (२)
व्युतम् चरिष्यामि । व्युतच्चरिष्यामि । (३) एतम्
ते देव । एतन्ते देव सवितः । (४) इदम् पितृभ्यः ।
इदम्पितृभ्यो नमः । (५) सम् ज्ञानमसि । स-
ञ्ज्ञानमसि ॥

तकारो लै लम् ॥ १३ ॥

तकारो लकारे प्रत्यये लकारमापद्यते । यथा
(६) आसीत् लोकम् । आसील्लोकम् । (७) परि-
चित् लोकम् । परि चिल्लोकम् । क्रमसंहितोदाह-
रणम् (८) ॥

नुश्चाऽनुनासिकम् ॥ १४ ॥

नकारो लकारप्रत्यये लकारमापद्यते । यदि

(१) ४ । ११ ॥

(२) १ । ५ ॥

(३) २ । १२ ॥

(४) १९ । ६० ॥

(५) १२ । ४६ ॥

(६) १४ । ३१ ॥

(७) १२ । ४५ ॥

(८) इदमुदाहरणं क्रमपाठस्थं ज्ञेयम् । क्रमलक्षणविधायकं सूत्रमस्मिन्नध्याये १०१
वक्ष्यमाणमिति ॥

समानाऽनुनासिकम् । यथा (१) अस्मिन् लोके ।
अस्मिँल्लोकेऽस्मिन् क्षये । (२) त्रीन् लोकान् । त्रीँ-
ल्लोकानुदजयत् ॥

ङु क्त्वाब्भ्याऽ सकारे ॥ १५ ॥

ङकारनकारौ यथासङ्ख्यं ककारनकाराभ्यां व्यव-
धीयेते सकारे प्रत्यये । यथा (३) प्राङ् सोमः ।
प्राङ्क्सोमोऽ अति द्रुतः । (४) प्रत्यङ् सोमः । प्रत्यङ्-
क्सोमोऽ अतिद्रुतः । (५) त्रीन् समुद्रान् । त्रीन्त्समु-
द्रान्समसृपत् । (६) अस्मान् सीते । अस्मान्त्सीते
प्रयसा ॥

न दाल्भ्यस्य ॥ १६ ॥

दाल्भ्यस्याचार्यस्य मते नैतावागमौ भवतः । (७)
प्राङ्सोमः । प्रत्यङ्सोमः । त्रीन्त्समुद्रान् । अस्मा-

(१) ३ । २१ ॥

(२) ९ । ३१ ॥

(३) १९ । ३ ॥

(४) तथा ॥

(५) १३ । ३१ ॥

(६) १२ । ७० ॥

(७) पूर्वोक्तोदाहरणाङ्को द्रष्टव्यः ॥

न्सीते ॥ (१) ॥

रलावृलृवण्णाब्भ्यामूष्मणि स्वरो-
दये सर्वत्र ॥ १७ ॥

रेफलकारौ ऋलृवर्णाभ्यां ऋलृसदृशश्रुतिभ्यां य-
थासङ्ख्यं व्यवधीयेते ऊष्मणि परभूते स्वरपरे सर्वत्र
संहितायां पदे च । अन्तःपदे नानापदे च यौ तौ
विधायकावुक्तौ तौ स्वरावुत व्यञ्जनाविति । शृणु ।
ऋलृस्वरसदृशौ व्यञ्जनावर्द्धमात्रकाविति ब्रूमः । तौ
स्वरभक्तिरित्यन्येषु पदेषु प्रसिद्धौ । न चैतौ वर्णौ रेफ-
लकारयोरुष्मणां च मध्यवर्त्तिनावपि सन्तौ संयोगस्य
विघातं कुरुतः । स्वरसदृशत्वात् । (२) तथा चाह

(१) तथा ज्ञातव्यः । याज्ञवल्क्योऽपि । “नकारान्ते पदे पूर्वे सकारे परतः
स्थिते । तसवर्णं विज्ञानीयादस्मान्स्तीति निदर्शनम् ॥” अत्र रूपसिद्धिः । नकारत-
कारसकारसंयोगः । केवलसानुनासिकनकारसकारसंयोगः । नकारसकारसंयोगः । यथा
चरणं पाठः । नकारतकारसंयोगं काण्वशास्त्रिनः पठन्ति । द्वयमितरे । इति पाठो
बुधैर्बोध्यः ॥

(२) शौनकमहर्षिणा ऋग्वेदिनामुपकारायाष्टादशपटलात्मकं प्रातिशाख्यं निर्मितम् ।
तत्रत्यतृतीयपटले सूत्रं १०१ बोध्यम् । स च स्वरभक्तिः पञ्चधा याज्ञवल्क्येनाभिहिता ।
करिणी कुर्विणी चैव हरिणी हारिणी तथा । या तु हंसपदी नाम सा तु रेफकारयोः ॥
१ ॥ देवं बर्हिरिति करणी उपबलहेति कुर्विणी । हरिणी अर्शसदृश्याहुर्हरिता शतव-
ल्लोति ॥ २ ॥ वर्षो वर्षीयसि प्राह या तु हंसपदीति च । एतल्लक्षणमाख्यातं याज्ञव-
ल्क्येन धीमता ॥ ३ ॥ स्वरभक्तिं प्रयुञ्जानस्त्रीन्दोषान्परिवर्जयेत् । इकारं चाप्युकारं
च अस्तदोषं तथैव च ॥ ४ ॥ सम्यग्वर्णं प्रयुञ्जीत ब्रह्मलोके महीयते । नैतत्स्व-
रन्ति पूर्वाङ्गे नो पराङ्गे कथं च न ॥ ५ ॥ न स्वरे न च मात्रायां कथं स्वरो विधी-

शौनकः । “न संयोगं स्वरभक्तिर्विहन्ति” यथा (१)
 गार्हपत्यः । अत्र हकाररेफयोरन्तरावपि स्वरभक्तिः
 सती रेफहकारयोः संयोगं न विहन्ति । एवमन्यत्रा-
 पि द्रष्टव्यम् । (२) अर्शसउपचितामसि । (३) श्रुतव
 लशः । (४) उपवलहामसि त्वा । पदमध्येदाहरणम् (५)
 वेर्होत्रम् । (६) सवितुर्हवामहे । स्वरोदयइति
 किम् । (७) पार्श्वतः । (८) दिवो व्यष्मन् । (९)
 मृद्वस्वैः । (१०) अश्वभिर्हृदिनीः ॥

प्रगृह्य चर्चयामितिना पदेषु ॥ १८ ॥

घटे । पराङ्गस्य तु यत्पूर्वं पूर्वाङ्गस्य तु यत्परम् ॥ ६ ॥ उभयोरर्द्धसंयोगे स्वारं कु-
 र्याद्विचक्षणः ॥ घृतान्वक्षराण्यन्तःपदे नानापदे चोच्चारणं कुर्वन्ति तेषामुदाहरणा-
 नि प्रदर्शितानि । एतत्सूत्राशयं ज्ञात्वा केशवेनापि सूत्रमकारि “अहलशल्यूद्धरेफस्य
 सैकारः प्राक् च” एतत्सूत्रार्थाङ्गकारिकापि । ‘विहलशल्यूद्धरेफो यः सैकारः प्राक्त-
 मुच्चरेत्’ इति । अस्योच्चारणप्रकारः प्रतिज्ञापारिशिष्टसूत्रे कात्यायनेन प्रदर्शितः ॥

(१) ३ । ३२ ॥

(२) १२ । २७ ॥

(३) ५ । ४३ ॥

(४) २३ । ५१ ॥

(५) २ । ९ ॥

(६) २२ । ११ ॥

(७) २१ । ४३ ॥

(८) २० । १ ॥

(९) २५ । १ ॥

(१०) २५ । २ ॥

प्रगृह्यसञ्ज्ञकं यत्पदं तच्चर्चायां परभूतायामिति-
ना आगमिकेन व्यवधीयते । चर्चाशब्देन इतिकरणा-
त्परतो या तस्यैव पदस्य द्विरुक्तिः सोच्यते । (१) पदे-
ष्वित्यधिकारार्थं वचनम् । इतः प्रभृति पदाधिकारो
वर्तते । यथा (२) द्वेऽइति द्वे । (३) शीर्षेऽइति शीर्षे ।
(४) अस्मिन्नेऽइत्यस्मिन्ने । त्वेऽइति त्वे ॥

रिफितं च संहितायामनिरु-

क्तम् ॥ १९ ॥

रिफितं चशब्दादितिना आगमिकेन व्यवधीयते
चर्चायां परभूतायां संहितायामनिरुक्तातरेफं यत् ।
यथा (५) पुनरिति पुनः । (६) स्वरिति स्वरः । संहि-
तायामनिरुक्तमिति किम् । (७) पुनः । मनः ॥

पदावृत्तौ चान्तरेण ॥ २० ॥

(१) अस्मात्सूत्रादारभ्य पदाधिकारः प्रवृत्तः । चर्चलक्षणं 'इति वचचर्चायाम्'
अ० ३ सू० २० एतद्व्याख्यानावसरे पूर्वं प्रतिपादितम् ॥

(२) १७ । ८४ ॥

(३) तथा पदपाठादङ्को बोध्यः ॥

(४) उदाहरणद्वयस्यैक एवाङ्को ४ । २२ । बोध्यः ॥

(५) ४ । १५ ॥

(६) ३ । ३६ ॥

(७) ४ । १५ ॥

पदस्याष्टत्तिर्विरुक्तिः तस्यां पदाष्टत्तौ सत्त्वां अन्तरेण
इति भवति सा च नोक्ता अतस्तत्प्रतिपादनार्थमाह ॥

क्रमोक्तावृत्तिः पदेषु ॥ २१ ॥

क्रमशास्त्रे या पदाष्टत्तिरुक्ता सा पदेष्वपि भवति ।
क्रमशास्त्रातिदेशोऽयम् । तत्र चैतदुक्तमग्रे । (१) 'स्थि-
तोपस्थितमवगृह्यस्थान्तःपददीर्घाभावे' 'विनामे' 'प्र-
गृह्ये' 'रिफिते निरुक्ते' । अवगृह्ये यथा (२) प्रजावृत्ती-
रिति प्रजा । वृत्तीः । अन्तःपदे दीर्घाभावे यथा (३)
मामहानः' ममहान इति ममहानः' । विनामे च
भवति । यथा (४) सुषाव' । सुसावेति सु । सावा ।
प्रगृह्ये यथा (५) इन्द्राग्नी इतीन्द्राग्नी । रिफिते
निरुक्ते भवति यथा (६) पुनरिति पुनः । प्राणः' ॥

सुपदावसानवर्जम् ॥ २२ ॥

क्रमोक्ताष्टत्तिः पदेष्वित्युक्तम् । तस्यायमप्रवादः ।
सुपदावसाने वर्जयित्वाऽन्यत्र क्रमोक्ताष्टत्तिर्भवति । तत्र

(१) अत्रैतदध्यायस्थाग्रिमसूत्राणि १८८ । १९० । १९१ । १९२ । १९३ ।
पञ्चसंख्याकानि स्मृतानि भाष्यकारेण । तानि ज्ञातव्यानि ॥

(२) १ । १ ॥

(३) १७ । ५१ ॥

(४) १९ । २ ॥

(५) ३ । १३ ॥

(६) ४ । १५ ॥

‘सुपदे शाकटायन’ (१) इति शाकटायनमतेनाट्टतिः ।
सा च (२) कतमानां भवति । अवसाने तु सर्वशाखि-
नामाट्टतिर्भवति । तदुभयं निषिद्धते ॥

अनितावन्तर्विकारागमं प्रा-

गुक्त्वा ॥ २३ ॥

‘अनितावध्याय’ इत्यतश्चारभ्य यावदध्यायपरिसमा-
प्तिरस्मिन्नन्तराले यस्य पदस्य अन्तरा विकारआगमो
वा विहितस्तदन्तर्विकारागमं पदं पूर्वमुक्त्वा पश्चात्प-
दाट्टतिः कर्तव्या । स्थितोपस्थितं कर्तव्यमित्यर्थः । तत्र
चोपचरितषत्वणादि विकारजातमुक्त्वा । यथा (३) शे-
र्यस्कर । शेर्यः+करेति शेर्यः । कर । (४) सुषाव । सु-
सावेति सु । साव । (५) परमेष्टी । परमेस्थीति पर-
मे । स्थी । (६) वृष्टिमां २ ॥ ५ इव । वृष्टिमानिवेति
वृष्टिमान् । इव । अनितावन्तर्विकारागममिति किम् ।
अस्यावधेरधस्तादुपरिष्टाच्च प्राग्वचनं मा भूत् । यथा-
ऽवधेरधस्ताद्भवति । ‘विसर्जनीयः’ । ‘चक्षयोः शम् ।’

(१) अस्मिन्नध्याये सूत्रं १८९ ज्ञेयम् ॥

(२) काण्वानामिति “ल” पुस्तकपाठः ॥

(३) १० । २६ ॥

(४) १९ । २ ॥

(५) ८ । ४८ ॥

(६) ७ । ३९ ॥

दुश्च्यवनऽइति दुः । च्यवनः । “तथयोः सम्” । तवस्त-
रमिति तवः । तरम् । एवमादि । अथोपरिष्ठादवधे-
र्द्दर्शयिष्यामः । ‘अनुस्वारठं रोष्मसु मकारः’ ।
सठं समिति सम् । सम् । ‘नुश्चान्तः पदेऽरेफे’ । प-
पिवाँसऽइति पिपि । वाँसः । संस्कृतिः । अस्या-
वधेर्बर्हिर्नया संहितायां पदे भवतीत्यर्थः (१) ॥

विशप्तीवेति च ॥ २४ ॥

विशप्तीवेत्येतच्च पदं प्रागुक्त्वा पञ्चात्मदावृत्तिः क-
र्त्तव्या । वेष्टकइत्यर्थः । यथा (२) आ विशप्तीव । वि-
शप्तीऽइवेति विशप्ती । इव । एतत्पदमस्यावधेर्ब-
हिरन्तः प्रागुक्तिरुच्यते ॥

स्वरश्छकारे चकारेण सर्वत्र ॥ २५ ॥

स्वरो व्यवधीयते छकारे प्रत्यये परभूते चकारे-
णागामिकेन सर्वत्र संहितायां पदे च । यथा (३) अ-
च्छा व्वदामसि । (४) यच्छा नः शर्मा सम्प्रथाः । पदेष्-

(१) एतानि पूर्वोक्ततृतीयाध्यायस्थानि सूत्राणि बोध्यानि ॥

(२) ३३ । ४० ॥

(३) १६ । ४ ॥

(४) ३५ । १७ ॥

दाहरणं यथा (१) आच्छच्छन्दः । प्रच्छच्छन्दः । (२)
वर्ष्मणाच्छादयामि । संहितोदाहरणम् (३) । ककुप्छ-
न्दः । पदाधिकारात्पदेष्वेव चकारेण व्यवधानं मा
भूदिति सर्वत्र ग्रहणात्संहितापदक्रमेष्वपि भवति (४) ॥

यस्यातिहायसहेति न ॥ २६ ॥

यस्य अतिहाय सह इत्येतैः पदैरुपहितः स्वरः छ-
कारे प्रत्यये न चकारेण व्यवधीयते । यस्य यथा (५)
यस्य छाया । अतिहाय यथा (५) अतिहाय छिद्रा
गात्राणि । सह यथा (७) सह स्तोमाः सह छन्दसः ॥

विविश्वाऽऊष्मान्तं परिद्विषस्त्वं
त्वां यदयो विवराजत्यनिराऽअवीवृ-
धन्नपरिष्ठाः सुक्षितयऽआशाऽओ-

(१) १५ । ५ ॥

(२) १७ । ४६ ॥

(३) १५ । ४ । एतान्युदाहरणानि पदपाठाद्बोध्यानि ॥

(४) चकारेणेत्येकवचननिर्देशात्संयोगरूपं द्वित्वं भवतीति ज्ञेयम् । पुनर्द्वित्वं तु
‘स्वरात्संयोगादि’रित्यनेन वक्ष्यमाणसूत्रेण प्राप्तं परन्तु न “सर्वर्णे” इति निषेधात् ॥

(५) २५ । ११ ॥

(६) २५ । ४१ ॥

(७) ३४ । ४८ ॥

पधीराभाह्यमीवा हि मायास्तेऽसी- तेषु ॥ २७ ॥

विश्वा इत्येतत्पदं जप्मान्तं भवति परिद्विषादिषु प्र-
त्ययेषु । परिद्विषशब्दे यथा (१) येन विश्वाः परि-
द्विषः । त्वं यथा (२) विश्वास्त्वाम्रजाऽउपावरोह ।
त्वां यथा (३) विश्वास्त्वाम्रजाऽ उपावरोहन्तु । य-
दजयो यथा (४) विश्वा यदजयस्पृधः । विराजति
यथा (५) धियो विश्वा विराजति । अनिरा य-
था (६) व्यस्यन्तिश्वाऽ अनिराः । अवीष्टधन्यथा (७)
इन्द्रविश्वाऽअवीष्टधन् । परिष्टा यथा (८) अति वि-
श्वाः परिष्टाः । सुक्षितयो यथा (९) विश्वाः सु-
क्षितयः पृथक् । आशा यथा (१०) विश्वाऽ आशाःप्-

(१) ४ । २९ ॥

(२) ६ । २४ ॥

(३) तथाङ्गो बोध्यः ॥

(४) १९ । ६९ ॥

(५) २० । ७७ ॥

(६) ११ । ४४ ॥

(७) १२ । ४८ ॥

(८) १२ । ७५ ॥

(९) १२ । १०७ ॥

(१०) २७ । ७ ॥

मुञ्चन् । ओषधीर्यथा (१) पृष्ठो विश्वाऽओषधी-
राविवेश । आभाहि यथा (२) विश्वाऽआभाहि
प्प्रदिशश्चतस्रः । अमीवा यथा (३) विश्वाऽअ-
मीवाः । हिमाया यथा (४) विश्वा हि मायाः ।
ते यथा (५) विश्वास्ते स्पृधः शन्नथयन्त । असि
यथा (६) अभि विश्वाऽअसि स्पृधः । ननु 'स्वर-
संस्कारयोश्छन्दसि नियम' इति स्वरसंस्कारावधि-
कृतौ वेदितव्यौ न चायं स्वरौ न संस्कारः । अत्र हि
इदमूष्मान्तं पदमिदं स्वरान्तं पदमित्येतदुच्यते । अप्र-
स्तुताभिधानमेतत् । उच्यते पदानां संदिह्यमानानां
निश्चयो नैव दोषायेति तावत्पश्यामः । अतः साधुप-
दनिश्चयलक्षणमिति । अनभिज्ञस्य बोधनार्थम् ॥

पृथिव्या स्वरान्तर्दृष्टः सम्भवः शुक्रो
मन्थी पृथिवीं परो देवेभि-
रित्येतेषु ॥ २८ ॥

(१) २८ । ६६ ॥

(२) २७ । १ ॥

(३) कारावानामुदाहरणम् ॥

(४) खाण्डिकेयशास्त्रिणामुदाहरणम् ॥

(५) ३३ । ६१ ॥

(६) ३३ । ६० ॥ इमे शुदाहरणाङ्काः पदाधिकारात्पदाठादवगन्तव्याः ॥

ए॒थिव्या इत्येतत्पदं स्वरान्तं भवति सम्भवादिषु पदे-
षु परेषु । सम्भव यथा (१) ए॒थिवी मा वि॑शत ए॒-
थिव्या सम्भ॑व । शुक्नी यथा (२) स॒ञ्जग्मानो दि॒वा
ए॒थिव्या शुक्नी॑ । मन्थी यथा (३) स॒ञ्जग्मानो
दि॒वा ए॒थिव्या मन्थी॑ । ए॒थिवीं यथा (४) ए॒थिव्या
ए॒थिवीम् । परो दे॒वेभिर्यथा (५) ए॒थिव्या प॒रो दे॒-
वेभिः॑ । स्वरान्तमिति किम् । (६) नाभा ए॒थिव्याः^५
स॒मिधाने ॥

च वि॒श॒श्वा वो ब्रह्म॑ वि॒श॒श्वा हरी
युक्॑क्तास्ते श॒फानां ज॒जान॑ नु क-
मित्येतेष्विमा ॥ २९ ॥

च वि॒श्वादिषु प्रत्ययेषु परेषु इमा इत्येतत्पदं स्वरान्तं भवति । च वि॒श॒श्वा यथा (७) इ॒मा च वि॒श॒श्वा भु-

(१) ४ । १३ ॥

(२) ७ । १२ ॥

(३) ७ । १७ ॥

(४) १५ । ६ ॥

(५) १७ । २६ ॥

(६) ११ । ७१ । इमान्युदाहरणान्यपि पदपाठाज्ञातव्यानि ॥

(७) २ । २३ ॥

वनानि । वो यथा (१) इ॒मा वो ह॒व्या च॑कृ॒मा जुष॑-
 ह्वम् । ब्रह्म यथा (२) इ॒मा ब्रह्म॑ पी॒पिहि॑ सौभ॒गा-
 य । विश्वा यथा (३) यऽ इ॒मा वि॒श्वा भुव॑नानि जु-
 ह्वत् । हरी यथा (४) इ॒मा हरी॑ वह॒तस्तानो॑ऽ अ-
 च्छ । युक्ता यथा (५) स॒वना॑ छ॒तेमा॑ यु॒क्ता ग्यावा॑-
 णः । ते यथा (६) इ॒मा ते॑ वा॒जिन॑व मा॒र्जनानि॑ ।
 शफा यथा (७) इ॒मा श॒फानां॑ स॒नितुः॑ । ज॒जान॑
 यथा (८) न तँ॒विदाथ॑ यऽ इ॒मा ज॒जान॑ । नु कं य-
 था (९) इ॒मा नु कं॑ भुव॒ना सौष॑धाम ॥

हवेमोतेमा च ॥ ३० ॥

हवेमा उतेमा एते च द्वे पदे यथागृहीतमेव स्वरान्ते भवतः । हवेमा यथा (१०) श्रुतस्मै मित्रावरुणा

(१) १९ । ५३ ॥

(२) १४ । २ ॥

(३) १७ । १६ ॥

(४) ३३ । ६९ ॥

(५) ३४ । १९ ॥

(६) २९ । १६ ॥

(७) पूर्वोक्ताङ्को बोध्यः ॥

(८) १७ । २८ ॥

(९) २५ । ४४ । इमान्युदाहरणानि पदपाठादुच्यन्ते ॥

(१०) २१ । ८ ॥

हवे॒मा । उ॒ते॒मा यथा (१) वि॒श्व॒क॒र्म्म॒न्नु॒ते॒मा ॥

वि॒वृ॒ष्णो ते ब॒भूव॑ नास॒त्या भिष॑-
जा नऽआ॒वो॒ढं या दे॒वा ह॒विषो॑ नो
मृ॒डातो॑ नोऽअ॒च्छ वि॒मु॒च्चे॒त्येते॑षु
ता ॥ ३१ ॥

विष्णो इत्यादिषु प्रत्ययेषु परेषु ता इत्येतत्पदं स्व-
रान्तं भवति । विष्णो यथा (२) ता वि॒वृ॒ष्णो पा॒हि ।
ते यथा (३) स॒र्वी ता ते ब्र॒ह्म॒णा सू॒दयामि॑ । ब-
भूव यथा (४) परि॑ ता ब॒भूव॑ । नास॒त्या यथा (५)
ता नास॑त्या सु॒पे॒शसा॑ । भिष॒जा यथा (६) ता भि-
ष॒जा सु॒क॒र्म्मा॑णा । नऽआ॒वो॒ढं यथा (७) ता नऽआ॒वो॒-
ढम॑श्चि॒न्ना । या दे॒वा यथा (८) इति॑ ता या दे॒वा दे॒-

(१) १७ । २० ॥

(२) २ । ६ ॥

(३) २५ । ४० । अयमुदाहरणाङ्कः संहितापाठाद्बोध्यः ॥

(४) १० । २० ॥

(५) २० । ७४ ॥

(६) २० । ७५ ॥

(७) २० । ८३ ॥

(८) २१ । ५७ ॥

वदानानि । हविषो यथा (१) सुचेव ता हविषोऽअ-
हुरेषु । नो मृडातो यथा (२) ता नोमृडा तऽईह-
शे । अच्छ यथा (३) इमा हरी वहतस्ता नोऽअ-
च्छ । विमुञ्च यथा (४) नियुद्विर्वीयविह ता विमु-
ञ्च ॥

ता ता च ॥ ३२ ॥

एतौ च ता ता शब्दौ पदावयवभूतौ स्वरान्तौ भव-
तः । यथा (५) ता ता पिण्डानां प्रजुहोम्यग्नौ ॥

धिष्ण्या वरिवो विदं धिष्ण्या
युवमिति च ॥ ३३ ॥

एतौ च यथागृहीतौ धिष्ण्याशब्दौ स्वरान्तौ भव-
तः । यथा (६) धिष्ण्या वरिवो विदम् । यथा (७)
तदश्चिन्ना ष्टुतं धिष्ण्या युवम् । इतिशब्दः पदा-

(१) २५ । ३८ ॥

(२) ३३ । ५५ ॥

(३) ३३ । ६२ ॥

(४) २७ । २२ । इमे बुदाहरणाङ्गाः पदपाठादवगन्तव्याः ॥

(५) २५ । ४२ ॥

(६) २० । ७४ ॥

(७) २५ । १५ । अत्राङ्गाः पदपाठाद्बुधैर्ज्ञेयाः ॥

धिकारप्रकरणसमाप्तिज्ञापनार्थः ॥

भाव्युपधश्चरिद्विसर्जनीयः ॥ ३४ ॥

भावी उपधाभूतो यस्य स भाव्युपधः कोऽसौ विसर्जनीयः । रिद्विसर्जनीयश्च 'विसर्जनीयो रिफित' इत्यतश्चारभ्य यः परिभाषितः एतौ विसर्जनीयावधिकृतौ वेदितव्यौ । अधिकारसूत्रमेतत् (१) ॥

रेफे लुप्यते दीर्घञ्चोपधा ॥ ३५ ॥

रेफे प्रत्यये लुप्यते विसर्जनीय उभयरूपोऽपि भाव्युपधो रिद्विसर्जनीयश्च उपधाभूतश्च स्वरौ दीर्घमापद्यते । भाव्युपधो भवति यथा (२) रुरुः रौदृः ।

रुरुः रौदृः क्वयिः । (३) मतिभिः रिहन्ति । मतिभी रिहन्ति । रिद्विसर्जनीयो भवति यथा (४) प्रातः रात्रिः । प्रातारात्रिः । (५) पुनः रक्तम् । पुनारक्तम् । रूपोदाहरणमेतत् । उपरितनसूत्रे प्रयोजनं भविष्यति । भावीत्यादिकिम् । (६) परि नो रुदृस्य ॥

(१) इदं सूत्रं यदत्र स्मृतं तत्पूर्वमुक्तम् ॥

(२) २४ । ३९ ॥

(३) ७ । १६ ॥

(४) इदमुदाहरणं लौकिकम् । जटायामुदाहरणानि भवन्ति ॥

(५) इदमप्युदाहरणं पूर्वोक्तवद्बोध्यम् ॥

(६) १६ । ५० । इति प्रत्युदाहरणमपि 'ग' 'व' पुस्तके नास्तीति ॥

रेफः स्वरधौ ॥ ३६ ॥

रेफमापद्यते उभयरूपो विसर्जनीयः खरेषु परभू-
तेषु धिसञ्ज्ञकेषु च परभूतेषु । खरे भवति यथा (१)
अग्निः एकाक्षरेण । अग्निरेकाक्षरेण । (२) प्रा-
तः अग्निम् । प्रातरग्निम् । प्रातः इन्द्रम् । प्रात-
रिन्द्रम् । धिसञ्ज्ञकेषु भवति यथा (३) विरुचुः व-
नेषु । विरुचुर्वनेषु । (४) सवितः वामम् । वा-
ममदृष्ट सवितवामम् । भावीत्यादिकम् । दिवो मू-
हर्षा । (५) ॥

कण्ठ्यपूर्वो यकारमरिफितः ॥ ३७ ॥

अवर्णः कण्ठ्यः अवर्णपूर्वो विसर्जनीयो अरिफितो
यकारमापद्यते । खरेषु यथा (६) श्वित्रः आदित्या-
नाम् । श्वित्रयादित्यानामित्येवं स्थिते यवयोः पदा-
न्तयोरित्यादिना यकारलोपः । ततः श्वित्रः आदित्या-

(१) २ । ३१ ॥

(२) ३४ । ३४ ॥

(३) ३ । १५ ॥

(४) ८ । ६ ॥

(५) इति प्रत्युदाहरणं 'य' 'व' पुस्तके नास्तीति ज्ञेयम् ॥ १८ । ५४ । इमा-
न्युदाहरणानि संहिताया बोधयानि ॥

(६) २४ । ३९ ॥

नामिति रूपं सिद्धति । (१) इन्द्रः एकम् । इन्द्रऽ ए-
कठं स्वर्यम् । (२) याः ओषधीः । याऽ ओषधीः पू-
र्वीः । (३) याः अफलाः । याऽ अफलाऽअपुष्पाः ॥

लोपन्धौ ॥ ३८ ॥

अरिफितः कण्यपूर्वो विसर्जनीयो लोपमापद्यते
धिसञ्ज्ञकेषु प्रत्ययेषु । यथा (४) अयच्छाः मा । अ-
यच्छा मा वः । (५) शततेजाः व्यायुः । शततेजा व्या-
युरसि । अरिफित इति किम् । (६) मा ह्वाम्हा ते
यज्ज्ञपतिः । (७) ॥

भूमेश्चाकारेऽपृक्ते ॥ ३८ ॥

भूमिशब्दसम्बन्धी विसर्जनीयो लुप्यते । आकारे-
ष्टसञ्ज्ञके परे । यथा (८) भूमिः आददे । द्विवि-
सद्भूम्याददे । आकारेऽष्टे इति किम् । (९) भूमि-

(१) १७ । ९२ ॥

(२) १२ । ७५ ॥

(३) १२ । ८९ ॥

(४) १ । १ ॥

(५) १ । २४ ॥

(६) १ । २ ॥

(७) लोपशास्त्रस्य बलवत्त्वान्न पूर्वसूत्रेण यकारः ॥

(८) २६ । १६ ॥

(९) २३ । १० ॥

रा वर्पनम्नहत् ॥

यकाराकारयोज्जस्पर्पत्ये पदे ॥४०॥

जास्पत्ये पदे यकारस्य च लोपो भवति । जाया-
स्पत्यमिति प्राप्ते यकाराकारयोज्जोपे कृते जास्पत्य-
मिति रूपं भवति । यथा (१) सञ्जास्पत्यर्ठ० सुय-
ममा कृणुष्व । (२) ॥

अलोपो माँस्पचन्याः ॥ ४१ ॥

अकारलोपो माँस्पचनीशब्दे द्रष्टव्यः । माँस-
पचनी इति प्राप्ते यथा (३) यन्नीक्षणं माँस्पच-
न्याः । (४) ॥

सर्वो अकार ओकारम् ॥ ४२ ॥

सर्वः अकारः ओकारमापद्यते । सर्वग्रहणात्सोप-
धो विसर्जनीयो धिसञ्ज्ञकेषु प्रत्ययेषु । यथा (५)

(१) ३३ । १२ ॥

(२) अत्र यकाराकारयोज्जोपः सकारागमश्च निपात्यते ॥

(३) २५ । २६ । माँसपचनीयमिति 'ग' पुस्तकपाठः ॥

(४) अत्र ऋकप्रतिज्ञास्यसूत्रेण, "माँस्पचन्यामाँश्च त्वेमाँश्चतोश्च" इत्यनेन
एतेषां पदानामादिस्वरोऽनुनासिको वेदितव्यः संहितायां पदेच । अतोऽनुस्वाराभा-
वाद् "नुस्वारस्यर्ठ० मित्यादेशः शषसहरेफेषु" इत्यनेन वक्ष्यमाणप्रतिज्ञापारिशीष्टसू-
त्रेण ठकारादेशो न भवतीति बुधैर्बोध्यम् ॥

(५) १ । १ ॥

अवशठं०सः ध्रुवाः । अवशठं०सो ध्रुवाः' (१) मात-
रिश्चनः घर्म्मः । मातरिश्चनो घर्म्मः । अरिफित इ-
ति किम् । (२) पुनर्म्मनः । (३) ॥

अकारे च ॥ ४३ ॥

अकारे च प्रत्यये सर्वो अकार ओकारमापद्यते ।
यथा (४) वेदः' असि । वेदोऽसि । (५) अग्ने गु-
वोऽअग्ने पुवः । अरिफितइति किम् । (६) पुन-
रग्ने । (७) पुनरायुः ॥

एषो ह च ॥ ४४ ॥

एष इत्ययं विसर्जनीय ओकारमापद्यते ह इत्ये-
तस्मिन्पदे प्रत्यये । अवश्यमत्र 'एष चे' त्यनेन एषशब्द-

(१) १ । २ ॥

(२) ४ । १५ ॥

(३) अस्मिन् सूत्रे अकारग्रहणात् दीर्घोपधग्रहणम् । ननु पूर्वेषु लोपशास्त्रस्य ब-
लवत्त्वान्नायं विधिः । शृणु पूर्वविधेरप्राप्तत्वाद्विशेषावगमाच्च । न लोपशास्त्रस्य बलव-
त्त्वं किन्तुत्तरसूत्रस्य बलवत्त्वं बोध्यम् ॥

(४) २ । २१ । 'एदोद्विगां पूर्वमकार' इत्याकारस्य पूर्वरूपता बोध्याऽथ च
'एदोद्विगामकारो लुगभिनिहितः' इति प्रथमाध्यायस्थेन चतुर्दशोत्तरैकशततमेन सूत्रेणा-
भिनिहितः स्वरो भवतीति सुतैर्ज्ञेयम् ॥

(५) १ । १२ ॥

(६) १२ । ९ ॥

(७) ४ । १५ ॥

स्य व्यञ्जनमात्रे विसर्जनीयलोपो विहितः तेनात्र ओ-
कारो निपात्यते । यथा (१) ए॒षो ह॑ दे॒वः । (२) ॥

स्वो रुहावहश्चराह्याम् ॥ ४५ ॥

स्वरित्ययं विसर्जनीयो रुहौ प्रत्यये ओकारमाप-
द्यते । अहरित्ययं च रात्रिप्रत्यये । यथा । (३) स्वः
रुहाणाः । स्वो रुहाणाऽअधिनाकम् (४) स्वः रो-
हाव । जायऽएहि स्वो रोहाव (५) अहः रात्रे ।
शीघ्रं ते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे । (६) अहो रा-
त्रेऽजर्व्वष्टीवे । (७) अहो रात्रास्ते कल्पन्ताम् ॥

स्वरे भाव्यन्तस्थाम् ॥ ४६ ॥

स्वरे ऽसवर्णे प्रत्यये भावी अन्तस्थामापद्यते । य-
था (८) त्रि अम्बकम् । त्वम्बकं व्यजामहे । (९) वाजी

(१) ३२ । ३ ॥

(२) अस्मिन्सूत्रे हकारेतिग्रहणं किमर्थं 'स्यएषचे'त्यनेनसूत्रेण एतत्सम्बन्धी वि-
सर्जनीयो व्यञ्जनमात्रे लोपमेति तन्मा भूदेतदर्थं हकारग्रहणमित्येतच्छास्त्रज्ञैर्ज्ञेयम् ॥

(३) ११ । २२ ॥

(४) इदमुदाहरणं शास्त्रान्तरीणम् ॥

(५) ३१ । २२ ॥

(६) १० । २३ ॥

(७) २७ । ४५ ॥

(८) ३ । ५२ ॥

(९) ११ । ४४ ॥

अर्वन् । आशुर्वर्भ्य व्याज्यर्वन् । (१) इ अन्नः । व्र-
 नः सर्पिरासुतिः । (२) वीडु अङ्गः । स्थिरो भव वी-
 डुङ्गः ॥

सन्ध्यक्षरमयवायावम् ॥ ४७ ॥

ए ओ ऐ औ एतानि च यथाक्रमं स्वरे प्रत्यये अ-
 य् अक् आय् आव् द्विवर्णमापद्यते । यथा (३) इडे
 आ इहि । इड् एहि । (४) कृशानो एते । कृशान-
 वेते । (५) सरस्वत्यै अग्रजिह्वम् । सरस्वत्याऽअ-
 ग्रजिह्वम् । (६) हिरण्यरूपौ उपसः । हिरण्यरू-
 पाऽउपसः । अत्र च 'यवयोः पदान्तयो'रित्यादिना य-
 कारवकारलोपः । 'न वकारस्यासस्त्यानऽएकेषामिति'
 न वकारस्य लोपः ।

उदात्तस्यान्तस्थीभावे स्वरितं परम-
 नुदात्तम् ॥ ४८ ॥

(१) ११ । ७० ॥

(२) ११ । ४४ ॥

(३) ३ । २७ ॥

(४) ४ । २७ ॥

(५) २५ । १ ॥

(६) १० । १६ ॥

यः । यत्र ऽऋषयो जग्मुः^१ । द्वस्वस्य स्थाने द्वस्वो वि-
धीयमानोऽन्यस्याः संहिताया निवृत्तिं करोति विवृ-
त्तिसंहितैवात्र भवति न स्वरसंहिता ॥

अथैकमुत्तरश्च ॥ ५० ॥

अथानन्तरमुत्तरो वर्णः चशब्दात्पूर्वश्च एकं वर्णं
विकारभूतमापद्यते, इत्येतदधिकृतं वेदितव्यम् ॥

सिठं० सवर्णं दीर्घम् ॥ ५१ ॥

‘सिमादितोऽष्टौ स्वराणां’मित्युक्तम् । सिम् सञ्ज्ञ-
कः स्वरः सवर्णं स्वरे प्रत्यये परे पूर्वं उत्तरश्च एकं व-
र्णं दीर्घमापद्यते । यथा (१) प्र अर्पयतु । प्रार्पयतु ।
(२) तव अयम् । तवायम् । (३) नासत्या अश्वावत् ।
नासत्याश्वावत् । (४) सुचि इव । सुचीव दृतम् । (५)
हि इम् । वि हिमिद्द्वः^२ । (६) अनु उत । अनूजेषम् ॥

अनुनासिकवत्त्यनुनासिकम् ॥ ५२ ॥

(१) १ । १ ॥

(२) २६ । २३ ॥

(३) २० । ८१ ॥

(४) २० । ७९ ॥

(५) १२ । ६ ॥

(६) २ । १५ ॥ एतत्सूत्रोदाहरणेषु स्थानैक्ये प्रयत्नभेदेऽपि ‘सवर्णवच्चे’त्यनेन
शोषकेन दीर्घत्वम् ॥

अनुनासिकवत्येकीभावे पूर्वश्च परश्च एकमनुनासिकमापद्यते । यथा (१) उप अर्ठ० शुः । उपा० शुः^१ । (२) उप अर्ठ० शुना । उपा० शुना समन्वितत्वम् । 'अनुनासिका चोपधे'त्यादिना एकस्मिन्पक्षे उपधाऽनुनासिक्यं एकस्मिन्पक्षे अनुस्वारो विहितः । तत्र यस्मिन्पक्षे उपधाऽनुनासिक्यं तमधिकृत्योच्यते । एतदनुनासिकवत्यनुनासिकमिति ॥

कण्ठ्यादिवर्ण एकारम् ॥ ५३ ॥

कण्ठ्यात्पर द्वर्णः पूर्वस्वरश्च परश्च कण्ठ्य एकमेकारं वर्णमापद्यते । यथा (३) व्वरुण इह । व्वरुणेह बोधि । (४) आ इदम् । एदमंगन्म ॥

उवर्ण ओकारम् ॥ ५४ ॥

कण्ठ्यादुत्तरे उवर्णे कण्ठ्य उवर्णश्चैकमोकारमापद्यते । यथा (५) त्वा ऊर्जे । त्वोर्जे । (६) त्वा उत्तरतः । मित्रावरुणौ त्वोत्तरतः^२ ॥

(१) १५ । १२ ॥

(२) १७ । ८२ ॥

(३) १८ । ४२ ॥

(४) ४ । १ ॥

(५) १ । १ ॥

(६) २ । ३ ॥

समुद्द्रस्येमँ स्त्वेमँ स्त्वोद्गन्निति

च ॥ ५५ ॥

‘सन्ध्यक्षर ऐकारौकारा’विति वक्ष्यति तस्य पुरस्ता-
दपवादभूतउत्तरसन्ध्यक्षरस्वरूप एकादेशो निपात्य-
ते । यथा (१) समुद्द्रस्य एमन् । समुद्द्रस्येमन् । (२)
त्वा एमन् । अपान्त्वेमन् (३) त्वा ओद्गन्नन् । अपान्त्वो-
द्गन्नन् (४) ॥

एजत्त्योजोरेकेषाम् ॥ ५६ ॥

अवर्णात्पूर्वस्मादेजत्त्योजोः प्रत्यययोरेकेषामाचार्या-
णाम्प्रतेन उत्तरसवर्ण आदेशो भवति । यथा (५)
न एजति । नेजति । ओजः यथा (६) सह ओजः ।
व्वागोजः सहोजः । एकेषामिति किम् । (७) तदे-
जति तन्नैजति । व्वागोजः सहौजः ॥

(१) १३ । १७ ॥

(२) १३ । ५३ ॥

(३) १३ । ५३ ॥

(४) किञ्चाम निपातनत्वम् । अन्यथा प्राप्तस्यान्यथोच्चारणं निपातनमिति ॥

(५) ४० । ६ ॥

(६) ३६ । १ ॥

(७) पूर्वोक्तिमुदाहरणद्वयं ज्ञेयम् ॥

सन्ध्यक्षर ऐकारौकारौ ॥ ५७ ॥

अवर्णः सन्ध्यक्षरे प्रत्यये पूर्व उत्तरञ्च एकमक्षरमा-
पद्यते । ऐकारम् । औकारञ्च । अत्र चत्वारि सन्ध्य-
क्षराणि द्वावेतौ विकारौ ऐकारौकारौ तत्र यथास-
म्भवाद्द्विकारी यथासन्नमिति एकारे ऐकारे च प्र-
त्यये ऐकारो भवति । ओकारे औकारे च प्रत्यये औ-
कारो भवति । एकारे भवति यथा (१) स्वाहा एक-
ताय । स्वाहैकताय । ऐकारे भवति यथा (२) इन्द्राय
ऐन्द्रम् । इन्द्रायैन्द्रम् । ओकारे भवति यथा (३) इन्द्र
ओजिष्ठ । इन्द्रौजिष्ठ । औकारे भवति यथा (४)
प्र औक्षन् । प्रौक्षन् (५) ॥

वाहौ च स्वरभूते ॥ ५८ ॥

वाहौ च प्रत्यये स्वरभूते पूर्वः कण्ठ्य उत्तरञ्च वाहेः
सम्बन्धी अवर्ण एकमौकारमापद्यते । यथा (६) तुय्य
जही । तुय्यौही । (७) पण्ड जही । पण्डौही । स्वर-

(१) २२ । ३४ ॥

(२) १९ । १८ ॥

(३) ८ । ३९ ॥

(४) ३१ । ९ ॥

(५) 'सन्ध्यक्षरमेकारौकारौ' इति 'ख' पुस्तकपाठः ॥

(६) १८ । २६ ॥

(७) १८ । २७ ॥

भूत इति किम् । (१) षष्ठ्वाद् च मे । 'उवर्ष ओकार'
मित्यस्यायमपवादः ॥

आरम्भकारोऽपृक्तात् ॥ ५९ ॥

अष्टक्तात्पदात्पर ऋकार आरम्भापद्यते सहाष्टत्वेन ।
यथा (२) आ ऋत्यै । आर्त्थे परिवृत्तम् । अत्र स्वरो
रेफस्तकारमारोहति (३) ॥

लृकारश्चाल्कारम् ॥ ६० ॥

इदं स्वरं केचिन्न पठन्ति व्यर्थत्वात् । लृकारश्चा-
ल्कारमापद्यते । आ लृकारः । आल्कारः ॥

एदोद्भ्यां पूर्वमकारः ॥ ६१ ॥

एकारौकाराभ्यां पर अकारः पूर्वरूपमापद्यते ।
यथा (४) ते अवन्तु । तेऽवन्त्वस्मान् । (५) ते अण्ण-
रसाम् । ते ऽण्णरसाम् । (६) वेदः असि । वेदोऽसि ।

(१) १८ । २७ ॥

(२) ३० । ९ ॥

(३) 'कण्ठ्य ऋकारे ह्रस्व'मित्यस्यापवादः । यस्या ऽवश्यं प्राप्नो सत्यां यो विधि-
रास्म्यते स तस्यापवादः ॥

(४) १८ । ५७ ॥

(५) २४ । ३७ ॥

(६) २ । २१ ॥

(१) सुपः असि । सुपोऽसि । (२) 'सर्वो' अकार ओकारम् । 'अकारे चे'त्यनेन च ओकारः (३) ॥

तौ चेदुदात्तावनुदात्ते स्वरितौ ॥ ६२ ॥

तौ यदि एकारौकारौ उदात्तौ भवतः तदाऽनुदात्ते अकारे परे स्वरितौ भवतः । यथा (४) वेदो असि । वेदोऽसि । (५) सुपो असि । सुपोऽसि । (६) ते अप्सरसाम् । ते ऽप्सरसाम् । 'एदोद्व्यामकारो लुगभिनिहित'इति स्वरितत्वं विहितमेव । इह त्वपवादार्थं तदुच्यते (७) ॥

न देशे भवति ॥ ६३ ॥

देशे इत्ययमेकारः अभवदित्येतस्मिन्प्रत्यये न स्वरितो भवति । यथा (८) देशे अभवत् । सो देशेऽभ-

(१) २ । २ ॥

(२) सर्वोऽकार ओकारमिति 'क' पुस्तकपाठः ॥

(३) एतत्प्रकरणे यानि विसर्गान्तानि पदानि तेषां सर्वो अकार ओकारमित्यनुवर्त्तमाने अकारे चेत्यनेन ओकारान्तत्वम् । कारग्रहणेन तत्कालमात्रस्य ग्रहणं ज्ञातव्यमिति विवेकः ॥

(४)

(५)

(६) उदाहरणत्रयस्य चिन्हस्योदाहरणत्रयं पूर्वोक्तं ज्ञातव्यमिति ॥

(७) तदनु गृह्यन्ते इति 'स' पुस्तकपाठः ॥

(८) ३४ । ११ ॥

वत्सरित् ॥

गाहमानः शिवो भरन्तो द्वेषोब्भ्यो
जम्भयन्तो व्वाजे व्वाजजितो मद-
न्तः शोचेऽवसे सुषुवे ज्ज्योते सुपण्णो
व्वीरुधः सुवीरो धातवे सूनवे दू-
णानऽआशवो व्वहतः सङ्क्रन्दनो
बाहवो युद्ध्योऽद्द्रुहः ॥ ६४ ॥

एतेभ्य एकारौकारेभ्यः परोऽकारोऽभिनिधीयते ।
अभिनिधानं च पूर्वरूपता । गाहमानो यथा (१)
गाहमानोऽद्यः । शिवो यथा (२) अहिर्ऌ० सन्नः
शिवोऽतीहि । भरन्तो यथा (३) भरन्तोऽश्वायेव
तिष्ठते । द्वेषोब्भ्यो यथा (४) द्वेषोब्भ्योऽन्यक्तेभ्यः ।
जम्भयन्तो यथा (५) जम्भयन्तोऽहिम् । व्वाजे यथा (६)

(१) १७ । ३२ ॥

(२) ३ । ६१ ॥

(३) ११ । ७५ ॥

(४) ५ । ३५ ॥

(५) ९ । १६ ॥

(६) ९ । १८ ॥

व्वाजैवाजेऽवत । व्वाजजितो यथा (१) व्वाजजितोऽङ्घ्रि-
नः । मदन्तो यथा (२) मदन्तोऽग्ने मा ते । शोचे य-
था (३) भद्दशोचेऽपूपम् । अवसे यथा (४) अवसे-
ऽग्निमन्वारभामहे । सुषुवे यथा (५) सुषुवेऽग्रे-
सोमम् । ज्योते यथा (६) ज्योतेऽदिति सरस्वति ।
सुप्रसूयो यथा (७) सुप्रसूयोऽसि गरुक्त्मान् । वीरुधो
यथा (८) वीरुधोऽख्यैसन्दत्त । सुवीरो यथा (९)
सुवीरोऽवीरहा । धातवे यथा (१०) सरस्वति तमिह
धातवेऽकः । सूनवे यथा (११) सूनवेऽग्ने सूपायनो
भव । द्रूणानो यथा (१२) द्रूणानोऽस्तासि । आशवो

(१) ९ । १३ ॥

(२) ११ । ७५ ॥

(३) १२ । २६ ॥

(४) ९ । २६ ॥

(५) ९ । २३ ॥

(६) ८ । ४३ ॥

(७) १२ । ४ ॥

(८) १२ । ९४ ॥

(९) ४ । ३७ ॥

(१०) ३८ । ५ ॥

(११) ३ । २५ ॥

(१२) १३ । ९ ॥

यथा (१) आश्वोऽस्तम् । ब्रह्मतो यथा (२) ब्रह्मतो-
 ऽप्प्रतिघृष्टश्वसम् । सङ्क्रन्दनो यथा (३) सङ्क्रन्दनो-
 ऽनिमिषः । बाह्वो यथा (४) बाह्वोऽनाघृष्ट्या य-
 थाऽस्य । अयुद्धो यथा (५) अयुद्धोऽस्माकं० से-
 नाः । अद्रुहो यथा (६) अद्रुहोऽनमीवाऽद्वेषो महीः ।
 ननु 'एदोऽङ्गां पूर्वमकार' इत्यनेनैवाभिनिहितः सिद्धः
 किमर्थं गाहमानादिभ्य उत्तरस्याकारस्याभिधानमुच्य-
 ते । नैवाभिनिहितः सिद्धः 'प्रकृतिभाव ऋक्षु' इति
 प्रकृतिभावश्च वक्ष्यति तस्यायं पुरस्तादपवादः ॥

वोहठं सोऽहठं सोऽस्माकं तेऽभि-
 गरो वोऽर्वाची ॥ ६५ ॥

एते द्विपदा यथागृहीतमेवाभिनिधीयन्ते । वोऽहं
 यथा (७) तेषां विशिष्टप्रियाणां वोऽहम् । सोऽहं यथा

(१) १५ । ४१ ॥

(२) ८ । ३५ ॥

(३) १७ । ३३ ॥

(४) १७ । ४६ ॥

(५) १७ । ३९ ॥

(६) १२ । ५० ॥

(७) ९ । ४ ॥

(१) सोऽह्वाजम् । सोऽस्माकं यथा (२) उपस्तिर-
स्तु सोऽस्माकम् । तेऽभिगरो यथा (३) अनुष्टुप्ते-
ऽभिगरः^५ । अर्वाची यथा (४) आवोऽर्वाची सुम-
तिः^५ ॥ (५) ॥

येऽन्नात्रयोः ॥ ६६ ॥

ये इत्येतस्मात्परयोः अन्नावसम्बन्धी अकारोऽभि-
निधीयते । अन्न यथा (६) येऽन्नेषु । अत्र यथा (७)
येऽत्र स्थ पुंराणा ये च नूतनाः ॥

अविद्याऽसम्भूत्योश्च ॥ ६७ ॥

अविद्या असम्भूतिसम्बन्धी अकारोऽभिनिधीयते ।
चशब्दात् ये इत्येतस्मात्परः । अविद्या यथा (८) ये
ऽविद्यामुपासते । असम्भूतिं यथा (९) येऽसम्भूतिसु-

(१) १८ । ३५ ॥

(२) १२ । १०१ ॥

(३) ८ । ४७ ॥

(४) ८ । ४ गाहमान इत्यारभ्य यत्पूर्वरूपतोक्ता तत्र लुपाकारलेखनेन॥भिनिधानं
ज्ञातव्यम् । (क) पुस्तके अभिनिधानश्च पूर्वरूपता इति पाठोऽपपाठो ज्ञातव्यः ॥

(५) पाणिनीयसूत्रं पूर्वरूपविधायकं सामान्यमतो विशेषाभिनिधायकमिदम् ॥

(६) १६ । ६२ ॥

(७) १२ । ४५ ॥

(८) ४० । १२ ॥

(९) ४० । ९ ॥

पासते । इत्येतयोरिति किम् (१) अथो येऽन्नस्य स-
त्त्वानः ॥

उपस्थेऽन्तस्तेऽभ्योऽकरम् ॥ ६८ ॥

एतौ च द्विपदौ यथागृहीतमेवाऽभिनिधीयेते (२) ।
उपस्थेऽन्तो यथा (३) शेषे मातुर्यथोपस्थेन्तरस्याम् ।
तेभ्योऽकरं यथा (४) अहन्तेभ्योऽकरन्मः ॥

नमोऽस्त्वसौत्त्रामण्याम् ॥ ६९ ॥

नमोऽस्तु एतच्च द्विपदं यथागृहीतमेवाभिनिधीयते ।
सौत्रामण्यां चेन्न भवति यथा (५) नमोऽस्तु सपर्येभ्यः ।
(६) असौत्रामण्यां किम् । (७) नमोऽस्त्वद्य ये ॥

व्विश्वेऽग्ने व्विशो रायोऽन-
ग्नौ ॥ ७० ॥

विश्वे इत्यादिभ्य एकारौकारेभ्यः परोऽकारोऽभि-

(१) १६ ॥ ८ ॥

(२) एते द्विपदे इति 'स्व' पुस्तकपाठः ॥

(३) १२ । ३९ ॥

(४) १६ । ८ ॥

(५) १३ । ६ ॥

(६) स्वाद्वीन्त्वेत्यारभ्याध्यायत्रयं सौत्रामणिसंज्ञकम् ॥

(७) १९ । ६८ ॥

निधीयतेऽग्नौ चेन्न भवति (१) युञ्जानः प्रथममित्यत
 आरभ्य स्वाहीन्वेति यावदग्निरुच्यते । विश्वे यथा
 (२) विश्वेऽसुहृन्मम् । अग्रे यथा (३) तेऽअग्रेऽश्व-
 मयुञ्जन् । विशो यथा (४) अथा नऽइन्द्रऽइहिषोऽस-
 पत्नाः । रायो यथा (५) त्वष्टा सुदत्तो विदधातु
 रायोऽनु । अनग्नाविति किम् । (६) विश्वेऽअद्वा
 मरुतः । (७) मयि गृह्णाम्यग्नेऽअग्निम् । (८) भ-
 वा प्रायुर्विशोऽअस्याः । (९) अस्मे रायोऽअमर्त्य ॥

सूर्योऽग्नेऽभौ ॥ ७१ ॥

सूर्यो अने इत्येताभ्यां परः अभिशब्दस्याकारोऽभि-
 निधीयते । सूर्यो यथा (१०) सूर्योऽभिताप्सीत् । अ-

(१) युञ्जानः प्रथममित्येकादशाध्यायमारभ्याष्टाध्याय्यग्निचयनसंज्ञकास्तान्म-
 न्त्रान्वर्जयित्वाऽभिनिधानं भवति ॥

(२) ८ । १९ ॥

(३) ९ । ७ ॥

(४) ७ । २५ ॥

(५) ८ । १४ ॥

(६) १८ । ३१ ॥

(७) १३ । १ ॥

(८) १३ । ११ ॥

(९) १२ । १०९ ॥

(१०) १३ । ३० ॥

ग्ने यथा (१) अग्नेऽब्ध्यावर्त्तिन् । अभाविति किम् ।
 (२) चक्षोः सूर्योऽज्जायत । (३) अग्नेऽअच्छा व-
 देह नः ॥

रिषो यवसे पुरुप्प्रियोऽन्नपतेऽर्ण-
 वे ॥ ७२ ॥

एतेभ्य एकारौकारेभ्यः परोऽकारोऽभिनिधीयते ।
 रिषो यथा (४) मा सुरिषोम्ब । यवसे यथा (५) प्रोथ-
 दश्चो न यवसेऽविष्यन् । पुरुप्प्रियो यथा (६) पुरु-
 प्रियोऽग्ने । अन्नपते यथा (७) अन्नपतेऽन्नस्य । अर्ण-
 वे यथा (८) अर्णवेऽन्तरिक्षे भवाः ॥

व्यपरे च ॥ ७३ ॥

एकारौकारेभ्यः परोऽकारोऽभिनिधीयते । स चे-

(१) १२ । ७ ॥

(२) ३१ । १२ ॥

(३) ९ । २९ ॥

(४) ११ । ६८ ॥

(५) १५ । ६२ ॥

(६) ११ । ७२ ॥

(७) ११ । ८३ ॥

(८) १६ । ५५ ॥

दकारो वकारपरो यकारपरो वा भवति । यथा (१)
सहस्रयोजनेऽवधन्वानि । (२) तिग्मतेजोऽयस्मय-
म् (३) ॥

गवे मे मनसो व्वाजयन्तः सोम्यासः
पाशिनो विदानोऽनृते मूजवतो वृ-
ष्णोऽपाको दीदिवस्तूयस्तूठं शे
ब्रह्मणे यको रथो विश्वतः पादो
वसन्तः ॥ ७४ ॥

एतेभ्य एकारौकारेभ्यः परोऽकारोऽभिनिधीयते ।
गवे यथा (४) गवेऽश्वाय । मे यथा (५) विश्वो मे-
ऽङ्गानि । मनसो यथा (६) मनसोऽसि विलायकः ।
वाजयन्तो यथा (७) वाजयन्तोऽश्व्याम् । सोम्यासो
यथा (८) सोम्यासोऽग्निष्वात्ताः । पाशिनो यथा

(१) १६ । ५४ ॥

(२) १२ । ६३ ॥

(३) 'प्रकृतिभाव ऋक्षु' इत्यस्यापवादभूतमिदं सूत्रं ज्ञातव्यमिति ॥

(४) ३ । ५९ ॥

(५) २० । ८ ॥

(६) २० । ३४ ॥

(७) १८ । ७४ ॥

(८) १९ । ५८ ॥

(१) पाशिनेऽति घन्वेव । विदानो यथा (२) सँविदा-
नोऽनु द्यावापृथिवी । अनृते यथा (३) अश्रद्द्वामनृते-
ऽदधात् । मूजवतो यथा (४) मूजवतोऽतीहि । दृष्णे
यथा (५) त्वष्टाऽदधच्छुष्ममिन्द्राय वृष्णेऽपाकः ।
अपाको यथा (६) अपाकोऽचिष्टुर्यशसे । दीदिवो
यथा (७) स नः पावक दीदिवोऽग्ने । तयस्त्रिठंशे
यथा (८) तयस्त्रिठंशेऽमृताः । ब्रह्मणे यथा (९)
अस्मै ब्रह्मणेऽस्मै क्षत्राय । यको यथा (१०) यकोऽस-
कौ शकुन्तकः । रथो यथा (११) दूडभो रथोऽस्मान् ।
विश्वतो यथा (१२) विश्वतोऽदधासः । पादो यथा

(१) २० । ५३ ॥

(२) १९ । ५४ ॥

(३) १९ । ७७ ॥

(४) ३ । ६१ ॥

(५) २० । ४४ ॥

(६) २० । ४४ ॥

(७) १७ । ९ ॥

(८) २१ । २० ॥

(९) ७ । २१ ॥

(१०) २३ । २३ ॥

(११) ३ । ३६ ॥

(१२) २५ । १४ ॥

(१) पादोऽस्य विश्वा भूतानि । वसन्तो यथा (२)
वसन्तोऽस्यासीत् ॥

अवोस्त्वग्ने गृहपतेऽभि सत्त्वानोऽहं
नोऽजस्रया विमानोऽजस्रः सुतेऽ-
श्विना नमोऽग्ने तेऽग्ने वृक्षस्य
प्रथमोऽन्तस्तेऽन्येन ॥ ७५ ॥

एतेषां च द्विपदानां उत्तरपदादिर्यथागृहीतमेवा-
कारोऽभिनिधीयते । अवोऽस्तु यथा (३) महि त्रीणा-
भवोऽस्तु । अग्ने गृहपते यथा (४) अग्ने गृहपतेऽभि
द्युम्नम् । सत्त्वानो यथा (५) अस्य सत्त्वानोऽहम् ।
नोऽजस्रया यथा (६) पुरो नोऽजस्रया स्रम्या यवि-
ष्ठ्य । विमानोऽजस्रो यथा (७) विमानोऽजस्रो घर्मा

(१) ३२ । ३ ॥

(२) ३१ । १४ ॥

(३) ३ । ३२ ॥

(४) ३ । ३२ ॥

(५) १६ । ८ ॥

(६) १७ । ७४ ॥

(७) १८ । ६८ ॥

हविः' । सुतेऽश्विना यथा (१) तनूपा भिषजा सुतेऽश्वि
 नोभा । नमोऽग्नये यथा (२) ब्रह्मा ऋषसश्च नोऽव-
 तु । तेऽग्रं यथा (३) माता च ते पिता च तेऽग्रम् ।
 तेऽग्रे वृक्षस्य यथा (४) तेऽग्रे वृक्षस्य क्रीडतः । वृक्ष-
 स्येति किम् । (५) तेऽग्रेऽश्वमयुञ्जन् । प्रथमोऽन्तो य-
 था (६) सुभूः स्वयम्भूः प्रथमोऽन्तः । तेऽन्ये यथा
 (७) महिमा तेऽन्येन ॥

पणयो जहीमोऽम्बिक ॥ ७६ ॥

पणयः जहीमः अम्बिके एतेभ्य एकारौकारेभ्यः प-
 रोऽकारोऽभिनिधीयते । पणयो यथा (८) अप्रेतो
 यन्तु पणयोऽमुस्मन्तः । जहीमो यथा (९) अत्रा ज-
 हीमोऽशिवा ये । अम्बिके यथा (१०) अम्बेऽ अम्बिके-

(१) २० । ५६ ॥

(२) २३ । १३ ॥

(३) २३ । २४ ॥

(४) २३ । २५ ॥

(५) ९ । ७ ।

(६) २३ । ६३ ॥

(७) २३ । १५ ॥

(८) ३५ । १ ॥

(९) ३५ । १० ॥

(१०) २३ । १८ ॥

ऽम्बालिके ॥

नो नुमोऽदुग्धाऽइव प्रचेतसोऽश्वा-
न्नरोऽस्माकं वृषपाणयोऽश्वाः प्र-
दिशोऽनूदितेऽनागाऽअन्धसोऽर्चीप-
नस्य तेऽद्धा यज्जिष्येभ्योऽमृतत्वं-
विवपश्चितोऽभि जनोऽनमीवऽआयु-
वोऽनु नोऽद्य देशेऽभवद्द्वयुनेऽजनि-
ष्ट विद्वन्नाऽपसोऽजायन्त पूव्या-
सोऽरेणवो नोऽश्मानोऽदितिर्नो-
हिः ॥ ७७ ॥

एते च द्विपदा यथा गृहीतमेवाभिनिधीयन्ते । नो
नुमोऽदुग्धाइव यथा (१) अभि त्वा शूर नो नुमोऽदु-
ग्धाऽइव । प्रचेतसोऽश्वान् यथा (२) अश्वाजनि
प्रचेतसोऽश्वान् । नरोऽस्माकं यथा (३) नो नरो-

(१) २७ । ३५ ॥

(२) २९ । ५० ॥

(३) २९ । ५७ ॥

ऽस्माकमिन्द्र । दृषपाणयोऽश्वा यथा (१) वृषपाणयो-
 ऽश्वा रथेभिः । प्रदिशोऽनु यथा (२) प्रदिशोऽनु स-
 र्वीः । उदितेऽनागा यथा (३) यदुद्य स्वरऽउदितेऽना-
 गाः । अन्वसोऽर्वा यथा (४) अन्वसोऽर्वा विश्वान-
 राय । पनस्य तेऽद्वा यथा (५) पनस्य तेऽद्वद्वा देव
 मद्वा २॥५ असि । यज्जिनेभ्योऽमृतत्वम् यथा (६)
 यज्जिनेभ्योऽमृतत्वम्० सुवसि भागमुत्तमम् । विप्र-
 श्वितोभिर्यथा (७) प्रावकवर्णाः शुचयो विप्रश्चि-
 तोऽभिस्तोमैः । जनोऽनमीवो यथा (८) सर्वऽइज्ज-
 नोऽनमीवः । आयवोऽनु यथा (९) आयवोऽनुष्टुक्-
 न्ति । नोऽद्य यथा (१०) अनु नोऽद्यानुमतिः । देशेऽभ-
 वद्यथा (११) सो देशेऽभवत्सरित् । व्युनेऽजनिष्ट यथा

(१) २२ । ४४ ॥

(२) ३२ । ४ ॥

(३) ३३ । २० ॥

(४) ३३ । २३ ॥

(५) ३३ । ३२ ॥

(६) ३३ । ५४ ॥

(७) ३३ । ८१ ॥

(८) ३३ । ८६ ॥

(९) ३३ । ९७ ॥

(१०) ३४ । ९ ॥

(११) ३४ । ११ ॥

(१) इडायास्पृत्तो व्युनेऽजनिष्ट । विज्ञनाऽपसोऽजा-
यन्त यथा (२) बिह्मनाऽपसोऽजायन्त मरुतः । पू-
र्व्यासोऽरेणवो यथा (३) पूर्व्यासोऽरेणवः सुकृताः ।
नोऽश्मा यथा (४) नोऽश्मा भवतु नस्तनूः । नोऽदि-
तिर्यथा (५) अधि ब्रवीतु नोऽदितिः । नोऽहिर्यथा
(६) उतनोऽहिर्बुद्धः ॥

ब्राह्मणः ॥ ७८ ॥

ब्राह्मण इत्येतस्मादौकारात्परोऽकारोऽभिनिधीय-
ते । यथा (७) ब्राह्मणोऽस्य मुखम् ॥

यजुषु च ॥ ७९ ॥

‘गाहमान’ इत्यादिभिः सूत्रैर्ऋक्सम्बन्धमभिनिधान-
मुक्तम् । इदानीं यजुष्व्वाह । यजुषु च विशेषेण ए-
कारादौकाराच्च परोऽकारोऽभिनिधीयते । यथा (८)

(१) ३४ । १४ ॥

(२) ३४ । १२ ॥

(३) ३४ । २७ ॥

(४) २९ । ४९ ॥

(५) पूर्वोक्तोदाहरणाङ्को द्रष्टव्यः ॥

(६) ३४ । ५३ ॥

(७) ३१ । ११ ॥

(८) पूर्वोक्तमुदाहरणं ज्ञेयम् ॥

वेदः असि । वेदोऽसि । यथा (१) कः असि । कोऽसि ।
यथा (२) ते अश्वरसाम् । तेऽश्वरसाम् ॥

सङ्क्रमे च सर्व्वत्र ॥ ८० ॥

गलत्पदमतिक्रम्यागलता सह सन्धानं सङ्क्रमः ।
'त्रिपदाद्यावर्त्तमाने सङ्क्रम' इति वक्ष्यति तत्र सङ्क्रम-
मे एकारौकाराभ्यां परोऽकारोऽभिनिधीयते । च श-
ब्दात्सर्व्वत्र यजुष्यु ऋक्षु च । यजुष्यु भवति यथा (३)
शृङ्गे यदर्थ्ये । अत्र पदेषु सङ्क्रमो भवति । यथा (४) शृ-
ङ्गेऽर्थ्ये । (५) तार्क्ष्यः अरिष्टनेमिः । अत्र क्रमसंहिताया-
मभिनिहितो भवति । यथा (६) शृङ्गेऽर्थ्ये । तार्क्ष्योऽरि-
ष्टनेमिः । ऋक्षु भवति यथा (७) यज्जः अभि । यज्जो-
ऽभि । सङ्क्रम इति किम् । (८) स्वस्ति नस्तार्क्ष्योऽअ-
रिष्टनेमिः ॥

(१) तथा ॥

(२) तथैव ॥

(३) २० । १४ । अत्र पदपाठस्याङ्को बोध्यः ॥

(४) इदमपि तथा ॥

(५) २५ । १९ ॥

(६) तथैव ॥

(७) १७ । २० । अत्रापि पदपाठादङ्को बोध्यः ॥

(८) २५ । १९ ॥

प्रकृतिभाव ऋक्षु ॥ ८१ ॥

‘गाहमाना’दिभिः सूत्रैर्ऋक्षुभिनिहितोऽभिहितः ।
ततोऽन्यत्र ऋक्षु प्रकृतिभावो भवति । यथा (१) उप-
प्रयन्तोऽअङ्गुरम् । (२) आरेऽअस्मो च ष्टण्वते ॥

जुषाणश्चानध्वनि ॥ ८२ ॥

‘यजुषुचे’त्यनेन सूत्रेण यजुष्वभिनिधानमुक्तम् ।
तदपवादभूतमिदमारभ्यते । जुषाणशब्दसम्बन्धी ओ-
कारः अनध्वनि प्रत्यये प्रकृत्या भवति । यथा (३)
जुषाणोऽअप्पुराज्यस्य वेत्तु स्वाहा । अनध्वनीति कि-
म् । जुषाणोऽध्वाज्यस्य वेत्तु स्वाहा । इदमुदाहरणं
शाखान्तरीयम् ॥

ते चानुदात्तमनुदात्ते ॥ ८३ ॥

ते इत्येतच्च पदं अनुदात्तं चेत्प्रकृत्या भवति अनुदा-
त्ते च प्रत्यये । यथा (४) या तेऽअग्नेऽयः शया । अ-
नुदात्तमिति किम् । (५) तेऽप्सरसाम् ॥

(१) ३ । ११ ॥

(२) तथा ॥

(३) ५ । ३४ ॥

(४) ५ । ७ ॥

(५) २४ । ३७ ॥

हेडऽआपो गुवोऽपाग्ने धीरासो दे-
 वासऽउरो रक्षाणो मो वैश्वानरो
 वृषभो व्वचः प्राणऽउदानोऽङ्गऽइ-
 मा मे व्वृष्णो दशमास्योन्धऽआवि-
 त्तोऽरिष्टोऽअर्जुनः प्रत्याश्रावः
 स्विष्टो घासे प्रणीतस्तेभ्यो नमो-
 ऽअस्तु दूरे नोऽअद्य यज्ञे सध-
 स्थे सोऽअध्वरायेन्द्रे हिरण्यपर्णो
 द्वारो देवोऽब्दो रथिभ्यो महद्भ्यः

सठ.सदः ॥ ८४ ॥

एते च एकारौकारा ऋक्षु यजुषु च प्रकृत्या भ-
 वन्ति अकारे प्रत्यये । अत्र च यत्र द्वयोः पदयोः पाठः
 सूत्रे तत्र नियमार्थः स तेनैव पदेन परभूतेनाधस्तन-
 पदस्य प्रकृतिभावः । एकपदे समान्नाये त्वकारात्वे
 प्रकृतिभावः । हेडो यथा (१) देवस्य हेडोऽअव यासि-
 सीष्टाः ऋक्षयं प्रकृतिभावः । 'व्यपरे चे'त्यनेनाभिनि-

हिते प्राप्ते (१) देवीरापोऽअपान्नपात् । द्वितीयसुदा-
हरणं आपो । यथा (२) आपोऽअस्मान् । गुवो य-
था (३) देवीरापोऽअग्ने गुवोऽअग्ने पुवः । अपान्ने
यथा (४) अपाग्नेऽ अग्निम् । धीरासो यथा (५) ता-
मुधीरासोऽ अनु दिश्य । देवासो यथा (६) यत् देवा-
सोऽअजुषन्त । उरो यथा (७) द्यावाष्टिवीऽउरो अ-
न्तरिक्ष । रक्षाणो यथा (८) रक्षाणोऽअप्युच्छन् ।
मो यथा (९) मोऽअहन्तव वीरम् । वैश्वानरो यथा
(१०) वैश्वानरोऽअदब्धः । वृषभो यथा (११) अस्त-
ब्नाद्यावृषभोऽअन्तरिक्षम् । वचो यथा (१२) उग्र-
वचोऽअपावधीत् । प्राणो यथा (१३) प्राणोऽअङ्गेऽअ-

(१) ६ । २७ ॥

(२) ४ । २ ॥

(३) १ । १२ ॥

(४) १ । १७ ॥

(५) १ । २८ ॥

(६) ४ । १ ॥

(७) ४ । ७ ॥

(८) ४ । १४ ॥

(९) ४ । २२ ॥

(१०) ४ । १४ ॥

(११) ४ । ३० ॥

(१२) ५ । ८ ॥

(१३) ६ । २० ॥

ज्ञे । उदानो यथा (१) उदानोऽअङ्गेऽअङ्गे निधीतः ।
 इमा मे यथा (२) इमा मेऽअग्नऽइष्टकाः । वृष्णो य-
 था (३) वृष्णोऽअर्धं शुभ्याम् । दशमास्यो यथा (४)
 दशमास्योऽअसत् । अन्धो यथा (५) अन्धोऽअच्छेतः ।
 आवित्तो यथा (६) आवित्तोऽअग्निः । (७) अरिष्टो-
 ऽअर्जुनः । द्विपदमेतत् । प्रत्याश्यावो यथा (८)
 प्रत्याश्यावोऽअनुरूपः । स्विष्टो यथा (९) स्विष्टोऽअ-
 ग्निरग्निना । घासे यथा (१०) घासेऽअज्ज्राणाम् ।
 प्रणीतो यथा (११) प्रणीतोऽअग्निरग्निना । तेभ्यो
 नमोऽअस्तु यथा (१२) तेभ्यो नमोऽअस्तु ते नोऽव-
 न्तु । तेभ्यो नमो इति किम् । (१३) नमोऽस्तु नील-

(१) ६ । २० ॥

(२) १७ । २ ॥

(३) ७ । २ ॥

(४) ८ । २० ॥

(५) ८ । ५४ ॥

(६) १० । ९ ॥

(७) १० । २१ ॥

(८) १९ । २४ ॥

(९) २१ । ५८ ॥

(१०) २१ । ४४ ॥

(११) १९ । १७ ॥

(१२) १५ । १५ ॥

(१३) १६ । ८ ॥

ग्रीवाय । दूरे यथा (१) दूरेऽअमित्रश्च गणः । नो
यथा (२) सम्मितासो नोऽ अद्य । यज्ञे यथा (३) यज्ञे-
ऽअस्मिन् । सधस्ये यथा (४) पृथिव्याः सधस्येऽअ-
ङ्गिरस्वत् । सो यथा (५) सोऽअङ्गिराय परिणीयते ।
इन्द्रे यथा (६) सुदेवमिन्द्रेऽअश्विना । हिरण्यपर्णो
यथा (७) हिरण्यपर्णोऽअश्विभ्याम् । द्वारो यथा (८)
देवीर्द्वारोऽ अश्विना । देवो यथा (९) देवोऽअ-
ग्निः स्विष्टकृत् । अद्भो यथा (१०) सजूरब्धोऽअय-
वोभिः । रथिभ्यो यथा (११) नमो रथिभ्योऽअरथे-
भ्यः । महद्भ्यो यथा (१२) महद्भ्योऽअर्भकेभ्यः ।

(१) १७ । ८३ ॥

(२) १७ । ८४ ॥

(३) पूर्वोक्तमुदाहरणं ज्ञेयम् ॥

(४) ११ । ६१ ॥

(५) ३३ । ७५ ॥

(६) २१ । ४८ ॥

(७) २१ । ५६ ॥

(८) २१ । ४९ ॥

(९) २१ । ५८ ॥

(१०) १२ । ७४ ॥

(११) १६ । २६ ॥

(१२) पूर्वोक्तमुदाहरणं बोध्यम् ॥

स॒र्ठ॒०स॒दो॒ यथा (१) स॒र्ठ॒०स॒दो॒ऽअ॒ष्टमी (२) ॥

छ॒न्दो॒ऽअ॒ङ्कु॒पम॒ङ्काङ्क॒मस्त्री॒व्व॒-

यः ॥ ८५ ॥

छन्दइत्ययमोकारः अङ्कुपं अङ्काङ्कं अस्त्रीवयइत्ये-
तेषु प्रकृत्या भवति । अङ्कुपं यथा (३) काव्यं छन्दो-
ऽअङ्कुपम् । अङ्काङ्कं यथा (४) तन्द्रं छन्दोऽअङ्काङ्कम् ।
अस्त्रीवयो यथा (५) प्रतिमा च्छन्दोऽअस्त्रीवयश्छन्दः ।
एतेष्विति किम् (६) स॒स्त्रु॒छन्दो॒ऽनु॒ष्टु॒छन्दः ॥

का दध्रुवोती सदना होतारा ज्ञ्या
स्वधा पृथिवी प्रतिमेमसदन्नश्श्या-
माकर्मोर्ध्वमियमवस्तादुतास्ति-

षु ॥ ८६ ॥

(१) २६ । १ ॥

(२) अस्मिन्सूत्रे अरिष्टे ऽर्जुनइति पूर्वरूपवटितपाठः सोऽपपाठः 'व' गुस्तकस्थो
बुधैर्ज्ञातव्य इति ॥

(३) १५ । ४ ॥

(४) १५ । ५ ॥

(५) १४ । १० ॥

(६) १५ । ५ ॥

का ध्रुवा जती सदना होतारा ज्या स्वधा पृथिवी
प्रतिमा एतानि पदानि प्रकृत्या भवन्ति । ईम् असदन्
अश्याम अकर्म ऊर्ध्वम् इयम् अवस्तात् उत अस्ति
इत्येतेषु प्रत्येषु यथासङ्गम् । का यथा (१) काऽईम-
रे । ध्रुवा यथा (२) ध्रुवाऽअसदन् । जती यथा (३)
जतीऽअश्याम रयिम् । सदना यथा (४) सुगावो दे-
वाः सदनाऽअकर्म । होतारा यथा (५) दैव्या हो-
ताराऽऊर्ध्वम् । ज्या यथा (६) ज्याऽइयम् । स्वधा यथा
(७) स्वधाऽअवस्तात् । पृथिवी यथा (८) पृथिवीऽउत
द्यौः । प्रतिमा यथा (९) न तस्य प्रतिमाऽअस्ति ।

प्रगृह्यठं स्वरे ॥ ८७ ॥

प्रगृह्यं पदं स्वरे प्रत्यये प्रकृत्या भवति । यथा (१०)

(१) २३ ॥ ५५ ॥

(२) २ । ६ ॥

(३) १८ । ७४ ॥

(४) ८ । १८ ॥

(५) २७ । १८ ॥

(६) २९ । ४० ॥

(७) ३३ । ७४ ॥

(८) ३३ । ४२ ॥

(९) ३२ । २ ॥

(१०) ७ । ३१ ॥

इन्द्राग्नीऽ आगतम् । (१) स्वर्त्येऽ अग्न्याग्न्या । स्वर-
सन्धेरपवादः ॥

न रोदसीमे ॥ ८८ ॥

रोदसी इत्येतत्पदं प्रगृह्यं इमे इत्येतस्मिन्पदे न
प्रकृत्या भवति । यथा (२) राये नु यञ्जञ्जतूरोद-
सीमे । इमे इति किम् । (३) आ पप्रिवाग्नूरोदसीऽ
अन्तरिक्षम् ॥

विश्रप्तीवोपस्थिते ॥ ८९ ॥

विश्रप्ती इत्येतत्पदं इवे परभूते उपस्थिते इतिक-
रणे प्रकृत्या भवति । यथा (४) विश्रप्तीऽ इवेति
विश्रप्तीऽ इव । उपस्थित इति किम् । (५) आ वि-
श्रप्तीव बीरिटे ॥

उकारोऽपृक्क्तोऽरूपर्शात् ॥ ९० ॥

(१) ३३ । ५ ॥

(२) २७ । २४ ॥

(३) १७ । ५९ ॥

(४) ३३ । ४० । अस्वोदाहरणस्य पदपाठे सत्त्वात् पदपाठादयमङ्कोऽवग-
न्तव्यः ॥

(५) ३३ । ४४ । किन्नामोपस्थितत्वं । उक्तं च ज्योत्स्नायाम् । उपस्थितं से-
तिकारं केवलं तु पदं स्थितम् । तत्स्थितोपस्थितं नाम यत्रोभे आह संहितेति ॥

उकारोऽष्ट एकवर्णः अस्पर्शात्परः प्रकृत्या भवति
स्वरे प्रत्यये । यथा (१) न वाऽउऽ एतत् । (२)
एतवाऽउऽ अञ्जी । अष्ट इति किम् । (३) योजा
न्विन्द्र । अस्पर्शादिति किम् । (४) किम्वा व्यपनं
महत् ॥

पुतमितौ ॥ ९१ ॥

सुतान्तं पदं प्रकृत्या भवति इतौ प्रत्यये । यथा
(५) ब्विवेशा ३ इति । तेषु ब्विश्वम्भुवनमावि
वेशा ३ ॥

ओकारश्च ॥ ९२ ॥

ओकारः पदान्तीयः प्रकृत्या भवति इतौ प्रत्यये ।
यथा (६) चित्रभानो इति । (७) दृशानो इति ।
इतावित्यनुवृत्तिः कस्मात् स्वरमात्रे मा भूत् इतावित्येव

(१) २३ । १६ ॥

(२) १७ । १७ ॥

(३) ३ । ५१ ॥

(४) २३ । ९ ॥

(५) २३ । ४९ । अत्र अस्मिन्नुदाहरणे इतिपरत्वं नास्ति संहितायां न पद-
पाठेऽपि न क्रमपाठवेलायां इतिपरत्वं वेष्टने ज्ञातव्यम् ॥

(६) २० । ७८ ॥

(७) ४ । २७ । इत्युदाहरणद्वयस्याङ्कः पदपाठाद्विध्यः ॥

(१) क्षानवेते वः ॥

उकारोऽष्टकतो दीर्घमनुनासिक-
म् ॥ ९३ ॥

उकारोऽष्टक एकवर्णो दीर्घमनुनासिकं चापद्यते ।
यथा (२) ऊँ इति । इतावित्येव । यथा (३) न वा ऽउ
एतत् । नात्र दीर्घमनुनासिकं च । इतावविद्यमान-
त्वात् ॥

इतेश्च परं पदं चर्चायाम् ॥ ९४ ॥

इतिकरणाच्च परं उ इत्येतत्पदमष्टकं दीर्घमनुना-
सिकमापद्यते पदचर्चायाम् । चर्चापदस्वरूपमुक्तम्
(४) एतदुक्तं भवति वेष्टने यदितिकरणात्परं पदं च-
र्चा तदेवमुच्यते । तत्पदस्वरूपज्ञापनार्थम् । यत्र तु
तथाभूतं पदस्वरूपं न भवति तत्र उ इत्येतत्स्वरूपं हि
तत्पदं भवति । अयं चार्थोऽनेन सूत्रावयवेन ज्ञाप्य-
ते । इतिकरणात्परतो यत्पदवचनं तत्स्वरूपज्ञापना-
र्थमिति । (५) उत् । ऊँ इत्यम् । त्यम् जातवेदसमिति

जात । वेदसम् । पदचर्चयामिति किम् । (१) उद्गति ॥

तकारवर्गश्चकारवर्गश्चकारव-
र्गम् ॥ २५ ॥

तकारवर्गः प्रदान्तीयः चकारवर्गे प्रत्यये परे चका-
रवर्गमापद्यते । यथा (२) तत् चक्षुः । तच्चक्षुः । (३)
आरात् चित् । आराश्चिद्वेषः । (४) आच्छत् कन्दः ।
आच्छच्छन्दः । (५) उत् जिहानाः । प्रवयामुज्जिहा-
नाः । भकारादि अकारादि च प्रदानासुदाहरणं सं-
हितायां न विद्यते । नकारश्चकारककारप्रत्यययोः
सन्धिरुक्तः । 'नुः' । 'चक्षयोः शम्' । (६) । जकारे उ-
दाहरणम् । यथा (७) वाजान् जयतु । वाजाञ्जयतु ।
(८) ॥

(१) इदमुदाहरणं लौकिकम् ॥

(२) ३६ । २४ ॥

(३) २० । ५२ ॥

(४) १५ । ५ ॥

(५) १५ । २४ ॥

(६) पूर्वोक्तं द्वितीयाध्यायस्थं सूत्रद्वयं ज्ञेयम् ॥

(७) ५ । ३६ ॥

(८) अत्र स्थान्यादेशयोर्विधासङ्ख्यम् । निमित्तकार्येणोस्तु न 'शकारे चे'त्यस्याप्ये-
तत्तत्रैशपत्वेन निमित्तानां षट्त्वात् । योगविभागस्तु तावत् उत्तरसूत्रानुवृत्त्यर्थः ॥

शकारे च ॥ ९६ ॥

शकारे च प्रत्यये परे तकारवर्गश्चकारवर्गमापद्य-
ते । यथा (१) तत् शकेयम् । तच्छकेयं तङ्मे । (२)
उत् शिषः । माऽमीषां कञ्चनोच्छिषः । (३) स्व-
धावान् शुक्ः । स्वधावाञ्छुक्ः । (४) पिशङ्गान् शिशि-
राय । पिशङ्गाञ्छिशिराय । (५) आदित्यान् शसश्शु-
भिः । आदित्याञ् शसश्शुभिः ॥

परश्चास्पर्शपरश्छम् ॥ ९७ ॥

परश्च शकारः अस्पर्शपरश्चकारमापद्यते । यथा
(६) तच्छकेयम् । माऽमीषां कञ्चनोच्छिषः । स्वधावा-
ञ्छुक्ः । पिशङ्गाञ्छिशिराय । अस्पर्शपरइति किम् ।
(७) आदित्याञ् शसश्शुभिः ॥

उदस्तभाने लोपम् ॥ ९८ ॥

(१) १ । ५ ॥

(२) १७ । ४५ ॥

(३) ३३ । ५ ॥

(४) २४ । ११ ॥

(५) २५ । १ ॥

(६) पूर्वोक्तसूत्रोदाहरणानि ज्ञेयानि ॥

(७) पूर्वोक्तमुदाहरणं बोध्यम् ॥

उद् उपसर्गात्परस्तभाने प्रत्यये सकारो लोपमा-
पद्यते । यथा (१) उत् स्तभान । ज्योतिषा दिवमुत्त-
भान । (२) उत् स्तम्भनम् । उत्तम्भनम् ॥

अश्वात्स्थे तकार्ठं सञ्ज्ञायाम्

॥ ९९ ॥

अश्वशब्दादुत्तरः सकारः तकारमापद्यते सञ्ज्ञायां
स्थे प्रत्यये । अश्वः अशनव्यापारोऽग्निरस्मिंस्तिष्ठ-
तीत्यश्वत्यो वृत्तः । यथा (३) अश्वत्ये वो निषदनम् ।
सञ्ज्ञायां किम् । अश्वस्थः पुरुषः । (४) ॥

स्वरान्संययोगादिर्द्विरुच्यते सर्व-

त्वे ॥ १०० ॥

इत उत्तरं द्विर्भावप्रकरणं वर्त्तिष्यते । स्वरात्परः
संयोगादिभूतो वर्णो द्विरुच्यते सर्वत्र । अधस्तनविधा-
नं पदान्तपदाद्योः । इदं तु सर्वत्र पदान्तपदाद्योर्मध्ये-
च पदान्तपदाद्योर्भवति । यथा (५) सम्यक् स्तवन्ति ।

(१) १७ । ७२ ॥

(२) ४ । ३६ । इदमुदाहरणं 'ग' 'व' पुस्तके नास्तीति सुधीर्बोध्यम् ॥

(३) १२ । ८९ ॥

(४) लौकिकमुदाहरणम् ॥

(५) १३ । ३८ ॥

सम्भ्यक् स्वंन्ति । द्वौ ककारौ सकारौ रेफश्च संयोगः ।
तत्र पूर्वककारो द्विरुक्तिजः । (१) अनुष्टुप्शारदी ।
द्वौ पकारौ शकारश्च संयोगः । तत्र प्रथमः पकारो
द्विरुक्तिजः । पदमध्ये भवति यथा (२) अश्चः । द्वौ
शकारौ वकारश्च संयोगः । तत्र प्रथमः शकारो द्विरु-
क्तिजः । खरादिति किम् । (३) शुधिश्युत्कर्ष । अ-
त्र शकाररेफौ संयोगः । (४) ॥

परं तु रेफहकाराब्ध्याम् ॥ १०१ ॥

रेफहकाराभ्यां परं व्यञ्जनं द्विरुच्यते न तु रेफह-
कारौ । यथा (५) जर्ज्ज । रेफो द्वौ जकारौ संयोगः ।
तत्र प्रथमो जकारः क्रमजः । (६) स्वर्यः । रेफो द्वौ
यकारौ संयोगः । तत्र पूर्वो यकारः क्रमजः । (७) बा-
ह्वोः । हकारो द्वौ वकारौ संयोगः । तत्र प्रथमो व-
कारः क्रमजः । (८) ॥

(१) १३ । ५७ ॥

(२) २४ । १ ॥

(३) ३३ । १५ ॥

(४) अत्र सूत्रे सर्वत्रपदेन प्रकृतौ विकृतौ च द्वित्वविधानं ज्ञेयम् ॥

(५) १ । १ ॥

(६) ३१ । १२ ॥

(७) २४ । १ ॥

(८) अत्र सूत्रे तु एवार्थः । बाह्वोरित्युदाहरणे रेफहकारयोः प्रत्यक्षश्रुतिनिमित्त-
त्वेन सामान्यप्राप्तकार्यत्वबाधः । तेन रहमिन्नव्यञ्जनस्यैवानेन द्वित्वम् । ३ । २२ ।

ऊष्मान्तस्थाऽभ्यश्च स्पर्शः ॥१०२॥

जघ्नाणः शपसहाः । अन्तस्था यरलवाः । एतेभ्यः
परः स्पर्शो दिव्यते । यथा (१) षष्ठिः । एकः श-
कारो द्वौ नकारौ संयोगः । तत्र प्रथमो नकारः क्रम-
मजः । (२) अश्मा । शकारो द्वौ मकारौ संयोगः ।
तत्र प्रथमो मकारः क्रमजः । (३) पाष्ण्या । रेफः
षकारो द्वौ णकारौ यकारश्च संयोगः । तत्र प्रथमो
णकारः क्रमजः । (४) सस्त्रितमम् । सकारो द्वौ न-
कारौ संयोगः । तत्र प्रथमो नकारः क्रमजः । (५)
राष्ट्रदा राष्ट्रम् । षकारो द्वौ टकारौ रेफश्च संयोगः ।
तत्र प्रथमटकारः क्रमजः । (६) हस्ते । सकारो

अति ह्रस्वम् । ३० । २२ । अत्रैतयोर्न द्वित्वम् । स्वरे परे रेफात्परेषां ऊष्माणामनेन
द्वित्वं प्राप्तं तत्र रेफस्य एकारसहितोच्चारणविधानाद्रेफधर्मभावात् ११ । ३७ । दर्श-
तम् । २१ । २५ । वर्षाभिः । यत्र तुल्यरत्वं तत्र विधाताभावाद्द्वित्वं भवत्येव । २५ ।
१ । व्वस्वैः । १६ । ३८ । व्वष्ण्या । अत एव पाणिनिना 'शरोनी' ति द्वित्वनि-
षेधः कृतः । उक्तं चामरेशकृतशिक्षायाम् । परं रेफहकाराभ्यां व्यञ्जनं तूष्मवर्जितम् ।
द्वित्वमापद्यते रेफहकारौ तु न कुत्र चित् १ इति ॥

(१) २४ । ४ ॥

(२) १८ । १३ ॥

(३) २५ । ४० ॥

(४) १ । ८ ॥

(५) १० । २ ॥

(६) ११ । ११ ॥

इद्वं । डकारढकारौ वकारश्च संयोगः । (१)
 अहध्वनस्प्रातु । दकारधकारौ वकारश्च संयोगः ।
 (२) बिब्भाट् । बकारभकारौ रेफश्च संयोगः ॥

नानुस्वारः ॥ १०९ ॥

संयोगपूर्वं इत्यनुवर्त्तते । संयोगपूर्वोऽनुस्वारो न
 विरुच्यते । यथा (३) इमं स्तनम् । (४) सोमान्
 स्वरणम् । असंयोगपूर्वस्य ह्यनुस्वारस्योपरिष्ठाद्व्य-
 ति । 'अनुस्वारो ह्रस्वपूर्वोऽङ्घ्रिमात्रा पूर्वा चाङ्घ्रिमा-
 त्रे'ति । यथा (५) हृठं सः ॥

सवर्णं ॥ ११० ॥

सवर्णं प्रत्यये न विरुक्तिर्भवति । अन्तस्थासंयोगो-
 ऽत्रोदाहरणम् । 'स्ववर्णीये चानुत्तम' इति स्पर्शानां
 वक्ष्यति । यथा (६) सम् यौमि । सँथ्यौमि । द्वौ वका-
 रौ संयोगः । (७) सम् व्वपामि । सँव्वपामि । द्वौ व-
 कारौ संयोगः ॥

(१) ४ । २९ ॥

(२) ३३ । ३० ॥

(३) १७ । ८७ ॥

(४) ३ । २८ ॥

(५) १० । २४ ॥

(६) १ । २२ ।

(७) १ । २१ ॥

ऋवर्णे ॥ १११ ॥

ऋवर्णे प्रत्यये न द्विरुक्तिर्भवति । यथा (१) अनिष्टृ-
तः । षकारटकारौ संयोगः । 'ऊष्मान्तस्त्याव्यञ्च
स्पर्श' इति प्राप्तस्य प्रतिषेधः ॥

लृवर्णे ॥ ११२ ॥

लृवर्णे प्रत्यये न द्विरुक्तिर्भवति । यथा (२) कृ-
द्धिः । (३) क्लृप्तम् । 'विसर्जनीयाद्यञ्जनपर' इति
प्राप्तिः । लृकारस्य मध्ये लकारस्यार्द्धमात्रां पश्यता-
ऽऽचार्येण निषेधः कृतः । वक्ष्यति च 'कृलृवर्णा रेफ-
लकारौ सञ्ज्ञिष्टावश्रुतितरावेकवर्णौ' (४) ॥

यमे ॥ ११३ ॥

यमे प्रत्यये न द्विरुक्तिर्भवति । यथा (५) सकृन्ना दे-

(१) २७ । ४ ॥

(२) १८ । १२ ॥

(३) १८ । ११ ॥

(४) अस्मिन्वक्ष्यमाणसूत्रे 'ऋलृवर्णे इति' 'क' पुस्तकपाठः । तस्मिन्नेव सूत्रे अ-
श्रुतिधराविति 'ल' पुस्तकपाठः । ऋकारलृकारयोः परयोर्वत्र द्विरुक्तिर्भवति न भ-
वति व्यञ्जनस्य तत्र प्रमाणममरेशकृतायां प्रातिशाख्यानुसारिण्यां वर्णरत्नप्रदीपिका-
ख्यायां शिक्षायाम् । ऋवर्णे न द्विरुक्तिः स्यात् ङनकारौ विहाय च । लृवर्णेऽपि
तथैव स्यात्कृष्णं चानिष्टृतं यथा । १ । इत्यादि बुधैर्ज्ञेयम् ॥

(५) २३ । २९ । यमलक्षणं वक्ष्यमाणम् । सकृन्नेत्यत्र ककारथकारौ थकारसम-

दिश्यते नारी । ककारः थकारयमौ नकारश्च संयोगः । तत्र 'स्वरात्संयोगादि' रिति द्विरुक्तिः प्राप्ता सा यमे प्रत्यये निषिद्धाते । यथा (१) सञ्जज्ञानमसि । जकारजकारयमौ जकारश्च संयोगः । अत्रापि 'स्वरात्संयोगादि' रिति जकारस्य द्विरुक्तिः प्राप्ता सा यमे प्रत्यये इति नास्ति विरोधः । रुक्क्वपाप्मप्रभृतीन्युदाहरणानि ददन्ति तेषां 'संयोगादिः पूर्वस्य' 'यमश्चे' त्यनेन सह विरोधः प्राप्नोति ॥

विसर्जनीयः ॥ ११४ ॥

विसर्जनीयो न द्विरुच्यते । व्यञ्जनत्वाद्विसर्जनीयस्य द्विरुक्तौ प्राप्तायां प्रतिषेधोऽयम् । यथा (२) दिवः ककुत्पतिः यथिद्व्याः । (३) याः फलिनीः । (४) ॥

सङ्ख्यसकारप्रतिरूपथकारनकाराः संयोगः तत्र थकारस्य न द्वित्वम् । ककारस्य द्वित्वं न भवत्येव तत्र प्रमाणममरेशकृतशिक्षावचनम् । सक्थ्ना देदिश्यते नारी ककारोऽत्रैक एव हि । यमे परे निषेधस्तु पुनर्द्वित्वनिवारकः । १ । इति सु-
ज्ञैर्बोद्धव्यम् ॥

(१) १२ । ४६ । अस्मिन्नुदाहरणे जकारसमसङ्ख्यकारप्रतिरूपजकाराः संयोगः तत्र जकारस्य न द्वित्वम् ॥

(२) ३ । १२ ॥

(३) १२ । ७८ ॥

(४) अत्र विसर्गदीनां व्यञ्जनानामुच्चारणेऽङ्गुलिप्रक्षेपे च प्रमाणमुक्तं याज्ञवल्क्यशिक्षावाम् । मुष्ट्याकृतिर्मकारे तु नकारे तु नसग्रहः । अनुस्वारेऽङ्गुष्ठक्षेप ऊष्मान्तेऽङ्गुलिमोक्षणम् । १ । ककारान्ते टकारान्ते ऊर्णेऽङ्गुलिनामनम् । पञ्चाङ्गुल्यं

स्ववर्गीये चानुत्तमे ॥ ११५ ॥

स्ववर्गीये च प्रत्ययेऽनुत्तमे पूर्वा वर्णा न द्विरुच्य-

पकारे तु तकारे कुण्डलाकृतिः । २ । ऊर्ध्वक्षेपाच्च योष्मा स्यादधः क्षेपाच्च या भवेत् । एकैकामुत्सृजेद्धीरः स्वरिते तूभयं क्षिपेत् । ३ । अङ्गुष्ठाकुञ्चनं लघावनुस्वारे त्वपा-
१७ रसम् । दीर्घे रङ्गे च तर्जन्याः प्रसारः परिकीर्त्तितः । ४ । तर्जन्यङ्गुष्ठयोः स्पर्श-
उदात्तं प्रतिचक्षते । नीचं तु मध्यमे कुर्याच्छेषं नीचतरं क्रमात् । ५ । ह्रस्वादग्रे भवे-
द्दीर्घो दीर्घादग्रे भवेद्गुः । संयोगे च परे ह्रस्वः सिद्ध्यति निदर्शनम् । ६ । स्वरितं
यद्वेत्किञ्चिद्भकारसहसंयुतम् । ऊष्माणं तं विजानीयान्निक्षेप उभयोरपि । ७ । त्रिविधा
तु भवेदूष्मा प्रचिता बलका तरा । स्वरिते प्रचितां विद्यान्निपाते बलकां विदुः । ८ ।
उत्थाने तु तथा तारैताभिस्तिष्ठसृभिरूष्मभिः । मात्रामादौ विदित्वा तु ततः क्षेपं प्रयो-
जयेत् । ९ । एकत्वं भजते काचित्काचिद्विस्ते प्रतिष्ठिता । समानकान्तिका काचि-
त्काचिदूष्मप्रदायिनी । १० । यथा बालस्य सर्पस्य उच्छ्वासो लघुचेतसः । एवमूष्मा
प्रयोक्तव्या हकारं परिवर्जयेत् । ११ । स्वरिते समभिक्षिते संयोगो यत्र दृश्यते । द्वि-
मात्रिके भवेदेका मात्रिके तूभयं क्षिपेत् । १२ । अभ्यासार्थं द्रुता वृत्तिं प्रयोगार्थे तु
मध्यमाम् । शिष्याणामुपदेशार्थं कुर्याद्वृत्तिं विलम्बिताम् । १३ । ऐन्द्री तु मध्यमा वृ-
त्तिः प्राजापत्या विलम्बिता । अग्निमारुतयोर्वृत्तिः सर्वशास्त्रेषु निन्दिता । १४ । वि-
वृत्तिप्रत्ययादूष्मां प्रवदन्ति मनीषिणः । तामेव प्रतिषेधन्ति अइउऋओ निदर्शन-
म् । १५ । एतेषां पद्यानां स्पष्टार्थः । अमुमेवार्थं पाणिनिरप्यवदत् । अयोगवाहा वि-
ज्ञेया आश्रयस्थानभागिनः । न विद्यते योगस्संयोगो वर्णान्तरेण येषां ते अयोगवाहा
इत्यनुस्वारविस्सर्गजिब्हामूलीयोपध्मानीयाश्चत्वारः । आश्रयस्य ककारादेः स्थानं भा-
जितुं शीलं येषां ते आश्रयस्थानभागिनः । अन्ये आचार्या यमवर्णानामयोगवाहान्म-
न्यन्ते तेषां मतेन अयोगवाहशब्दः प्रत्यस्तमितावयवो रुद्धिशब्दोऽश्ववर्णवद्भेदित-
व्यः । विस्सर्गच्चारणे प्रमाणं माध्यन्दिनीयशिक्षायामपि । अवर्णाच्च ऋकाराच्च विस्सर्गः
कण्य एव सः । इवर्णाच्च तथोवर्णात्तथा चैकारपूर्वकः । १ । औकारपूर्वकश्चैव ता-
लव्यो भवति ध्रुवम् । एकाराच्च कण्ठतालुविस्सर्गो भवति ध्रुवम् । २ । कण्योष्ठस्तु
तथौकाराद्विस्सर्गो भवति ध्रुवम् । देवो वः सविता चात्र हकारसदृशो भवेत् । ३ ।
देवीहस्तसो विस्सर्गस्तु हिकारसदृशो भवेत् । आसुस्ते पशुरित्यादौ हुकारसदृशो भवे-
त् । ४ । विस्सर्गश्चाग्रेरित्यादौ हेकारसदृशो भवेत् । विस्सर्गो बाह्वोरित्यादौ होकारस-

ते । यथा (१) तत् देवानाम् । तद्देवानामवो' अद्य ।
द्वौ दकारौ संयोगो द्विरुक्तेर्निषिद्धत्वात् । (२) अन्तरि-
क्ष्मपुरीतता । मकारपकारौ संयोगः । अनुत्तम इ-
ति किम् । (३) तन्नो' मिन्नो ववरणः । अत्र द्विरुक्तिर्भ-
वत्येव ॥

अवसितं च ॥ ११६ ॥

निरर्थकं व्यञ्जनमवसानगतमवसितशब्देनोच्यते ।
अवसितं व्यञ्जनं न द्विरुच्यते । यथा (४) ऊर्क् । रेफ-
ककारौ संयोगः । अवसितमिति किम् । (५) ऊर्क् च
मे । 'परं तु रेफहकाराभ्यामिति प्राप्तिः । रेफस्यात्र

दृशो भवेत् । ५ । अथ स्वैर्दक्षैरित्यादौ हिकारसदृशो भवेत् । विसर्गो द्यौष्पतेत्या-
दौ हुकारसदृशो भवेत् । ६ । हकारो नैव मन्तव्य इति शास्त्रव्यवस्थितिः । फणिनि-
श्वातसदृशो विसर्गो भवति ध्रुवम् । ७ । कनिष्ठिकामोचनं तु नीचे च प्रचये सति ।
नमः कूप्याय प्रथमो द्वितीयो जाग्रतस्तथा । ८ । तर्जनीमोचनं कुर्यादुदात्ते तु विसर्ग-
के । देवो घर्मस्तथा ह्रस्वे स्वरिते तूभयं क्षिपेत् । ९ । अश्वो मर्त्यो भवेद्ध्रस्वं
स्वारे दीर्घे कनिष्ठिकाम् । उभयोरपि ह्रस्वे च वकारे स्वरिते सति । १० । दीर्घेऽपि चो-
भयोः क्षेप इति शास्त्रव्यवस्थितिः । यथा स्फटिकदण्डादिरूपाधिवशतो भवेत् । ११ ।
तद्द्रष्टुमा प्रयोकव्या हिङ्गुहेहो निदर्शनम् । व्यसोः पवित्रं वै तत्र शुदाहरणमुच्य-
ते । १२ । इत्यादिवाक्यैरङ्गुलिप्रक्षेपे प्रमाणं बोध्यम् ॥

(१) ३३ । १७ ॥

(२) २५ । ८ ॥

(३) ३३ । ४२ ॥

(४) १८ । ९ ॥

(५) पूर्वोक्तमुदाहरणं ज्ञेयम् ॥

द्विरुक्तिर्न भवति ॥

नान्तःपदे स्वरपञ्चमान्त-

स्थासु ॥ ११७ ॥

स्वरे प्रत्यये पञ्चमे च परे अन्तस्थासु च प्रत्ययभू-
तासु यद्वक्ष्यति तदन्तःपदे न भवति पदान्तीयस्य स
विकार इत्यर्थः । यथा (१) पूषन् । प्रकारस्य प्रथम-
स्य स्वरे तृतीयभाव उक्तः सोऽन्तःपदे न भवति । प-
ञ्चमे यथा (२) तन्न्या समञ्जन् । (३) आत्कीर्त्तिः इमे
विविधैः पुरन्तीः अमित्रान् । अत्र 'पञ्चमे पञ्चम' मिति
पञ्चमभाव उक्तः सोऽन्तःपदे न भवति । अन्तस्था-
सु यथा (४) इषे च्वा (५) आ ध्यायस्व । प्रथमस्य तृ-
तीयभाव उक्तः सोऽन्तःपदे न भवति । वक्ष्यमाणप्रक-
रणस्यास्याप्रवादभूतोऽयं योगः । अधिकारसूत्रमेतत् ॥

स्पष्टोऽपञ्चमः स्वरधौ तृती-

यम् ॥ ११८ ॥

(१) ३४ । ४१ ॥

(२) २० । ४५ ॥

(३) २९ । ४१ ॥

(४) १ । १ ॥

(५) १२ । १११ ॥

अपञ्चमः स्पर्शः खरे प्रत्यये धिसञ्ज्ञके च तृती-
यमापद्यते । खरे परे भवति यथा (१) उत् एनम् ।
उदेनमुत्तरान्नय । (२) समुद्गात् जर्मिः । समुद्गा-
दूर्मिः । धौ परे यथा (३) यत् ग्रामे । यद्ग्रामे ।
(४) यत् वर्मि । यद्दर्मि । (५) ॥

जिति प्रथमम् ॥ ११९ ॥

जित्सञ्ज्ञके प्रत्यये स्पर्शोऽपञ्चमः प्रथममापद्यते
यथा (६) अनुष्टुप्तेऽभिगरः । (७) जक् च मे । (८)
तत्सवितुः । (९) अनुष्टुप्शारदी ॥

(१) १७ । ४९ ॥

(२) १७ । ८९ ॥

(३) ३ । ४५ ॥

(४) २९ । ३८ ॥

(५) पूर्वोक्तेऽधिकारसूत्रे पदान्ते किम् । ३४ । ४१ । पूषन् । पदादेः परस्य
वर्गवृत्तीयभावो न । २० । ४५ । त्मन्या समञ्जन् । तस्य दकारो न भवति 'पञ्च-
मे पञ्चम' मिति तकारस्य नकारो न भवति । धौ किम् । ८ । ४७ । अनुष्टुप्ते । त-
कारान्ते पदे पूर्वे चकारे परंतः स्थिते । मोक्षं तत्र न कुर्वीत यच्च पणौ २५ । ३७ ।
निदर्शनम् । अपञ्चमः किम् । १३ । ५१ । त्वम् युविष्ट । अत्र मकारस्य वकारो
न भवति । खरे किम् । ३ । ३५ । तत्सवितुः ॥

(६) ८ । ४७ ॥

(७) १८ । ९ ॥

(८) ३ । ३५ ॥

(९) १३ । ५७ ॥

असस्थाने मुदि द्वितीयठं शौनक- स्य ॥ १२० ॥

असमानस्थाने मुत्सञ्जके प्रत्यये स्यार्थोऽपञ्चमो
द्वितीयमापद्यते शौनकस्याचार्यस्य मतेन । यथा
(१) सम्म्यक् स्तुवन्ति । सम्म्यक् स्तुवन्ति । (२) अनु-
ष्ठुप् शारदी । अनुष्ठुप् शारदी । असस्थान इति
किम् । (३) तत्सवितुः । केचिदत्र तृतीयभवसाने
चे' त्येतत्सूत्रं पठन्ति सोऽपपाठः । यतः 'प्रथमोत्तमाः
पदान्तीया' इत्यधस्तादुक्तम् । (४) ॥

पञ्चमे पञ्चमम् ॥ १२१ ॥

(१) १३ । ३८ ॥

(२) १३ । ५७ ॥

(३) ३ । ३५ ॥

(४) अस्मिन्सूत्रे असस्थाने किम् । १२ । ६८ । इत्सृण्य + । उक्तं च याज्ञ-
बल्क्यशिक्षायाम् । ककारान्ते पदे पूर्वे सकारे परतः स्थिते । ससर्वर्णविवजानी-
याद्विषस् सीसेन दर्शनम् । १ । टकारान्ते पदे पूर्वे सकारे परतः स्थिते । ठसर्वर्ण-
विवजानीयात्सम्प्राट्सम्भृतो निदर्शनम् । २ । तकारान्ते पदे पूर्वे सकारे परतः स्थि-
ते । थसवर्णविवजानीयात्तयस्वितुर्निदर्शनम् । ३ । पकारान्ते पदे पूर्वे शकारे प-
रतः स्थिते । फसवर्णविवजानीयादनुष्ठुप् शारदी यथा । ४ । इति । शौनकस्ये-
ते किम् । तत्सवितुः । इत्यादिपूर्वोक्तान्येवोदाहरणानि । वस्तुतस्तु तत्सवितुरित्य-
त्र दन्त्यसकारः पूर्वतकारसमानस्थानीयः । नकारान्ते पदे पूर्वे सकारे परतः स्थि-
ते । तत्सर्वर्णविवजानीयाच्चीन्तस्मुद्गान्निदर्शनम् । इति ॥

पञ्चमे स्पर्शे प्रत्यये अपञ्चमः स्पर्शः पञ्चममाप-
द्यते । यथा (१) वाक् मात्था । वाङ् मात्था । (२)
वट् महान् । वरणमहान् । (३) तत् मित्रस्य । त-
न्मित्रस्य ॥

हश्च तस्मात्पूर्वचतुर्थम् ॥ १२२ ॥

हश्च तस्मादपञ्चमात्स्पर्शात्तृतीयभूतादुत्तरः स-
न्धस्तनस्य स्पर्शस्य चतुर्थमापद्यते । यथा (४) उत्
हर्षय । उट्टहर्षय । (५) अवाट् हव्यानि । अवाङ्-
हव्यानि ॥

नकारिपरो जातूकर्ण्यस्य ॥ १२३ ॥

कृत्कारपरो हकारः अपञ्चमस्पर्शादुत्तरो न चतु-
र्थमापद्यते । न च पूर्वस्तृतीयं जातूकर्ण्यस्याचार्यस्य
मतेन । यथा । (६) सम सुस्त्रोत् हृदः । समसुस्त्रोद्-
हृदः । जातूकर्ण्यस्येति किम् (७) समसुस्त्रोद्हृ-

(१) १३ । ५० ॥

(२) ३३ । ३९ ॥

(३) ३३ । ३० ॥

(४) १७ । ४२ ॥

(५) १९ । ६६ ॥

(६) १० । ५० ॥

(७) पूर्वोक्तमुदाहरणं ज्ञेयम् ॥

दो वा ॥

हि ॥ १२४ ॥

‘ह्यन्तराः काला’ इत्यधस्तादुक्तं कालशब्दश्चेहाऽव-
धिवचनः । अतोऽवधिपरिज्ञापनार्थमिदं सूत्रम् । अ-
वधेः प्रयोजनं ‘न परकालः पूर्वकाले पुन’ रित्यधस्ता-
देवोक्तम् ॥

यवयोः पदान्तयोः स्वरमध्ये

लोपः ॥ १२५ ॥

यकारवकारयोः पदान्तभूतयोः स्वरमध्ये वर्त्तमा-
नयोर्लोपो भवति । अश्रवणमनुच्चारणं भवतीत्यर्थः ।
अधस्तात्सूत्रकारेण यौ यकारवकारौ विहितौ तयो-
रनेन लोपः क्रियते । पदान्तीययोर्यकारवकारयोर-
सम्भवात् । यथा (१) ‘आकारोपधो यकारम्’ । य-
था । (२) महँयिन्द्रः । महँ२ ॥ इन्द्रः । (३) स्वाय्
अहम् । स्वा२ ॥ अहम् । तथा ‘कण्ठपूर्वो यकार-
मरिफितः’ । (४) श्वित्रय् आदित्यानाम् । श्वित्रः ॥

(१) प्रा० अ० ३ सू० १४३ ॥

(२) ७ । ३९ ॥

(३) ११ । ८२ ॥

(४) २४ । ३९ ॥

आदिह्यानाम् । (१) ता य् अस्य । ता ऽअस्य सूददो-
 हसः । 'सन्त्यक्षरमयवायावम्' । (२) इड य् एहि ।
 इड ऽएहि । (३) अदित य् एहि । अदित ऽएहि ।
 (४) भूत्या य् आखून् । भूत्या ऽआखून् (५) विष्णु व्
 उरुगाय ॥ विष्णु ऽउरुगाय । (६) ता व् उभौ । ता
 ऽउभौ चतुरः । लुप्तयोश्च यकारवकारयोर्यः स्वरस-
 न्धिः प्राप्नोति स 'न परकाल' इत्यादिना निषिध्यते ॥

न वकारस्यासस्थान एके-

षाम् ॥ १२६ ॥

वकारस्य पदान्तस्य असस्थाने स्वरे प्रत्यये लोपो
 न भवत्येकेषामाचार्याणां मतेन । यथा (७) विष्णुवेते
 दाधत्य् । (८) कृशानवेते वः । असस्थान इति कि-

(१) १२ । ५५ ॥

(२) ३ । २७ ॥

(३) तथा ॥

(४) २४ । २६ ॥

(५) ८ । १ ॥

(६) २३ । २० ॥

(७) ५ । १६ ॥

(८) ४ । २७ ॥

म् । (१) विष्णुः उरुगाय । (२) हिरण्यरूपाऽउष-
सः । (३) ॥

असौ च शाकटायनः ॥ १२७ ॥

असावित्येतस्य पदस्य असस्थाने प्रत्यये वकारो न
लुप्यते । शाकटायनस्य मतेन । (४) असौ एहि । अ-
सावेहि । एके एतत्सूत्रं पठन्ति सोऽपपाठः पूर्वैरेव
सिद्धत्वात् । (५) ॥

प्रऽउगमिति यकारलोपः ॥ १२८ ॥

प्रयुगमित्येतस्मिन्पदे यकारलोपः प्रत्येतव्यः कर्त्त-
व्यो वा । प्रयुज्यत इति प्रयुगम् । तत्र युजेर्यकारो
लुप्यते । यथा (६) प्रऽउगमुक्त्वमव्ययायै । 'न पर-

(१) ८ । १ ॥

(२) १० । १६ ॥

(३) एकेषामिति किम् । एकशब्दोऽत्र प्रधानवाची तेन प्रधानाचार्यस्य महर्षि-
कात्यायनस्य मतेन वकारलोपनिषेधोऽत्र प्रत्युदाहरणे न भवतीति सुज्ञेयम् ॥

(४) ३० । २ ॥

(५) एतस्मिन्सूत्रे शाकटायनपदेन तच्छिष्यस्य बोधः पुराणे तथा दर्शनात् । ते-
न शिष्याचार्ययोरेकमतत्वादेकमतेऽप्येवमेव । यद्वा केचिच्छाकटायन इति काण्वा-
चार्यस्यैव नामान्तरं वदन्ति तन्मतेऽपि वकारस्य लोपो न भवति तथैवाचारण-
त्वात् । परन्तु इतिशब्दे परे विकल्पेन वकारलोपो भवति इति सप्तमाध्यायै वक्ष्य-
ति ॥

(६) १५ । २ ॥

काल इत्यनेन' स्वरसन्धिर्न भवति ॥ (१) ॥

अनादेशेऽविकारः ॥ १२९ ॥

इत उत्तरं स्वराणामुदात्तानुदात्तस्वरितप्रचिता-
नामेकीभावगतं विकारं विवक्षुः परिभाषां चकारा-
ऽऽचार्योऽनादेशेऽविकार इति । यत्रोदात्तादीनां स्व-
राणां सन्धावादेशो न क्रियते तत्राविकारः प्रत्येत-
व्यः । यथा (२) 'अग्निर्धूमोर्द्वा दिवः' ककुत् । तथा (३)
इयमुपरि ॥

प्रागुवर्णादक्षराणामेकी-
भावः ॥ १३० ॥

उवर्णोपलक्षितात्सूत्रात् 'उदात्ताञ्चानुदात्तं स्वरित' मित्येतस्मात्प्राग्येदित ऊर्ध्वमनुक्रमिष्यामस्तत्रा-
क्षराणामेकीभावोऽधिकृतो वेदितव्यः । 'स्वरोऽक्षर'
मित्यधस्तादुक्तमित्यतः स्वराणामेकीभावोऽधिकृतो वे-
दितव्यः । अधिकारसूत्रमेतत् । (४) ॥

(१) इत्यादिना स्वरसन्धेरभाव इति 'स' पुस्तकपाठः । प्रयुगमिति 'स' पुस्तकपा-
ठो बोध्यः ॥

(२) ३ । १२ ॥

(३) १३ । ५८ ॥

(४) अथ वा वर्णमहणादनृकादुवर्णात्परेषामक्षराणां प्राग्भूतस्यादिभूतस्याक्षरस्य
उवर्णेन सहैकीभावो भवति । स्थानकरणाभ्यामेकीभावयोग्यो वकार एव । अत्र 'यव-
योः पदान्तयोः स्वरमध्ये लोप' इत्यनेन उवर्णस्य लोप इति सिद्धे पुनः सन्ध्यर्थम् ।

स्वरितवान्त्स्वरितः ॥ १३१ ॥

स्वरितवानेकीभावः स्वरितो भवति । यथा (१) पत्थ्या इव । पत्थ्येव सूरेः । (२) चम्बी इव । चम्बी-
व सोमः । जात्योदाहरणे यथा (३) ब्रह्म असृज्यत
ब्रह्मासृज्यत । (४) मृत्यवे असितः । मृत्यवे ऽ-
सितः । तैरोव्यञ्जनोदाहरणे ॥

उदात्तवानुदात्तः ॥ १३२ ॥

उदात्तोऽस्मिन्नस्तीति उदात्तवान् । उदात्तवाने-

तेन 'न परकालः पूर्वकाले पुन' रित्यस्य प्रवृत्तिरिति ज्ञापित एकीभाव इति । उतममु
वै प्रयोजयिष्यति । 'स्वरे भाव्यन्तस्या'मिति 'वाहौ च स्वरभूते' इत्यनेन उवर्णवकार-
योः परस्य दृष्टत्वात् । इदं च प्रायो लक्ष्यादर्शनाद्ब्राह्मणे एव । 'अथ ब्राह्मणस्वरसं-
स्कारनियमः' इति भाषिकसूत्रकर्त्ता कात्यायनः शतपथब्राह्मणगतानां स्वराणां संस्का-
रस्य च पार्थक्येन नियममभिधत्ते । तथावीणां तथा मनुष्याणामिति मन्त्रे तु विश्वक-
र्मसंज्ञिभिः । एवं सर्ववर्णस्वरसाम्येऽपि मन्त्रे मात्राकालो विलम्बः । ब्राह्मणे तु सन्नि-
कर्षोच्चारणम् । पूर्णस्तवेत्युचो मन्त्रे सकारलोप इष्यते । ब्राह्मणे तु सकारो भिद्यते ।
तयोर्यथा च कृपणं त्वा अध्वर्युर्वर्जमानात् । कृपाणं तु वै । इति णदछेदः । चक्षुः सु वा
एषः । वैश्वानरस्य तु वा एषः । मानुषो न्वा एषः । क्वचिन्नोपः । सुवर्णम् । अमुम-
र्थं तैत्तिरीयप्रातिशाख्यकृत् आह । "तु न पूर्वं उदात्तयोर्वकम् इति" उदात्तयोस्तु
न्वोः परभूतो वकारो लुप्यते । स तु वै । स वै यजते । इत्यादीन्युदाहरणानि शतपथ-
ब्राह्मणस्यैव । तेनोदात्तयोरेव तुन्वोरेकीभावो नान्यत्रेति ध्येयम् ॥

(१) ११ । ४ ॥

(२) २० । ७० ॥

(३) १४ । २२ ॥

(४) २४ । ३७ ॥

कीभाव उदात्तो भवति । स चोदात्तः पुरस्तात्पञ्चादा
भवति । इतरत्रोदात्तानुदात्तस्वरितप्रचिताः । यथा
(१) उभयत्रोदात्तो भवति । ये अन्नेषु । येऽन्नेषु । (२)
दूणानः अस्ता । दूणानोऽस्ताऽसि । उदात्तपूर्वो-
ऽनुदात्तपरो भवति यथा (३) प्र अर्पयतु । प्रार्पयतु ।
(४) आ इदम् । एदम् । उदात्तपरोऽनुदात्तपूर्वो यथा
(५) त्वा आशाढ्यः । त्वाशाढ्यः । (६) मे अङ्गानि ।
मेऽङ्गानि सर्वतः । उदात्तपूर्वः स्वरितपरो यथा
(७) सु ऊर्वाय । नम ऊर्वाय च सूर्वाय च ।
अवग्रह एतदुदाहरणम् । स्वरितपूर्व उदात्तपरो यथा
(८) अद्भुत्ये अवसे । अद्भुत्येऽवसे । (९) सुप्त्वा इ-
ति । सुप्त्वेति पदसंहितायामुदाहरणम् । अत्रोदात्त-
स्वरितसन्धौ 'विप्रतिषेध उच्चरं बलवदलोप' इति प्र-
रिभाषास्त्वेषोदात्त एव भवति । उदात्तशास्त्रस्य प्र-

(१) १६ । ६१ ॥

(२) १३ । १ ॥

(३) १ । १ ॥

(४) ४ । १ ॥

(५) १ । १० ॥

(६) २० । ७ ॥

(७) १६ । ४५ ॥

(८) ३४ । २९ ॥

(९) १ । ३ ॥

रत्वात् । न तु स्वरितः । स्वरितशास्त्रस्य पूर्वत्वात् । उ-
दात्तपरः प्रचितपूर्वो यथा (१) ओजिष्ठ ओजिष्ठः ।
इन्द्रौजिष्ठौजिष्ठः । (२) व्याजजितः अद्भुतः । व्या-
जिनो व्याजजितोऽद्भुतः । अश्वस्तनयोगापवादः ॥

इवर्णमुभयतो ह्रस्वमुदात्तपूर्वम-
नुदात्तपरं स्वरितम् ॥ १३३ ॥

इकारो वर्णो यस्याक्षरस्येति इवर्णमक्षरम् । बङ्ग-
व्रीहिरयमक्षरप्रधानः । इवर्णमक्षरं स्वरितं भवति ।
कथं भूत उभयतो ह्रस्वम् । उभयत इवर्णो ह्रस्वस्या-
क्षरस्येत्युभयतो ह्रस्वस्तम् । उदात्तपूर्वो यस्याक्षरस्येत्यु-
दात्तपूर्वमक्षरम् । अनुदात्तपरो यस्येत्यनुदात्तपरम-
क्षरम् । यथा (३) सुचि इव । सुचीव दृष्टम् । (४)
अभि इन्धताम् । अभीन्धताम्मुखे । उभयतो ह्रस्वमि-
ति किम् । (५) हि ईम् । बिहीमिद्भु । उदात्त व-
मिति किम् । (६) इमे ऽइतीमे । (५) वीङ्गायेति वि ।

(१) ८ । ३९ ॥

(२) ९ । १३ ॥

(३) २० । ७० ॥

(४) ११ । ६१ ॥

(५) १२ । ६ ॥

(६) २९ । ३४ ॥

(७) १६ । ३८ ॥

ईद्व्याय । अधस्तनयोगापवादः ॥

व्वीक्षितायेति च ॥ १३४ ॥

वीक्षितायेत्ययं च एकीभावः स्वरितो भवति यथा
(१) व्वीक्षितायेति वि । ईक्षिताय । उदात्तपूर्वोऽनु-
दात्तपर एकीभावो भवति । उभयतो द्वस्वस्तु न भ-
वति । अतो निपात्यते ॥

उदात्ताच्चानुदात्तः स्वरितम् ॥ १३५ ॥

अक्षराणामेकीभावस्य पूर्वो विधिः । इदानीमक्ष-
राणां व्यञ्जनव्यवहितानां यः स्वरसंहितायां भवति
स उच्यते । उदात्ताच्चाक्षरात्परं व्यञ्जनव्यवहितम-
नुदात्तमक्षरं स्वरितं भवति । यथा (२) स्वाहा ।
(३) वाजः । (४) प्रयः । (५) नमः । (६) मो सु
नः । मो घूर्णः । (७) हि स्म । हि ष्माते ॥

(१) २२ । ८ ॥

(२) ४ । ५ ॥

(३) २८ । १ ॥

(४) २८ । ३५ ॥

(५) २६ । १ ॥

(६) ३ । ४५ ॥

(७) ३ । ४५ ॥

निहितमुदात्तस्वरितपरम् ॥ १३६ ॥

निहन्यते स्वरितमुदात्तपरं स्वरितपरं च । (१)

स्वाहा सोमाय । (२) नमः हिरण्यवाहवे । नमो हि-

रण्यवाहवे । (३) अस्त्यूरि णौ गार्हपत्यानि सन्तु ।

(४) भासे त्वा ज्योतिषे त्वा । (५) स्वरणं घर्मः ।

(६) स्वर्ग्यायेति स्वः । ग्याय । (७) प्रसवे ऽ-

श्विनोः । (८) अयुद्धोऽस्माकम् । (९) परमेष्ठ्य-

भिधीतः । (१०) सुचीवेति सुचि । इव दृढम् । (११)

दिवीवेति दिवि इव चक्षुः । एवमेतत्तैरोव्यञ्जनजा-

त्याभिनिहितच्चैप्रप्रसृष्टाः स्वरिता उदात्तेऽनुदात्ती-

भूताः प्रदर्शिताः । अथेदानीं स्वरिते यथासम्भवं

(१) १० । ५ ॥

(२) १६ । १७ ॥

(३) २ । २७ ॥

(४) १३ । ३९ ॥

(५) १८ । ५० ॥

(६) ११ । २ ॥

(७) १ । १० ॥

(८) १७ । ३९ ॥

(९) ८ । ५४ ॥

(१०) २० । ७० ॥

(११) ६ । ४ ॥

प्रदर्शयन्ते । (१) भूर्भुवः स्वः द्यौरिव । (२) स्व-
र्णं धर्मः स्वाहा स्वर्णार्कः ॥

अनवग्रहे ॥ १३७ ॥

यदेतन्निहितमुदात्तस्वरितपरमित्यधस्तादुक्तम् ।
एतदेके आचार्या अनवग्रहे मन्यन्ते । अवग्रहे तु स्वरित एव भवति । यथा (३) तनूनपादिति तनू । नपा
त् । (४) तनूनप्त्वेऽइति तनू । नप्त्वे । एतच्च परम-
तम् । यत औजिहायनकैरिदमुक्तम् । अवग्रहो यदा
नीचउच्चयोर्मध्यतः क्वचित् । तथाभाव्यो भवेत्कम्पस्त-
नूनप्त्वे निदर्शनमिति । (५) ॥

स्वरितस्य चोत्तरो देशः प्रणिह- न्यते ॥ १३८ ॥

स्वरितस्य यउत्तरो भागः स निहन्यते । उदात्ते

(१) ३ । ५ ॥

(२) १८ । ५० । इमेऽङ्काः पदपाठाद्धोष्याः क्वचित्संहितापाठाच्चोदाहरणीया
ज्ञेयाः ॥

(३) २१ । १० । अयमङ्कः पदपाठाद्धोष्यः ॥

(४) ५ । ५ । अयमपि तथा ॥

(५) अनवग्रहमेके इति 'स्व' पुस्तकपाठः । एकशब्दोऽत्रान्यवचनः तेन काण्वा-
दीनामवग्रहेऽप्यनुदात्त एव भवतीति गम्यते । याज्ञवल्क्यशिक्षावचनात्पदपाठे तु
कम्पः स्वरो भवतीति ॥

स्वरिते वा परभूते एकेषामाचार्याणां मतेन । अत्र
च जात्याभिनिहितक्षैप्रप्रसिद्धा एवोदाहरणम् । त-
थाभूतं तेषां शाखिनां हि स्मरणम् । यथा (१) स्व-
र्गं वर्गः । (२) प्रसवेऽग्निश्चनोः । (३) परमेष्ठ्यभिधी-
तः । (४) सुचीवेति सुचि । इव । वाजसनेयिनान्तु
अनुदात्त एव भवति । 'निहितमुदात्तस्वरितपर' मि-
त्यनेन सूत्रेणानुदात्त एवेति ज्ञेयम् ॥

स्वरितात्परमनुदात्तमुदात्तम-

यम् ॥ १३९ ॥

स्वरितादक्षरात्परं व्यवहितं यदनुदात्तमक्षरं तदु-
दात्तमयं भवति । उदात्तमयं प्रचितमेकश्रुतीति पर्या-
याः (५) व्यायवस्थ । व्यञ्जनव्यवहितं प्रायो निदर्शनं
दृश्यते । यथा (६) अग्ने अङ्गिरः ॥

अनेकमपि ॥ १४० ॥

स्वरितादक्षरात्परं व्यञ्जनव्यवहितं यदनुदात्तम-

(१) १० । ४६ ॥

(२) १ । ११ ॥

(३) ८ । ५४ ॥

(४) २० । ७० ॥

(५) १ । १ ॥

(६) १२ । ८ ॥

क्षरमेकप्रज्ञेयं वा तत्सर्वमनुदात्तमयं भवति । प्रचितं
भवतीत्यर्थः । यथा (१) व्वाजे वाजेऽवत व्वाजिनः ।
(२) त्वामद्य ऽकृषऽत्रार्षेयऽकृषीणाम् ॥

नोदात्तस्वरितोदयम् ॥ १४१ ॥

स्वरितादक्षरात्परस्यानुदात्तस्योदात्तमयत्वं विधा-
याधुना तदपवादति । उदात्तोदयं स्वरितोदयं च नो-
दात्तमयं भवति किन्त्वनुदात्तमेव भवति । उदात्तोदयं
भवति यथा (३) सरस्वति तमिह धातवेऽक्ः ।
(४) व्वाजे वाजेऽवत व्वाजिनो नो घनेषु । स्वरित-
प्ररं यथा (५) रथौजाश्च सेनानीग्यामग्यौ । (६)
उपयामगृहीतोऽसि सहस्राय त्वा । (७) ॥

द्विवर्णमेकवर्णवद्धारणात्स्वरमद्ध्ये समानपदे ॥ १४२ ॥

‘स्वरासंयोगादि’ रित्यादिना प्रकरणेन यस्य द्वि-

(१) ९ । १८ ॥

(२) २१ । ६१ ॥

(३) ३० । ५ ॥

(४) ९ । १८ ॥

(५) १५ । १५ ॥

(६) ७ । ३० ॥

(७) ‘अनेकमपी’ति प्राप्तापवादभूतमिदं शास्त्रम् ॥

भावे उक्तः तस्यैतदुच्यते । वर्णे द्विवर्णसंयोग एकवर्ण-
वत्कर्त्तव्यः । मुखसन्धारणाविशेषात्स्वरयोर्मध्ये वर्त्त-
मानमेकस्मिन्पदे भवति । एतच्चाभिधानमुच्यते इत
उत्तरं द्वयोर्वर्णयोरेकीभावः प्रायशो निरूप्यते । यथा
(१) व्यात्तम् । (२) कुक्कुटः । द्विवर्णस्वरमध्य इति
किम् । (३) आज्ज्यम् । (४) मुज्ज्युः । अत्र जकार-
स्य द्विर्भवति न तु स्वरयोर्मध्ये यकारेण व्यवधानात् ।
समानपदग्रहणेन च संहिता लक्ष्यते । पदविच्छेदे
न भवति यथा (५) इमम् । मे । इमस्मै' वरुण ॥

ऐकारौकारौ च ॥ १४३ ॥

ऐकार औकारश्च द्विवर्णौ सन्तौ एकवर्णवद्वारणादे-
कवर्णौ भवतः । एकप्रयत्ननिर्वर्त्यौ भवतः । यथा (६)
करस्मै । (७) तस्मै । (८) आनन्दनन्दौ आण्डौ ॥

उठौ ललहावेकेषाम् ॥ १४४ ॥

(१) ३१ । २२ ॥

(२) १ । १६ ॥

(३) २ । ८ ॥

(४) १८ । ४२ ॥

(५) २१ । १ ॥

(६) १ । ६ ॥

(७) इदमपि तथा ॥

(८) २० । ९ ॥

डकारठकारौ एकेषामाचार्याणां मतेन यथासंख्यं
लकारलृहकारावापद्येते । स्वरमध्ये समानपद इत्यनु-
वर्त्तते । यथा (१) इले । (२) अषालृहा । स्वरमध्ये स-
मानपद इति किम् । यथा (३) व्यनस्पते वीड्डुङ्गः ।
मीड्डुस्तोकाय । एतच्च परमतम् । तथा हि वक्ष्य-
ति । (४) तस्मिँल्लृहजिह्वामलीयोपह्वमानीयनासि-
क्या न सन्ति माध्यन्दिनानामिति । (५) ॥

द्विसकारठ० शास्स्वरास्स्वेति ॥ १४५ ॥

द्वौ सकारौ अस्मिन्पदद्वय इति द्विसकारं पदद्वय-
म् । कतमत्तदित्यत आह । शास्स्व । रास्स्व । यथा
(६) आ च शास्स्वा च । (७) रास्स्वेयत्सोमं । शासे-
रासेश्चैकः प्रवृत्तिसकारः प्रथमः स्वेति प्रत्ययस्य द्विती-

(१) ८ । ४३ ॥

(२) १३ । २६ ॥

(३) १६ । ५० ॥

(४) इदं सूत्रमष्टमाध्यायस्थं बोध्यम् ॥

(५) इदं माध्यन्दिनमिन्नानामेकेषाम्मतं, शाकलवाष्कलादीनामाचार्याणाम्मतेन
तेषां 'तस्मिँजि' त्यादिनाष्टमाध्यायस्थेन सूत्रेण निषेधात् "द्वयोश्चास्य स्वरयोर्मध्यमेत्य
सम्पद्यते स डकारो ढकारो लकारता लृहकारतामेति स एव चास्य लकारः सन्नूष्म-
णा सम्प्रयुक्तः" इति ऋग्वेदप्रातिशाख्ये शौनकाचार्यो निरूपितवान् तन्मतेऽवग्रहे-
ऽपि स्वरमध्यस्थत्वाद्ववर्त्तति बोध्यम् ॥

(६) २१ । ६१ ॥

(७) ४ । १६ ॥

यः तृतीयः क्रमजः प्राप्नोति सोऽन्यत्र निषिद्ध्येतेऽनेन
सूत्रारम्भसामर्थ्येनेति । (१) ॥

ऋलृवर्णौ रेफलकारौ सऽश्लिष्टा-
वश्रुतिधरावेकवर्णौ ॥ १४६ ॥

ऋकाले लृकारे च यथासङ्ख्यं रेफलकारौ क-
रव्याणुमात्रयोर्मध्येऽर्द्धमात्रिकौ संश्लिष्टौ एकीभूतौ अ-
विद्यमानपृथक्श्रुतिधरौ एकश्रुतिभूतौ भवतः । तथा
हि वैयाकरणा “उरणूपर” इति रेफमधिकं विद-
धति । यथा (२) कृत्तिवासाः । (३) ऋद्धिः । (४)
लृप्तिः । (५) ॥

मात्राणुमात्रा वर्णापत्तिनाम् ॥ १४७ ॥

‘ऋलृवर्णौ रेफलकारा’ वित्यनेन सूत्रेण ऋलृवर्ण-

(१) एतस्मिन्सूत्रे केचित् चकारमधिकं वदन्ति तदसमीचीनं दृश्यते अनार्षपा-
ठादिति बोध्यम् ॥

(२) ३ । १ ॥

(३) १० । ११ ॥

(४) इदमपि तथा ॥

(५) तथा च वैयाकरणानां गुणे क्रियमाणे ‘उरणूपर’ इति पृथङ् न कर्त्तव्यं तत्र
रेफस्य सत्त्वात् । कृत्तिवासा इत्यत्र ककाररेफकाराः । ऋप्पिरित्यत्र ककारलृकार-
लृकाराः सन्तिति ज्ञेयम् । एवं रलृयोरपि ऋलृवर्णौ कण्वार्द्धमात्रिकावश्रुतितरौ
संयोगविधातमकुर्वन्तौ स्वरभक्तिसञ्ज्ञौ वेदितव्यौ । अमुमेवार्थमभिज्ञाय पाज्ञवलक्य-
महर्षिणा शिक्षायां स्वरभक्तिरूपेण पञ्चधा प्रतिपादितेति बोध्यम् ॥

सोरिफलकारौ विद्येते । इत्येतत्प्रतिष्ठादितमिदमिदं
नीं चिन्त्यते कियती मात्रा कण्ठस्य कियती मात्रा
रेफलकारयोस्तत्प्रसङ्गेनान्याऽपि वर्णापत्तिश्चिन्त्यते ।
वर्णापत्तीनां त्रयः काला भवन्ति मात्रार्द्धमात्राणुमा-
त्रोपलक्षिताः एतच्च 'विकारी यथासन्न' मित्यनेन
व्यवस्थाप्यते । (१) ॥

अनुस्वारो ह्रस्वपूर्वोऽध्यर्द्धमात्रा
पूर्वा चार्द्धमात्रेति ॥ १४८ ॥

'नानुस्वार' इत्यनेन सूत्रेण संयोगपरस्यानुस्वा-
रस्यार्द्धमात्राकाल इत्यवधारितत्वादयमसंयोगपरार्थ
आरम्भः । अनुस्वारो ह्रस्वपूर्वोऽध्यर्द्धमात्राकालो भ-
वति । पूर्वश्च ह्रस्वोऽर्द्धमात्राकालो भवति यथा । (२)
माऽवर्गठं सो दधुव्राः । (३) मठं हिण्डो मत्सद-
न्वसः ॥

दीर्घाद्वर्द्धमात्रा पूर्वा चाध्यर्द्धा ॥ १४९ ॥
दीर्घात्स्वरात्परोऽनुस्वारोऽर्द्धमात्राकालो भवति ।

(१) किन्नामापत्तित्वं वर्णस्य वर्णान्तरभाव आपत्तिः तत्रोच्चारणकाले विलोमेन
मात्रादयः काला भवन्ति द्विवर्णमेकवर्णवद्धारणं कण्ठादिवर्ण एकवर्णवत्तन्धारयेत्सं-
हितायां कर्त्तव्यायामिति सुसौर्ह्यम् ॥

(२) १ । १ ॥

(३) २७ । ४० ॥

यथा (१) मा॒ए॒सम् । (२) त्वा॒ए॒ हि ॥

द्वियकारम् ॥ १५० ॥

द्वौ यकारौ समाहृतौ द्वियकारम् । इत उत्तरं द्वि-
यकारमधिष्ठतं वेदितव्यम् ॥

आ॒प्या॒य्य॒मा॒नो य॒मो र॒य्यै धा॒य्या

रूप॑ठ० श्र॒वा॒य्यं नृ॒पा॒य्यं पौ॒रु॒षे॒य्या

हृ॒द॒य्या स॒ह॒र॒य्या नि॒चा॒य्य सान्ना-

य्य स॒न्ता॒य्येति च ॥ १५१ ॥

एते द्वियकाराः संयोगा भवन्ति । क्रमजस्तृतीयः
प्राप्नोति स निषिध्यते । यथा (३) आ॒प्या॒य्य॒मा॒नो
य॒मः) । (४) र॒य्यै त्वा पोषाय॑ त्वा । (५) य॒जेति॑ धा-
य्या रूपम् । (६) तन्नो॑ गी॒र्भिः) श्र॒वा॒य्यम् । (७)

(१) २० । १३ ॥

(२) ३३ । १३ ॥

(३) ८ । ५७ ॥

(४) १४ । २२ ॥

(५) १९ । २४ ॥

(६) १९ । ६४ ॥

(७) २० । ८१ ॥

वर्त्ती हृद्द्रा नृपाय्यम् । (१) पौरुषेय्या गृभः । (२)
 नमो हृदय्याय च । (३) सहरय्या निवर्त्तस्व । (४)
 अग्नेज्ज्योतिर्निचाय्य । (५) सान्नाय्यभाजनावा अ-
 मावास्या । (६) मैत्रः शरसि सन्नाय्यमाने ।
 (७) ॥

एकः ॥ १५२ ॥

इत उत्तरमेक्यकाराः संयोगा भवन्तीत्यधिकृतं
 वेदितव्यम् । अधिकारस्वरमेतत् ॥

ज्योतिश्च्यवनः श्येनः श्यामः

श्यामाकाः श्येतो ज्येष्ठो ज्यो-

गज्याच्छ्यति ॥ १५३ ॥

एते संयोगा एक्यकारा भवन्ति । अस्वरपूर्वार्थ-
 आरम्भः । स्वरपूर्वास्तु 'स्वरपूर्वाश्च शचजा' इत्यने-

(१) २१ । ४३ ॥

(२) १६ । ४४ ॥

(३) १२ । १० ॥

(४) ११ । १२ ॥

(५) इदमुदाहरणं शतपथब्राह्मणस्य बोध्यम् ॥

(६) ३९ । ५ ॥

(७) अत्र 'स्वरात्संयोगादि'ना द्वित्वं प्राप्तमनेन निषिध्यते ॥

नैव सेत्स्यन्ति । कस्त्वाच्छयतीत्येतदधिकमुदाहरणं
विहितम् । प्रचुराण्येवोदाहरणानि । (१) बृहज्ज्यो-
तिः करिष्यतः । (२) दुग्धश्च्यवनः । घृतनाषाद् ।
(३) इन्दुर्दक्षः श्येनश्च्युता वा । (४) श्यामं च मे
लोहं च मे । (५) श्यामाकाशश्च मे । (६) श्येतो मलहविः
सारस्वतः । (७) यो ह वै ज्यैष्ठ्यं च श्यैष्ठ्यं च । (८)
ज्योत्ते सन्दृशि जीव्यासम् । (९) ज्याऽद्वयठं० सम-
ने । (१०) कस्त्वाऽऽच्छयति । इति विहितान्युदाह-
रणानि । (११) ॥

जुषस्व यविष्टुय शोचा यविष्टुये-
ति च ॥ १५४ ॥

(१) ११ । ३ ॥

(२) १७ । ३९ ॥

(३) १८ । ५३ ॥

(४) १८ । १३ ॥

(५) १८ । १२ ॥

(६) परकीयशासोदाहरणम् ॥

(७) इदमपि तथा ॥

(८) ३६ । १९ ॥

(९) २९ । ४० ॥

(१०) २३ । ३९ ॥

(११) अस्मिन्सूत्रायान्तिमोदाहरणे आङो भिन्नपदस्थत्वात्सूत्रकारेण महर्षिणा
कात्यायनेन छयतीत्येवोदाहरणं प्रकटीकृतमिति सुज्ञैर्बोध्यम् ॥

एतौ द्वौ यविष्ठ्वशब्दसंयोगावेक्यकारौ भवतः ।
 (१) तज्जुषस्व यविष्ठ्व । (२) बृहच्छोचा यविष्ठ्व ।
 एताविति किम् । (३) सूम्भ्या यविष्ठ्व ॥

स्येति प्यत्वं च ॥ १५५ ॥

स्य इत्ययं पदावयवो णत्वं च पदावयवभूतं गृह्य-
 ते । एतौ च संयोगावेक्यकारौ भवतः । (४) क-
 स्य । (५) यस्य । (६) हिरण्यम् । (७) ओरण्योः
 कविक्रतुम् ॥

स्वरपूर्वाश्च शचजाः समानपदे
 द्विरुक्ताः ॥ १५६ ॥

स्वरपूर्वाः शकारचकारजकारा एकस्मिन्पदे वर्त्त-
 माना द्विरुक्ताः सन्त एक्यकारा भवन्ति । यथा (८)

(१) ११ । ७३ ॥

(२) ३ । ३ ॥

(३) १७ । ७६ । इदं प्रत्युदाहरणं 'स्व' पुस्तके नास्तीति ज्ञेयम् ॥

(४) २३ । ४७ ॥

(५) ७ । २९ ॥

(६) ३४ । ५२ ॥

(७) ४ । २५ ॥

(८) १८ । ७४ ॥

अश्याम तङ्कामम् । (१) पश्येम शरदः शतम् । (२) प्राच्यै दिशे । (३) आच्यो जानु । (४) भुज्युः सुपर्णः । स्वरपूर्वाः समान पद इति किम् । (५) तच्चतुः । (६) तज्जुषस्व । (७) ॥

व्यञ्जनपराश्च न ॥ १५७ ॥

व्यञ्जनपराश्च शब्दाः चशब्दाद्यञ्जनपूर्वा वा द्विरुक्तास्मन्तो यकारा न भवन्ति । (८) अदृश्यमस्य केतवः । (९) ग्रस्त दर्शितम् । (१०) अर्चिषि । (११) कूर्चः । (१२) वज्जः । (१३) वर्जयन्ति ॥

(१) ३६ । २४ ॥

(२) २२ । २४ ॥

(३) १९ । ६२ ॥

(४) १८ । ४२ ॥

(५) ३६ । ३४ ॥

(६) ११ । ७३ ॥

(७) “दीर्घादाचार्याणा” मिति पाणिनीयसूत्रेण द्वित्वविधानपक्षे अप्राप्तस्य द्वित्वस्य शकारादेरेक्यकारता मा भूदतो द्विरुक्तितोकेति विसौर्विभावनीयम् ॥

(८) ८ । ४० ॥

(९) ११ । ३७ ॥

(१०) इदमुदाहरणं शास्त्रान्तरीयम् ॥

(११) इदमपि तथा ॥

(१२) १० । २१ ॥

(१३) इदमपि शास्त्रान्तरीयम् ॥

कश्यपस्यानार्षेये जातूकर्ण्य-

स्य ॥ १५८ ॥

कश्यपशब्दस्यार्षेयवर्जं जातूकर्ण्यस्याचार्यस्य मतेन यकारो न भवति एतदुक्तं भवति कश्यपे वाच्ये द्विरुक्तौ सत्यां यकारो न भवति । यथा (१) अपासुद्रो मासाङ्गश्यपः । अनार्षेय इति किम् । (२) व्यायुष-ज्जमदग्नेः कश्यपस्य । अत्र ऋष्यभिधानं कश्यपशब्दो जमदान्यादिभिः सहोच्चारणात् । जातूकर्ण्यस्येति किम् । (३) कश्यपो रोहित् । 'स्वरपूर्वाश्च शचजा' इत्यस्याप्रवादः । (४) ॥

उच्चैरज्जुमज्जानश्च ॥ १५९ ॥

उच्चैः रज्जुः मज्जानः इत्येतानि पदानि सयकाराणि न भवन्ति । यथा (५) उच्चैर्घोषाय । (६) वाल्मी-

(१) २४ । ३७ ॥

(२) ३ । ६२ ॥

(३) २४ । ३७ ॥

(४) एवं च यथाशास्त्रे पाठव्यवस्था माध्यन्दिनानां यकारोपधः । काण्वानां के-वल्लशकारोपध एवेति ॥

(५) १६ । १९ ॥

(६) इदं शास्त्रान्तरीयम् ॥

भीरज्जुमिर्व्युता भवति । (१) रज्जुसन्धानमादाय ।
 (२) रज्जुसर्जम् । (३) अस्त्य मज्जानन्मासुरैः । इ-
 दमपि 'स्वरपूर्वाश्च शचजा' इत्यस्यापवादभूतम् ॥

मर्त्तो व्वुरीत मर्त्तेष्वग्निः परो
 मर्त्तस्ते मर्त्त इति च ॥ १६० ॥

एते मर्त्तशब्दाः सयकारा न भवन्ति । यथा (४) म-
 र्त्तो व्वुरीत सक्ख्यम् । (५) मर्त्तेष्वग्निरमृतो निधा-
 यि । (६) परो मर्त्तः परः श्वा । (७) यदा ते मर्त्तो
 ऽअनु । एत इति किम् । (८) देव ऽआ मर्त्तेष्वग्निः ।
 (९) तन्मर्त्त्यस्य । (१०) सोमो देवो ऽअमर्त्त्यः ॥

अन्तःपदेऽपञ्चमः पञ्चमेषु वि-

(१) इदमपि तथा ॥

(२) ३० । ७ ॥

(३) १९ । ८२ ॥

(४) ४ । ८ ॥

(५) १२ । २४ ॥

(६) २१ । ५ ॥

(७) २९ । १८ ॥

(८) ४ । १६ ॥

(९) ३१ । १७ ॥

(१०) २१ । १४ ॥

च्छेदम् ॥ १६१ ॥

पदमध्येऽपञ्चमः स्पर्शः पञ्चमेषु स्पर्शेषु प्रत्ययेषु
विच्छेदमापद्यते । विच्छेदो यम इत्यनर्थान्तरम् । रु-
क्मइत्यत्र 'स्वरात्संयोगादि' रित्यादिना ककारस्य द्वि-
र्भावे कृतेऽनेन सूत्रेण द्वितीयस्य ककारस्य यम इत्यर्थं
कार्यक्रमः क्रियते । यथा (१) यज्जञ्जः । जकारयमौ
जकारश्च संयोगः । (२) ददृष्ठा । दकारधकारयमौ
नकारश्च संयोगः । अन्तःपद इति किम् । (३) ल-
न्त्या समञ्जन् । अत्र द्विरुक्त्यभावात्तकारमकारौ सं-
योगः । (४) ॥

(१) ८ । ४ ॥

(२) इदमुदाहरणं सूत्रोक्तम्बोध्यम् ॥

(३) २० । ४५ ॥

(४) 'स्वरात्संयोगादि' रित्यनेन सूत्रेण द्विभूतस्य द्वितीयस्य वर्णस्य यमसंज्ञा भ-
वति । रुक्मइत्यत्र यमककारमकाराः संयोगाः । यमाश्चत्वारः । कुंस्तुंगुं इति ।
गौतमो ऽपि । अथानन्त्याश्चत्वारस्ते यमाः कुंस्तुंगुं इत्यनन्त्यसंयोगानन्तरपूर्वोऽन्त्या-
न्तरे व्यवधानवर्जिते तत्र यमा वर्त्तन्ते न सन्देह इति । अनन्तसंयोगमध्ये यमः
पूर्वगुण इत्यौदग्रजिरपि । नारदश्च भवेत्पूर्वमन्त्यश्च परतो यदि । तत्र मध्ये यमस्ति-
हेतुवर्णः पूर्ववर्णयोः । १ । वर्गान्त्याः शषसैः सार्द्धमन्तस्यैश्चापि संयुतान् । दृष्ट्वा यमा
निवर्त्तन्ते आदेशकमिवाध्वगाः । २ । अयमपि वर्णागमौविधीयनेऽस्माच्छास्त्रात् ।
चत्वारश्च यमा इति वर्णान्तरत्वेनोपदेशः संयोगशास्त्रात् । भगवता याज्ञवल्क्येन
सप्तविधाः संयोगपिण्डा उपदिष्टाः । अयस्पिण्डो दाम्पिण्डो ऊर्णापिण्डो ज्वालापिण्डो
मृत्पिण्डो वायुपिण्डो वज्रपिण्डश्चेति । तल्लक्षणानि च यमान्विद्यादयस्पिण्डान्त्सान्त-
स्थान्दाम्पिण्डकान् । अन्तस्था यमवर्जन्तु ऊर्णापिण्डं विनिर्दिशेत् । १ । अन्तस्थयम-
संयोगे विशेषो नोपलभ्यते । अशरीरं यमं विद्यादन्तस्थं पिण्डनायकम् । २ । ज्वाला-

ऊष्मन्तः पञ्चमेषु यमापत्तिर्दो-

षः ॥ १६२ ॥

एवमधस्तनसूत्रेण यमापत्तिं विधायाधुना यत्र य-
मा नेष्यन्ते तत्र दोषमाह । ऊष्मन्तः परेषु पञ्चमेषु
'ऊष्मान्तस्याव्यश्च स्पर्श' इत्यनेन सूत्रेण पञ्चमा-
नां स्पर्शानां द्विरुक्तौ कृतायां प्रथमानां स्पर्शानां यमा-
पत्तिः सम्भवति स चात्र दोषः । (१) ॥

पिण्डान्तनासिक्यान्तसानुस्वारश्च मृण्मये । सोपधमानान्वायुपिण्डान् जिह्वामूले तु व-
ज्रिणः । ३ । अयस्पिण्डो यथा ८ । १० । पत्नकीवन् । तकारवर्गसमसंख्ययमककार-
रूपतकारनकाराः । २३ । २९ । सक्थना । थकारवर्गसमसंख्यस्वकारप्रतिरूप-
थकारयमनकाराः संयोगाः । १ । ५ अग्ने इत्यत्र गकारयमगकारनकाराः । १ । १३ ।
पराजग्धुः । गकारसमसंख्यघकारनकाराः । यञ्जङ्गइत्यत्र जगजाः । अत्र चवर्गतृती-
यो जकारस्तस्य संख्यासवर्णो गकारसमावेशः । वर्णक्रमे यकारः जकारपूर्ववर्गसमसं-
ख्यसवर्णयमगकारजकाराः । अत्र जकारयमगकारजकारसंयोगे स्थानकरणपरित्यागेन
वर्णान्तरोत्पत्तिः । यथा ताम्रत्रपुसंयोगे कांस्यस्योत्पत्तिरेवम् । वर्गान्त्याः शशसैरिति
किम् । उदङ् घृक् । अन्तस्थैरिति किम् । वर्ष्मन्पृथिव्याः । दाहपिण्डो यथा अश्वः ।
सूर्यः । ऊर्णापिण्डो यथा अस्मिन् । अन्यस्मिन् । अमुष्मिन् । ज्वालापिण्डो यथा
ब्रह्म । वल्किः । गृह्णामीति । वायुपिण्डो यथा देव सवितः प्र । युञ्जानः प्रथम-
म् । वज्रपिण्डो यथा दिवः ककुत् । माध्यन्दिनव्यतिरिक्तानां चैतत् । तेषां जिह्वामू-
लीयोपधमानीयनिषेधात् । मृत्पिण्डो यथा सैस्कर्त्ता । त्रयस्त्रिंशौ । उक्तं च प्रथमेन
इकारेण सकारेणैव संयुतम् । एतत्स्वारं समासाद्य त्रिणवत्रयस्त्रिंशौ शक्तिं निदर्शन-
म् । अस्यार्थः । सानुस्वारश्च मृन्मय इत्युपदेशः । प्रथमेन इकारेण अकारेण वा युतेन
सकारेण संयुतं एतत्स्वारं अनुस्वारं अनु भवतीत्यनुस्वारं स्वरान् अनुलक्ष्यकृत्य प्रा-
प्ताऽन्वर्थसञ्ज्ञा । स्वरानुगतोऽयोगवाहः ठकारविसर्ग उपलभ्य मृत्पिण्डो बोध्य इ-
ति ॥

(१) स चात्र दोषस्तम्परिजिहीर्षेत् । यथा प्रश्नः । अत्र नकारसदृशोऽनुनासिकः

स्फोटनं च ककारवर्गे वा स्पर्शा- त् ॥ १६३ ॥

स्फोटनं च स्पर्शानां दोषमापद्यते ककारवर्गे पर-
भूते । स्फोटनं नाम पिण्डीभूतस्य संयोगस्य पृथगुच्चा-
रणं स्फोटनाख्यो दोषो वा न दोषः । यथा (१) का-
ण्डात्काण्डात् । (२) व्यष्टट्कृतम् । (३) यङ्कृत्तो-
मानम् । यथा सूत्रकारप्रस्थानं तथा स्फोटनं दोषः
'स्वरात्संयोगादि'रिति द्विरुक्तोर्विधानं न च स्फोटने
सति द्विरुक्तिः सम्भवति तथा चोक्तं याज्ञवल्क्येन "य-
मान्विद्याद्यस्मिण्ण्डान्तान्तस्त्यान्ढारुपिण्डवत् । अ-
न्तस्त्या यमवर्जन्तु ऊर्षापिण्डं विनिर्द्दिशेत्" । यथा-
ऽयस्मिण्ण्डादीनामास्त्रेषस्तथैतेषां व्यञ्जनानामिति श्लो-
कार्थः । (४) ॥

परसवर्णश्च तदुभयं ऊष्मणामनुनासिके परे सति क्रियते चेत्स्थानकरणाद्यसाम्येऽपि
कृतं स्यादिति दोषविशेषः । इतरेषां तु स्पर्शत्वस्पृष्टसामान्याद्व्यवतीत्यदोषः । ऊष्म-
भ्य इति क्रिम् । अन्तस्थाभ्यो दाषो मा भूत् । प्रति दीवन् । विवलिष्मने । इत्यत्र
बळयोः स्पृष्टत्वाभावेऽपि परेण समानस्थानत्वमन्तरङ्गमस्ति तेनात्र यमापत्तिर्न दोषः
सत्यप्यत्राण्डवमत्वान्न यमव्यवहारः किन्तु क्रमज एवेति बोध्यम् ॥

(१) १३ । २० ॥

(२) ७ । २६ ॥

(३) १९ । ८५ ॥

(४) अत्र यम इव स्फोटनेऽपि स्वरात्संयोगादिरस्त्यादिना सूत्रेण द्वित्वं न प्र-
वर्त्तत इति भावार्थः ॥

स्वरात्स्वरे परे समानपदे ज्ञेय-

न तु ऋकारे ॥ १६४ ॥

वाङ्मनो विकल्पार्थः पूर्वस्वरादिहानुवर्तते । स्वर-
रात्परो जकारो वा यकारमाप्रव्यते । स्वरे परभूते
समानपदे न तु ऋकारे परे । यथा (१) अजो ह्यग्ने-
रजनिष्ठ । स्वरादिति किम् । (२) अञ्जा गोजाः ।
स्वरइति किम् । (३) मुञ्ज्युः । (४) आज्ज्यम् । स-
मानपद इति किम् । (५) तदिन्द्रेण जयत । नत्वृकार
इति किम् । (६) विजृम्भमाणाय । (७) ॥

ख्यातेः खयौ कशौ गाग्यः सक्खयो-

क्खयमुक्खयवज्जम् ॥ १६५ ॥

ख्या प्रकथनइत्यस्य धातोः खकारयकारौ संयो-

(१) १३ । ५१ ॥

(२) १० । २४ ॥

(३) १८ । ४२ ॥

(४) २ । ८ ॥

(५) १७ । ३४ ॥

(६) २२ । ७ ॥

(७) अस्मिन्सूत्रे पूर्वसूत्रादवापदमनुवर्त्य रूपद्वयं भवति प्रकृतिरूपं संहिताग्र-
न्थाद्बोध्यं, विकृतिरूपं यथा अयोह्यग्नेः । अजीजनो हि । इदमप्युदाहरणान्तरं बो-
ध्यम् ॥

गमाज्जः केचित् । यथा (१) विक्ख्याय चक्षुषा । (२) आक्ख्यातम् । ककारशकारौ संयोगार्थं गार्ग्य आह । विक्शाय चक्षुषा । आक्शातम् । एतानि पदानि वर्जयित्वा (३) सक्ख्यम् । (४) उक्ख्यम् । (५) मुक्ख्यम् । अधस्तनयोगे जकारस्य यकारापत्तिरुक्ता या चास्मिन्योगे ख्यातेः क्शापत्तिरुक्ता एते चरकाणां इतरेषां माध्यन्दिनानां न भवत इति । (६) ॥

त्रिपदाद्यावर्त्तमाने सङ्क्रमः ॥ १६६ ॥

‘सठं०हिताया’ मित्यत आरभ्य संहिताया लक्षणं विधायाधुना पदसंहितालक्षणं विधित्सयेदमाह । त्रिपदप्रभृत्यावर्त्तमाने ग्रन्थे सङ्क्रमो भवति । आवर्त्तमानानि पदानि अतिक्रम्यानावर्त्तमानेन पदेन सह सन्धिर्भवतीत्यर्थः । यथा (७) व्यम् । ख्याम् । पतयः । रयीणाम् । स्वाहा । रुद्रद्र । यत् । (८) तस्मै । ते ।

(१) ११ । २० ॥

(२) इदं लौकिकोदाहरणं बोध्यम् ॥

(३) समानं ख्यायत इति सक्ख्यम् । न तु सरुयुरिदमिति ॥

(४) उत्कर्षेणारुयायत इति । नतूखायां भव इति ॥

(५) मुदा ख्यायत इति मुख्यः । न तु मुखे भवो मुख्य इति यकारस्यार्थोऽभिप्रेतः ॥

(६) क्शापत्तिस्तु चरकाणां शास्त्रिणां न तु माध्यन्दिनीयशास्त्रिणां भवतीति दिक् ॥

(७) इमान्युदाहरणानि पदपाठस्थानि दशमाध्यायोक्तानि ॥

(८) इदं पदद्वयं पदपाठस्थं ज्ञेयम् ॥

इन्द्रो॑ । ह॒विषा॑ । वि॒धेम॑ । (१) ब॒र्हिष॑दः । पि॒तरः॑ ।
 (२) इन्द्र॑ । आ । या॒हि । चि॒त्रभा॒नो । सु॒ताः॑ । इ॒मे ।
 त्वाय॑वः । अ॒र॒ण्वीभिः॑ । तना॑ । पू॒तासः॑ । धि॒या ।
 इ॒षितः॑ । अयं॑ तावदुत्स॒र्गः ॥

द्विपदैकपदान्न्यप्यनुवाके ॥ १६७ ॥

हे पदे समाहृते द्विपदं एकं च तत्पदं च एकपदं
 द्विपदानि च एकपदानि च बहुवचनोपदेशात् त्रिव-
 र्तमानानि सङ्क्रम्यन्ते । अतिक्रम्यन्त इत्यर्थः । विरा-
 ट्त इति हि वक्ष्यति । (३) ब्रा॒जः॑ । च । मे । प्र॒स-
 वः॑ । प्र॒यतिः॑ । एकपदे यथा (४) मा । क॒न्दः॑ । प्र-
 मा । प्र॒ति मा । अनुवाक इति किम् । (५) वसो॑ ।
 प॒वित्र॑म् । अ॒सि । द्यौः॑ । पृथि॒वी । (६) कु॒कुटः॑ ।
 अ॒सि । विराट्त इति किम् । (७) ब्रू॒तम् । कृ॒णु॒त ।

(१) इदमपि तथा ॥

(२) २० । तथा ॥

(३) इमानि पदपाठस्य क्रमसन्धानार्थमुदाहरणानि प्रदर्शयन्ते । १८ । १ ॥

(४) १४ । १४ ॥

(५) १ । २ ॥

(६) १ । १६ ॥

(७) ४ । ११ ॥

व्रतम् । कृणुत । (१) सोमः । पवते । सोमः । पवते ।
(२) इप्से । त्वा । ऊर्जे । त्वा ॥

अनन्तरे ॥ १६९ ॥

उभयोरपि योगयोरयं योगविशेषः । 'त्रिषदाद्या
वर्त्तमान' इति यदुक्तं तदनन्तरे पुनरुक्ते भवति । आ-
नन्तर्यं चार्थकृतं शब्दकृतं च गृह्यते । यवानन्तरोऽ-
र्थो व्यवहितो वा बुद्धौ विप्रवर्त्तते तदर्थकृतमानन्त-
र्यम् । यथा (३) गन्धर्वः । त्वा । विश्वावसुः । प-
रि । दधातु । अरिष्टैय । यजमानस्य । परिधिः ।
असि । अग्निः । इडः । ईडितः । इन्द्रस्य । बा-
जः । असि । दक्षिणः । मित्रावरुणौ । त्वा । अ-
नन्तरेऽर्थे एतदुदाहरणम् । व्यवहिते तु । यथा (४)
मधुः । च । माधवः । च । वासन्तिकौ । ऋतू । (५)
शुक्रः । शुचिः । ग्रैष्मौ । स्वयमावृणाद्यासु एवं स्व-
महर्षिणा प्रथमादिचितिषु ऋतव्योपधाने दृष्टासु क-

(१) ७ । २० ॥

(२) १ । १ ॥

(३) २ । ३ ॥

(४) १३ । २३ ॥

(५) १४ । ५ ॥

शिङ्कामु अर्थकृतमानन्तर्यं द्रष्टव्यम् । शब्दकृतं तु य-
था (१) हविःकृत । आ । इहि । कुक्कुटः । असि 'द्वि-
पदैकपदान्यप्यनुवाके' इत्यत्रार्थानन्तर्यमुच्यते । यथा
(२) कः । त्वा । युनक्ति । सः । कस्मै । तस्मै । (३)
त्वम् । अग्ने । द्युभिः । आशु शुक्लणिः । (४) याः ।
ओषधीः । पूर्वाः । जाताः । अत्र या इत्येतदोषधिवि-
षयं पदम् । याः फलिनीरित्येतदपि ओषधिविषयं त-
दर्थव्यवधानान्न लुप्यते । अतो याः । फलिनीः । अ-
फलाः । इत्यत्र सन्निधानान्न लुप्यते । यद्येवं अपुष्पाः ।
याः । पुष्पिणीः । इत्यत्र कस्माद्या इत्येतत्पदं न लु-
प्यते शृणु । (५) याः । फलिनीः । याः । अफलाः ।
याः । अपुष्पाः । याः । च । पुष्पिणीः । एवं चत्वा-
रोऽत्र याःशब्दा अर्थदृष्टा भवन्ति । तत्र प्रथमस्य द्वि-
तीयेन सम्बन्धः । तृतीयस्य चतुर्थेन सम्बन्धः । तत्र तृ-
तीयं या इत्येतत्पदं न विद्यत इत्येतस्य ख्यापनार्थं चतुर्थं
न लुप्यते या इत्येतत्पदम् । शब्दानन्तर्यं तु यथा (६)

(१) १ । १४ । १५ ॥

(२) १ । ६ ॥

(३) ११ । २४ ॥

(४) १२ । ६६ ॥

(५) १२ । ८० ॥

(६) ३८ । २ ॥

अ॒श्वि॒व्य॒मि॒न्वस्व॑ सर॒स्वत्यै॑ । इन्द्रा॑य । स्वाहा॑ । इ॒न्द्र॒वत् । यः॑ । ते । (१) दि॒वः॑ । स॒र॒सृ॒शः॑ । पा॒हि॒ । म॒घु॒ । गर्भ॑म् । दे॒वाना॑म् । (२) ॥

अपराङ्गम् ॥ १७० ॥

अपर॒स्य अ॒न्यस्याङ्ग॑भूते पुनरु॒क्ते सङ्क्रमो॑ भवति । यथा (३) स्वाहा॑ । य॒ज्ज्ञ॑म् । मन॑सः । उ॒रोः॑ । अ॒न्त॒रि॒क्षात् । द्यावा॑ष्टि॒वीव्या॑म् । वा॒तात् । आ । र॒भे॒ । अत्र॑ स्वाहाकारः अपराङ्गम् । अपराङ्गत्वा॒ल्लोपः॑ । अपराङ्ग॒इति॑ किम् । (४) स्वाहा॑ । आकृ॑त्यै । प्र॒यु॒जे॑ । अयं॑ च स्वाहाकारः अपराङ्गं न भवति केवलत्वात् ॥

अस्वरविकारे ॥ १७१ ॥

न विद्यते स्वरविकारो यस्मिन्पुनरुक्ते तदस्वरवि-

(१) ३७ । ६ । ७ ॥

(२) इदमपि छन्दसि प्रायिकं लक्ष्यानुरोधेन लक्षणानुवर्त्तनं यथा व्वसोः । पवित्रम् । अ॒सि । यौः । अ॒सि । व्वसोः । पवि॒त्रम् । अ॒सि । शत॑धारम् । इत्यादीनि पदानि पदपाठे कण्वशास्त्रीया न सङ्क्रमयन्ति अतः कारणात्परम्परया पाठः । उक्तं च पुराणसमुच्चये । सृष्ट्यर्थं ब्रह्मणे प्राद्विद्वान्मोहनिवृत्तये । आदितारायणो यत्नान्निर्द्दयास्तत्त्वदर्शिनः ॥ १ ॥ पुराणेषु स्फुटं द्यौतदुक्तवाग्वादरायणः । विवेकयन्पाणिनिश्च बहुलं सूत्रयत्यलम् ॥ २ ॥ इति ॥

(३) ४ । ६ ॥

(४) ४ । ७ ॥

कारं पुनरुक्तं तस्मिन्पुनरुक्ते सङ्क्रमो भवति । यथा
(१) तेजः । अ॒सि । शु॒क्रम् । अ॒मृत॑म् । धा॒म । ना॒-
म । अ॒स्वर॑विकार इति किम् । (२) सु॒क्ष्मा । च ।
अ॒सि । शि॒वा । च । अ॒सि । स्यो॒ना । (३) दे॒वाः । य॒ज-
ज्ञम् । अ॒त॒न्व॒त । भेष॒जम् । (४) य॒त् । पु॒रुषे॑ण । ह॒-
विषा॑ । दे॒वाः । य॒ज॒ज्ञम् । अ॒त॒न्व॒त ॥

अलिङ्गविकारे ॥ १७२ ॥

लिङ्गविकारो न विद्यते यस्मिन्पुनरुक्ते तदतिक्रम्यते ।
यथा (५) अ॒ग्नेः । भा॒गः । अ॒सि । दी॒क्षायाः । आ॒-
धि॒प॒त्यम् । ब॒ह्व॒ह् । स॒ष्ट॒तम् । लि॒ष्ट॒त् । स्तो॒मः । इन्द्र॑-
स्य । वि॒ष्णोः । क्ष॒त्रम् । प॒ञ्च॒द॒शः । अत्र सष्टतश-
ब्दो नपुंसकविषयो नोऽतिक्रम्यते । अलिङ्गविकार
इति किम् । (६) आ॒दि॒त्याना॑म् । म॒रु॒ताम् । गर्भाः ।
स॒ष्ट॒ताः । दे॒वस्य॑ । स॒वि॒तुः । बृ॒ह॒स्प॒तेः । स॒मी॒चीः ।
दि॒शः । स॒ष्ट॒ताः । एकत्र शब्दः पुरुषविषयः । एक-

(१) १ । ३१ ॥

(२) १ । २७ ॥

(३) २० । १० ॥

(४) ३० । १३ ॥

(५) १४ । १९ ॥

(६) १४ । २० ॥

अ॒श्वि॒भ्या॑मि॒न्वस्व॑ सर॒स्वत्यै॑ । इन्द्रा॑य । स्वाहा । इ॒न्द्र॒वत् । यः॑ । ते । (१) दि॒वः॑ । स॒सृ॒शः॑ । पा॒हि॒ । मधु॑ । गर्भ॑ः । दे॒वाना॑म् । (२) ॥

अपराङ्गम् ॥ १७० ॥

अपरस्य अन्यस्याङ्गभूते पुनरुक्ते सङ्क्रमो भवति । यथा (३) स्वाहा । यु॒ज॒ज्ञम् । मन॑सः । उ॒रोः॑ । अ॒न्त॒रि॒क्षात् । द्यावा॑ष्टि॒वी॒भ्याम् । व्या॑तात् । आ । र॒भे । अ॒व स्वाहा॑कारः अपराङ्गम् । अपराङ्गत्वान्नोपः । अपराङ्गइति किम् । (४) स्वाहा । आकू॑त्यै । प्र॒यु॒जे । अयं च स्वाहाकारः अपराङ्गं न भवति केवलत्वात् ॥

अस्वरविकारे ॥ १७१ ॥

न विद्यते स्वरविकारो यस्मिन्पुनरुक्ते तदस्वरवि-

(१) ३७ । ६ । ७ ॥

(२) इदमपि छन्दसि प्रायिकं लक्ष्यानुरोधेन लक्षणानुवर्त्तनं यथा व्वसोः । पवित्रम् । अ॒सि । द्यौः । अ॒सि । व्वसोः । पवि॒त्रम् । अ॒सि । शत॑धारम् । इत्यादीनि पदानि पदपाठे कण्वशास्त्रीया न सङ्क्रमयन्ति अतः कारणात्परम्परया पाठः । उक्तं च पुराणसमुच्चये । सृष्ट्यर्थे ब्रह्मणे प्रादाद्वेदान्मोहनिवृत्तये । आदितारायणो यत्नान्निर्दयास्तत्त्वदर्शिनः ॥ १ ॥ पुराणेषु स्फुटं क्षेत्रदुक्तवान्वादरायणः । विवेकयन्पाणिनिश्च बहुलं सूत्रयत्यलम् ॥ २ ॥ इति ॥

(३) ४ । ६ ॥

(४) ४ । ७ ॥

कारं पुनरुक्तं तस्मिन्पुनरुक्ते सङ्क्रमो भवति । यथा
(१) तेजः । असि । शुक्रम् । अमृतम् । धाम । ना-
म । अस्वरविकार इति किम् । (२) सुद्धा । च ।
असि । शिवा । च । असि । स्योना । (३) देवाः । यज-
ज्ञम् । अतन्वत । भेषजम् । (४) यत् । पुरुषेण । ह-
विषा । देवाः । यजज्ञम् । अतन्वत ॥

अलिङ्गविकारे ॥ १७२ ॥

लिङ्गविकारो न विद्यते यस्मिन्पुनरुक्ते तदतिक्रम्यते ।
यथा (५) अग्नेः । भागः । असि । दीक्षायाः । आ-
धिपत्यम् । ब्रह्म । सृष्टम् । त्रिष्टत् । स्तोमः । इन्द्र-
स्य । विष्णोः । क्षत्रम् । पञ्चदशः । अत्र सृष्टश-
ब्दो नपुंसकविषयो नोऽतिक्रम्यते । अलिङ्गविकार
इति किम् । (६) आदित्यानाम् । मरुताम् । गवर्भीः ।
सृष्टाः । देवस्य । सवितुः । बृहस्पतेः । समीचीः ।
दिशः । सृष्टाः । एकत्र शब्दः पुरुषविषयः । एक-

(१) १ । ३१ ॥

(२) १ । २७ ॥

(३) २० । १० ॥

(४) ३० । १३ ॥

(५) १४ । १९ ॥

(६) १४ । २० ॥

व स्त्रीविषयो नो गृह्यतेऽपि न लुप्यते । (१) सम्-
ते । पर्याप्तसि । सम् । ऊ । यन्तु । व्वाजाः । वृष्ण्या-
नि । अत्र त्रयाणां सम्शब्दानां मध्ये प्रथमो नपुंसक-
विषयो द्वितीयः पुरुषविषयोऽतो गृह्यते । तृतीयो
नपुंसकविषय एव अतो लिङ्गस्याभेदादतिक्रम्यते ॥

असमाने ॥ १७३ ॥

असमानविषये आवर्त्तमाने पुनरुक्ते संक्रमो भव-
ति । यथा (२) आयुः । यज्ज्ञेन । कल्पताम् । प्रा-
णः । चक्षुः । श्रोत्रम् । एष्टम् । अत्र आयुरादयो य-
ज्ञक्लृप्तेरसमानाः । असमान इति किम् । (३) यज्-
ज्ञो यज्ज्ञेन कल्पताम् । अत्र यज्ज्ञो यज्ज्ञेनेति ।
यज्ञक्लृप्तेः समानोऽतो गृह्यते ॥

विरावृत्ते ॥ १७४ ॥

विरावृत्ते पुनरुक्ते संक्रमो भवति । 'द्विपदैकपदान्यप्यनुवाके' इत्यस्यायं शेषः यथा (४) इषे । ऊर्जे ।
रथ्यै । पोषाय । आशुः । विष्टत् । विरावृत्तइति कि-

(१) १२ । १०३ ॥

(२) ९ । २० ॥

(३) इयमपि तथा ॥

(४) १४ । १७ ॥

म् । (१) इ॒षे । त्वा । ऊ॒र्ज्जे । त्वा । व्या॒यवः ॥

गूढे ॥ १७५ ॥

गूढेऽपि त्रिरावृत्ते सङ्क्रमो भवति । गूढं नाम यत्र तृतीयपदस्यावृत्तिरनुषङ्गापेक्षितत्वात्पदस्याधस्तनपदानुषङ्गेण भवति । यथा (२) इ॒यम् । ते । राट् । य॒न्ता । अ॒सि । य॒मनः । ध्रु॒वः । ध॒रुणः । अ॒त्रासि॒शब्दे य॒न्ता ध्रु॒व इत्यनयोः पदयोः सङ्गमनः पठ्यते । यमनधरुणपदयोस्तु अनुषज्यते । अनुषङ्गापेक्षिणौ हि तौ । अतः स एवं गूढश्चतुरावर्त्तमानः श्रुत्या द्विरावृत्तौ व्यतिक्रम्यते । गूढ इति किम् । (३) इ॒षे । त्वा । ऊ॒र्ज्जे । त्वा ॥

पदसमूहे ॥ १७६ ॥

पदसमूहः पदसङ्घातः । यत्रैकादि पदं वज्रं कृत्वा आवर्त्तते स पदसमूहोऽत्राभिप्रेतः । 'त्रिपदाद्यावर्त्तमान' इत्यनेनैवेतरस्य गतार्थत्वात् । यथा (४) शत॒रु॒द्रि॒या॒ध्या॒ये । न॒मो हिर॑ण्य॒वा॒हवे॒ सेना॒न्त॒ये ।

(१) १ । १ ॥ इमान्युदाहरणानि पदपाठाद्विधायानि ॥

(२) ५ । २२ ॥

(३) १ । १ ॥

(४) १६ । १७ ॥

(१) व्वाजः । च । मे । प्रसवः । प्रयतिः । ननु स्व
रिति स्वः । च । मे । यज्ज्ञेन । कल्प्यताम् । इत्य-
त्र कस्मान्न लोपो भवति । ष्टणु । अविकारार्थं च
पुनरुक्तस्य ग्रहणमित्युपरिष्ठाद्व्यति । तेन सूत्रेणेह
पुनरुक्तं गृह्यते । एवमर्थविशेषात्पुनरुक्तस्य ग्रहणं भ-
वति । अर्थसामान्यात्पुनरुक्तस्यातिक्रमः । तथा चोक्त-
म् । द्रव्यदेवतार्थलिङ्गवचनस्वरकर्तृभेदैः पुनरुक्तस्य ग्र-
हणं भवति । आह च । पुनरुक्तानि लुप्यन्ते पदानि-
त्याह शाकलः । अलोप इति गार्ग्यस्य काण्वस्यार्थव-
शादिति । (२) ॥

सठ्०हितायाम् ॥ १७८ ॥

आर्ध्यां च संहितायां पुनरुक्ते आवर्त्तमाने सङ्क्रमो
भवति । यथा (३) लोकन्ता ऽइन्द्रम् । (४) हिरण्यग-
र्भं ऽइत्येषः (५) मा मां हिठ्०सीदित्येषा (६) य-

(१) १० । १ ॥

(२) एकादिपदं समूह्यते समुदाह्रियते बहूनि पदानि वा कृत्वा ऽऽवर्त्त्यते स प-
दसमूहस्त्युच्यते तत्र सङ्क्रमो भवति । इदं सूत्रं 'द्विपदैकपदान्यप्यनुवाक' इत्यस्या-
पवादभूतम् । एवमर्थविशेषसामान्याभ्यां पुनरुक्तस्य संक्रमासंक्रमौ ज्ञेयाविति ॥

(३) १२ । ५४ । लोकं पुण । १२ । ५५ । ता ऽअस्य १२ । ५६ । इन्द्रं द्वि-
शब्दाः ॥

(४) ३२ । ३ । २४ । १० । ११ । १२ । १३ ॥

(५) १२ । १०२ ॥

(६) ८ । ३६ । ३७ ॥

स्मान्न जात इत्येषः । एवं च कृत्वा ब्रह्मयज्ञसंहितायां गलिता ऋचोऽध्येतव्याः । ब्रह्मयज्ञसंहितायाः परिपूर्णतायै इति बोध्यम् । (१) ॥

अवसानार्थं पुनर्ग्रहणम् ॥ १७८ ॥

एवमधस्तादर्थनिबन्धनं पुनरुक्तस्य ग्रहणं चोक्त्वा-
धेदानीं संहितार्थमाह । संहिताऽवसानार्थं च न पु-
नरुक्तस्य ग्रहणं भवति । यथा (२) आकूत्यै । प्रयुजे ।
अग्नये । स्वाहा । मेधायै । मनसे । दीक्षायै । तप-
से । सरस्वत्यै । पूषसे । अग्नये । स्वाहा । अग्नये
स्वाहेत्येतदत्र पुनरुक्तमवसानार्थं गृह्यते । बृहस्पत-
ये । हविषा । विधेम । स्वाहा । नात्रावसानादन्य-
त्रयोजनमस्तीति ॥

अविकारार्थं च ॥ १७९ ॥

पदाविकारज्ञापनार्थं च पुनरुक्तं गृह्यते । यथा (३)
हृषाय । ऊर्ज्याय । स्वरिति स्वः । स्वाहा । मूढर्धने
व्यश्नुविने । अत्र स्वरित्येतस्य पदस्य परतो यत्स्वा-

(१) एवं 'तत्प्रत्यक्तथार्थेन' इत्यादिषु सर्वानुक्रमिकसूत्रात् "एताः प्रतीकचो-
दिता ब्रह्मयज्ञेऽध्येतव्याः सर्वत्रैव कात्यायनमहर्षिणा प्रतिपादितमिति ॥

(२) इमान्यप्युदाहरणानि पदपाठादवगन्तव्यानि ॥

(३) २२ । २७ ॥

हाकारस्य ग्रहणं तदविकारार्थम् । यदिह स्वाहाका-
रो लुप्यते । तदा क्रमसंहितायामप्यस्य पदस्य विकारः
स्यात् । (१) स्वर्धूदूर्ध्वे । मूदूर्ध्वे व्यञ्जनुविने । तथा च
सति दृष्टरेफत्वादस्य पदस्य क्रमसंहितायां वेष्टको न
स्यात् । अतः पदक्रमसंहिताया विकारार्थं स्वाहेत्यस्य
पदस्य ग्रहणम् । (२) ॥

उत्सर्गश्च ॥ १८० ॥

उत्सर्गः परित्यागः । परित्यागश्चाधस्तनस्तूत्रविहित-
स्य लक्षणस्य भवति । केषां चिदाचार्याणां मतेन ।
यथा (३) स्वर्धूदूर्ध्वे । मूदूर्ध्वे व्यञ्जनुविने । एवं च कृत्वा
विकल्पेनैतल्लक्षणम् । (४) ॥

क्रमः स्मृतिप्रयोजनः ॥ १८० ॥

क्रम इत्ययमधिकारश्चाऽध्यायपरिसमाप्तेः । संहि-
ताध्ययने प्रयोजनं प्रसिद्धम् । यच्चे स्वाध्याये च संहि-

(१) इदमपि तथा ॥

(२) यथा माध्यन्दिनशास्तिनामुदाहरणम् । अत्र स्वरित्येतस्य परतो यत्स्वाहा-
कारग्रहणं तत्पदाधिकारार्थं बोध्यम् । यदेह स्वाहाकारशब्दस्य लोपः स्यात्तदा क्रम-
संहिताया वाचको न स्यात् । अतः कारणात् क्रमसंहिताधिकारसंरक्षणार्थं स्वाहेत्यस्य
पदस्य ग्रहणे विकारः स्यात् । इत्यवगन्तव्यं बुधैः ॥

(३) पूर्वोक्तमुदाहरणम् ॥

(४) पूर्वोक्तलक्षणाशस्य परित्यागः काण्वादिशास्तिनां मतेन अन्येषां शास्तिनां
मतेन यथाशास्त्रं पाठो बोध्यः ॥

तायाः सम्बन्धात्पदाध्ययने संहितार्थपरिज्ञानं प्रयोजनमिति गम्यते । उक्तं च भाष्यकारेण “ पदानि स्वं स्वमर्थङ्गमयन्तीति” । पदानि स्वं स्वमर्थमभिधाय चित्तवृत्तिव्यापाराख्यर्थमवगमयन्ति । अथेदानीं पदार्था अवगताः वाक्यार्थमवगमयन्तीति पदपूर्वकं पदार्थपरिज्ञानं पदार्थपरिज्ञानपूर्वकवाक्यार्थपरिज्ञानं दर्शयति । एवं संहितापाठे पदपाठे च प्रसिद्धं प्रयोजनम् । न तथा क्रमपाठ इत्यत आह । स्मृतिः प्रयोजन इति । स्मृतिः प्रयोजनमस्येति स्मृतिप्रयोजनः । संहिताविषयं दृढस्मरणं करोति पदविषयं च । प्रयोजनदिगियं स्मृतकृता प्रदर्शिता । प्रयोजनानि तु अस्थान्यानि बहूनि यथा द्वयोर्द्वयोः पदयोर्वर्णसंहितोदात्तादिस्वरसंहिता च क्रमं सुक्ता नान्येन ज्ञायते । संहितावसानं च । उत्तमं चैतत् । पदकारणं क्रमः, क्रमणं क्रमः, सम्मानं च शिष्टानां मध्ये क्रमं करोति । व्याकरणस्मृतिश्च क्रमाध्यायिनि प्रत्ययं विदधाति । तदधीते तद्दे इत्युपक्रमस्य “क्रमादिभ्यो बुन्निति” अत्र क्रममधीते क्रमकः । पदमधीते पदकः । सिद्धक्रमस्याध्ययनं दर्शयति । अतो हि क्रमो बहुप्रयोजनवान् (१) ॥

(१) एवं क्रमपाठस्य प्रयोजनं वर्णयित्वा त्रयाणामार्षीसंहितापदसंहिताक्रमसंहितानां पठने यत्फलं भवति तन्महाविद्या कात्यायनगुरुणा योगियाज्ञवल्क्येन स्वशिक्षायां प्रतिपादितं यथा “संहिता नयते सूर्यं पदानि ज्ञाज्ञिनः पदम् । क्रमोऽपि नयते सू-

द्वे द्वे पदे सन्दधात्त्युत्तरेणोत्तरमाऽव-

सानादपृक्क्तवर्जम् ॥ १८२ ॥

हे द्वे पदे सन्दधाति कथं सन्दधाति उत्तरेणोत्तरं
पदं सन्दधाति । ततस्तेनान्यदुत्तरमेवमवसानं यावत्-
अष्टकं वर्जयित्वा । अष्टक्ते वक्ष्यति । यथा (१) उप॑त्त्वा ।
त्वाऽग्ने । अग्ने ह॒विष्म॑तीः । ह॒विष्म॑तीर्घृ॒ताचीः ।
घृ॒ताची॑र्यन्तु । य॒न्तु ह॒र्य॑त । ह॒र्य॑तेति ह॒र्य॑त । अष्ट-
क्तमिति किम् । (२) सोमा॑य ह॒ठं० सान् । ह॒ठं० साना॑ल-
भते । आ॒ल॑भते । (३) क॒र्मण॑ऽआ॒प्याय॑द्वम् । आ-
प्या॑यद्वम् । प्या॑यद्वमग्राः । (४) उदु॑त्त्वा । ऊ॒ऽ इत्यू॑ ।
त्वा । वि॒श्वे । (५) उदु॑त्त्यम् । ऊ॒ऽ इत्यू॑ । त्यम् । जा-
तवे॑दसम् । (६) तमु॑त्त्वा । ऊ॒ऽ इत्यू॑ । त्वा । द॒द्या-

हमैत्यसत्पदमनामय” मिति । सम्धीयन्ते पदानि यस्यां सा संहिता तल्लक्षणं प्रथमा-
ध्याये ‘वर्णानामेकप्राणयोगः संहितेत्य’नेन सूत्रेणोक्तं सा पादसंहिता क्लृप्ता भवति यजु-
ष्वपि भवति । एवं पदसंहिता लक्षणं ‘पदाविच्छेदोऽसंठोऽहित’ इत्यनेन शास्त्रेण च
प्रतिपादितमिदानीं वक्ष्यमाणसूत्रेण द्विपदक्रमसंहितोच्यते ॥

(१) ३ । ४ ॥

(२) २४ । २२ ॥

(३) १ । १ ॥

(४) १२ । २७ ॥

(५) ७ । ४१ ॥

(६) ११ । ३० ॥

इ । (१) ॥

अपृक्तमध्यानि त्रीणि स विक्रमः ।

॥ १८२ ॥

अष्टक्त आकार उकारश्च अष्टक्त एषां मध्य इत्यष्ट-
क्तमध्यानि तद्गुणसंविज्ञानो वज्रव्रीहिः । लम्बक-
र्णवत् । त्रीणिमध्यानि स विक्रमो भवति । यथा (२)
सोमाय ह॒ठं० सान् । ह॒ठं० सानाल॑भते । आल॑भते ।
(३) कर्ण॑णऽआ ष्या॑यङ्गम् । आ ष्या॑यङ्गम् । (४)
उदु॑त्वा । ऊँ ऽदु॑त्वा । त्वा वि॒श्वे । (५) तमु॑त्वा । ऊँ
इत्यू॑ । त्वा द॒द्याङ् ॥

पुनराकारेणोत्तरम् ॥ १८३ ॥

आकार उकारश्चाष्टक्तौ तयोर्लकारस्य प्रगृह्यत्वादु-
परिष्ठाद्देष्टकं वक्ष्यति । आकारस्य यद्वक्तव्यं तदाह
विक्रमं कृत्वा पुनराकारेणोत्तरं पदं सन्नुधाति । य-

(१) एतदुत्तरं आ उ इत्यपृक्तवर्णमध्यकं पदत्रयात्मकं वक्ष्यमाणसूत्रोदाहरणं
चोच्यते ॥

(२) २४ । २२ ॥

(३) १ । १ ॥

(४) ११ । २७ ॥

(५) ११ । २९ ॥

या (१) सोमाय ह॒ठं०सान् । ह॒ठं०साना॒लभते । आ
लभते । (२) कर्म॑ण ऽआ प्याय॑ष्टम् । आ प्याय॑-
ष्टम् । (३) ॥

मोषूणाभीषुणौ च ॥ १८४ ॥

एतौ त्रिक्रमौ भवतः । यथा (४) मोषूणः । मो ऽ-
इति मो । सु नः । नऽइन्द्र । (५) अभीषुणः । सु
नः । नः सखीनाम् ॥

चत्वार्यष्टकपूर्व नकारपरे सौ
॥ १८५ ॥

चत्वारि पदानि सन्दधाति सुइत्येतस्मिन्पदे ऽष्टक-
पूर्वे नकारपरे च । यथा (६) ऊर्ह्व ऽऊषुणः । ऊँ ऽ-

(१) पूर्वोक्तप्रथमाङ्कस्य पदोदाहरणं द्रष्टव्यम् ॥

(२) तथैव द्वितीयाङ्कोदाहरणम् ॥

(३) आकारेणेति पदं कथं सूत्रे उपात्तं नो चेत्तदा 'उदुत्वा' इत्यास्मिन्नुदाहरणे
पुनः पदपाठोपवेष्टनात्मकस्यापृक्तसङ्गकस्य त्वेति पदेन सहोच्चारणं भविष्यत्यतः प-
दपाठस्यान्यथोच्चारणे दोषो मा भूदतो ग्रहणं सूत्रे कृतमिति ॥

(४) ३ । ४५ ॥

(५) २७ । ४० ॥

(६) ११ । ३९ ॥

इत्थं । सु नः । न ऽजतये । (१) एतादृक्षासऽजघुणः ।
 ऊ ऽइत्थं । सु नः । नः सदृक्षासः । (२) गोमदूषु-
 णासत्या । गोमदिति गो । मत् । ऊ ऽइत्थं । सुना-
 सत्या । नासत्याश्चावत् ॥

मकारपरचैके ॥ १८६ ॥

सु इत्येतस्मिन् पदे अष्टकपूर्वे मकारपरचैके
 आचार्याश्चत्वारि पदानि सन्धति । यथा (३) मही-
 मूषु मातरम् । ऊ ऽइत्थं । सु मातरम् । मातरं० सु-
 व्रतानाम् । मकारपर इति जघन्यश्चायमेकीयः पक्षः ।
 यतश्चतुःक्रमेषु सर्वेषु पूर्वो भावी उत्तरं सुपदं ततो
 नकारादिपदम् । यथा (४) गोमत् । ऊ । सु । नास-
 त्येति । तत्र उकारो भावी सुपदस्य षत्वे निमित्तम् ।
 सुपदे षत्वं नकारादौ पदे णत्वे निमित्तम् । तत्र यदि
 चतुःक्रमो न स्यात्तर्हि णत्वं विहन्येत । ततस्तु आर्षी
 संहिता न स्यात् । चतुःक्रमे तु सा स्मृता भवति । न
 च कश्चिदिह सुशब्दं विना मकारादेः पदस्य विकारः

(१) १७ । ७७ ॥

(२) २० । ७२ ॥

(३) २१ । ४ ॥

(४) पूर्वोक्तद्वादशाङ्गपदपाठोदाहरणं लेख्यम् ॥

सम्भवति । अतस्त्रिक्रम एवायम् । (१) महीमूषुः
ऊँ ऽइत्यूँ । सु मातरम् । एवं त्रिक्रमेष्वपि प्रयोजनान्य-
न्वेष्टव्यानि । (२) ॥

पुनः सुपदेनोत्तरम् ॥ १८७ ॥

यत्र सुपदनिमित्तस्त्रिक्रमश्चतुःक्रमो वा कृतस्तत्र
पुनः सुपदेनोत्तरं पदं सन्धाति । यथा (३) मो पू-
णः । मो ऽइति मो । सुनः । (४) अभीषुणः । नः
सखीनाम् । (५) गोमदूषुणासत्या । गोमदिति गो ।
मत् । ऊँ ऽइत्यूँ । सु नासत्या ॥

पूर्वस्योत्तरसठंहितस्य स्थितो-

पस्थितमवगृह्यस्य ॥ १८८ ॥

एवं द्वित्रिक्रमाद्यनन्तरं परिशिष्टं क्रमविधिमाह ।
पूर्वस्योत्तरपदस्य त्रिपदचतुष्क्रमसम्बन्धस्य सतः पञ्चा-
स्थितोपस्थितं कर्तव्यम् । स्थितोपस्थितशब्देन वेष्ट-

(१) पूर्वोक्तमुदाहरणम् ॥

(२) अस्मिन्सूत्रे एकेग्रहणात्कण्वशास्त्रीयाश्चतुःक्रमं पठन्ति । न माध्यन्दिन-
शास्त्रीयाः पठन्ति । यथाशास्त्रीयानां पाठो बोध्यः । एवं चतुष्क्रमे विषयेऽपि प्रयो-
जनं बुधैर्मृग्यमिति ॥

(३) ३ । ४५ ॥

(४) २७ । ४० ॥

(५) २७ । ७२ ॥

कोऽभिधीयते । यथा (१) श्रेष्ठतमाय कर्म्मणे । श्रे-
ष्ठतमायेति श्रेष्ठ । तमाय । (२) उपप्रयन्तोऽअधुर-
म् । उपप्रयन्त इत्युप । प्रयन्तः । एतच्च पदप्रदर्शनार्थं क्रियते ॥

सुपदे शाकटायनः ॥ १८९ ॥

सुपदे स्थितोपस्थितं शाकटायन आचार्यो मन्य-
ते । पूर्वस्योत्तरसंज्ञितस्येति वर्त्तते । यथा (३) मो
पूर्णः । मो इति मो । स्थिति सु । (४) गोमदूषु-
णासत्था । गोमदिति गो । मत् । ऊ इत्यु । स्थिति
सु । एतच्च पदस्वरूपज्ञापनार्थं विनापि वेष्टकेन पद-
स्वरूपं ज्ञायते इति शाकटायनमतं न साधीयः ॥

अन्तःपददीर्घाभावे ॥ १९० ॥

पूर्वस्योत्तरसंज्ञितस्य स्थितोपस्थितमिति वर्त्तते ।
पदमध्ये दीर्घाभावोऽन्तःपददीर्घाभावस्तस्मिन्नन्तःपद-
दीर्घाभावे पूर्वस्योत्तरसंज्ञितस्य स्थितोपस्थितं कर्त्त-
व्यम् । यथा (५) मामहन्तामदिति । ममहन्तामिति

(१) १ । १ ॥

(२) ३ । ११ ॥

(३) ३ । ४५ ॥

(४) १० । ७२ ॥

(५) ३३ । ३८ ॥

ममहन्ताम् । (१) सादन्यं विदित्यम् । सदन्यमिति
सदन्यम् ॥

विनामे ॥ १९१ ॥

पूर्वस्योत्तरसं० हितस्य स्थितोपस्थितमिति वर्त्तते ।
विनामशब्देन दन्त्यस्य मूर्धन्यभाव उच्यते । विनाम-
श्चैष इत्यंभूतो गृह्यते । यत्र निमित्तनैमित्तिकावेक-
पदस्थौ भवतः पूर्वपदस्य विनामे उत्तरपदसंहितस्य
स्थितोपस्थितं कर्त्तव्यम् । यथा (२) सिसासन्तो व-
नामहे । सिसासन्त इति सिसासन्तः । (३) सुषाव-
सोमम् । सुसावेति सुसाव ॥

प्रगृह्ये ॥ १९२ ॥

‘प्रगृह्ये’ मित्यधिकृत्य यद्विहितं तस्यायं विधिः ।
पूर्वस्योत्तरसं० हितस्य स्थितोपस्थितमिति वर्त्तते ।
पूर्वे प्रगृह्ये उत्तरपदसंहिते स्थितोपस्थितं कर्त्तव्यम् ।
यथा (४) इन्द्राग्नी ऽअपात् । इन्द्राग्नी ऽइतीन्द्राग्नी ।

(१) ३४ । २१ ॥

(२) २६ । १७ ॥

(३) १२ । २ ॥

(४) ३३ । ८३ ॥

(१) उदुत्वा । ऊँ ऽइत्यू । त्वा विश्वे' (२) अमी रो-
चने । अमी ऽइत्यमी । रोचने दिवः' ॥

रिफिते निरुक्ते ॥ १९३ ॥

‘विसर्जनीयो रिफित’ इत्यस्मिन्नधिकारे यानि
रिफितानि पदानि विहितानि तेषामत्र ग्रहणम् ।
‘पूर्वस्योत्तरसं० हितस्य स्थितोपस्थित’ मिति वर्तते ।
सप्तमीकृतविभक्तिव्यत्ययम् । पूर्वे रिफिते पदे निरुक्ते
संहितायामनिर्ज्ञातरेफे उत्तरपदसंहिते स्थितोपस्थि-
तं कर्त्तव्यम् । यथा (३) अन्तस्ते' । अन्तरित्यन्तः' । ते
द्यावा॑ष्टि॒थिवी । (४) नेष्टः॑ पिब' । नेष्टुरिति॒ नेष्टः॑ ।
पिब' ऽऋतुना॑ । सर्वे एते वेष्टकाः पदप्रकृतिज्ञापनार्थाः ॥

अवसाने च ॥ १९४ ॥

“विरामोऽवसान”मित्युच्यते । अवसाने विरामे
स्थितोपस्थितं कर्त्तव्यम् । संहितावसानज्ञापनार्थम् । (५)
अग्नये॑ जा॒तवे॑दसे । जा॒तवे॑दस॒इति॑ जा॒त । वे॒दसे ॥

(१) १२ । २७ ॥

(२) १३ । ७ । इमान्यप्युदाहरणानि पदपाठाद्वोद्धव्यानीति ॥

(३) ७ । ५ ॥

(४) २६ । २० ॥

(५) ३ । २ ॥

यथासमाम्नातं क्रमावसानं०

सङ्क्रमेषु ॥ १९५ ॥

अवसाने सन्धिः सङ्क्रम इत्युच्यते । गलत्पदमिति क्रम्यागलता सह सन्धानं सङ्क्रमः । क्रमसन्धिविषयभू-
तेषु येन प्रकारेण क्रमावसानं परिपठितं तेनैव भ-
वति । यथा (१) विश्वधा- परमेण । ह्यर्षीच्छतधा-
रम् । अधस्तनसूत्राप्रवादः । (२) ॥

(१) १ । २ । ३ ॥

(२) अनेनैव सूत्रेण यस्मिन्मन्त्रे अवसानं न भवति पदानां क्रमपाठे तत्सन्देहा-
पनोदार्थं प्रसङ्गाच्चत्वारिंशदध्यायोक्तानि क्रमसन्धानानि प्रदर्शयन्ते । विश्वधाः पर-
मेण । १ । ह्यर्षीच्छतधारम् । २ । सहस्रधारन्देवः । ३ । अधुक्षः सा । ४ विश्व-
श्वधाया ऽइन्द्रस्य । ५ । राध्यतामिदम् । ६ । एमि कः । ७ । तस्मै कर्मणे ।
८ । व्वाम्प्रत्युष्टम् । ९ । अरातय ऽउरु । १० । एमि धूः । ११ । धूर्वाभो देवा-
नाम् । १२ । देवहूतममहूतम् । १३ । हविर्द्वान्विविष्णुः । १४ । हस्ताभ्यामग्न-
ये । १५ । गृह्णामि भूताय । १६ । रश्मिभिर्देवीः । १७ । देवयुर्व्व्युष्माः । १८ ।
स्थाम्नये । १९ । अग्नीषोमाभ्यां दैव्याय । २० । व्वेत्स्वहिः । २१ । व्वेत्स्वग्नेः ।
२२ । शमीण्व हविष्कृत् । २३ । इहि कुकुटः । २४ । व्वह द्धुवम् । २५ । व्वधान-
याग्ने । २६ । अन्तरिक्षं धर्त्रम् । २७ । दिव्यं विश्वाम्न्यः । २८ । व्वेत्सु धान्यम् ।
२९ । व्यानाय दीर्घाम् । ३० । रसेन रेवतीः । ३१ । पृच्छ्यन्तां जनयत्यै । ३२
व्वधः पृथिवि । ३३ । मौगप । ३४ । व्वध्यासमरतो । ३५ । स्कन्गायत्रेण । ३६ ।
जागतेन सुक्ष्मा । ३७ । माज्जर्म्यनिशिता । ३८ । माज्जर्म्यदित्यै । ३९ । पश्श्याम्य-
ग्नेः । ४० । यजुषेयजुषे सवितुः । ४१ । त्वा । तेजः । ४२ । इति द्वित्वा-
रिंशत्प्रथमाध्याये ॥

गन्धर्वः । ईदित ऽइन्द्रस्य । २ । दक्षिणो मित्रावरुणौ । ३ । अभिशस्त्यै स-

वृद्धवृद्धिः ॥ १९६ ॥

इत्युक्तार्थम् ॥

वितुः । ४ । ध्रुवा ध्रुवा । ५ । माजिर्म्म नमः । ६ । सचन्तामस्माकम् । ७ । अश्ना-
 म्पेतम् । ८ । ब्रह्मणे तेन । ९ । ऊहाम्यग्ग्रीषोमौ । १० । ऊहामीन्द्राग्न्योः ।
 ११ । इन्द्राग्न्योरिन्द्राग्नी । १२ । इन्द्राग्नी वसुध्वयः । १३ । अवतौव्यन्तु ।
 १४ । मरुद्विरिन्द्रः । १५ । तस्मै पोषाय । १६ । वर्त्तेग्ने । १७ । हिमा ऽअ-
 चारिषम् । १८ । व्वेदषदो ये । १९ । इत्येकोनविंशतिर्द्वितीयाध्याये । उषसा सू-
 र्यः । १ । गृहपते पुरीष्यः । २ । पतिवेदनमितः । ३ । इति त्रीणि तृतीयाध्या-
 ये ॥ चतुर्थेऽध्याये क्रमसन्धानाभावः । पुरुषवामन्धामि । १ । रजः शया हरिशया-
 । २ । देववीतये सिर्धो हि । ३ । ध्रुवो व्वैष्णवम् । ४ । ध्रुव ऽऐन्द्रम् । ५ ।
 हव्यवाहनः श्वात्रः । ६ । अभूशधायधम् । ७ । इति सप्त पञ्चमाध्याये ॥ षष्ठे ऽ-
 ध्याये क्रमसन्धानाभावः । मादयस्वोदानाय । १ । भून्महेन्द्राय । २ । इति द्वे क्रमस-
 न्धाने सप्तमेऽध्याये ॥ अष्टमेऽध्याये क्रमसन्धानाभावः । इन्द्रस्य सत्यप्रसवसः ।
 १ । इन्द्रैवाजजितः । २ । इति द्वे नवमाध्याये ॥ इति दशमाध्याये क्रमसन्धाना-
 भावः । जागतेन हस्ते । १ । हिरण्ययीमानुष्टुभेन । २ । इति द्वे एकादशाध्याये । प-
 रिचिह्नोकम् । १ । इत्येकं द्वादशे । दिशामि साहसम् । गवयुमूर्णायुम् । २ । उष्ट्रमजः ।
 ३ । शरभन्त्वम् । ४ । इति चत्वारि त्रयोदशेऽध्याये ॥ अन्तरिक्षेवायुः । १ ।
 वायूराज्ञी । बृहती नभः । इति त्रीणि चतुर्दशाध्याये ॥ अग्नेरेवः । १ । रथे चि-
 त्तो मेनका । २ । असमरथः प्रम्मलोचन्ती । ३ । अरिष्टनेमिर्विश्वाची । ४ । सु-
 षेण ऽउर्वशी । शैशिरौ परमेष्ठी । ६ । दिवः सूर्यः । ७ । दिवं ध्रुवे । इत्यष्टौ क्रम-
 सन्धानानि पञ्चदशाध्याये । षोडशसप्तदशाध्याये क्रमसन्धानाभावः ॥ स्वस्तोमः ।
 १ । रथन्तरैव्वेष्ट । इति द्वे अष्टादशे ॥ ऊनविंशतिमेऽभावः । व्वायुज्जग्न्यत् । १ ।
 स्वप्ने सूर्यः । २ । शूद्रेऽर्ये । ३ । आपोऽयक्षि । ४ । इति चत्वारि विंशतिमे-
 ऽध्याये ॥ एकविंशतिमेऽध्याये क्रमसन्धानाभावः ॥ स्वाहाकृतः स्वगा । १ । प्राणा-
 य यत्ने । २ । इति द्वे द्वाविंशेऽध्याये ॥ चतुष्पदश्चन्द्रमाः । १ । चन्द्रमारात्रौ ।
 २ । वायुः सूर्यः । ३ । इति त्रीणि त्रयोविंशेऽध्याये ॥ चतुर्विंशतिपञ्चविंशतिष-
 ड्विंशतिशतविंशत्यध्यायेषु क्रमसन्धानाभावो बोध्यः ॥ शुचिर्मुष्णहा । १ । देवौ
 त्रिष्टुभा । २ । इति द्वे अष्टाविंशाध्याये ॥ एकोनत्रिंशत्त्रिंशदेकत्रिंशद्द्वात्रिंशत्तयस्त्रि-

इति कात्यायनकृते प्रातिशाख्यसू- त्रे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

इत्यानन्दपुरवास्तयवज्जटस्तनुनोव्वट्टेन कृते माह-
मोदाख्ये प्रातिशाख्यभाष्ये चतुर्थोऽध्यायः समाप्तः ॥

समासेऽवग्रहो ह्रस्वसमकालः ॥ १ ॥

संहितापदलक्षणं वक्तव्यमिति शास्त्रमारब्धं का-
त्यायनेनाचार्येण तत्र संहितायामित्यधिकृत्य 'पदा-
न्तपदाद्योः सन्धि'रित्यादिना ग्रन्थेन संहितालक्षण-
मशेषमुक्तं तथा 'क्रमः स्मृतिप्रयोजन' इत्यादिना ग्र-
न्थेन क्रमलक्षणमुक्तम् । तथाऽर्थः 'पद' मिति पदल-
क्षणमुक्तम् । खरश्च 'खरितवर्जमेकोदात्तं पद'मित्य-
नेनाध्यायेन विहितः । अर्थविशेषाच्चतुःप्रकारं तत्पदं
भवतीत्युपरिष्ठाद्व्यति । 'क्रियावाचकमाख्यातमुपस-

शतृपंचत्रिंशत्स्वध्यायेषु न सन्तीति क्रमसन्धानानि बुधैर्बोध्यानि ॥ ऊतिभिः कया । १ ।
ईक्षऽईक्षामहे । २ । इति द्वे षट्त्रिंशदध्याये । पाहि मधु । १ । स्वाहा रात्रिः । २ ।
इति द्वे सप्तत्रिंशदध्याये ॥ सरस्वत्यसौ । १ । इत्येकमष्टत्रिंशदध्याये ॥ एकोनचत्वारि-
ंशदध्याये क्रमसन्धानाभावः ॥ अविद्यां विद्यायाम् । १ । ऊँ ३ क्रतो । क्रतोस्मर
क्रतोऽइतिक्रतो । स्मर द्विवे । ३ । द्विवे कृतम् । इति चत्वारि क्रमसन्धानानि चत्वारि-
ंशदध्याये ॥ इति सर्वमेकीकृत्य । ११५ । पञ्चदशाधिकैकशतसङ्ख्याकानि क्र-
मसन्धानानि ज्ञेयानि ॥ एभ्योऽन्यत्र आर्षोसंहितावसानानुसारेण निर्णयोऽवधार्यः ॥
इति क्रमसंहितायामयन्त्रियमः । क्रमपूर्वाएवाष्टौ विकृतयो व्याडिमर्हणौ प्रतिपादितास्ता
ग्रन्थान्ते सोदाहरणलक्षणा दास्यामो वयमिति ॥

गो विशेषकृत् ॥ सत्त्वाभिधायकं नाम निपातः पा-
दपूरणं इति तत्राख्यातं भवति यथा पाहि । रक्ष
यज । यच्छेति । उपसर्गा भवन्ति यथा । 'परोपापा-
वप्रतिपरी'त्यादयः । निपाताभवन्ति यथा । 'वा च क-
मुचितसमस्मादि'त्यादयः । नाम त्रिप्रकारं भवति ।
कृतद्वितसमाससञ्ज्ञाभेदेन भिन्नम् । कृतः । यञ्जः
वेदः । याज्ञा । भूतिः । तद्विताः । आग्नेयः । अ-
ग्नीषोमीयः । ऐन्द्राग्नः । वैश्वदेवः । समासा भ-
वन्ति यथा विश्वकर्मा विमनाः । विहायाः । सह-
ङ् । तत्र समासपदेऽवग्रहो भवति द्वयोः पदयोर्बह्व-
नां वा परस्परकाङ्क्षया सम्बद्धानां यत्र द्विधादिप-
दसमूहोच्चारणं स समासः । स च समासश्चतुःप्रका-
रो भवति यथा अव्ययीभावतत्पुरुषद्वन्द्वबहुब्रीहयः ।
तत्र पूर्वपदप्रधानोऽव्ययीभावः । यथा समन्भूमि ।
विषुरुपम् । अन्तःपदम् । अनुरूपम् । उत्तरप्रधान-
स्तत्पुरुषः । यथा अधशठंसः । व्युत्पत्ते । आखरे-
ष्टः । उपप्रयन्तः । उभयपदप्रधानो द्वन्द्वः । यथा अ-
ग्नीषोमौ । इन्द्राग्नी । मित्रावरुणौ । दीक्षातपसोः ।
अन्यपदप्रधानो बहुब्रीहिः । यथा अनमीवाः । क-
ष्मिणीवाः । शितिकक्षः । एवमेतस्मिंश्चतुःप्रकारेऽपि
समासपदेऽवग्रहो भवति । द्वयोः पदयोः पृथग्वग्रह-
मवग्रहः । नाना ग्रहइत्यर्थः । स च ह्रस्वसमकालो

द्वस्वाच्चरतुल्यकालो भवति । यथा (१) कृत्क्क्त्सामा-
वध्यामित्यृक् । सामाव्याम् । सन्तरन्त इति सम् ।
तरन्तः । अधिकारसूत्रमेतत् ॥

तरतमयोश्चातिशयेऽदक्षिण- प्रत्यासङ्गे ॥ २ ॥

तरतमयोश्च प्रत्यययोः परभूतयोरतिशयवाचिनोर-
वग्रहो भवति । न चेदक्षिणशब्दसूत्र प्रत्यासक्तो भ-
वति । यथा (२) पूर्यतरमिति पूर्य । तरम् । (३)
वृद्धितममिति वृद्धि । तमम् । (४) सस्मिन्नतममिति
सस्मिन्न । तमम् । अतिशय इति किम् । (५) कारो-
तरेण दधतः । (६) यदा प्रिप्रेष मातरम् । अदक्षिण-
प्रत्यासङ्गइति किम् । (७) द्यावाष्टिब्योर्हृदक्षिणं प्रा-
श्न्य विश्वेषान्देवानामुत्तरम् । असमासार्थआर-
म्भः ॥

(१) ४।१॥

(२) १८।१०॥

(३) १।८॥

(४) इदं पदपाठस्योदाहरणं तथा ॥

(५) १२।८०॥

(६) १९।८॥

(७) २५।५॥

व्वीतमहूतमसूतमगोपातमरक्तनधा-
तमव्वसुधातमाः पूर्व्वेण ॥ ३ ॥

एतानि पदानि तमपः पूर्व्वेण पदेनावगृह्यन्ते ।
व्वीतम यथा (१) देव्वीतमऽइति देव । व्वीतमः । (२)
देव्वहूतममिति देव । हूतमम् । (३) इन्द्राय । सुषू-
तमम् । सुसूतममिति सु । सूतमम् । (४) सः ।
सुगोपातमऽइति सु । गोपातमः । (५) रक्तधात-
ममितिरक्त । धातमम् । (६) व्वसुधातमऽइति व-
सु । धातमः ॥

सर्पदेवजनेब्भ्यश्च ॥ ४ ॥

सर्पदेवजनेब्भ्यश्च पदं पूर्व्वेण पदेनावगृह्य-
ते । यथा (७) सर्पदेवजनेब्भ्यऽइति सर्प । देवज-
नेब्भ्यः । उपरिष्ठाह्व्यति 'बहुप्रकृतावागन्तुना प्रव्व-
णे'त्यस्याप्रवादः ॥

(१) ११ । ३४ ॥

(२) १ । ८ ॥

(३) ६ । २८ ॥

(४) ८ । २९ ॥

(५) २६ । २० ॥

(६) २७ । १४ ॥

(७) ३० । ६ ॥

तूणवद्धममुत्तरेण ॥ ५ ॥

तूणवद्धममित्येतत्पदं उत्तरेण पदेनावगृह्यते । यथा (१) क्रोशाय । तूणवद्धममिति तूणव । धमम् ॥

रायस्पोषदे विजावेति च ॥ ६ ॥

रायस्पोषदे विजावा इत्येते च पदे चशब्दादुत्तरेण पदेनावगृह्यते । यथा (२) रायस्पोषदेऽङ्गिति रायस्पोष । दे । (३) स्यात् । नः । सूनुः^५ । तनयः । विजावेति वि । जावा ॥

बहुप्रकृतावागन्तुना पर्वणा ॥ ७ ॥

बहूनि पदानि यत्र तद्वज्जप्रकृतिपदं तत्र आगन्तुना पर्वणा समासलक्षणेन यत्पञ्चात्कालिकं पदं भवति तेनावग्रहो भवति । यथा (४) प्रजापतिरिति प्रजा । पतिः । (५) प्रजापतिगृहीतयेति प्रजापति । गृहीतया । समासलक्षणेन यदाऽऽगन्तुकं पदं तदि-

(१) ३० । १० ॥

(२) ५ । १ ॥

(३) १२ । ४४ ॥

(४) ३१ । १९ ॥

(५) १३ । ३९ ॥

इ गृह्यते न तु पाठेन तेनैतद्भवति । यथा (१) सु-
प्रजाऽद्विति सु । प्रजाः । (२) सुप्रायनाऽद्विति सु ।
प्रायनाः ॥

तद्वति तद्विते न्यायसं० हितं
चेत् ॥ ८ ॥

तद्वतीत्यत्र एकस्य वतिशब्दस्य तन्त्रेणोच्चारणं द्रष्ट-
व्यम् । तद्वति मत्त्वर्थीये तद्विते वतौ च परभूतेऽवग्र-
हो भवति न्यायसंहितं व्याकरणशास्त्रोक्तसन्धिमत्प-
दं चेद्भवति । यथा (३) मधुमदिति मधु । मत् । (४)
हिरस्यवदिति हिरस्य । वत् । वतौ खल्वपि यथा (५)
वरिष्ठाम् । अनु । सवतमिति सम् । वतम् । तद्व-
तीति किम् । (६) एतावान् । अस्य । महिमा । न्या-
यसंहितमिति किम् । (७) ऊर्जस्वन्तम् । (८) पयस्व-

(१) ३ । ३७ ॥

(२) २९ । ५ इदमुदाहरणं 'ख' पुस्तके नास्तीति बुधैर्ज्ञेयम् ॥

(३) १३ । २६ ॥

(४) ८ । ५७ ॥

(५) ११ । १० ॥

(६) ३१ । ३ ॥

(७) ६ । २८ ॥

(८) इदमपि तथा ॥

कालइति किम् । (१) सुविद्वद्वाँसऽइति सु । वि-
द्वद्वाँसः । खरेण ह्रस्वादिति किम् । (२) जिगी-
वाँसः । खरादिति किम् । (३) चिकित्त्वान्तसाह-
य । अनुषीति किम् । (४) सूर्यः । आत्मा । ज-
गतः । तस्त्युषः ॥

प्रक्तपूर्वविविश्वेमर्त्तुभ्यस्था ॥ १२ ॥

एभ्यः परः स्थाप्रत्ययोऽवगृह्यते । प्रक्त यथा (५)
प्रक्त्येति प्रक्त या । (६) पूर्व्येति पूर्व । या । (७)
विश्व्येति विश्व । या । (८) इमयेतीम । या । (९)
कृत्येत्युत । या । इन्द्रः । वनस्पतिः । शशमानः ।
परिमुतेति परि । सुता ॥

ह्रस्वव्यञ्जनाभ्यां भकारादौ

(१) १७ । ६३ ॥

(२) इदं शास्त्रान्तरोदाहरणम् ॥

(३) ११ । ३२ ॥

(४) ७ । ४४ ॥

(५) ७ । ११ ॥

(६) इदं तथा ॥

(७) इदमपि तथा ॥

(८) इदमपि तथैव ॥

(९) २० । ५८ । इमान्यप्युदाहरणानि पदपाठाद्बोध्यानि ॥

विविभक्तिप्रत्यये ॥ १३ ॥

ह्रस्वात्स्वराद्यञ्जनाच्च परभूते भकारादिविभक्ति-
प्रत्ययेऽवग्रहो भवति । ह्रस्वाद्भवति यथा (१) तच्-
व्यऽइति तच्च । व्यः । (२) अग्निभिरित्यग्नि ।
भिः । व्यञ्जनाद्भवति यथा (३) तिष्ठद्भव्यऽइति तिष्ठद्-
त् । व्यः । (४) धावद्भव्यऽइति धावत् । व्यः । ह्रस्व-
व्यञ्जनाभ्यामिति किम् । (५) रथकारेभ्यऽइति रथ ।
कारेभ्यः । (६) कुलालेभ्यः । भकारादौ विभक्ति-
प्रत्ययइति किम् । (७) कर्ष्णा गर्हभः । (८) कु-
म्भो व्वनिष्ठुः । भकारादाविति किम् । (९) अ-
ग्निषु ॥

स्विति चानतौ ॥ १४ ॥

सु इत्येतस्मिँश्च विभक्तिप्रत्ययेऽनताववग्रहो भवति ।

- (१) १६ । २७ ॥
- (२) इदमपि तथा ॥
- (३) १६ । २३ ॥
- (४) इदमपि तथा ॥
- (५) १६ । २७ ॥
- (६) इदमपि तथा ॥
- (७) २४ । ४० ॥
- (८) १९ । ८५ ॥
- (९) इदं प्रत्युदाहरणं (स) पुस्तके नास्तीति ॥

यथा (१) अग्निस्त्वयप् । सु । अग्ने । सधिः । (२)
 अभि । प्र । इहि । निः । दह । हृत्स्विति हत् । सु ।
 अनताविति किम् । (३) ऋक्षु । (४) अग्निषु । (५)
 स्तनुषु । विभक्तोति किम् । (६) असुम् । ह्रस्वव्यञ्ज-
 नाभ्यामिति पूर्वसूत्रादनुवर्तते । ताभ्यामिति किम् ।
 यासु । (७) ॥

वर्णसङ्ख्येऽन्नन्यतरतः ॥ १५ ॥

वर्णसमासः सङ्ख्यासमासश्चान्यतरतो विकल्पेना-
 वगृह्यते । वर्णसमासो भवति यथा (८) धूमन्रोहि-
 तऽइति धूमन् । रोहितः । कर्कन्वुरोहितऽइति कर्क-
 न्वु । रोहितः । सङ्ख्यासमासो भवति यथा (९)
 पञ्चदशेति पञ्च । दश । त्रयोदशेति त्रयः । दश । (१०) ॥

(१) १२ । ३१ ॥

(२) १७ । ४१ ॥

(३) ३२ । इदं शास्त्रान्तरीयमुदाहरणम् ॥

(४) इदमपि तथा ॥

(५) १७ । १३ ॥

(६) ८ । १८ ॥

(७) इति प्रत्युदाहरणं 'स्' पुस्तके नास्तीति विज्ञा जानन्तु ॥

(८) २४ । २ । इदमुदाहरणद्वयमेकाध्यायस्यैकाङ्ककम् ॥

(९) १८ । २४ ॥

(१०) इदमपि तथा ॥

अनुदात्तोपसर्गो चाकख्याते ॥ १६ ॥

अनुदात्त उपसर्गोऽस्येत्यनुदात्तोपसर्गमाख्यातं त-
स्मिन्नवग्रहो भवति । यथा (१) यत् । अश्वाय । वा-
सः । उपसृण्वन्तीत्युप । सृण्वन्ति । (२) अभि । शू-
लम् । निहतस्येति नि । हतस्य । अवधावतीत्यव । धा-
वति ॥

गिरि त्रशयोः ॥ १७ ॥

गिरिशब्दोऽवगृह्यते त्रशयोः प्रत्यययोः परयोः ।
यथा (३) शिवाम् । गिरिवेति गिरि । त्र । (४) गिरि-
वेति गिरि । श । अच्छ । वदामसि ॥

इवकाराम्भेडितायनेषु च ॥ १८ ॥

इव कार आम्भेडित अयन एतेषु सुप्रत्ययेषु
परभूतेषु अवग्रहो भवति । इवे यथा (५) सुचीवेति
सुचि । इव । घृतम् । चम्बीवेति चम्बी । इव । सो-

(१) २५ । ३७ ॥

(२) २५ । ३२ ॥

(३) १६ । ३ ॥

(४) १६ । ४ ॥

(५) २० । ७० ॥

मन् । कारे यथा । (१) हिङ्गारायेति हिम् । काः
 राय । (२) वषट्कारेभिरिति वषट् । कारेभिः ।
 आज्जतीरित्या । ज्जतीः । आम्नेडिते यथा (३)
 यज्ज्ञायज्ज्ञेति यज्ज्ञा । यज्ज्ञा । वः । (४) सठ्ठं
 समिति सम् । सम् । इत् । (५) यतोयतऽइति यतः ।
 यतः । अयने यथा (६) आयनायेत्या । अयनाय । (७)
 प्रायनायेति प्र । अयनाय ॥

एकात्समीची ॥ १९ ॥

एकशब्दात्परः समीचीशब्दोऽवगृह्यते । यथा (८)
 शिशुम् । एकम् । समीचीऽइति सम् । ईची । एका-
 दिति किम् । (९) स्वर्विदेति स्वः । विदा । समी-
 चीऽइति समीची । उरसा । रमना ॥

(१) २२ । ७ ॥

(२) १९ । १७ ॥

(३) २७ । ४१ ॥

(४) १५ । २६ ॥

(५) ३६ । १२ ॥

(६) २२ । ७ ॥

(७) इदमपि तथा ॥

(८) १२ । २ ॥

(९) ११ । २० ॥

त्वायवः श्रौत्योर्बहिर्द्धाऽस्मयुं मृन्म-
यीं सुम्नयाऽऽशुया साधुया धृ-
ष्णुया विवशालमनुया ॥ २० ॥

एतानि पदानि सावग्रहाणि भवन्ति । त्वायवो
यथा (१) सुताः । इमे । त्वायवइति त्वा । यवः ।
श्रौत्योर्यथा (२) शिवम् । शग्मम् । श्रौत्योरिति शम् ।
योः । बहिर्द्धा यथा (३) इदम् । अहम् । तप्तम् ।
वाः । बहिर्द्धेति बहिः । धा । युज्ज्ञात् । अस्मयु-
व्यथा (४) अग्निम् । भरन्तम् । अस्मयुमित्यस्म । यु-
म् । मृन्मयीयथा (५) महीम् । मृन्मयीमिति मृ-
त् । मयीम् । योनिम् । अग्नये । सुम्नया यथा (६)
धीराः । देवेषु । सुम्नयेति सुम्न । या । आशुया
यथा (७) तव । भ्रमासः । आशुयेत्याशु । या । सा-

(१) २० । ७८ ॥

(२) ३ । ४२ । इमान्युदाहरणानि पदपाठाद्बोध्यानि ॥

(३) ५ । ११ ॥

(४) ११ । ११ ॥

(५) ११ । ५६ ॥

(६) १२ । ५४ ॥

(७) १३ । ९ ॥

धुया यथा (१) आ । सीद । साधुयेति साधु । या ।
 घृष्णाया यथा (२) चित्र । वज्जहस्तेति वज्ज । ह-
 स्त । घृष्णायेति घृष्णा । या । महः । विशालंय-
 था (३) वृष्टिः । विशालमिति वि । शालम् । पु-
 रुषः । अनुया यथा (४) अहः । अनुयेत्यनु । या ।
 रात्र्या । रात्रीम् । उशिजा । वसुभ्यऽइति वसु ।
 भ्यः ॥

मृगयुमुभयादतोऽपामार्गकिम्पू-

रुषमिति च ॥ २१ ॥

एतानि पदानि सावग्रहाणि भवन्ति । मृगयुय्य-
 था (५) मृत्यवे । मृगयुमिति मृग । युम् । उभयाद-
 तो यथा (६) ये । के । च । उभयदतऽइत्युभय । द-
 तः । अपामार्गं यथा (७) अपामार्गं । अपमार्गैत्य-
 प । मार्गं । त्वम् । अस्मत् । किम्पूरुष्यथा (८) प-

(१) १४ । १ ॥

(२) २७ । ३७ ॥

(३) १४ । ८ ॥

(४) १५ । ६ ॥

(५) ३० । ५ ॥

(६) ३१ । ८ ॥

(७) ३५ । १० । इमानि सर्वान्युदाहरणानि पदपाठाज्ज्ञेयानि ॥

(८) ३० । १४ ॥

र्व्वतेब्ध्यः । किम्पुरुषम् । किम्पुरुषमिति किम् । पुरु-
षम् ॥

पारावतानाग्निमारुताश्चेति जा-
तूकर्ण्यस्य ॥ २२ ॥

पारावतान् आग्निमारुता इत्येते पदे साव-
ग्रहे भवतो जातूकर्ण्यस्याचार्यस्य मतेन । यथा (१)
अहन्ते । पारावतान् । (२) कल्मषाः । आग्निमा-
रुताऽइत्याग्नि । मारुताः । जातूकर्ण्यस्येति किम् (३)
पारावतान् । आग्निमारुताः । (४) ॥

अधीवासमित्येके ॥ २३ ॥

अधीवासमित्येतत्पदमेके आचार्याः सावग्रहं कुर्व्व-
न्ति । (५) अधिवासमित्यधि । वासम् । या । हिर-
ण्यानि । एकइति किम् । अधीवासम् । (६) ॥

(१) २४ । २५ ॥

(२) २४ । ७ ॥

(३) पूर्वोक्तमुदाहरणं पदपाठस्य बोध्यम् ॥

(४) अनयोः पूर्वोक्तोदाहरणयोर्व्यथाशास्त्रं व्यवस्था, माध्यन्दिना द्वितीयोदाहर-
णस्यावग्रहं कुर्व्वन्ति न प्रथमस्येति बोध्यम् ॥

(५) २५ । ३७ ॥

(६) पूर्वोक्तमेव ॥

प्रतिषेधे नावग्रहः ॥ २४ ॥

‘समासेऽवग्रह’ इति योऽवग्रहाधिकारः कृतस्तस्या-
यमपवादः । प्रतिषेधवाचिना नञा निपातेन सह स-
मासे सति अवग्रहो न भवति । यथा (१) न रक्ष-
सा । अरक्षसा । मनसा । (२) न इ राः । अनिराः ।
अमीवाः । निषीदन् । अत्र “न लोपो नञ” इति न-
कारलोपः । “तस्मान्नुडची”ति नुडागमः । प्रतिषे-
धेनेति किम् । (३) अनिशितऽइत्यनि । शितः ।
असि ॥

उत्तरेण चाकारेण ॥ २५ ॥

प्रतिषेधवाचिनो नञ्निपातादुत्तरेण चाकारेण
सह समासेऽवग्रहो न भवति । यथा (४) अनातताय ।
दृष्टवे । (५) अनादृष्ट्यः । जातवेदाऽइति जात ।
वेदाः ॥

द्वापूर्वम् ॥ २६ ॥

(१) ११ । २१ ॥

(२) ११ । ४४ ॥

(३) १ । २९ ॥

(४) १६ । १४ ॥

(५) २७ । ७ ॥

धापदपूर्वं समासपदं नावगृह्यते । यथा (१) द्वा-
दश । (२) द्वाविंशः । (३) द्वाविंशत् ॥

सङ्ख्यापूर्वश्च धा ॥ २७ ॥

सङ्ख्यापूर्वपदो धापदोत्तरपदः समासो नावगृह्य-
ते । यथा (४) अष्टधा । दिवम् । (५) कति । होमा-
सः । कतिधा । समिद्धइति सम् । इद्धः । सङ्ख्यापूर्व-
इति किम् । (६) इदम् । अहम् । तप्तम् । आः ।
बहिर्हेति बहिः । धा ॥

द्वन्द्वानि द्विवचनान्तानि स्वरान्त-
पूर्वपदानि ॥ २८ ॥

द्वन्द्वसमासपदानि द्विवचनान्तानि स्वरान्तपूर्वप-
दानि नावगृह्यन्ते । यथा (७) अयम् । वाम् । मित्रा-

(१) १७ । २५ ॥

(२) १४ । १८ ॥

(३) १७ । २५ ॥

(४) ८ । ५५ ॥

(५) २३ । ५० ॥

(६) ५ । ११ ॥

(७) ७ । ८ ॥

व॒रु॒णा । (१) इन्द्रा॑ग्नी॒ऽआग॑तम् । (२) अ॒ग्नी॒षोम॑-
योः । उज्जि॑तिम् । इन्द्रा॑नीति किम् । (३) अ॒द्भु-
तम॑सि । ह॒वि॒र्द्धान॑मिति ह॒विः । धान॑म् । स्वरान्तपू-
र्वप॑दानीति किम् । (४) ष॒ट्क॑व॒साम॑यो॒रित्क॑ । सा-
मयोः । शिल्पे ॥

तद्धि॑ते चै॒काक्ष॑रवृद्धावनिहिते ॥ २९ ॥

समासादुत्तरकालं तद्धिते उत्पन्नेऽवग्रहो न भवति
यत्र तद्धितजनितैवैकाक्षरे पूर्वपदे दृद्धिर्भवति । यदि
च तत्पूर्वपदेन सह अनिहितं भवति अव्यवहितं भव-
ति यदि पूर्वपददृष्ट्या उत्तरपदमव्यवहितं भवतीत्य-
र्थः । यथा (५) त्रैष्टु॑भेन च्छन्द॑सा । (६) मे । भागः॑ ।
सौभाग्यं॑ पसः॑ । तद्धितइति किम् । (७) गा॒य॒त्री ।
त्रिष्टु॑प् । त्रिस्तु॑विति त्रि । स्तुप् । (८) सु॒भगे॑ति

(१) ७ । ३० ॥

(२) २ । १५ ॥

(३) १ । ९ ॥

(४) ४ । ९ ॥

(५) ११ । ७ ॥

(६) २० । ८ ॥

(७) २३ । ३१ ॥

(८) २५ । १४ ॥

सु । भर्गा । एकाच्चरट्वाविति किम् । (१) मयुः^१ ।
प्राजाप्रत्यऽइति प्राजा । प्रत्यः^२ । अनिहितइति कि-
म् । साम्प्राज्यमिति साम् । राज्यम् । अत्र पूर्वप-
दोत्तरपदयोर्व्यञ्जनेन व्यवधानं कृतम् ॥

अञ्चतिसहस्रयोः कृल्लोपे ॥ ३० ॥

अञ्चतेर्बातोः सहतेच्च कृत्प्रत्ययलोपे सति अवग्र-
हो न भवति । अञ्चतेर्न भवति यथा (२) प्राङ् (३)
प्रत्यङ् । सहतेः खल्वपि यथा (४) कृताघाट् । कृत-
धामा । (५) दुश्च्यवनः^५ एतनाघाट् । अञ्चतिस-
हस्रयोरिति किम् । (६) सुकृदिति सु । कृत् । देवः^६ ।
सविता । कृल्लोप इति किम् । (७) आच्येत्या । अ-
च्य । जानु (८) एतनासहस्रायेति एतना । सहस्रा-
य । (९) ॥

(१) २४ । ३१ । इमान्यप्युदाहरणानि पदपाठस्थानि शैयानीति ॥

(२) १९ । २ ॥

(३) १० । २९ ॥

(४) १८ । ३६ ॥

(५) १७ । ३६ ॥

(६) २७ । १२ ॥

(७) १९ । ५० ॥

(८) १८ । ६२ ॥

(९) अत्र इक्स्तिपौ धातुनिर्देशः । अञ्चुगतिपूजनयोः । सहस्रवर्षे इत्येतयोर्ग्र-
गम् । अनयोः कठस्तकिप्रत्ययलोपे नावग्रहः ॥

अनुरुसुब्ध्याम् ॥ ३१ ॥

उरु सु इत्येताभ्यां परयोरञ्चतिसङ्ख्योः कल्लोपे
सत्यवग्रहो भवति । यथा (१) उरुव्यञ्चमित्यु-
रुव्यञ्चम् । अश्चेत् । (२) सुवच इति सु । वच-
वेनः । चावः । (३) सुप्राङिति सु । प्राङ् । अजः ।
अधस्तनयोगस्यापवादः ॥

समिदाभ्याँवत्सरः ॥ ३२ ॥

सम् इदा एताभ्यां परो वत्सरशब्दो नावगृह्य-
ते । यथा (४) सँवत्सरः । असि । इदावत्सरः ।
समिदाभ्यामिति किम् । (५) परिवत्सर इति प-
रि । वत्सरः । इह्वत्सर इतीत् । वत्सरः ॥

प्राग्निभ्यामनिन्धौ प्रदलेषे ॥ ३३ ॥

प्र अग्नि इत्येताभ्यां प्रस्निष्टसन्धाववग्रहो न भ-
वति । इन्विदीप्तावित्यसुन्धातुं धर्जयित्वा । प्रशब्दा-

(१) १५ । २२ ॥

(२) १३ । २ ॥

(३) २५ । २३ ॥

(४) २७ । ४४ ॥

(५) पूर्वोक्तोदाहरणाङ्को बोध्यः ॥

हवति यथा (१) प्राणः^{१)} । अग्निशब्दाद्भवति यथा (२)
आग्नी^{२)}द्रुम् । यत् । सर^{३)}स्वति । प्राग्निव्यामिति
किम् । (३) वी^{४)}द्यायेति वि । ई^{५)}द्याय । अनिन्भाविति
किम् । (४) मे^{६)}हइति प्र । इ^{७)}हः । प्रक्षेपइति कि-
म् । (५) प्राय^{८)}णाय । प्राय^{९)}नायेति प्र । अय^{१०)}नाय^{११)} ॥

पाङ्खानुद्द्रोऽब्धाय सठंश-

यात् ॥ ३४ ॥

पाङ्खान् उद्द्रः अब्धाय एतानि पदानि संशया-
न्नावगृह्यन्ते । पक्तेः पूर्वपदं लायतेरुत्तरपदं । पा-
तेर्वा पूर्वपदं तनोतेरुत्तरपदम् । तथा उद्द्रः उत् ऊर्ध्वं
द्रवतीति उद्द्रः उत्शब्दः पूर्वपदं द्रवतेरुत्तरपदम् ।
यद्वा उत् रातीति उद्द्रः । उत् पूर्वपदं रातेरुत्तरपद-
म् । तथा अभ्रशब्दः अपो विभर्त्ति धारयतीत्यभ्रः ।
अप्शब्दः पूर्वपदं विभर्त्तेरुत्तरपदम् । यद्वा । अभ्रवभ्र-
मभ्रचरगत्यर्थाः । इत्यभ्रतेरेवाभ्रम् । एवमेतानि प-
दानि पूर्वोत्तरपदसंशयान्नावगृह्यन्ते । हेतुवचनाद-

(१) १९ । २ ॥

(२) १९ । १६ ॥

(३) १६ । ३० ॥

(४) ७० ॥

(५) २२ । ७ ॥

न्यत्रापि यत्र संशयस्तत्रावग्रहो न भवति । यथा (१)
अन्तरिक्षाय प्राङ्त्वान् । (२) अपासुद्गो मासाम् । (३)
अम्भाय स्वाहा । एतान्युदाहरणानि पदसंहिताया
अन्यान्यपि यथा सम्भवमूह्यानि चेति ॥

जनयत्याऽओषधयो वृषायिषत

च नास्मभ्यमजावयो व-

लगम् ॥ ३५ ॥

एतानि पदानि नावगृह्यन्ते । यथा (४) जनय-
त्यै । त्वा । (५) ओषधयः । प्रति । सोदङ्गम् । (६)
आ । वृषायिषत । (७) नहि । तेषाम् । अमा । च-
न । (८) कदा । चन । स्तरीः । अस्ति । (९) प्राव-
कः । अस्मभ्यम् । शिवः । भव । 'ह्रस्वव्यञ्जनाभ्यां
भकारादौ विभक्तिप्रत्यय' इत्यस्यापवादः । अजाव-

(१) २४ । २६ ॥

(२) २४ । ३७ ॥

(३) २२ । २४ ॥

(४) १ । २२ ॥

(५) ११ । ४४ । ओषतेर्ध्वनेर्निष्पन्नत्वादवग्रहप्राप्तेरपवादः ॥

(६) २ । ३० । 'अनितावन्तर्विकाराणाम् प्रागुक्तस्यपवादः' इति ॥

(७) ३ । ३२ ॥

(८) ३ । ३२ ॥

(९) ४ । १७ ॥

यो यथा (१) उपहृताऽइत्युप । हृताः । अजावयः ।
 'समासेऽवग्रह' इत्यस्यापवादः । बलगं यथा (२)
 इदमहन्तं बलं गमुर्निकरामि । (३) ॥

समानोऽनश्चमेधे ॥ ३६ ॥

समानशब्दोऽश्चमेधमन्त्रमुक्त्वाऽन्यत्र नावगृह्यते ।
 यथा (४) यस्मे समानः । यमसमानः । अनश्चमेधइ-
 ति किम् । (५) समानो यज्ञेन कल्प्यतां स्वाहा ।
 समानऽइति सम् । आनः । एकस्मै । द्वाभ्याम् ॥

व्वायुरसजातः समुद्रमहोरात्रे वि-
 श्वानरो विश्वाहाऽऽग्रणोऽसप-
 त्क्रा गोधा गोधूमाऽआशुशुक्षणि-
 न्तर्यग्रोधः पुरोडाशः प्रावणेभिरशि-
 तम तस्वकरा मस्मसाऽश्चत्थऽ-

(१) ३ । ४२ ॥

(२) ५ । २३ ॥

(३) बलं गमुद्रपामीति शास्त्रान्तरिणपाठः । बलं ते वृणोते वृण्वन् गच्छतीति बलं गः ॥

(४) ५ । २३ ॥

(५) २२ । ३३ ॥

उपस्तिर्माकिर्विश्वामित्तो गोपा-
 म्प्रऽउगमङ्गानि कक्षीवन्तमधात्य-
 वीरवन्नीहारेण प्रावृता घनाघनऽ-
 ईदृङ्चान्न्यादृङ्शूघनासः कुयवं कु-
 चरः प्रियङ्गवो नीवारा ऽएकादश
 षोडश चन्द्रमा ऽआयुवो व्याघ्रो
 ऽनङ्गवान्गविष्टिरः कपर्दिने पुलस्त-
 ये निषङ्किणे कुलालेढ्यः कम्मरि-
 ष्यः पुञ्जिष्ठेढ्यो द्वीप्याय नी-
 प्याय किठं शिलायैलवृदाः शूकारा-
 य शूकताय चराचरेभ्यः पारावता-
 न्गोलत्तिकाऽऽखुरजगरो विपन्न्य-
 वो दाक्षायणा ऽआयुधठं सुरामं वृ-
 हस्पतिर्वनस्पतिर्नराशठं सः सुरा-

भिन्नरिष्टायै ॥ ३७ ॥

वायुरित्यादीनि पदानि नावगृह्यन्ते । वायुर्यथा (१)
 वायुः पूषा स्वस्तये । असजातो यथा (२) यमसजा-
 तो निचखान । समुद्रं यथा (३) समुद्रं गच्छ स्वा-
 हा । अहोरात्रे यथा (४) अहोरात्रे पार्श्वे । वि-
 श्वानरो यथा (५) अर्वा विश्वानराय । विश्वाहा
 यथा (६) विश्वाहा शर्म यच्छतु । आग्रयणो य-
 था (७) आग्रयणोऽसि । असपत्न्या यथा (८) अस-
 पत्न्याः समनसस्करत् । गोधा यथा (९) गोधा का-
 लका । गोधूमा यथा (१०) गोधूमाश्च मे । आ-
 शुशुक्षिर्निर्यथा (११) त्वमाशुशुक्षिः । न्यग्रोधो

(१) ३३ । ४४ ॥

(२) ५ । २३ ॥

(३) ६ । २१ ॥

(४) ३१ । २२ ॥

(५) ३३ । २३ ॥

(६) १७ । ४८ ॥

(७) ७ । २० ॥

(८) ७ । २५ ॥

(९) २४ । ३५ ॥

(१०) १८ । १२ ॥

(११) ११ । २७ ॥

यथा (१) न्यग्रो^१घश्चमसैः^२ । पुरोडाशी यथा (२)
 पचन्गपुरोडाशान् । प्रावणेभिर्यथा (३) प्रावणेभिः^३ ।
 सजोषसः^४ । अशीतम यथा (४) अग्नेऽदधायोऽशी-
 तम । तस्करा यथा (५) तस्कराँ२ ॥५॥ उत । मस्मसा
 यथा (६) सर्वन्तस्मसा कुरु । अश्वत्ये यथा (७)
 अश्वत्ये वो निषदनम् । उपस्तिर्यथा (८) उपस्तिर-
 स्तु सोऽस्माकम् । माकिर्यथा (९) अग्ने माकिण्डे
 व्यथिः^५ । विश्वामित्रो यथा । (१०) विश्वामित्रोऽवृ-
 षिः^६ । गोपायथा (११) गोपान्तस्य दीदिवम् । प्रउ-
 गयथा (१२) प्रउगमुक्थमव्यथायै । अङ्गानि य-

(१) २२ । १४ ॥

(२) २१ । ५९ ॥

(३) १२ । ५० ॥

(४) २ । २० ॥

(५) ११ । ७७ ॥

(६) ११ । ७९ ॥

(७) ११ । ७९ ॥

(८) ११ । १०१ ॥

(९) १३ । ११ ॥

(१०) १३ । ५७ ॥

(११) ३ । २३ ॥

(१२) १५ । ११ ॥

था (१) अङ्गानि च मे । कक्षीवन्तय्यथा (२) कक्षी-
वन्तय्यऽश्रौशिजः । अदधाद्यथा (३) अश्रयहामनृते-
ऽदधात् । पवीरवद्यथा (४) लाङ्गलं पवीरवत् । नी-
हारेण यथा (५) नीहारेण ग्राहता । द्वे पदे अ-
नन्तर्हिते यथा (६) घनावनःऽक्षोभणः । (७) ईद-
ङ्चान्न्यादृङ् । द्वे पदे यथा (८) सिन्धोरिव ग्रा-
हवने शूवनासः । कुयवय्यथा (९) कुयवञ्च मे । कुच-
रो यथा (१०) मृगो न भीमः । कुचरो गिरिष्ठाऽ । प्रिय-
ङ्गवो यथा (११) प्रियङ्गवश्च मे । नीवारा यथा (१२)
नीवाराश्च मे । एकादश यथा (१३) एकादश च मे ।

(१) १८ । ३ ॥

(२) ३ । २९ ॥

(३) १९ । ७७ ॥

(४) ११ । ७१ ॥

(५) १७ । ३१ ॥

(६) १७ ३३ । अनन्तर्हिते द्वे पदे नावगृह्येते ॥

(७) १६ । ८१ । अत्रापि तथैव बोध्यम् ॥

(८) १७ १४ । अस्मिन्नपि तथा ॥

(९) १८ । १० ॥

(१०) ५ । २० ॥

(११) १८ । १२ ॥

(१२) इदमपि तथैव ॥

(१३) १८ । २४ ॥

षोडश यथा (१) षोडश च से । चन्द्रमा यथा (२) च-
 न्द्रमा ऽत्र प्रसू । आयुवो यथा (३) आयुवो नाम ।
 व्याघ्रा यथा (४) व्याघ्रा हेतिः । अनङ्गान्यथा (५)
 अनङ्गानधोरांमौ । गविष्ठिरो यथा (६) गविष्ठिरो
 नमसा । कपर्दिने यथा (७) नमः कपर्दिने च पु-
 लस्तये । द्वे पदे यथा (८) निषङ्गिणे । (९) कु-
 लालेभ्यः । (१०) कर्मांरेभ्यः । द्वे पदे अनन्तर्हिते
 यथा (११) नमः कुलालेभ्यः । कर्मांरेभ्यः । पुञ्जि-
 षे यथा (१२) पुञ्जिष्ठेभ्यश्च । द्वीप्याय । यथा (१३)

(१) १० । २५ । 'वर्णसङ्ख्येऽन्यतरत' इति विकल्पविधायकशाल्मेनावग्रहः
 प्राप्तः षट्त्रिंशत्सप्तत्रिंशदङ्कयोर्वदाहरणयोः परन्तु तस्यापवादभूतामिदं सूत्रमिति
 ग्रन्थकारानामाशयः ॥

(२) ३३ । ९० ॥

(३) १० । ३९ ॥

(४) १५ । १७ ॥

(५) २९ । ५९ ॥

(६) १५ । २५ ॥

(७) १६ । ४३ ॥

(८) १६ । २० ॥

(९) १६ । २७ ॥

(१०) इदमपि तथा ॥

(११) तथा ॥

(१२) इदमपि तथा ॥

(१३) १६ । ३१ ॥

दीप्याय च । नीप्याय यथा (१) नीप्याय च । किठं
 शिलाय यथा (२) किठं शिलाय च । ऐलट्टदा यथा
 (३) ऐलट्टदा ऽआयुयुधः । शूकाराय यथा (४)
 शूकाराय स्वाहा शूकताय । चराचरेभ्यो यथा (५)
 चराचरेभ्यः स्वाहा । पारावतान्यथा (६) अह्ने
 पारावतान् । गोलत्तिका यथा (७) गोलत्तिका ते
 ऽप्सरसाम् । आखुर्यथा (८) आखुस्ते पशुः । अज-
 गरो यथा (९) अजगरो वसूनाम् । विपन्यवो य-
 था (१०) तद्विप्रासो विपन्यवः । दाक्षायणा यथा
 (११) यदावद्वन्दाक्षायणाः । आयुधयथा (१२) परमे
 वृक्ष ऽआयुधनिधाय । सुरामयथा (१३) यत्सुराम-

-
- (१) १६ । ३७ ॥
 (२) १६ । ४३ ॥
 (३) १६ । ६० ॥
 (४) २१ । ८ ॥
 (५) २२ । २९ ॥
 (६) २४ । २५ ॥
 (७) २४ । ३७ ॥
 (८) ३ । ५७ ॥
 (९) २४ । ३० ॥
 (१०) ३४ । ४४ ॥
 (११) ३४ । ५२ ॥
 (१२) १६ । ५१ ॥
 (१३) १० । ३४ ॥

व्यभिः । बृहस्पतिर्यथा (१) बृहस्पते ऽअति य-
 त् । वनस्पतिर्यथा (२) वनस्पतिः शमितादेव ।
 नराशठंसो यथा (३) नराशठंसस्य महिमानम् ।
 सुरभिर्यथा (४) यऽईमाज्जः सुरभिः । नरिष्टायै
 यथा (५) नरिष्टायै भीमलम् । वैश्व हेतुभिरेतानि
 पदानि नावगृह्यन्ते तान्हेतून्त्यपदव्याजेन विचिख्या-
 सुराचार्यो वक्ष्यमाणसूत्रैर्वक्ष्यति । येषु च पदेषु व-
 क्ष्यमाणहेतवो न सन्ति ते जातिवचनाः प्रत्येतव्याः ।
 यथा (६) गोधूमपारावतादयः ॥

उत्तम्भनादीन्न्यादिसठंश-

यात् ॥ ३८ ॥

उत्तम्भनादीनि पदानि आदिसंशयान्नावगृह्यन्ते ।
 यथा (७) वरुणस्योत्तम्भनमसि । (८) उत्त्याय

(१) २६ । ३ ॥

(२) २९ । ३५ ॥

(३) २९ । २७ ॥

(४) २५ । ३५ ॥

(५) ३० । ६ ॥

(६) १७ । १२ ॥

(७) ४ । ३६ ॥

(८) ११ । ६४ ॥

बृहती भव । (१) उत्त्विंताय खाहा । एतानि त्रीणि
पदान्युदाहरणानि । उत्पूर्वपदानि सन्नेत्युत्तरपदं प्रथ-
ममुदाहरणम् । तिष्ठत्युत्तरपदे उत्तरे तत्रो “दः स्था-
स्त्वम्भोः पूर्वस्थे”ति सकारस्य पाणिनिः पूर्वरूपतां विद-
धाति । अन्ये तु सकारलोपं विदधति । अतउत्तरप-
दस्यादिसंशयादेतानि पदानि नावगृह्यन्ते । यथैता-
न्वेवमन्यान्यपि द्रष्टव्यानि ॥

विशौजा इत्यन्यायसमासात् ॥ ३९ ॥

विशौजा इत्येतत्पदमन्यायसमासान्नावगृह्यते । विडौ-
जा इति प्राप्ते यथा (२) विशौजाः । इन्द्रोऽसि वि-
शौजाः ॥

दित्यौही तुय्यौही पष्ठौही हृदयौ-
पशेनेति च ॥ ४० ॥

एतानि च पदान्यन्यायसमासान्नावगृह्यन्ते । अत्र
च ‘उवर्ण्यओकार’मिति ओकारे प्राप्ते औकारोऽन्या-
यसमासजः । (३) ॥

(१) २२ । ८ ॥

(२) १० । २० ॥

(३) अस्मिन्सूत्रोक्तोदाहरणाङ्गा द्रष्टव्याः । १० । २६ ॥ द्वितीयोदाहरणं तथै-
व ॥ १० । २७ ॥ २५ । ८ ॥

दुष्टरो विवष्टरो विवष्टपो विवष्ट-

म्भो विवष्टम्भनीम् ॥ ४१ ॥

दुष्टरइत्यादीनि पदानि नावगृह्यन्ते । अत्राच्चा-
र्थेण कारणन्तोपन्यस्तम् । तत्र तावद्दुष्टरपदं धातुसं-
शयान्नावगृह्यते । दुरुपसर्गः पूर्वपदन्तरतेः स्तृणाते-
र्वोत्तरपदमतो धातुसंशयान्नावगृह्यते । विष्टरादीनि
तु अन्यायप्रत्वसंहितानि । अतः षत्त्वागमोऽपि पदका-
रैर्न कृतः । (१) ॥

ऊवद्ध्यमुगणाऽउखऽइष्कृतिरिष्क-
र्त्तारमुदरमित्युपसर्गैकदेशलो-

पात् ॥ ४२ ॥

एतानि पदान्युपसर्गैकदेशलोपान्नावगृह्यन्ते । त-
त्र इष्कृतिः । इष्कृर्त्तारमित्यनयोः पदयोर्निरुपसर्ग-
स्य नकारलोपान्नावग्रहः शेषाणासुद उपसर्गस्यान्त्य-
वर्णलोपान्नावग्रहः । ऊवद्ध्ययथा (२) ऊवद्ध्यवातठं०
सम्भवन्तदारात् । उगणा यथा (३) नमऽउगणाब्धयः ।

(१) ९ । ३७ ॥ कारावमाध्यन्दिनास्तु षत्त्वागमार्थमवगृह्णन्ति । विष्टरादीनि तु
न । १४ । २३ ॥ १४ । ९ ॥ १४ । ५ ॥ इमे सूत्रौक्तोदाहरणाङ्का ज्ञेया इति ॥

(२) १९ । ८४ ॥

(३) १६ । २४ ॥

उखे यथा (१) अभीन्वतामुखे । इष्कतिर्यथा (२) इ-
ष्कतिर्नाम वः । इष्कर्त्तार्यथा (३) इष्कर्त्तारमह्वर-
स्य । उदर्यथा (४) ष्टीर्मै राण्डमुदरम् ॥

संस्कृतं । संस्कृतिर्मांसपचन्न्याः

पूँश्चलूमित्यनुनासिकोपध-

त्वात् ॥ ४३ ॥

एतानि पदानि अनुनासिकोपधत्वान्नावगृह्यन्ते ।
अत्र च 'शञ्चे' प्रकारादुकारोदयादित्यादिभिः सूत्रैरु-
पधानुनासिकत्वमुक्तम् । पक्षे चानुस्वारः, अतो वाज-
सनेयिनामुपधानुनासिकत्वान्नावग्रहः । काण्वानां तु
वक्ष्यमाणसूत्रेण । संस्कृत्यथा (५) तन्नौ संस्कृतम् ।
संस्कृतिर्यथा (६) सा प्रथमा संस्कृतिः । मांसपचन्वा
यथा (७) मांसपचन्न्याऽऽखायाः । पूँश्चलूमित्यथा (८)

(१) ११ । ६१ ॥

(२) १२ । ७४ । इदमुदाहरणं पदपाठस्थं बोध्यम् ॥

(३) १२ । १०१ । इदमपि तथैव ॥

(४) २० । ८ ॥

(५) ४ । ३४ ॥

(६) ७ । १४ ॥

(७) २५ । ३६ ॥

(८) २० । २० ॥

ब्रह्मीयं पूंश्चलूठं० हसयि ॥

अनुस्वारागमत्वादित्येके ॥ ४४ ॥

अनुस्वारागमत्त्वाद्देतोरेवैक आचार्य एतान्येव प-
दानि नावगृह्णन्ति । स०ठं०स्कृतम् । स०ठं०स्कृतिः । मा-
०स्पचन्याः । पूंश्चलूम् । काण्वादीनामयं पाठो
बोध्यः ॥

परीत्तोऽवत्तानां सुविताय स-

ग्निधरिति च ॥ ४५ ॥

एतानि पदानि यथायोगं कारकैर्नावगृह्यन्ते ।
तत्र तावत्परीत्तः । अवत्तानाम् । सग्निः । एतानि
धात्वेकदेशलोपान्नावगृह्णन्ते । सुवितायेत्येतत्पदं सु-
इताय सुगताय वा गृह्यते । सुताय प्रजायै वा इति
धातुसंशयान्नावगृह्यते । यथा (१) श्येने परीत्तोऽश्च-
चरत् । (२) अङ्गादङ्गादवत्तानाम् । (३) अग्निः सुद-
क्षः सुविताय । (४) सग्निश्च मे सपीतिश्च मे । इति
शब्दोऽन्यपदप्रदर्शनार्थः । यथैतानि पदानि एतैर्हेतु-

(१) ९ । ९ ॥

(२) २१ । ४३ ॥

(३) १५ । २७ ॥

(४) १८ । ९ ॥

भिन्नावगृह्यन्ते । एवमन्यान्यपि द्रष्टव्यानि । तथा
चोक्तम् । आदिमध्यान्तलुप्तानि समासान्यायभाञ्जि
च । नावगृह्णन्ति कवयः पदान्यागमवन्ति च ॥१॥ (१) ॥

वृद्धं वृद्धिः ॥ ४६ ॥

इत्युक्तार्थम् ॥

इति कात्यायनकृतौ प्रातिशाख्यसूत्रे

पञ्चमोऽध्यायः ॥

इत्यानन्दपुरवास्तव्यवज्जटस्त्रुनोष्वटेन कृतौ माह-
मोदाख्ये प्रातिशाख्यभाष्ये पञ्चमोऽध्यायः समाप्तः ॥

अनुदात्तमाकृष्यातमामन्वित-

वत् ॥ १ ॥

‘स्वरितवर्जमेकोदात्तम्पद’ मित्यत्र नामाख्यातोप-
सर्गनिपातानां सामान्येन स्वरोऽभिहितः । यथा ‘नो
नौ मे मदर्थ’ इत्यादिभिर्नान्नां विशेषस्वरोऽभिहितः ॥

(१) परीत्त इत्यत्र परि उपसर्गको दाण् धातुः । परिदत्तइत्यर्थः । अवत्सनामि-
त्यत्र च अवउपसर्गपूर्वको दाण् दाने धातुः । अवदत्तानामित्यर्थः । सुवित्तव्येत्यत्र
षूङ् प्राणिगर्भविमोचने । षु प्रसवैश्वर्ययोर्वा । प्रसक्तिने । ऐश्वर्याय केत्यर्थः । सुहुतंभ्य
वा यदाऽर्थस्तदा हु दानादानयोः । ओहाक् त्यागे धातुः । सन्धिरित्यत्र च सज्जिभ-
रिति प्राप्ते जयिक्षये ज्ञाधातुर्वा जानिप्रादुर्भावे वा । एषूहाहरणेषु धातुसंशयान्नावगृह्य-
न्ते महर्षयः । एतानि सर्वाण्युदाहरणानि पदमधिकस्तत्वात्पदपाठस्थानि बोधयानीति ॥

यथा 'वा च कमुचिदि'त्यादिस्त्रयेण निपातानां च विशेषस्वरोऽभिहितः । तथा नामाख्यातोपसर्गाणां विशेषस्वरोऽभिहितः । अतस्तत्प्रतिपादनार्थमाह । 'अनुदात्तमाख्यातमामन्वितव'दिति । आमन्वितपदवदनुदात्तमाख्यातं पदं भवति । यैरेव कारणैरनुदात्तमामन्वितं भवति तैरेव कारणैराख्यातमपीत्यर्थः । 'पदपूर्वमामन्वितमनानार्थं पादादा' वित्यामन्वितस्यानुदात्तत्वमुक्तमिहाऽपि तथैव भवति । एतदुक्तं भवति पूर्वपदमाख्यातमनुदात्तमभवति तच्च नानार्थं न भवति । अपादादौ च भवति पदपूर्वमभवति (१) । तद्यथा । मा वस्त्तेन ऽईशत । (२) गौपतौ स्यात । अनानार्थइति किम् । (३) पाहि यज्ज्ञं पाहि यज्ज्ञपतिम् । अपादादाविति किम् । (४) ऋद्ध्यामा तऽओहैः । (५) सुषाव सोममद्विभिः ॥

उपसर्गउपसर्गे ॥ २ ॥

उपसर्गोऽनुदात्तो भवत्युपसर्गे प्रत्यये । एतच्च समा-

(१) १ । १ ॥

(२) इदमपि तथा ॥

(३) २ । ६ ॥

(४) १५ । ४४ ॥

(५) १२ । २ ॥

सपदे एव द्रष्टव्यम् । यथा (१) सम्प्रच्यवङ्गम् । (२) सम्प्रयाताग्ने पथः । अत्र समुपसर्ग उपसर्गोऽनुदात्तः । उपसर्ग इति किम् । (३) प्रयतिः । प्रसितिः ॥

आम्नेडिते चोत्तरः ॥ ३ ॥

आम्नेडिते च पदे उत्तर उपसर्गोऽनुदात्तो भवति । यथा (४) सठ्ठं स॒मिति॒ सम् । सम् । (५) उपोपेत्युप । उप । अधस्तनयोगापवादः ॥

कृदाक्ख्यातयोश्चोदात्तयोः ॥ ४ ॥

उदात्ते कृत्प्रत्यये चाख्याते परभूते उपसर्गोऽनुदात्तो भवति । कृति भवति यथा (६) खः । आ । मरन्तः । (७) वि॒भ्वाज॑मानः सरिरस्य मङ्घ्रे । आख्याते भवति यथा (८) ये चार्क्वते पचनठ्ठं सम्भर-

(१) १५ । ५३ ॥

(२) इदमपि तथा ॥

(३) १८ । १ । तथा ॥

(४) ६ । १८ ॥

(५) ३ । ३४ ॥

(६) १५ । ४४ ॥

(७) १५ । ४७ ॥

(८) २५ । २९ ॥

न्ति । (१) यद्ब्रह्मसुदरस्याप्रवाति । कदाख्यातयो-
रिति किम् । (२) अनुगावोऽनु भगः कनीनम् ।
उदात्तयोरिति किम् । (३) प्रयतिः । प्रसितिः । (४)
शिवाए शग्माम्परि दधे । यत्र चानुदात्तत्वमुपसर्ग-
स्य न भवति । तत्र पृथक् पदत्वमपि भवति । 'स्वरित-
वर्जमेकोदात्तं पद' मिति परिभाषितत्वात् ॥

नाब्ध्येकाक्षरश्च स्वरसन्ध्ये-

ऽकृति ॥ ५ ॥

अभ्युपसर्गएकाक्षरश्चोपसर्गः स्वरात्मके उपसर्गे
स्वरसन्ध्ये चाकृति प्रत्यये नानुदात्तो भवति । अभेः
स्वरात्मके भवति यथा (५) अभि । आ । वर्त्तस्व ।
अभेः स्वरसन्ध्ये अकृति भवति यथा (६) याभिः ।
मित्रावरुणौ । अभि । असिञ्चन् । (७) अभि । ऐ-
ज्जेताम् । मनसा । एकाक्षरस्य स्वरात्मके भवति

(१) २५ । ३३ ॥

(२) २९ । १९ ॥

(३) १८ । १ ॥

(४) ४ । २ ॥

(५) १२ । ९४ ॥

(६) १० । १ ॥

(७) ३२ । ७ ॥

यथा (१) वि । आ । अकरोत् । (२) नि । अ-
सीदत् । एकाक्षरस्य स्वरसन्ध्येऽकृति भवति यथा (३)
सत्यधर्मा वि आनट् । (४) यत् । पुरुषम् । वि ।
अद्भुः । अधस्तनयोगापवादः ॥

आ पूतजातयोः ॥ ६ ॥

आ इत्ययमुपसर्गः पूतजातयोः प्रत्यययोर्नानुदा-
त्तो भवति । यथा (५) आ पूतः एमि । (६) आ
जातो विश्वा ॥

अधिनिप्रप्रति श्रिताऽत्तिणभा-

नवपचतेषु ॥ ७ ॥

अधि नि प्र प्रति एते उपसर्गाः श्रित अतिश
भानव पचत एषु प्रत्ययेषु नानुदात्तो भवति । अधि
यथा (७) अधि श्रिताः । नि यथा (८) विश्वान्यति-

(१) १९ । ७५ ॥

(२) १७ । १६ ॥

(३) १२ । १०२ ॥

(४) ३१ । १० ॥

(५) ४ । २ ॥

(६) १२ । १३ ॥

(७) २० । ३२ ॥

(८) १७ । १६ ॥

सम् । प्र यथा (१) प्रभानवः । प्रति यथा (२) ।
पचता गृभीषत ॥

उज्जेषमावर्त्तऽआपनीफणत्सनि-
ष्यदत्सँव्वतं प्रयाणठं । सञ्चरन्त-
ठं सठं रभद्ध्वं प्रसितिँव्विक्रम-
स्वेत्येते ष्वनु ॥ ८ ॥

उज्जेषम्, आवर्त्ते, आपनीफणत्, सनिष्यदत्,
सँव्वतम्, प्रयाणम्, सञ्चरन्तम्, सठं रभद्ध्वम्, प्र-
सितिम् । विक्रमस्व, एतेषु प्रत्ययेषु अन्वित्ययमु-
पसर्गो नानुदात्तो भवति । उज्जेषँयथा (३) अग्नी-
षोमयो रज्जितिमनूजेषम् । आवर्त्ते यथा (४) कृत्य-
स्याष्टतमन्वावर्त्ते । आपनीफणद्वया (५) प्रथामङ्का-
दस्यन्वापनीफणत् । सनिष्यदद्वया (६) अनु सठं स-
निष्यदत् । सँव्वतँयथा (७) वरिष्ठामनु सँव्वतम् । प्र-

(१) १५ । २४ ॥

(२) २१ । ६० ॥

(३) २ । १५ ॥

(४) २ । २७ ॥

(५) ९ । १४ ॥

(६) इदमपि तथैव ॥

(७) ११ । १२ ॥

घाण्यथा (१) अनु प्रयाणमुपसो विराजति । सञ्च-
रन्त्यथा (२) समान्योनिमनु सञ्चरन्तम् । सठं०
रभङ्ग्यथा (३) इन्द्रं० सखायोऽनु सठं० रभङ्गम् ।
प्रसित्यथा (४) तृष्णीमनु प्रसितिन्द्रुणानः । वि-
क्रमस्व यथा (५) दृथिवीमनु विक्रमस्व ॥

ओपप्रोदात्ते ॥ ९ ॥

आ उप एतौ प्रोपसर्गे उदात्ते प्रत्यये नानुदात्तौ
भवतः । आ यथा (६) आ प्रयातु परावतः । (७) आ
प्रयच्छदक्षिणात् । उप यथा (८) उप प्रयाहि । (९)
उप प्रागाच्छसनम् ॥

अभिप्रेत्युपसम्प्रयातप्रत्यातनु-

ष्वासुषाव ॥ १० ॥

(१) १२ । ३ ॥

(२) १३ । ५ ॥

(३) १७ । ३८ ॥

(४) १३ । ९ ॥

(५) १२ । ५ ॥

(६) १८ । ७२ ॥

(७) ५ । १९ ॥

(८) ३४ । १९ ॥

(९) २९ । २३ ॥

अभिप्रेहि उपसम्प्रयात प्रत्यातनुष्व आसुषाव ए-
ते चोपसर्गा यथागृहीता नानुदात्ता भवन्ति । य-
था (१) अभि प्रेहि निर्हृह । (२) उप सम्प्रयाताग्ने
पथः । (३) उदग्ने तिष्ठ प्रत्यातनुष्व । (४) आ
सुषाव सोममद्भिभिः । (५) ॥

प्रकृत्याऽऽख्यातमाख्या-

तपूर्वम् ॥ ११ ॥

यदुक्तमनुदात्तमाख्यातमामन्त्रितवदिति तस्याय-
मपवादः । आख्यातपूर्वमाख्यातं प्रकृतिस्वरं भवति ।
उदात्तपूर्वं भवति यथा (ई) पिबन्तु । मदन्तु । व्यन्तु ॥

उदात्ताच्चामन्त्रितादनन्तरम् ॥ १२ ॥

उदात्तस्वराच्चामन्त्रितपदादनन्तरमाख्यातं पदं प्र-
कृतिस्वरं भवति । यथा (७) अग्ने पवस्व (८) ह्रीत-

(१) १७ । ४४ ॥

(२) १५ । ५३ ॥

(३) १३ । १२ ॥

(४) १९ । २ ॥

(५) इमान्युदाहरणानि 'सठं०हिताया' मित्यधिकारसूत्रबलात्संहितोदाहरणानि
बोधयान्ति ॥

(६) २१ । ४२ । इमान्युदाहरणत्रयाण्येकाध्यायरूपानि ॥

(७) ८ । ३८ ॥

(८) २१ । २८ ॥

र्थज ॥

एकान्तरादपि ॥ १३ ॥

एकेन पदेन व्यवहितादध्यामन्वितपदात्परमाख्या-
तं प्रकृतिस्वरं भवति । यथा (१) ब्रह्मन्तश्चम्भ-
न्त्स्यामि । (२) देवाः । सधस्त्याः । विद । रूपम् ।
अस्य । अपिशब्देन विकल्पो ज्ञेयः । क्वचिद्भवति क्व-
चिन्न भवति । यथा । (३) इडे । आ । इहि ॥

यद्वृत्तोपपदाच्च ॥ १४ ॥

यदो वृत्तं यद्वृत्तं सर्वविभक्त्यन्तं सर्वप्रत्ययान्तं च गृ-
ह्यते । यत् । यम् । येन । यतः । यथा । यत्र । यदि ।
इत्यादि । यद्वृत्तोपपदात्परमाख्यातं पदं प्रकृत्या भ-
वति । (४) यमाङ्गर्मानवस्तीर्णवर्हिषम् । (५) येन-
ऽकृषयस्तपसा सन्नमायन् । (६) यतो जातोऽअरोच-

(१) २२ । ४ ॥

(२) १० । ६० ॥

(३) ३ । २० ॥

(४) १५ । ४९ ॥

(५) १५ । ४९ ॥

(६) ३ । १४ ॥

थाः । (१) यथाऽयँवायुरेजति । (२) यत्रऽवृषयो ज-
जग्मुः^१ । (३) यदि दिवा यदि नक्तमेना^२सि चक्र-
म । अत्र सर्वत्र यदि यद्वृत्तस्याख्यातपदेन सह स-
म्बन्धो भवति तदेवाख्यातपदं विक्रियते न तु सन्नि-
धिमात्रेण । यथा (४) यदेकस्याधिधर्माणि तस्यावय-
जनममि । तथा चोक्तम् । यस्य येनार्थसम्बन्धो दूर-
स्थस्यापि तस्य तत् ॥ अर्थतो (५) ह्यसमर्थानामान-
न्तर्यमकारणमिति ॥ १ ॥

हेतुश्च ॥ १५ ॥

हिगब्दाच्च परमाख्यातं पदं प्रकृत्या भवति । य-
था (६) आपो हिण्ठा मयोमुवः ॥

उत्तरेऽपि ॥ १६ ॥

उत्तरेऽपि हिगब्दे आख्यातं पदं प्रकृत्या भवति ।
यथा (७) इन्द्रो वा सुशन्ति हि ॥

(१) ८ । २० ॥

(२) १० । ५० ॥

(३) २० । १५ ॥

(४) २० । १७ ॥

(५) असमानानामिति 'ग' 'व' पुस्तकपाठः ॥

(६) ११ । ५० ॥

(७) ७ । ८ ॥

नेत् ॥ १७ ॥

नेदित्यस्मान्निपातसमाहारात्परमाख्यातपदं प्रक-
तिस्वरं भवति । यथा (१) एषनेच्चदपचेत यातै ॥

समनसस्करत् ॥ १८ ॥

करदित्येतदाख्यातं पदं समनस इत्येतत्पूर्वं प्रक-
त्या भवति । यथा (२) असपत्नाः समनसस्करत् ।
समनसइत्येतत्पूर्वमिति किम् । (३) सुद्धतो भेषजं
करत् ॥

द्वयोः पूर्व्वर्ठः समुच्चये ॥ १९ ॥

द्वयोराख्यातयोः समुच्चयेऽर्थे वर्त्तमानयोः पूर्वमा-
ख्यातं पदं प्रकृत्या भवति । समुच्चयो नाम द्वयोरा-
ख्यातयोरेकस्मिन्नर्थे समावेशः । यथा (४) शर्मा च
रत्यः । वर्मा च रत्यः । (५) शम् । च वद्धं परि च
वद्ध ॥

(१) २ । १७ ॥

(२) ७ । २५ ॥

(३) २१ । २२ ॥

(४) ११ । २७ ॥

(५) ८ । २२ । इमान्युदाहरणान्यपि पदपाठस्थानि बोधयानि ॥

वा विचारणे ॥ २० ॥

द्वयोराख्यातयोर्विचारणेऽर्थे वर्त्तमानयोः पूर्वमाख्यातम्प्रकृत्या भवति, वा शब्देन चेदाख्यातयोर्योगो भवति । संहितायां प्रायश्चउदाहरणानि न लभ्यन्ते । रूपोदाहरणानि तु दीयन्ते । देवदत्तो भुङ्क्तां वा यज्ञदत्तो वा भुङ्क्ताम् ॥

अहविनियोगे ॥ २१ ॥

द्वयोराख्यातयोर्विनियोगेऽर्थे वर्त्तमानयोः पूर्वमाख्यातं प्रकृत्या भवति । अहशब्देन चेदाख्यातयोर्योगो भवति । विनियोगो नाम द्वयोः पुरुषयोरेकस्मिन्कर्मणि एकस्य पुरुषस्य सम्बन्धः । अन्यस्मिन्कर्मण्यपरस्य सम्बन्धः । रूपोदाहरणन्दीयते । यथा 'देवदत्तोऽहं ग्रामं गच्छतु' यज्ञदत्तोऽहं गाः पालयतु ॥

एवावधारणे ॥ २२ ॥

द्वयोराख्यातयोरवधारणेऽर्थे वर्त्तमानयोः पूर्वमाख्यातं प्रकृत्या भवति । एवशब्देन चाख्यातयोर्योगो भवति । अवधारणं नाम द्वयोः कर्मणोर्द्वयोश्च कर्त्रोरेकस्मिन्कर्मण्येकः कर्त्ताऽवधियते परस्मिन्नग्न्यः । यथा देवदत्तएव ग्रामं गच्छतु, यज्ञदत्त एव भुङ्क्ताम् ॥

उपपदाप्रयोगेऽपि च ॥ २३ ॥

च वा ह अह एव एतानि च प्रभृतीनि यान्युपप-
दानि उक्तान्याख्यातस्य विकारीणि तेषामर्थो यदि
कथं चिदवगम्यते । तथा चोक्तम् । उसर्गात्परो यस्तु
पदादिरपि दृश्यते । उच्चस्थानास्थितो यत्र गुरुन्तत्रै-
व कारयेत् । इति तदा एतेषामुपपदानामुच्चारणेऽपि
आख्यातं न विक्रियते । तथा रूपोदाहरणम् । सुखं
भवथ । पवित्रकं भवथ । चशब्दोऽत्र लुप्तः । इत्थं भू-
तानि च्छन्दस्युदाहरणानि द्रष्टव्यानि ॥

परोपापावप्रतिपर्यन्न्वप्यत्यद्दया-
ङ्प्रसन्निर्दुरुन्निविस्वभि ॥ २४ ॥

परा उप अप अव प्रति परि अनु अपि अधि आ-
ङ् प्र सम् निर् दुर् उद् नि वि सु अभि एते विंश-
तिरुपसर्गाः प्रकृतिस्वरा भवन्ति । अस्य चोत्सर्गस्य
'उपसर्गो उपसर्गे' इत्यादिकः पुरस्तादपवादो द्रष्ट-
व्यः । प्रकृतिस्वरस्तु व्याकरणपरिपठितोऽत्र गृह्यते ।
तथा च तत्सुत्रम् । "निपाता आद्युदात्ता." "उपस-
र्गाश्चाभिवर्ज्य"मिति । तथा चोक्तम् । एकारोऽथ च-
कारो वा रेफो दीर्घपरेषु च । समुपसर्गेत्येतद्वेङ्गु-
रेव न संशयः ॥ १ ॥ उक्तानामुपसर्गाणामनित्यमुप-
सर्गगुरु । यथा (१) अनु योजाग्विन्वद्ग ते हरी । विं-

शतेरुपसर्गाणामुच्चा एकाक्षरा नव । आद्युदात्ता
शैतेषामन्तोदात्तस्त्वभीत्ययम् ॥ २ ॥

द्विस्पर्शम् ॥ २५ ॥

द्वौ स्पृशौ यस्मिन्पदे तद्विस्पर्शं पदम् । अधिकारसू-
त्रमेतत् ॥

वेत्तु वित्त्वाऽस्मदशूक्पात्तमभि-
त्यम्मृत्तिकाद्ध्वन्दात्तृ०समावव-
र्त्यद्विर्वृद्धिरराध्याऽअर्द्धशुद्धबुद्धन-
क्तं निषण्णस्विन्नानसन्ना-

इत्य् ॥ २६ ॥

एतेषु पदेषु द्वौ स्पृशौ भवतः । वेत्तु यथा (१) प्र-
ति त्वा पर्वती वेत्तु । द्वौ तकारौ संय्योगः । वित्त्वा
यथा । (२) वित्त्वा गातुमित । द्वौ तकारौ वकारश्च

यस्तु पदादिरपि दृश्यते । ईषत्स्पृष्टा यथा विशात्पदच्छेदात्परा मवेदिति १ । यदेव
लक्षणं यस्य वकारस्यापि तद्वेत् । इति । सर्वेषूपसर्गेषु परेषु यकारस्य जकारसदृशो-
नोच्चारणम् । अन्तस्थवकारस्य च द्वित्ववद्गुरूच्चारणं भवति परन्तु उपसर्गद्वयं विहाय
भवति तदुक्तममरेशेन स्वकृतवर्णरत्नप्रदीपिकायां शिक्षायां “अनु योजान्विन्द्र ते तु
उप युञ्जं विना तथा” । इति ॥

(१) १ । १९ ॥

(२) २ । २१ ॥

संयोगः ॥ अस्मद्द्रव्यक् यथा (१) अस्माद्द्रव्यं वा दृष्टे ।
 पात्रं यथा (२) आसन्ना पात्रं ज्ञनयन्त देवाः । द्वौ त-
 कारौ रेफश्च संयोगः । अभित्यं यथा (३) अभि त्य-
 न्देवम् । द्वौ तकारौ यकारश्च संयोगः, मृत्तिका यथा
 (४) अस्मा च मे मृत्तिका च मे । द्वौ तकारौ संयो-
 गः । ध्वं यथा (५) विमुच्यन्ममगन्त्या देवयानाः । द-
 कारधकारौ वकारश्च संयोगः, दात्रं यथा (६) सोमस्य
 दात्रमसि स्वाहा । द्वौ तकारौ रेफश्च संयोगः । स-
 माववर्ति यथा (७) समाववर्ति पृथिवी । रेफो द्वौ त-
 कारौ संयोगः । ऋद्विर्यथा (८) सत्रस्य ऋद्विरसि ।
 दकारधकारौ संयोगः । ऋद्विर्यथा (९) ऋद्वञ्च मे ऋद्वि
 षञ्च मे, दकारधकारौ संयोगः । अराद्धौ यथा (१०)
 अराद्धाऽएदिधिषुः प्रतिम् । दकारधकारौ यकारश्च-

(१) ७ । ३९ ॥

(२) ७ । २४ ॥

(३) ४ । २५ ॥

(४) १० । १३ ॥

(५) १२ । ७३ ॥

(६) १० । ६ ॥

(७) २० । १३ ॥

(८) ८ । ५२ ॥

(९) १० । ४ ॥

(१०) ३० । २५ ॥

सँय्योगः । अर्द्धो यथा (१) अन्तश्च परार्द्धश्चैता मे ।
 रेफदकारधकाराः सँय्योगः, शुद्धो यथा (२) शुद्धवा-
 लः सर्वशुद्धवालः । दकारधकारौ सँय्योगः । बुद्धो य-
 था (३) प्रबुद्धाय स्वाहा । दकारधकारौ सँय्योगः ।
 नक्तँयथा (४) मधु नक्तँमुतोषसः । द्वौ ककारौ त-
 कारश्च सँय्योगः । निषण्णो यथा (५) निषण्णाय स्वा-
 हा । द्वौ णकारौ सँय्योगः । खिन्नो यथा (६) खिन्नः
 स्नातो मलादिव । द्वौ नकारौ सँय्योगः । अन्नँयथा
 (७) अन्नपतेऽन्नस्य । द्वौ नकारौ सँय्योगः । सन्नो य-
 था (८) सन्नः सिन्धुः । द्वौ नकारौ सँय्योगः । 'स्व-
 रात्सँय्योगादि'रित्यस्य प्रायशोऽपवादभूतमेतत्सूत्रम् ॥

न क्षवृचिश्चिसतयेऽभ्यस्त्वैकम् ॥२७॥

क्ष इ चि श्वि स त य एतेभ्यः परस्त्वशब्दो न द्वि-

(१) १७ । २ ॥

(२) २४ । ३ ॥

(३) २२ । ७ ॥

(४) १३ । २० ॥

(५) २२ । ८ ॥

(६) २० । २० ॥

(७) ११ । ८३ ॥

(८) ८ । ५२ । इमान्युदाहरणानि सूत्रपठितानि महर्षिसंहिताया ज्ञातव्यानीति ॥

कथ्यते एकमेव व्यञ्जनं भवति । क्ष यथा (१) क्षत्रस्य
योनिरसि । वृ यथा (२) वृत्रं बधेत् । चि यथा (३)
चित्रं देवानाम् । श्वि यथा (४) श्वित्रादित्याना-
म् । स यथा (५) सत्रस्य ऽऋद्धिः । त यथा (६) तत्र
गच्छ । य यथा (७) यत्र पूर्वं परेताः । 'सुरासं-
योगादि'रित्यस्यायमपवादः । (८) ॥

ईध्याय वार्धीनसोद्राश्चरा-

इथेत् ॥ २८ ॥

ईध्याय वार्धीनस उद्रः एते स्वर्गाः सँयोगादयो न
द्विरुच्यन्ते । चरद्रव्यवचनाश्चेद्भवन्ति । ईध्याय यथा (९)
नमो वीध्याय च, धकाररेफौ यकारश्च सँयोगः । वा
धीनसो यथा (१०) वार्धीनसस्ते । रेफधकारौ रेफश्च

(१) १० । ८ ॥

(२) इदमपि तथा ॥

(३) ७ । ४२ ॥

(४) २४ । ३९ ॥

(५) ८ । ५२ ॥

(६) १३ । ३१ ॥

(७) इदमपि तथा ॥

(८) एतदप्यानुसार्जिणी अमरेशकृतवर्णरत्नप्रदीपिकाख्यशिक्षाकारिकापि । क्षत्र-
वृत्रस्तथा श्वित्रचित्रसत्रस्तथैव च । यत्र तत्र पदेष्वेषु व्यञ्जनं न द्विरुच्यते । इति ॥

(९) १६ । ३८ ॥

(१०) २४ । ३९ ॥

संय्योगः । उद्गो यथा (१) अपासुद्गो मासाङ्कश्रयः ।
चरद्रव्यवचना इति किम् । (२) समुद्गाय शिशुमा-
रान् । अत्र समुद्गशब्देन पार्थिवः समुद्र उच्यते ॥

उपोत्थित उत्तम्भनमुत्तमानो-
त्थायोत्थितायेति त्रीणि ॥ २९ ॥

उपोत्थितः उत्तम्भनम् उत्तमान उत्थाय उत्थिताय
एतेषु पदेषु त्रीणि स्पर्शस्थानि व्यञ्जनानि भवन्ति ।
उपोत्थितो यथा (३) क्रयायोपोत्थितोऽसुरः । द्वौ त-
कारौ यकारश्च संय्योगः । उत्तम्भनं यथा (४) वरुण-
णस्योत्तम्भनम् । त्रयस्तकाराः संय्योगः । उत्तमान
यथा (५) दिवमुत्तमान तेजसा । त्रयस्तकाराः सं-
य्योगः । उत्थाय यथा (६) उत्त्थाय बृहती भव । द्वौ
तकारौ यकारश्च संय्योगः । उत्थिताय यथा (७) उत्-
थिताय स्वाहा । द्वौ तकारौ यकारश्च संय्योगः ॥

(१) २४ । ३७ ॥

(२) २४ । २१ ॥

(३) ८ । ५५ ॥

(४) ४ । ३६ ॥

(५) २७ । ७२ ॥

(६) ११ । ६४ ॥

(७) २२ । ८ ॥

बर्हिरङ्ङुक्ताम्भद्रेण षड्ङुक्तं पङ्-
ङुक्तिः समङ्ङुधि परिवृङ्ङुधि पा-
ङ्ङुत्वामिति द्वावनुनासिकौ पूर्वा-
वारपन्तीवर्जमिति च ॥ ३० ॥

बर्हिरङ्ङुक्ताम् भद्रेण षड्ङुक्तम् पङ्ङुक्तिः समङ्ङुधि
परिवृङ्ङुधि पाङ्ङुत्वान् । एवं जातीयकेषु स्पर्शात्पूर्वौ
द्वावनुनासिकौ डकारौ भवतः । आरपन्तीशब्दं व-
र्जयित्वा । बर्हिरङ्ङुक्ताय्यथा (१) सम्बर्हिरङ्ङुक्ताम् ।
भद्रेण षड्ङुक्तय्यथा (२) सम्भा भद्रेण षड्ङुक्तम् ।
पङ्ङुक्तिर्यथा (३) पङ्ङुक्तिश्छन्दः । समङ्ङुधि यथा
(४) पयसा समङ्ङुधि । परिवृङ्ङुधि यथा (५) परि-
वृङ्ङुधि हरसा । पाङ्ङुत्वान्यथा (६) अन्तरिक्षाय पा-
ङ्ङुत्वान् । आरपन्तीवर्जमिति किम् (७) ऋतस्य सा-
मन्सरमारपन्ती ॥

(१) २ । २२ ॥

(२) ९ । ४ ॥

(३) १४ । १७ ॥

(४) १३ । ४१ ॥

(५) इदमपि तथैवोदाहरणम् ॥

(६) २४ । २६ ॥

(७) २२ । २ । इमान्युदाहरणान्यार्षेय संहिताया बोध्यानीति ॥

वृद्ध्वृद्धिः ॥ ३१ ॥

इत्युक्तार्थम् ॥

इति कात्यायनकृतौ प्रातिशाख्य
सूत्रे षष्ठोऽध्यायः समाप्तः ॥ ६ ॥

इत्यानन्दपुरवास्तव्यवज्जटसूनुनोब्बटेन कृते माह-
मोदाख्ये प्रातिशाख्यभाष्ये षष्ठोऽध्यायः समाप्तः ॥ ६ ॥

अथावसानानि ॥ १ ॥

अथ शब्दोऽधिकारार्थः । पदावसानान्यधिकृतानि
वेदितव्यानि । पदान्तस्येतिकरणस्यादेश्च यः सन्धिः स
उच्यते इति यावत् ॥

कण्ठ्यस्वरमेकारेण परिगृह्णीया-
त्प्लुतवर्जम् ॥ २ ॥

कण्ठ्यो ह्रस्वोऽकारो दीर्घश्चाकारः स्वरस्तमेका-
रेण परिगृह्णीयात्प्लुतमाकारं वर्जयित्वा । यथा (१)
यच्छन्तां पञ्च । पञ्चेति पञ्च । (२) द्रविणस्युर्व्विप-

न्त्यया । विप॒न्त्येति॑ विप॒न्त्यया॑ । प्लु॒तवर्ज॑मिति
किम् । (१) वि॒वेशा ३ इति॑ विवेशा ॥

ईव॒र्णमीका॑रेण ॥ ३ ॥

ईव॒र्णमीका॑रेण परिगृह्णीयात् । यथा (२) प॒शू-
न॒पाहि॑ । पा॒हीति॑ पाहि । (३) अ॒श्विना॑ सू॒नृता॑वती ।
सू॒नृता॑वतीति॑ सू । नृ॒ता॑वती ॥

उव॒र्णव्वाका॑रेण ॥ ४ ॥

उव॒र्णं व॒का॑रेण परिगृह्णीयात् । यथा (४) तव॑ द्यु-
म॒न्ना॒न्युत्त॑र्मानि सन्तु । स॒न्त्विति॑ सन्तु ॥

औ॒कारं च ॥ ५ ॥

औ॒कारं च व॒का॑रेण परिगृह्णीयात् । यथा (५)
अ॒भि पि॑ञ्चाम्यसौ । अ॒सा॒वित्य॑सौ ॥

ह्रस्वकण्ठोपधं विसर्जनीयान्तम-

(१) २३ । ४९ ॥

(२) १ । १ ॥

(३) ७ । १० ॥

(४) ३३ । १२ ॥

(५) ९ । ३० ॥

रिफितं विवृत्त्या ॥ ६ ॥

विसर्जनीयान्तम्पदं ह्रस्वाकारोपधं रिफितं यन्
भवति तद्विष्ट्या परिगृह्णीयात् । यथा (१) होता य-
जिष्ठोऽअहुरेष्वीडुयः । ईडयऽदतीडयः । (२) शुक्-
न्दुड्वेऽअद्वयः । अद्वयऽ इत्यद्वयः । अरिफितमिति
किम् । (३) सतश्च योनिमसतश्च वि वः । वि रि-
वः । (४) सुरुचो वेनऽआवः । आवरित्यावः ॥

दीर्घकण्ठ्योपधं विसर्जनीयान्त-

मेकारान्तमैकारान्तं प्लुतं

प्रगृह्यं च ॥ ७ ॥

दीर्घाकारोपधं विसर्जनीयान्तं च यत्पदं तद्विष्ट्या
परिगृह्णीयात् । एकारान्तमैकारान्तं प्लुतं प्रगृह्यं
च । एतानि च पदानि विष्ट्या परिगृह्णीयात् । दी-
र्घकण्ठ्योपधं विसर्जनीयान्तमुदाहरणं यथा (५) य-
तो जातोऽअरोचथाः । अरोचथाऽइत्यरोचथाः । ए-

(१) ३ । १५ ॥

(२) ३ । १६ ॥

(३) १३ । ३ ॥

(४) इदमपि तथा ॥

(५) ३ । १४ ॥

कारान्तंयथा (१) मन्त्रं^१वोचेमाग्नये^२ । अग्नय इह-
 त्माग्नये^३ । ऐकारान्तंयथा (२) उभा राघंसः सह मा-
 दयद्वौ^४ । मादयद्या इति^५ मादयद्वौ^६ । लुतंयथा (३)
 भुवनमा विवेशा^७ । विवेशा इति^८ विवेशा^९ । प्रगृ-
 ह्यंयथा (४) अग्न्याग्न्याव्वत्समुप^{१०} धापयेते । धापयेते
 इति^{११} धापयेते ॥

औकारान्तञ्चैके ॥ ८ ॥

औकारान्तं च पदमेके आचार्या विवृत्त्या परिगृ-
 ह्णन्ति । यथा (५) अभिषिञ्चाम्यसौ । असा इत्य-
 सौ । एक इति किम् । असाविच्यसौ ॥

भाव्युपधं च रिद्विसर्जनीयान्ता-
 नि रेफेण ॥ ९ ॥

अकण्वो भावीत्युक्तम् । भाव्युपधं रिद्विसर्जनीया-
 न्तं रिफितविसर्जनीयान्तं च यत्पदं तद्रेफेण परिगृ-

(१) ३ । २२ ॥

(२) ३ । २३ ॥

(३) २३ । ४९ ॥

(४) ३३ । ५ ॥

(५) ९ । ३० ॥

ह्नीयात् । यथा (१) अग्निमीडे पूर्वचित्तिन्नमोभिः ।
नमोभिरिति नमः । भिः । (२) सङ्घाकः । करिति
कः, (३) सतश्च योनिमसतश्च वि वः । व्वरिति
वः ॥

प्रथमान्तन्तृतीयेन ॥ १० ॥

प्रथमान्ताः कचटतपाः तृतीयान्ता गजडदवाः वर्ग-
प्रथमान्तं पदं स्ववर्गतृतीयेन वर्णेन परिगृह्णीयात् ।
यथा (४) विश्वा द्वेषांसि प्र सुमुग्ध्यस्मात् । अ-
स्मादित्यस्मात् । (५) समष्टत्त्वमानट् । आनडित्या-
नट् ॥

उत्तमान्तमुत्तमेन ॥ ११ ॥

उत्तमान्तं पदमुत्तमेनैव परिगृह्णीयात् । यथा (६)
वर्त्ती रुद्रा नृपाय्यम् । नृपाय्यमिति नृपाय्यम् ॥ (७) ॥

(१) १३ । ४३ ॥

(२) ३३ । ५९ ॥

(३) १३ । ३ । इमान्युदाहरणान्यार्धसंहिताया बोध्यामीति ॥

(४) २१ । २ ॥

(५) १७ । ८९ ॥

(६) २० । ८१ ॥

(७) एवं सर्वत्र पदक्रमादिविकृतिषु सन्धिकार्ये ज्ञेयमिति, परिग्रहोऽवग्रह इत्यन-
र्थान्तरम् । स कुत्र भवति कुत्र न भवति तत्क्षणं चैतच्छास्त्रीयपञ्चमाध्यायादौ 'स-

वृद्धं वृद्धिः ॥ १२ ॥

इत्युक्तार्थम् ॥

इति कात्यायनकृतौ प्रातिशाख्य-
सूत्रे सप्तमोऽध्यायः ॥

इत्यानन्दपुरवास्तव्यवज्जटस्त्रुनोब्बटेन कृते माह-
मोदाख्ये प्रातिशाख्यभाष्ये सप्तमोऽध्यायः समाप्तः ॥

अथातो वर्णसमाम्नायं व्या-
ख्यास्यामः ॥

अथातः शब्दादुक्तार्था वर्णा यस्मिन्समाम्नाये पञ्च-
न्ते स वर्णसमाम्नायस्तं व्याख्यास्याम इति प्रतिज्ञा स-
माधानार्थम् ॥

तत्र स्वराः प्रथमम् ॥ १ ॥

व्याख्यायन्त इति शेषः । तद्यथा । अइति । आइति ।
आ३इति । इइति । ईइति । ई३इति । उइति । ऊइति ।
ऊ३इति । ऋइति । ॠइति । ऋ३इति । लइति । लृ-
इति । लृ३इति ॥ (१) ॥

मासेऽवग्रहो ह्रस्वसमकाल इत्युक्तम् ॥

(१) लृकारवर्णस्य पाणिनिना दीर्घता न स्वीकृता परन्तु कात्यायनेनाभिमतम् ॥

अथ सन्ध्यक्षराणि ॥ २ ॥

व्याख्यायन्त इति सूत्रशेषः । एइति । ए३इति । ऐइति । ऐ३इति । ओइति । ओ३इति । औइति । औ३इति ॥ (१) ॥

इति स्वराः ॥ ३ ॥

व्याख्याता इति सूत्रशेषः ॥ (२) ॥

अथ व्यञ्जनानि ॥ ४ ॥

व्याख्यायन्त इति सूत्रशेषः । तद्यथा । किति खिति गिति घिति ङिति कवर्गः । चिति छिति जिति झिति झिति चवर्गः । टिति ठिति डिति ढिति णिति टवर्गः । तिति थिति दिति धिति निति तवर्गः । प्रिति फिति बिति भिति मिति पवर्गः ॥ (३) ॥

इति स्पर्शाः ॥ ५ ॥

व्याख्याताः इति सूत्रशेषः ॥

(१) एचप्रत्याहारान्तर्गतानां एकारादिवर्णचतुष्टयानां नास्ति ह्रस्वत्वम् ॥

(२) स्वृशब्दोपतापयोः । स्वर्यते शब्दतेऽनेन व्यञ्जनमिति करणेऽच्प्रत्ययो भवति ॥

(३) 'व्यञ्जनं कादी'ति प्रथमाध्यायस्थसूत्रात्कादीनामेव व्यञ्जनत्वमिति सूचितम् ॥

अथान्तस्थाः ॥ ६ ॥

व्याख्यायन्त इतिशेषः । यिति रिति लिति विति ॥

अथोष्माणः ॥ ७ ॥

व्याख्यायन्त इति शेषः । श्रिति षिति सिति ह्रिति ॥

अथायोगवाहाः ॥ ८ ॥

व्याख्यायन्त इति शेषः । अकारादिना वर्णसमाम्ना
येन संहिताः सन्त एते वहन्त्यात्मलाभं प्राप्नुवन्त्ययो-
गवाहाः । तथाहि ॥

*कइति जिह्वामूलीयः ॥ ९ ॥

इति ककारपूर्वं जिह्वामूलीयं दर्शयति तथा ॥

*पइत्युपध्मानीयः ॥ १० ॥

इति पकारपूर्वमुपध्मानीयं दर्शयति एवमन्यत्रापि
द्रष्टव्यम् ॥

अं इत्यनुस्वारः ॥ ११ ॥

इति स्वरपूर्वमनुस्वारं दर्शयति ॥

अः इतिविसर्जनीयः ॥ १२ ॥

इतिस्वरपूर्वं विसर्जनीयं दर्शयति ॥

हुँ इति नासिक्यः ॥ १३ ॥

अथमृक्शाखायां प्रसिद्धः ॥

कुँखुँगुँ इति यमाः ॥ १४ ॥

इति यमसञ्ज्ञका वर्णा विंशतिसङ्ख्याका भवन्तीत्ये-
तच्चतुर्थाध्याये व्याख्यातम् ॥

एते पञ्चषष्टिवर्णा ब्रह्मराशि-
त्मवाचः ॥ १५ ॥

य एते पञ्चषष्टिवर्णास्ते समस्ता एव तथीलक्षणो
ब्रह्मराशिः । एत एव कदाचिदानुपूर्व्या व्यवस्थिताः
सन्त ऋग्यजुःसामाख्या भवन्तीत्यर्थः । लौकिक्या अ-
पि वाचोऽयमेवात्मा । एतदेव स्पष्टीकर्तुमाह ॥

यत्किञ्चिद्वाङ्मयं लोके सर्वमत्र
प्रतिष्ठितम् ॥ १६ ॥

यत्किञ्चिद्वाङ्मयं लोके इत्यादि, एते पञ्चषष्टिवर्णा
लोके वेदे च प्रतिज्ञाता । यत्किञ्चिद्वाङ्मयं लोके
इत्यादिना ते च लोके लोकैरनियतदेशकालाः प्रयु-
ज्यमानाः सन्तो दृष्टाः । अतो वेदे तन्नियमार्थः स्वा-

ध्यायविधिः क्रियते ॥

शुचिना ॥ १७ ॥

स्नानाचमनादिभिः शौचयुक्तेन ब्रह्मचर्यवता त्रैव-
र्णिकेन स्वाध्यायोऽध्येतव्यः ॥

शुचौ देशे ॥ १८ ॥

अनुपहतदेशे स्वाध्यायोऽध्येतव्यः । तथा चोक्तम् ।
द्वावेतौ वर्ज्येन्नित्यमनध्यायौ प्रयत्नतः । स्वाध्यायभू-
मिं चाशुद्धामात्मानं चाशुचिं द्विजः ॥ १ ॥

शूद्रपतितयोरसंश्रावः स्वाध्यायो-
ऽध्येतव्यः ॥ १९ ॥

शूद्रपतितादयो न शृण्वन्ति तथा स्वाध्यायोऽध्येतव्यः ॥

ज्ञाने ॥ २० ॥

एवं स्वाध्यायविधिमुक्त्वाऽधुना वेदस्य ग्रन्थतोऽर्थ-
तश्च परिज्ञाने फलमाह ॥

पौरुष्यम् ॥ २१ ॥

पुरुष आत्मा तस्य विवेकस्य साधकं पौरुष्यं मुक्ति-
प्रदमित्यर्थः (१) ॥

स्वर्ग्यम् ॥ २२ ॥

स्वर्गसाधकञ्च (१) ॥

यशस्यम् ॥ २३ ॥

यशः कीर्तिसंस्थाः साधकम् । (२) ॥

आयुष्यम् ॥ २४ ॥

आयुषो वर्द्धनम् । यद्वेदस्यार्थज्ञाने तन्मुक्तिसाधकं
स्वर्गसाधकं च भवति ॥

तथा विभक्तिपरिज्ञानम् ॥ २५ ॥

पदार्थज्ञानं तन्मुक्तिसाधकम् । यत्प्रकृतिप्रत्ययादि-
परिज्ञानं तत्स्वर्गयश आयुषां साधकमित्ययं विभागो
ज्ञानस्य द्रष्टव्यः । (३) ॥

अथापि भवति ॥ २६ ॥

अयमेवार्थः प्रकृत्या । अन्योऽपि श्लोको भवति, वेद-

ति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनायेति श्रुतेः ॥

(१) यं यं कर्तुमधीयीत तस्य तस्याप्नुयात्फलम् । इत्युक्तेः ॥

(२) यशः शब्देन कीर्तिरप्युपलक्ष्यते । यशःकीर्त्योर्जोविन्मृतप्रशंसयोरपि साधकं
भवति ॥

(३) तथा च महाविभगवता पतञ्जलिना महाभाष्येऽप्युक्तम् । एकः शब्दः सम्य-
गुच्चारितः स्वर्गे लोके च कामधुग्भवतीति ॥

साध्ययनादधर्मः सम्प्रदानात्तथा श्रुतेः ॥

वर्णशोऽक्षरशो ज्ञानाद्विभक्तिपदशो

ऽपि च ॥ २७ ॥

वेदस्य पाठमात्रात्तावद्धर्मो भवति तथा शिष्येभ्यः
सम्प्रदानात् । तथा श्रवणात्तथा वर्णपरिज्ञानात्तथा-
ऽक्षरपरिज्ञानात् विभक्तिपरिज्ञानाच्च पदपरिज्ञाना-
च्चोत्तरोत्तरं धर्मो भवति । इत्येतदेवानुवर्तते ॥

तूयोविंशतिरुच्यन्ते स्वराः शब्दा-

र्थचिन्तकैः ।

द्विचत्वारिंशद्व्यञ्जनान्येतावान्व-

र्णसङ्ग्रहः ॥ २८ ॥

शब्दस्वरूपचिन्तकैस्त्रयोविंशतिः स्वरा अकारादय
उक्ताः । द्विचत्वारिंशद्व्यञ्जनानि कादीनि एतावान्वर्ण-
सङ्घातः ॥

तस्मिँल्लहलजिव्हामूलीयोपद्धमा-

नीयनासिक्या न सन्ति मादध्य-

न्दिनानाम् ॥ २९ ॥

लृकारो दीर्घः पुताश्चोक्तवर्जम्

॥ ३० ॥

अधस्तनस्योकरूपसूत्रेण वर्णानुत्क्वा अधुना ये मा-
ध्यन्दिनानान्नेष्यन्ते वर्णास्तान्निराकर्तुमाह । ढकारश्च-
र्गीयो डकारश्च तत्प्रकृती हलकारौ जिह्वामूलीयो य
उपध्मानीयश्च नासिक्यश्च एते वर्णा न सन्ति माध्य-
न्दिनानाम् ॥ किमेतावन्त एव नेत्युच्यते । लृकारो
दीर्घः । लाजीञ्छाचीनित्येवमादयो ये पठितास्तान्मु-
तान्वर्जयित्वा अन्ये लुता न सन्ति माध्यन्दिनानाम् ॥

वर्णदेवताः ॥ ३१ ॥

प्रकृतानां वर्णानां देवता वक्ष्याम इति सूत्रशेषः ॥

आग्नेयाः कण्ठ्याः ॥ ३२ ॥

कण्ठस्थाना वर्णा अग्निदेवत्या भवन्ति ॥

नैर्ऋत्या जिह्वामूलीयाः ॥ ३३ ॥

जिह्वामूलस्थाना वर्णा निर्वृतिदेवत्या भवन्ति ॥

सौम्यास्तालव्याः ॥ ३४ ॥

तालस्थाना वर्णाः सोमदेवत्या भवन्ति ॥

रौद्रा दन्त्याः ॥ ३५ ॥

दन्तस्थाना वर्णाः रुद्रदेवत्या भवन्ति ॥

ओष्ठ्या आश्विनाः ॥ ३६ ॥

ओष्ठस्थाना वर्णा अश्विदेवत्या भवन्ति ॥

वायव्या मूर्धन्याः ॥ ३७ ॥

मूर्धस्थाना वर्णा वायुदेवत्या भवन्ति ॥

शेषा वैश्वदेवाः ॥ ३८ ॥

एतानि स्थानानि विहाय येऽन्यस्थानजन्या वर्णास्ते
वैश्वदेवा भवन्ति । स्पष्टार्थान्येतानि सूत्राणि ॥

तत्समुदायोऽक्षरम् ॥ ३९ ॥

तेषां वर्णानां एकीभावलक्षणः समुदायोऽक्षरं भ-
वति । तद्यथा कखगघङेत्यादि ॥

वर्णो वा ॥ ४० ॥

वर्णसमुदायो वा वर्णो वाऽक्षरमभवति । तद्यथा ।
अआइईउऊ इत्येवमादि । वर्णसमुदायोऽक्षरं भव-
ति । कखगघङ दभा । एवमादि । अवस्थितविभाषा
चेयम् । स्वरः केवलोऽप्यक्षरं भवति । व्यञ्जनसमुदा-
यस्तु स्वरसंहित एवाक्षरं भवति । तथा च प्रतिपादि-

तम् । 'खरोऽक्षरम्' । 'सहाद्यैर्व्यञ्जनैः' । 'उत्तरैश्चावसितै'रिति । प्रथमाध्याये एवेति ॥

अक्षरसमुदायः पदम् ॥ ४१ ॥

अक्षराणां समुदायः पदं भवति । तद्यथा । (१) इषे त्वा । ऊर्जे । त्वा । (२) व्वाजः । च । मे ॥

अक्षरँवा ॥ ४२ ॥

अक्षरं वा पदं भवत्यक्षरसमुदायो वा पदं भवति । (३) इन्द्र । आ याहि । (४) यः । उ । विद्यायाम् । रताः । अक्षरसमुदायः पदं भवति । (५) इषे । त्वा । ऊर्जे । त्वा ॥

तच्चतुर्धा ॥ ४३ ॥

तदेतत्पदं चतुर्धा भिद्यत इति सूत्रशेषः ॥

नामाख्यातोपसर्गनिपाताः ॥ ४४ ॥

नामपदयथा गौरश्चः पुरुषः हस्तीत्येवमादि ।

(१) । १ ॥

(२) । १० । १ ॥

(३) । २५ । ५ ॥

(४) । ४० । १० ॥

(५) पूर्वोक्तमुदाहरणं शेषम् ॥

आख्यातपदंयथा पचति पठति गच्छति धावति
लगतीत्येवमादि । उपसर्गपदंयथा प्र परा आ अ-
नीत्येवमादि । निपातपदंयथा वा च कम् उचित् इ-
त्यादि । नामाख्यातोपसर्गनिपाता इति बहुवचनं प-
दचतुष्टयापेक्षम् ॥

तत्र प्रति विशेषः ॥ ४५ ॥

तत्र च वाक्यपदचतुष्टयं प्रति यो विशेषः स प्रति-
पाद्यते वक्ष्यमाणेन सूत्रेणेति वाक्यशेषः ॥

क्रियावाचकमाख्यातमुपसर्गो
विशेषकृत् ।

सत्त्वाभिधायकं नाम निपातः पाद-
पूरणः ॥ ४६ ॥

अथ व्यवस्थया पदचतुष्टयस्य लक्षणं कर्तुमाह ।
क्रिया । कालः । कर्त्ता । सङ्ख्या । उपसर्गे विशेष
इत्याख्यातार्थः । तत्र क्रियैव प्रधानमुपसर्गस्तु क्रियाया
एव विशेषं करोति । यथा पचतीत्यत्र पाचकः प्रतीय-
ते । पुनः प्रपचतीत्युक्ते आदिकर्त्ता प्रतीयते । एवं ग-
च्छत्यागच्छतीत्यादिषु द्रष्टव्यम् । सत्त्वं धातुः । कारकं
बैभक्तिरिति नाम्नोऽर्थः । तत्र सत्त्वमेव विशेषतोऽभि-

धीयते । निपातस्त्वर्थासम्भवे पादपूरणो भवति ॥

चतुर्दश निपाता येऽनुदात्तास्ते-
ऽपि सञ्चिताः ।

निहन्यते खल्वाख्यातमुपसर्गच-
तुष्टये ॥ ४७ ॥

एवं नामाख्यातोपसर्गनिपातानामर्थभेदं व्याख्या-
याधुना स्वरसंस्कारावपि तन्नोक्तावेवैतौ प्रतिपादय-
ति चतुर्दशेति । चतुर्दश निपाता येऽनुदात्तास्तेऽपि
अधस्तात्सन्विता एव वा च कमुचिदित्यादिसूत्रेण ।
निपातग्रहणमुपलक्षणम् । नाम्नामपि स्वरः सूत्र-
विहितएव यथा 'नो नौ मे मदर्थे त्रिद्व्येके' ध्वित्यादि-
ना । यच्च पदचतुष्टये आख्यातमुक्तं तन्निहन्यते अनु-
दात्तं भवति उपसर्गादीनां पदानां परभूतम् । उपसर्गे
विशेषकत्वं । सत्त्वाभिधायकन्नाम निपातः पादपूरणः
इत्येतन्नामानुपूर्वीमङ्गीकृत्यैतदुक्तम् । निहन्यते खल्वा-
ख्यातमुपसर्गाणां चतुष्टय इति । खलुशब्द उपलक्ष-
णार्थः । उपसर्गाणामपि तत्र स्वरो विहित इति 'उ-
पसर्ग उपसर्गे' इत्यादिना । एतदुक्तमभवति । यदध-
स्तान्मया प्रतिज्ञातं 'स्वरसंस्कारयोश्छन्दसि नियम' इ-
ति कृत्स्नं प्रतिपादितमित्यर्थः । अतः कृत्स्नमिदं शा-

स्त्वमिति कृत्वा आदर्शव्यं शिष्यैः ॥

अथ पदगोत्राणि ॥ ४९ ॥

एवं पदचतुष्टयगोत्राणि वक्ष्यन्त इति सूत्रशेषः ॥

भारद्वाजकमाख्यातं भार्गवं नाम
भाष्यते । वासिष्ठ उपसर्गस्तु निपा-

तः काश्यपः स्मृतः ॥ ५० ॥

भरद्वाजेन दृष्टमाख्यातं भारद्वाजगोत्रं वा भारद्वा-
जसगोत्रं वा तथा ऋगुणा दृष्टं नाम भार्गवगोत्रं भार्ग-
वसगोत्रं वा तथा वसिष्ठेन दृष्टा उपसर्गा वासिष्ठगोत्रं
वासिष्ठसगोत्रं वा तथा काश्यपेन दृष्टा निपाताः काश्य-
पगोत्राः काश्यपसगोत्रा वा ॥

अथ पददेवताः ॥ ५१ ॥

अथ पदानां देवता वक्ष्यन्त इति सूत्रशेषः ॥

सर्वन्तु सौम्यमाख्यातं नाम वायव्य-
मिष्यते ॥ आग्नेयस्तूपसर्गः स्यान्नि-

पातो वारुणः स्मृतः ॥ ५२ ॥

सर्वमाख्यातं सोमदैवत्यम् । सर्वन्नाम वायुदैवत्यम् ।

अग्निदैवत्या उपसर्गाः । निपाता वरुणदैवत्याः ॥

अथ वण्णदैवताः ॥ ५३ ॥

इत्याद्युपासनार्थमुक्तम् । एवं ह्युपासिताः सन्तोऽर्थानभिज्ञस्यापि पुरुषस्य फलप्रदा भवन्ति । (१) यो वा अविदितार्थेयच्छन्दोदैवतब्राह्मणेन सन्त्वेण याजयति वाऽध्यापयति वा स्याणुं वर्च्छति गर्त्तं वाऽऽपद्यते प्रमीयते पापीयान्भवतीत्येवमादिदोषेण सम्बध्यते । घृतकुल्या मधुकुल्या इत्येवमादिभिस्तु गुणैः सम्बध्यत एव ॥

इत्याह स्वरसंस्कारप्रतिष्ठापयिता

भगवान्कात्यायनः ॥ ५४ ॥

एवं स्वरसंस्कारयोः प्रतिष्ठापयिता भगवान्कात्यायनः । इदं शास्त्रमाह ॥

वृद्धं वृद्धिः ॥ ५५ ॥

इत्युक्तार्थः ॥ (२) ॥

(१) कात्यायनप्रणीतसर्वानुक्रमीयप्रथमकण्डिकायां सामवेदीयदैवतब्राह्मणं प्रमाणं चेति बुधैरभ्युपेयम् ॥

(२) इति सर्वानुक्रमे १ कण्डिकायां बोध्यम् । योमन्त्रदैवतज्ञः स स्वर्गलोकेरपीक्यते । न हि कश्चिदविज्ञाय याधातव्येन देवताः । श्रौतानां कर्मणां विप्रः स्मार्तानां चाश्रुते फलमिति च । व्याकरणापेक्षया इदं शास्त्रं वृद्धमतः कारणादेतच्छास्त्रा-

इति कात्यायनकृतौ प्रातिशाख्य- सूत्रेऽष्टमोऽध्यायः ॥

इत्यानन्दपुरवास्तव्यवज्जटसूनुनोवटेन कृते मातृ-
मोदाख्ये प्रातिशाख्यभाष्येऽष्टमोऽध्यायः समाप्तः ॥

अथ प्रतिज्ञासूत्रपरिशिष्टम् ॥

अस्य प्रतिज्ञापरिशिष्टसूत्रस्य भाष्यम् ॥

अस्वायोनिं जगद्योनिमयोनिं योनिजं जनम् ।

योनित्रासात्त्रायते तं वन्देऽहं हंसरूपिणम् ॥ १ ॥

योनियोगवशं धत्ते योनिजायोनिजं जगत् ।

सोमसोममहं वन्दे जङ्गमाजङ्गमात्मकम् ॥ २ ॥

तत्र भगवानाचार्यः कात्यायनः प्रत्यूहसङ्गतविधा-
ताय चिकीर्षितसमाप्त्यै च मङ्गलार्थस्थानन्तर्यार्थस्य
चाथशब्दस्यैकवृत्तगतफलद्वयन्यायेनैकशेषेण तन्त्रेणाष्ट-
त्या वा वदञ्छिष्यबुद्धिसमाधानाय प्रतिजानीते ॥

अथ प्रतिज्ञेति ॥ १ ॥

विधास्यत इति सूत्रशेषः । यतः प्रणवश्चाथशब्दश्च

ध्येतृणां वृद्धिरवश्यं भवति ॥ इति श्रीकाशीपुरवास्तव्यसारवाक्प्रवरश्रीविश्वेश्वरपाठ-
ककनिष्ठसूनुना व्यासोपाह्वश्रीयुगलकिशोरपाठकेन प्रणीता प्रातिशाख्यकीर्त्तिप्रकाशा-
ख्यटिप्पणी समाप्ता ॥

द्वावेतौ ब्रह्मणः पुरा । कण्ठं भित्वा विनिर्यातौ यतो
 माङ्गलिकाबुभौ । १ । प्रणवो वेदेष्वथशब्दो भाष्ये-
 ध्विति भाष्यन्ते वेदार्था यैस्तानि भाष्याणि तेष्वथश-
 ब्दो मङ्गलार्थः पुनस्तमेवाथशब्दमादाय औतस्मार्त्तसू-
 त्रकथनानन्तरं प्रातिशाख्यसूत्रकथनानन्तरञ्चैतस्याव-
 सरो यतस्तन्निरूपितकर्मनियुक्तमन्त्रेषु स्वरसंस्कार-
 नियमावश्यं भावतयाऽनुपदिष्टस्वरसंस्थानसंस्काराका-
 ङ्क्षैतदर्थमयमारम्भः । मङ्गलानन्तरारम्भप्रश्नकार्त्तव्य-
 योऽथेति त्रिकाण्डीस्मरणादुभयवचनो अथशब्दः, अयं
 हि कल्पानष्टादशपरिशिष्टानि च प्रणीतवतो भगवतः
 कात्यायनस्याशयो, यत्र कुत्रापि समानजातीयः साधा-
 रणधर्मोक्तश्चाकाङ्क्षितो न्यायविद्भिर्ज्ञात्वाऽनुष्ठास्य-
 इति । स्वतन्त्रेच्छता चानियमेनोक्तो हेतुः । “आत-
 श्चोपसर्ग” इति कर्मण्यङि, प्रतिज्ञानं प्रतिज्ञा सम-
 धिगम्येऽर्थे प्रतिज्ञाशब्दो भाक्तइत्याहुः । यज्ज्ञानेनो-
 त्तरमध्ययनादिधर्मनिरूपितानां स्वरादीनां ज्ञानं जा-
 यतेऽतः प्रतिज्ञानामसूत्रं विधास्यत इति शिष्यबुद्धेरे-
 काग्रता क्रियते । केचित्तु पाठादेवानन्तर्यसिद्धौ मङ्ग-
 लार्थएवाथशब्द इत्याहुः । (१) “स्वरसंस्कारयोश्च-
 न्दसि नियमात्स वेदे भवतीत्यतो वेदलक्षणमाचष्टे ॥

मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम् ॥ २ ॥

मन्त्रश्च ब्राह्मणं च तयोर्वेद इति नामधेयम् । तदु-
क्तं परिशिष्टे । मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदस्त्रिगुणं यत्न पठ्यते ।
यजुर्वेदः स विज्ञेय अन्ये शाखान्तराः स्मृता इति । तथा
च वेदो द्विधा मन्त्रात्मको ब्राह्मणात्मकश्च तत्राद्यः क-
र्माङ्गभूतद्रव्यदेवतास्मारकः । मन्त्रेण स्मृतं कर्म कर्त्तव्य-
मिति नियमार्थं वचनम् । (१) मन्त्रान्तैः कर्मादिः सा-
न्निपात्योऽभिधानादिति कल्पकदुक्तेः । स च संहितादि-
रूप इषेत्वादिति । न च (२) “वसन्ताय कपिञ्जलाना-
लभत” इत्यादिकस्यापि मन्त्रत्वापत्तिरिति वाच्यम् ।
न वयं सकलस्येत्वादिकस्य मन्त्रत्वं ब्रूमः । किन्तु ब्रा-
ह्मणभागव्यतिरिक्तस्य (३) “ब्रह्मणे ब्राह्मण” मिति
ब्राह्मणाध्यायद्वयस्य ब्राह्मणत्वमाचार्योक्तं तथापि म-
न्त्रधर्माः सर्वे भवन्ति मन्त्रान्तर्गतत्वात् । एवमेव ब्रा-
ह्मणान्तर्गतमन्त्रभागानामपि ब्राह्मणधर्मा एव भवन्ति ।
द्वितीयश्चतुर्धा विधिनिषेधार्थवादनामधेयात्मा । आ-
द्यो द्विविधो मुख्योऽमुख्यश्च । लिङ् । लोट् । लेट् ।
तव्यत्तवै प्रत्ययो मुख्यः । स च यजेतेत्यादिरूपः । वि-
द्यते चात्रांशद्वयम् । यजिनिरूपितं प्रत्ययनिरूपितं
च । प्रत्ययेऽप्यंशद्वयम् । आख्यातत्वलिङ्त्वाभ्याम् । प्र-
थमं दशलडादिषु । द्वितीयं स्त्रिङ्त्वं च । आख्यातत्वलि-

(१) कात्यायनमहर्षिप्रणीतस्य षड्विंशदध्यायात्मकस्य श्रौतसूत्रस्य प्रथमाध्यायस्य
तृतीयकण्डिकायाम् ॥

(२) संहि० २३ अ । २० मंत्रः ॥

(३) सं ३० अ० । ५ मंत्रः ॥

इत्वाभ्यां भावेनैवोच्यते । अतो लिङादीनां भावनावि-
धायकत्वेन मुख्यं विधित्वम् । तद्युक्तानि “स्वर्गकामो
यजेते”त्यादीनि वाक्यान्यपि विज्ञातभावनापेक्षितांश-
व्यसापेक्षकत्वाद्विशिष्टभावनानुष्ठापकत्वाच्चा मुख्यविधि-
रित्युच्यते । स पुनस्त्रिविधः । अपूर्वविधिर्नियमविधिः
परिसङ्ख्याविधिश्चेति भेदात् । तल्लक्षणानि । विधि-
रत्यन्तमप्राप्तौ परिसङ्ख्येति गीयत इति । उदाहर-
णानि । “ब्रीहीन्प्रोक्षति” । “ब्रीहीनवहन्ति” । “पञ्च
प्रञ्च नखा भक्ष्या” इति । “अश्वामिधानीमादत्त” इति ।
पुनराद्यस्त्रिविधा । विनियोगप्रयोगाधिकारविधिभेदा-
त् । सोऽयं विधिः प्रवर्त्तनात्मकः । निषेधस्तु “ब्राह्म-
णो न हन्तव्यो” “न हिंस्यात्सर्वाणि भूतानि” इत्यादि-
रूपः । अर्थवादस्तु विधिस्तावकः प्ररोचनाविशेषजनकः ।
“ब्रह्मवर्चसीहैव भवति” “य एवं विद्वानग्निहोत्रं जु-
होतीत्यादिः” । नामधेयन्तु गुणफलोपधानार्थम् । य-
था “अग्निहोत्रं जुहोतीत्यादिः । सर्वोऽप्ययं वेदे एव
तस्मिन्किमित्याह ॥

तस्मिञ्छुक्ते याजुषाम्नाये माध्यन्दि-
नीयके मन्त्रे स्वरप्रक्रिया ॥ ३ ॥

तस्मिन्मन्त्रब्राह्मणात्मके याजुषाम्नाये यजुषामनि-
यतपादावसानानामयं याजुषस्तस्मिन् याजुषे आम्नाये-
आम्नायशब्दो वेदवचनः “श्रुतिः स्त्री वेद आम्नाय-

इति त्रिकण्डिकास्मृतेः । अत्र तस्मिन्निति ग्रहणाद्या
जुष इति वक्तव्ये यजुषामेवायन्नियमः प्राप्नोति । न तु
तदन्तर्गतऋद्धमन्त्राणामपि वक्ष्यमाणवर्णविकारादि-
संस्कारांल्लक्षयति । यद्वा तस्मिन्याजुषाम्नाये याजुषेषु
आम्नायः यजुर्वेदेषु मुख्यः, अत्राम्नायशब्दो मुख्यवचनः ।
“आम्नायश्रुतिमुख्यो” रित्यभिधानात् । एकोत्तरश-
तसङ्ख्याकशाखासु मुख्ये । प्रपञ्चितं चास्य मुख्यत्व-
म् । “मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदस्त्रिगुणं यत्र पठ्यते” इत्यस्य
व्याख्यावसरेऽस्माभिरित्युपरस्यते । किं च माध्यन्दि-
नशाखामेव मुख्यामभिदधात्याचार्यप्रवृत्तिः तथा हि ।
ये मन्त्रा माध्यन्दिनशाखायामुक्ताः “प्रत्युष्टमित्याद-
यः, ते प्रतीकमात्रेणोदिताः । ये तु माध्यन्दिनशाखातः
काण्वशाखायामधिकाः समधीताः “यस्ते प्राण”मित्या-
दयस्ते सम्पूर्णा एव भगवता सूत्रे उपनिबद्धा ये तु क-
ण्वशाखातो माध्यन्दिनशाखायामधिकाः समधीताः
“शिवो नामेत्यादयस्ते तु द्वयोः शाखयोः समाम्नातम-
न्त्रा इव प्रतीकमात्रेणोपनिबद्धा इति द्वयोः शाखयोः
सममुख्यप्रवृत्तित्वे माध्यन्दिनशाखायामप्यनधीता इ-
व माध्यन्दिनशाखामन्त्राः सूत्रे भगवता उपनिबद्धा
भवेयुः । यस्तु सूत्रकृता काण्वमाध्यन्दिनशाखयोः
समाम्नातो “अस्मात्त्वमधि जातोऽसीति मन्त्रः सूत्रे
उपनिबद्धस्तस्य पत्न्यामप्यनूहप्रज्ञप्त्यर्थत्वेन प्रयोजनव-
त्त्वान्न दोषः । अत एवोक्तं भर्तृयज्ञपितृभक्तिवासुदेवक-

कोप्राध्यायदेवयान्निकादिभिर्भाष्यकारैः सकलमन्त्र
पाठः पत्न्यामप्यनूहप्रज्ञात्यर्थ इति । अत एवोक्तं वसि-
ष्टेन “माध्यन्दिनी तु या शाखा सर्वसाधारणी हि से-
ति सङ्क्षेपः । प्रकृतमनुसरामः । स्वरप्रक्रियेत्यनेना-
न्वयः । स्वर इति संस्कारस्याप्युपलक्षणम् । उत्पत्ति-
विशिष्टत्वात् । तथा च प्रातिशाख्यसूत्रम् । “स्वरसठं-
स्कारयोश्छन्दसि नियमः” । अस्यार्थः । स्वरा उदा-
त्तादयः । संस्कारा वर्णागमादेशलोपविकारप्रकृति-
भावप्रभृतयः । अनयोश्छन्दसि वेदे नियमः । तत्र
यजुषामनेकत्वात्कस्मिन्स्वरप्रक्रियेत्यत आह । ‘शुक्ले’
इति । शुक्लसञ्ज्ञके इत्यर्थः । तथा(१) “चेमानि शुक्लानि
यजूंषि वाजसनेयेन याजुञ्जवल्क्येनाख्यायन्ते इति ।
पञ्चदशयजुषां शुक्लसञ्ज्ञा विधत्ते । अस्यार्थस्तु इमा-
निकाखादीनि शुक्लानि शुद्धानि यजूंषि वाजसनेर-
पत्येन याजुवल्क्येन ऋषिणाऽऽख्यायन्ते शिष्येभ्य उप-
दिश्यन्ते इति विद्यारण्यश्रीपादैर्व्याख्यातः । वाजमन्त्रं
सनिर्हानमस्यासीति वाजसनिरिति महीधराचार्या
मन्त्रभाष्ये व्याख्यातवन्तः । परिशेषादितरत्कृष्णम् ।
तथा च यजुर्हि द्विविधम् । शुक्लं कृष्णं च । “शुक्लं कृ-
ष्णमिति द्वेधा यजुश्च समुदाहृतम् । शुक्लं वाजसनं क्षयं
कृष्णं तु तैत्तिरीयकम् । तत्र हेतुः । बुद्धिमालिन्यहेतु-
त्वान्तद्यजुः कृष्णमीर्यते । व्यवस्थित प्रकरणं तद्यजुः

(१) शतपथब्राह्मणस्य चतुर्दशकाण्डे बृहदारण्ये पञ्चमप्रपाठके ॥

शुक्लमितीर्यते । इत्यादिस्मृतेश्च । सञ्ज्ञान्तरमप्यस्य ।
 “आयातयामानि तु भानुगुप्तान्यन्यानि जातान्यतिनी-
 रसानि । यजुंषि तेषामथ याज्ञवल्क्यो ह्ययातयामानि
 रवेरवापेति” भविष्यद्वचनाद्विज्ञायते । परिशेषादितर-
 तयातयाममिति । आख्यायिका चास्य द्वादशस्कन्धवा-
 राहपुराणमहाभारतविष्णुपुराणादिषु प्रसिद्धेति वि-
 स्तरभयान्न लिख्यते । शुक्लानामपि पञ्चदशभेदात्म-
 कत्वान्न ज्ञायते कस्मिन्नित्यतस्तं विशेषयति । माध्यन्दि-
 नीयके इति । शुक्लस्यैवावान्तरभेदे माध्यन्दिनीयसञ्ज्ञे
 यजुर्वेदान्नाय इत्यर्थः । मध्यन्दिनसञ्ज्ञेन ‘महर्षिणा
 लब्धो याज्ञवल्क्याच्छाखाविशेषो माध्यन्दिनो यजुर्वे-
 दस्तमधीयन्ते विदन्ति वा शिष्यपरम्परया वर्त्तमानास्ते
 माध्यन्दिना उच्यन्ते । “स्वाध्यायोऽध्येतव्य” इत्यादि-
 नाऽध्येतव्यत्वेन माध्यन्दिनानामयं माध्यन्दिनीयः ।
 स एव माध्यन्दिनीयकस्तस्मिन्माध्यन्दिनीयके । स्वार्थे-
 कप् । “तस्येद” मित्यण् । “तदधीत” इत्यण् । सम्भा-
 व्यन्ते चात्रैते प्रत्ययाः । एवं विशिष्टे याजुषाम्नाये । म-
 न्वे । ये मन्त्रा इषे त्वादिवम्ब्रह्मान्तास्तेषु । ब्राह्मणे
 प्रातिस्विकरूपेण स्वराणां वक्ष्यमाणत्वान्मन्त्र इत्युक्तं
 जात्यभिप्रायेणैकवचनम् । ‘स्वरप्रक्रिया’ । स्वराणामु-
 दात्तादीनां प्रक्रिया प्रयोगः कथ्यत इति शेषः । ननु
 स्वराणामुक्तत्वात्पुनरुक्तिरिति चेन्न । “उच्चैरुदात्त”
 इति लक्षणोक्तिः । “हस्ते न ते” इति प्रदर्शनोक्तिः ।

अधुना हृदयाद्यङ्गविशेषे स्वरप्रदर्शनार्थमारम्भः ।
स्थानस्याभ्यर्हितत्वेन प्रथममनुदात्ताधिकरणमाह ॥

हृद्यनुदात्तः ॥ ४ ॥

हृदि हृदये । “पहन्” इत्यादिना हृदयस्य हृदा-
देशः । सामीप्ये सप्तमीयम् । हृदयसमीपे दक्षिणह-
स्तेनानुदात्तप्रदर्शनं भवतीति भावः । तथा चानुदात्त-
स्वरवर्णोच्चारणवेलायां हस्तस्थानं हृदयसमीपे भव-
ति । “हस्तेन ते” इति सूत्राद्वस्तेन । “दिशामनुक्तौ
प्राची स्यात्तथा हस्तस्य दक्षिण” इति परिभाषया द-
क्षिणेन । तल्लक्षणं यथा याज्ञवल्क्येनोक्तम् । चुलुनैका
स्फुटो दण्डी स्वस्तिको मुष्टिकाकृतिः ॥ इत्येते हस्त-
दोषाः स्युः परशुञ्चेति सप्तमः ॥ १ ॥ उत्तानं सोन्नतं
किञ्चित्सुव्यक्ताङ्गुलिरञ्जितम् ॥ स्वरविच्च स्वरं कुर्या-
त्प्रादेशोद्देशगामिनम् ॥ २ ॥ मनुष्यतीर्थोच्चं कृत्वा पि-
तृतीर्थोदकं ब्रजेत् । नामितं करपृष्ठे तु सुव्यक्ताङ्गुलि-
मोक्षणम् ॥ ३ ॥ अङ्गुष्ठस्योत्तरं पर्वं तर्जन्युपरि यद्भवे-
त् । प्रादेशस्य तु सो देशस्तन्मात्रं चालयेत्करम् ॥ ४ ॥
अनुदात्तो हृदि ज्ञेयो मूर्धन्युदात्त उदाहृतः ॥ स्वरि-
तः कर्णमूले स्यात्सर्वास्ये प्रचयः स्मृतः ॥ ५ ॥ तत्रैव ।
उदात्तं तु भ्रुवोः प्रान्ते प्रचं नासाग्रमेव च ॥ स्वरितं
चङ्गुलं विन्द्यान्निपाते तु षडङ्गुलम् ॥ ६ ॥ उत्थाने
तु नवाङ्गुल्यमेतत्स्वारस्य लक्षणम् । षडङ्गुलं तु जात्य-

ए इक्षानुपयगस्य च ॥ ७ ॥ चतुर्थभागमात्रं तु भूय-
स्तेनैव वर्त्तयेत् । इति ॥

मूर्द्धन्युदात्तः ॥ ५ ॥

उदात्तादीनि स्वरनामधेयानि (१) “उदात्तवानुदा-
त्त” इत्यादौ सव्यवहारार्थः, स च मूर्द्धनि मुखप्रदेश
इत्यर्थः मुखस्यापि मस्तकावयवत्वेन प्रसिद्धेः । अत ए-
वोक्तं मूर्द्धन्युदात्त उदाहृत” इति भगवता याज्ञवल्क्ये-
न । यथा (२) व्याघ्रवस्त्य । द्वयोरप्युदाहरणयोरनु-
दात्तोदात्तौ वैदिकप्रक्रियायां प्रसिद्धौ हृदि मूर्द्धनि च
क्रमेण प्रदृश्यते । स्वरितस्वरइक्षप्रदर्शनमाह ॥

श्रुतिमूले स्वरितः ॥ ६ ॥

उदात्तानुदात्तधर्मविशिष्टः स्वरितः श्रुतिमूले द-
क्षिणकर्णमूलसमीपे दर्शनीय इति । यथा (३) व्याघ्र-
वस्त्यत्रान्तिमो वकारः स्वरितः कर्णमूले प्रदृश्यते ।
ननु प्रचयकथनान्यूनमिति चेन्न । तस्यैतद्भेदात् ।
अतएवाङ्ग्य्याञ्जवल्क्यपादाः । “अथातस्त्वैस्वर्यलक्षणं
व्याख्यास्यामइति । उदात्तश्चानुदात्तश्च स्वरितश्च तथैव
च । लक्षणं वर्णयिष्यामि दैवतं स्थानमेव चे”ति ॥ १ ॥
वीनेवापि च नारदीयशिञ्जायाम् । “अतज्जर्ध्वं प्रवक्ष्या-

(१) प्रा० ४ अ० सू० १३२ ॥

(२) १ । १ ॥

(३) तथैव ॥

मि आर्चिकस्य स्वरत्रयम् । उदात्तश्चानुदात्तश्च तृतीयः
स्वरितः स्वरः ॥ १ ॥ स एवोदात्तइत्युक्तः स एव स्वरि-
तात्परः । स्वरितः प्रोच्यते तज्ज्ञैर्न चानान्यत्स्वरान्त-
रम् ॥ २ ॥ इति । तथा प्रचयस्यावान्तरभेदस्य प्राति-
शाख्येऽभिधानं, तथा जात्यादीनां स्वरितभेदानामभि-
धानादिह नोच्यन्त इत्याह ॥

एवं जात्यादयोऽभिहिताः ॥ ७ ॥

एवं प्रचयजात्यादयः स्वरितभेदा अभिहिता उक्ताः
पूर्वं प्रातिशाख्ये इति शेषः । ते च । जात्यः चैप्रो-
ऽभिनिहितस्तैरोव्यञ्जन एव च । तैरोविरामः प्रक्षिष्टः
पाददृत्तश्च सप्तम इति नारदेनोक्तः । एतेषां लक्ष-
णानि प्रातिशाख्येऽभिहितानि नाष्टमस्तु (१) तथाभा-
व्यः । कम्पस्वरस्य तथाभाव्यस्य वाजसनेयिनां संहिता-
पाठे निराकृतत्वात् । उक्तं च माध्यन्दिनशिञ्जायाम् ।
(२) औज्जिहायनकैर्माध्यन्दिनमतानुसारिभिः । अ-
वग्रहो यदा नीच उच्चयोर्मध्यतः क्वचित् ॥ १ ॥ तथा-
भाव्यो भवेत्कम्पस्तनूनत्वे निदर्शनम् । इति । पदपाठे
तु भवति कम्प इति । एतेषां स्वरित भेदानां हस्तप्रद-
र्शनं तु “स्वरितस्य चोत्तरो देशः प्रणिहन्त्यते” इति सू-
त्रे प्रातिशाख्यविवरणे स्पष्टम् । तद्यथा । उदात्तादनुदा-

(१) ताथा भाव्यस्तथाभाव्यश्चेति पाठद्वयं समीचीनं दृश्यते ॥

(२) औज्जिहायनकैरौज्जिहायनकैरित्युभयथा पाठः शतद्वयवर्षात्मकस्य प्रार्थनान्तर-
शुद्धद्वयस्य पुस्तकस्य च पाठः ॥

ते तु वामाया भ्रुव आरभेत् । उदात्तात्स्वरितोदात्ते
 क्रमाद्दक्षिणतो न्यसेत् ॥ १ ॥ प्रणिघातः प्रकृष्टो नि-
 घातः । नीचतामतितरां मनुष्यदानवद्वस्तो न्युजापर-
 पर्यायः । केषु चिद्भेदेषु पितृदानवदित्यादि । एतेषां
 प्रातिशाख्येऽभिधानादेते नोक्ता इति । एतेषां लक्ष-
 णानि याज्ञवल्क्यीयशिक्षायां नारदीयशिक्षायां चो-
 क्तानि । सयकारं^० सर्वं वाप्यक्षरं स्वरितं भवेत् । न
 चोदात्तं पुरस्तस्य जात्यः स्वारः स उच्यते ॥ १ ॥ उ-
 दाहरणानि यथा मनुष्यानिव । च^४म्बी इति, धान्यम-
 सि । कन्याऽइव ब्रूवतु । इउवर्णौ यदोदात्तावापद्येते
 यवौ क्वचित् । अनुदात्ते प्रत्यये नित्यं विन्द्यात्क्षैप्रस्य
 लक्षणम् ॥ २ ॥ यथा अस्वकम् । द्रुवन्तः । ए ओ आ-
 भ्यामुदात्ताभ्यामकारो रिफ्रितश्च यः । अकारो लुप्य-
 ते यत्र तं चाभिनिहितं विदुः ॥ ३ ॥ यथा (१) ते
 ऽवन्तु । (२) कुक्कुटोऽसि ॥ उदात्तपूर्वं यत्किञ्चि-
 च्छन्दसि स्वरितं भवेत् । एषः सर्ववज्रस्वारसौरोव्य-
 ज्ञनउच्यते ॥ ४ ॥ यथा (३) इ^५डे । रन्ते^६ । हव्ये^७ काव्ये^८ ।
 चन्द्रे^९ । ज्योते^{१०} । अवग्रहात्परो यत्र स्वरितः स्यादनन्त-
 रम् । तैरोविरामं तं विन्द्यादुदात्तो यद्यवग्रहः ॥ ४ ॥

(१) १९ । ५७ ॥

(२) १ । १६ ॥

(३) ८ । ४३ ॥

यथा (१) गोमदिति गो । मत् । (२) गोपताविति
 गो । पतौ । इकारं यत्र दृश्येत इकारेणैव संयुतम् ॥
 उदात्तमनुदात्तेन प्रस्निष्ठं तं निबोधत ॥ ६ ॥ यथा (३)
 अभि हन्वताम् अभीन्वताम् । स्वरिते चेतस्वरे चैव वि-
 दृष्ट्या यत्र दृश्यते ॥ पाददृष्टो भवेत्स्वारः श्वित्रऽआदि-
 त्वेति निदर्शनम् ॥ ७ ॥ यथा (४) पुत्त्र ईर्द्धे । अल-
 ममया प्रसङ्गागतचिन्तया प्रकृतमनुसरामः । यथा स-
 न्धे हृदि उदात्तादयो भवन्ति तथा ब्राह्मणेऽपि भव-
 न्तीत्याह ॥

ब्राह्मणे तूदात्तानुदात्तौ भाषि- कस्वारौ ॥ ८ ॥

उदात्तानुदात्तौ (५) भाषिकलक्षणलक्षितौ स्वरा-
 वेव स्वारौ स्वार्थेऽण् । ब्राह्मणे शतपथे भवतः । पूर्वं
 “हा”वितिसूत्रेणोक्तमेवार्थं स्पष्टतायै अनूच्यते । मूदूर्ध्वं
 हृदि च भवत इत्यनुदृष्ट्या लभ्यते । चरकाणां ब्राह्मणे

(१) २० । ८१ ॥

(२) १ । १ ॥

(३) ११ । ६१ ॥

(४) ११ । ३२ ॥

(५) भाषिकं नाम ब्राह्मणस्वरलक्षणविधायकं एतत्प्रतिज्ञासूत्रपरिशिष्टस्य भाषिकसू-
 त्रपरिशिष्टम् । “अथ ब्राह्मणस्वरसंस्कारनियमः” इत्यादि त्रिकण्डिकात्मकं सभाष्यं व-
 द्यमाणमग्रे मुद्राप्राप्यमाणं ज्ञातव्यं बुधैरिति ॥

तु मन्त्रवत्तैस्वर्यमिति । खाण्डकीयौखीयानां चातुःस्वर्यमपि क्वचित् । वाष्कजादिब्राह्मणानां तानस्वरूपैकस्वर्यमिति, साम्नां मन्त्रेऽपि सप्तस्वर्यं प्रातिशाख्येऽभिहितम् । एवं मन्त्रब्राह्मणात्मके वेदे स्वरप्रक्रियामुक्त्वा वेदाङ्गकल्पोऽप्येवमेव स्यादतच्चाह ॥

तानस्वराणि छन्दोवत्सूत्राणि ॥ ९ ॥

सूत्राणि सूचनात्सूत्रमुच्यतइति । सूत्राणि कल्पाख्यानि श्रौतस्मार्तप्रतिपादकानि छन्दोवच्छन्दसा तुल्यानि स्वरसंस्कारनियमेनेति शेषः । छन्दसि नियमस्तथा सूत्रेष्वपि तन्नियमो भवति वेदाङ्गत्वात् । सूत्रोपादानाच्छृङ्गग्राहिकन्यायेनेतरेषु वेदाङ्गेषु छन्दादिषु स्वरसंस्कारौ नियमेन भवतीति गम्यते । छन्दोवदित्यत्र 'येन तुल्य'मिति भवति नोदात्तादीनामप्याक्षेपो भविष्यतीत्युक्तं, तानस्वराणीति तानेकश्रुतिः स्वरौ येषां तानि तानस्वराणि तथाच संस्काराः "अनुस्वारस्य ठ०मित्यादेशादिरूपाः छन्दसि यथा तथा ऽत्रापि भवन्ति परं तु उदात्तादित्रैस्वर्यन्न भवति किन्तु एकस्वर्यं किं तत् तानस्वर्यं यथा चाज्जराचार्यपादाः । (१) तानो वा नित्यत्वादेकश्रुतिदूरात्सम्बुद्धौ यज्ञकर्मणि सुब्रह्मण्या सामजपन्युखयाजमानवर्जम् । स्पष्ट एवार्थः ॥

इतिकात्यायनकृते प्रतिज्ञापरिशिष्ट-
सूत्रे प्रथमा कण्डिका समाप्ता ॥

इत्यनन्तदेवयान्निकविरचिते प्रतिज्ञापरिशिष्टसूत्र-
भाष्ये प्रथमा कण्डिका समाप्ता ॥

अथ कतिचिदवशिष्टसंस्कारानाह ॥

अथान्तस्थानामाद्यस्य पदादिस्थ-
स्यान्यहलसंयुक्तस्य संयुक्तस्यापि
रेफोष्मान्त्याभ्यामृकारेण चावि-
शेषेणादिमध्यावसानेषूच्चारणे ज-
कारोच्चारणम् ॥ १ ॥

अथ स्वरप्रक्रियाकथनानन्तरं स्वरपदोपलक्षितसं-
स्कारप्रक्रियोच्यत इति शेषः । यद्वा पञ्चदशयजुःशा-
खासाधारणसंस्कारकथनानन्तर्यर्थोऽयमथशब्दः । य-
द्येते संस्काराः प्रातिशाख्ये निबद्धा भवेयुस्तदा सर्वेषां
काण्वादीनामपि स्फुरितरोऽपि तेषां पृथगेवोपदेशो
युक्तइति । ननु प्रातिशाख्यस्यान्वर्थसञ्ज्ञाकरणेन प्रति-
शाखं भिन्नत्वात्कथं तेषां धर्मप्राप्तिरिति चेन्नैतदेवम् ।

यतः प्रतिषञ्चदशशाखायां भिन्नानि प्रातिशाख्यानि
नोपदिष्टानि किं तु श्रौतस्मार्त्तसूत्रवत्प्रातिशाख्यसूत्र-
मपि पञ्चदशशाखासाधारणं समान्नातम् । विज्ञाप-
यति चासुमर्थमाचार्यप्रवृत्तिः । तथाहि “देवेभ्यः शु-
न्ध्वं देवेभ्यः शुन्ध्वमित्येके” अस्मिन्नेकपदग्रहणम-
न्यशाखापरमिति भाष्यकृतः । एवं (१) व्यायवस्त्येत्युपा-
यवस्त्येति चैके इत्यादि । एवं प्रातिशाख्यसूत्रेऽपि शा-
खान्तराभिप्रायेण “हरिशयेत्येके” इत्यादिषु एकपदम-
न्ववोचत् । एकस्यामेव शाखायां मतान्तरेण पाठान्त-
रमिति विरोधीति सङ्क्षेपः । प्रतिशाखासु भवं प्रा-
तिशाख्यमिति सम्भवाभिप्रायेण बहुवचनान्तयोगे-
नापि निर्वाह इत्यास्तान्तावत् ॥ अन्तस्थानामाद्यस्थो-
च्चारणे जकारोच्चारणमित्यनेनान्वयः कर्त्तव्यमिति शे-
षः । न च न ज्ञायतेऽन्तस्था इति पदार्थबोधस्य वा-
च्यम् । ज्ञायतेऽन्तस्था इति वक्तव्यम् । कथं ज्ञायतेऽ-
न्तस्था इति ज्ञापयन्त्येवाचार्याः । यदाहुः प्रथमाध्या-
ये “उपदिष्टा वर्णा” इति, अष्टमाध्याये “अधातो वर्ण-
समान्नायं व्याख्यास्याम” इति, “तत्र स्वराः” । अइति ।
आइति । आ३इति । इइति । ईइति । ई३इति । उइति ।
ऊइति । ऊ३इति । ऋइति । ऋ२इति । ऋ३इति ।
ॠइति । ॠ३इति । एइति । ए३इति । ऐ-
इति । ऐ३इति । ओइति । ओ३इति । औइति ।

औ३इति ॥ “अय स्पर्शाः” । किति खिति गिति धि-
 ति डिति कवर्गः । चिति छिति जिति भित्ति झिति
 चवर्गः । टिति ठिति डिति ढिति णिति टवर्गः । तिति
 थिति दिति धिति निति तवर्गः । पिति फिति बिति भि-
 त्ति मिति पवर्गः । “अथान्तस्थाः” । यिति रिति लिति
 विति । “अथोष्माणः” । श्रिति षिति सिति । हिति ।
 इति व्यञ्जनानि । “अथायोगवाहाः” । अकारादिस्व-
 रयोगे स्वरूपं वहन्ति ते केवलाः । ५कइति जिह्वाम-
 लीयः । ५पइत्युपध्मानीयः । अं इत्यनुस्वारः । अः इतिवि-
 सर्जनीयः । ऊं इति नासिक्यः । कुँखुँगुँघुँ एते यमाः ।
 इत्यन्तस्थादीन् “निर्द्देश इतिना” “कारेण च” । आभ्यां
 सूत्राभ्यां वर्णनिर्द्देशः । तथा चान्तस्थामाद्यस्य यकारस्य
 स्थाने यकारोच्चारणं भवति । अत्र लाघवाद्यकारस्ये-
 तिवक्तव्ये लिपिभ्रमात्सादृश्याद्वाऽन्यस्य यकारादिकस्य
 मा भूदित्यन्तस्थानामाद्यस्येति ग्रहणम् । एवमन्यत्राप्यु-
 च्यम् । सर्वस्य प्राप्तमतस्तं विशेषयति पदादिस्थस्येति ।
 सुबाद्यन्तस्य पदस्यादिः पदादिस्तस्मिन्निति, पदादिस्थ-
 स्य यथा (१) युञ्जानः प्रथमम् । अत्र पदादिस्थत्वाद-
 कारस्य स्थाने जकारोच्चारः । पदादिस्थस्येति किम् ।
 (२) तच्चाय । धियः । अत्र मा भूत् । (३) अस्मिन्त्युञ्जे

(१) ११ । १ ॥

(२) इदमापि तथा ॥

(३) १२ । ५७ ॥

इत्यत्रातिप्रसङ्गाद्भागासिद्धेर्वा पुनर्विशिनष्टि । अन्यह-
लसंयुक्तस्येति । अन्येन हला व्यञ्जनेनासंयुक्तस्य योग-
मप्राप्तस्य यथा । इदमुदाहरणं प्रत्युदाहरणं च । (१)
अस्मिन्त्यच्चे । स्वधया । (२) घृताचीर्यन्तु । हर्यतेत्यत्र
पदादिस्थत्वाभावान्न स्यादतस्तं पुनर्विशिनष्टि । संयु-
क्तस्येति । रेफो रकारः ऊष्माणामन्त्यो हकार आभ्यां
युक्तस्यापि अविशेषेण पदादिस्थत्वादिविशेषमन्तरेणा-
दिमध्यावसानेषु पदस्थस्येत्यर्थः । जकारोच्चारणम् ।
यथा (३) सूर्य्य वडा । (४) हर्यत । घृताचीर्यन्तु ।
व्युत्क्रमेणान्तमध्यादीनामुदाहरणानि । घृताचीर्यन्-
त्वित्यत्रोभयत्र प्रयोजकम् (५) कृणुह्यध्वरन्तः । (६) गे-
ह्याय च (७) तेन मच्छ्वेदो भूयाः । इति क्रमेणा-
दिमध्यावसानेषु हकारयुक्तोदाहरणम् । एताभ्यामेव
युक्तस्येति किम् । (८) भर्गो देवस्य । (९) अद्यवोचत् ।

(१) इदमपि तथा ॥

(२) ३ । ४ ॥

(३) ३३ । ३२ ॥

(४) पूर्वोक्तमुदाहरणं ज्ञेयम् ॥

(५) २२ । २७ ॥

(६) १६ । ४४ ॥

(७) २ । २१ ॥

(८) ३ । ३६ ॥

(९) १६ । ५ ॥

अत्र मा भूत् । आभ्यां युक्तत्वेऽपि । (१) अग्निज्यो-
तिरित्यत्र मा भूदिति काकाक्षिगोलकन्यायेन पुनरु-
पात्तेन अन्यहलसंयुक्तेति विशेषणेन सम्बद्धाते । (२) अ-
ग्निज्योतिः । (३) व्यर्थाय च । न केवलमाभ्यामत-
आह । ऋकारेण चेति । ऋकारेण संयुक्तस्य यकार-
स्य च । अत्रापि चकारादविशेषणेत्यादिकमन्वेति ।
यथा (४) सामान्यृग्भिः । अत्र लाघवेन रेफोष्मान्यऋका-
रैः परे इति वक्तव्ये भिन्नपदोपादानेनान्यहलसंयुक्तस्ये-
ति न विशेषणीयमिति ध्वन्यते । तथा च सामान्यृग्भि-
रित्यत्रान्यहल्योगेऽपि चवर्गटतीयोच्चारणं भवतीति ।
अत्र संयुक्तपदेन योगोऽभिधीयते । पारिभाषिकोऽपि
क्वचित् । अन्यहलसंयुक्तस्येति विशेषणात् (५) धुर्य्यौ,
(६) नृपाय्यमित्वादिषु न स्यादत आह ॥

द्विर्भावेऽप्येवम् ॥ २ ॥

एवं पदादिमध्यावसानेषु यकारं द्विर्भावे द्वित्वे स-

(१) ३ । ९ ॥

(२) पूर्वोक्तमुदाहरणं बोध्यम् ॥

(३) १६ । ३९ ॥

(४) २० । १२ ॥

(५) २ । १७ ॥

(६) २० । ८१ ॥

ति ज्ञेयम् । द्वित्वसिद्धमसिद्धं वोपादीयते । यथा (१)
धाव्याः (२) नृपाय्यम् । (३) धुय्यौ । प्रातिशाख्ये ऽ-
पि भगवता कात्यायनेन याज्ञवल्क्येन चैषत्सृष्टस्य य-
कारस्य पदादिस्थले पञ्चदशशाखांसाधारण्येन सृष्ट-
प्रयत्नता विहिता । अतः सम्प्रदायविद एवं विधे य-
कारे सृष्टप्रयत्नज्ञापनाय मध्ये बिन्दुं प्रक्षिपन्ति । सृ-
ष्टप्रयत्नं स्थानैक्याच्चवर्गतृतीयसदृशं यकारं पठन्ति च ।
अन्तस्थप्रकरणसङ्ख्याऽऽह ॥

अथापरान्तस्तथस्यायुक्तान्यहलः सँ-
युक्तस्योष्मऋकारैरेकारसहितो-
च्चारणम् ॥ ३ ॥

(१) १९ । २४ ॥

(२) पूर्वोक्तम् ॥

(३) तथोदाहरणं ज्ञेयम् ॥

(४) १ । २२ । सँय्यौमीत्यत्र “अन्तस्थामन्तस्थास्त्विति प्रा० ४ अ० १०
सूत्रेण सानुनासिको द्वितीयो यकारः । १० । ८ । जराट्यवसि । अत्र स्वरात्सँय्योगा-
दिरित्यनेन प्रा० अ० ४ सू० १०० त्रेण द्वित्वम्भवति । अत्र कश्चन विशेषोऽमोष-
नन्दिन्यां शिक्षायामुक्तः । उपसर्गात्परस्य यकारस्य न जकारोच्चारणम् । १७ । ९ ।
उप यज्जठे० हविश्च नः । द्विर्भाकेऽयन्निषेधो न भवति । १ । २२ । सँय्यौमि । प-
दान्तत्वेन सिद्धे पुनर्जकारोच्चारणविधानं तेनोपसर्गात्परत्वेऽपि ८ । ३५ । स्तुती-
रूपं यज्जं च मानुषाणाम् । ३ । ५ । अनु योजान्विन्द्रेत्यत्र चवर्गतृतीयोच्चारणं कर्त्त-
व्यमतएवामरेशकृतवर्णरत्नप्रदीपिकायां प्रातिशाख्यानुसारिण्यां शिक्षायां प्रतिपादितम् ।
अनु योजान्विन्द्र ते तु उप यज्जं तथा विना । अवग्रहे च १ । १२ । देवयुवमि-

अथाद्यान्तस्य कथनानन्तरं अपरान्तस्यस्य द्वितीया-
न्तस्यस्य रेफस्येति यावत् । कीदृशस्य अयुक्तान्यहलः
अयुक्तं योगमप्राप्तं अन्यहल् यस्मिन् अयुक्तान्यहल् त-
स्यायुक्तान्यहलः तस्य ऊष्मणवृत्कारैः संयुक्तस्य ऊष्मा-
णः पूर्वोक्ताः शषसहाः तैर्युक्तस्य एकारसहितोच्चा-
रणं एकारसहितमुच्चारणं कर्तव्यमिति शेषः । अत्रा-
पि मण्डूकमुत्तिन्यायेनाविशेषेणादिमध्यावसानेष्वित्य-
नुवर्तते । उदाहरणम् । यथा (१) सृज प्रशस्त द-
र्शतम् । इत्यत्र दरेशतमित्येवं पाठो न तु रेफसहितः ।
एवमन्यत्र । (२) वर्षो वर्षीयसि । सकारोदाहरणे
प्रकारोदाहरणमेव भवति । तथा च इण् कवर्गाभ्यां
परस्य प्रस्य मूर्धन्य इति स्मृतिः । इण् मध्ये रेफस्य पा-
ठेन तदुत्तरस्य सकारस्य प्रकार एव स्यात् । पूर्वोक्ता-
ण्यग्रहाः सर्वे परेण्यग्रहाः स्मृता इति च । (३) ब-

ति देव । युवम् । इत्यत्र यकारस्य जकारोच्चारणम् । अथो पूर्वकस्य यकारस्य न-
जकारोच्चारणम् । यथा १६ । ८ । अथो ये अस्य सत्त्वानः । अत्र वाज्जवल्क्येन
शिक्षायां विकल्पेन जकारोच्चारणं कृतम्भवति, अथ मासनशब्देभ्यो विभाषाभेदिते य-
वौ । अथ मा स न शब्दपूर्वकस्य विकल्पेन । जकारोच्चारणं भवति यथा २० । ८२ ।
न यत्परः । १५ । ३२ । स योजते अत्रोदाहरणद्वये जकारोच्चारणं न भवति । ६ ।
२८ । स यन्ता । ७ । १७ । मतो न येषु । अत्रोदाहरणद्वये जकारोच्चारणं भवति ।
अत्र विकल्पे विषये सम्प्रदाय एव प्रामाणिकानां शरणमिति ॥

(१) ११ । ३६ ॥

(२) ६ । ११ ॥

(३) २ । १ ॥

हिरसि । बर्हिषे'त्त्वा । (१) अयं ते योनिर्ऋत्त्वियः ।
 (२) निऋते तुभ्यम् । अयुक्तान्यहल् इति किम् । (३)
 व्यर्थीय च । (४) यज्जपतिर्हार्षीत् । (५) अनु मा-
 ष्टु । अत्र मा भूत् । एभिर्युक्तस्येति किम् । (६) उज्जे-
 त्त्वा । प्रार्थयतु । अत्र मा भूत् । उक्तं च माध्यन्दि-
 नश्चिन्तायाम् । “शषसहा यत्र दृश्यन्ते रेफेणाङ्कित-
 मस्तकाः । स्वरं भक्तं प्रयुञ्जीत संयोगे नैव कारये-
 त्” । तथैव सङ्गत्याह ॥

एवं तृतीयान्तस्थस्य कचिन् ॥ ४ ॥

एवं संयुक्तासंयुक्तस्थले तृतीयान्तस्थस्य लकारस्य क-
 चित् लब्धानुरोधेन पूर्वोक्तं एकारसहितोच्चारणं कर्त-
 व्यमिति यथा (७) शतवल्गो विरोह सहस्रवल्गः ।
 (८) उप वल्हामसीत्यत्र वल्हामसीत्युच्चारः । एव-
 मन्यमद्युदाहरणमूह्यम् । अत्र रलयोः सावर्ण्यान्नित्य-
 तान्नापनार्थं पुनर्ग्रहणम् । एकारोच्चारणादेशप्रसङ्गा-

(१) ३ । १४ ॥

(२) १२ । ६२ ॥

(३) १६ । ३९ ॥

(४) १ । २ ॥

(५) ८ । १४ ॥

(६) १ । १ ॥

(७) ५ । ४५ ॥

(८) २३ । ४९ ॥

दाह ॥

ऋकारस्य तु संयुक्तासंयुक्तस्या-
विशेषेण सर्वत्रैवम् ॥ ५ ॥

तु पुनः ऋकारसंयुक्तस्य असंयुक्तस्य च अविशेषेण सर्वत्रादिमध्यावसानेषु एवं एकारसहितोच्चारणं कर्त्तव्यमित्यनुषङ्गः । यथा (१) ऋताषाट् । ऋतधाम । इदमसंयुक्तोदाहरणम् । संयुक्तोदाहरणं यथा (२) सृज प्रशस्त । (३) कृणुहि । (४) पितृन् । (५) सामान्यभिरित्यादि । अत्र ऋताषाडित्यादिषाठः । “ऋत्वर्णयोः सावर्ण्यात्प्रायशो लक्ष्याभावाच्च लृकारग्रहणम् (६) । पुनरेतस्य प्रसङ्गादाह ॥

अथान्त्यस्थान्तस्थानां पदादिमध्या-
न्त्यस्थस्य त्रिविधं गुरुमध्यमलघुवृ-

(१) १० । ३७ ॥

(२) ११ । ३६ ॥

(३) १० । ३२ ॥

(४) १९ । ७० ॥

(५) २० । १२ ॥

(६) एवं तृतीयान्तस्थस्य लृकारस्य कचिदुदाहरणानि लत्वपराणि तत्र ले इत्युच्चारणम् । ५ । ४५ । शतवल्शः । २३ । ४९ । उप वल्हामास । वार्त्तिकेन सावर्ण्यात् लृकारस्यापि ले इत्युच्चारः । १० । ११ । क्लृप्त्वं च मे क्लृप्तिश्च मे ॥

त्तिभिरुच्चारणम् ॥ ६ ॥

अथ तृतीयान्तस्थादेशकथनानन्तरं अन्तस्थानामन्त्य-
स्य वकारस्येति यावत् । त्रिविधं प्रकारं गुरुमध्यमलघु-
वृत्तिभिः प्रयत्नैरुच्चारणं कर्त्तव्यमित्युच्यते । एतच्च क्रमे-
ण ज्ञेयम् । तदुक्तमहर्षिणा याज्ञवल्क्येन । “वकार-
स्त्रिविधः प्रोक्तो गुरुर्लघुलघूतरः । आदौ गुरुर्लघुर्म-
ध्ये प्रदान्ते च लघूतर इति । (१) व्यायवस्थ । देवो
वः । अन्तस्थादेशोपदेशानन्तरमूष्मप्रसङ्गादाह ॥

अथो मूर्द्धन्योष्मणोऽसंयुक्तस्य
टुमृते संयुक्तस्य च खकारोच्चा-
रणम् ॥ १२ ॥

अथो अन्तस्थादेशोपदेशानन्तरं मूर्द्धन्योष्मणो मूर्द्ध-
न्यश्चासौ ऊष्मा च मूर्द्धन्योष्मा तस्य मूर्द्धन्योष्मणः षका-

(१) १ । १ । अत्रापि कश्चन विशेषोऽमोघनन्दिन्यां शिक्षायाम् । उपसर्गपरो
यस्तु स वकारो लघुर्मतः । ये ये पदादिस्थयकारविषये निषेधास्ते वकारेऽपि प्रत्ये-
तव्याः । यथा ३३ । ५५ । प्र वायुमच्छ । ११ । १३ । अथा वयम् । विशेषस्तु
संहितापाठे वः । वाम् वा । वै । वि । वौ । एषूदाहरणेषु वकारा लघवो भवन्ति ।
यथा १ । १ । देवो वः । ७ । ११ । या वाम् । २ । ७ । व्वातो वा मनो वा ।
२३ । १७ । न वा ऽउ ऽएतत् । २७ । ३३ । ता विमुञ्च । अत्रापि तदेव शिक्षा-
प्रमाणम् । वोवा वा वै मन्त्रपाठे लघवो गुरवः पदे । पदपाठे तु व्वाम् इत्यादीन्यु-
दाहरणानि स्वयमूष्मानि ॥

रस्येति यावत् । (१) “षटौ मूर्धनी”ति सूत्रात् ष-
कारो मूर्धन्यः स्थानकरणपरित्यागेनार्धस्यष्टषकार-
स्थाने कवर्गीयप्रतिरूपकं खकारोच्चारणं कर्तव्यम् ।
सर्वत्र प्राप्तौ विशिनष्टि । असंयुक्तस्येति । न संयुक्तो-
ऽसंयुक्तस्तस्य । यथा (२) इषे च्वा । (३) सहस्वशीर्षा
पुरुषः । (४) विभर्ष्यस्तव इत्यत्र न स्यादतच्चाह ।
टुम्यते संयुक्तस्येति । टुं टवर्गं विना संयुक्तस्य हल्यु-
क्तस्य च भवति । यथा (५) शष्णप्राय च । टवर्गग्रहणं
किम् । (६) कृष्णोऽसि । (७) श्रेष्ठतमाय । (८) प्र-
त्युष्टम् । उगितच्चाद्वर्णग्रहणम् । (९) “प्रथमग्रहणे
वर्ग”मिति प्रातिशाख्येयसूत्रात् । उक्तं च माध्यन्दि-
नीयशिक्षायाम् । “पदस्याद्यन्तमध्ये स्यात्खकारोच्चा-
रणं षिति । तृतीयवर्गयोगे तु षएव स्यात्सदैव ही”
ति । षकारस्थाने स्यादित्यर्थः । इति शब्दात्तेन वर्ण-
निर्देशः कार्य इति प्रातिशाख्यात् । सर्वत्र संयुक्त इति

(१) प्रा० १ अ० सू० ६७ ॥

(२) १ । १ ॥

(३) ३१ । १ ॥

(४) १६ । ३ ॥

(५) १६ । ४२ ॥

(६) २ । १ ॥

(७) १ । १ ॥

(८) १ । ७ ॥

(९) प्रा० १ अ० सू० ६४ ॥

प्रदं एकीहि हल्परतया ज्ञेयम् । संयुक्तशब्देन वर्ण-
योगग्रहणं न तु पारिभाषिको “हलोऽनन्तराः सं-
योग” इति (१) ॥ एवमादेशाः कदा भवन्ति इत्यपेक्षा-
यामाह ॥

अध्ययनादिकर्मस्वर्थवेलायां

प्रकृत्या ॥ १२ ॥

एते संस्कारा अध्ययनादिकर्मसु यजनयाजनजपा-
दिसङ्ग्रहार्थमादिपदोपादानं अर्थवेलायां मन्त्रार्थ-
वेलायां प्रकृत्वा प्रकृतिरूपेण । मधीः अरिः । पद-
काले, मध्वरिः । संहिताकाले लोकोदाहरणम् । वे-
दे तु प्र अर्पयतु । प्रार्थयतु । तथा अर्थकाले अग्नि-
मीडे । अग्निमीळे । इत्यादिवत्सर्वे पूर्वोक्ता वर्णाः प्र-
वृत्तप्रकृत्याः स्युरिति भावः । अस्ति चास्वार्थचिन्तने म-
हत्फलमावश्यकता च । तदुक्तं समावर्तनसूत्रे “वेद-
ठो समाप्य स्नाया” इतिव भीष्मे ॥ (२) ॥

(१) अत्रापि कश्चिद्विशेष उक्तो लघुमाध्यन्दिनीयशिक्षायाम् । षकारस्य सकारः
स्यादुक्तयोगे तु नो भवेत् । टवर्गयुक्तस्योदाहरणं भाष्ये प्रोक्तं कंकारयुक्तोदाहरणं तु
क्षकाराक्षरे षकारयुक्तमुच्चारणीयम् । अवयवसम्भवनेऽपि मातृकादौ गणनादेकवर्ण-
त्वादवयवविभागाभावे न सकारोच्चारणं भवति । कंकारयोगे सकारोच्चारणाभाव-
इति नियमस्तु नं १६ । ४५ । शुष्कयोग्यं च । इत्यादौ विपरीतसंयोगे कंकारयोगे-
ऽपि सकारोच्चारणसत्त्वात् ॥

(२) पारस्कराचार्यकृतगृह्यसूत्रस्य द्वितीयकाण्डीयसप्तम्याः कण्डिकाया हरिहर-
कृतभाष्ये स्पष्टमुक्तम् ॥

इति कात्यायनकृतौ प्रतिज्ञापरिः
ष्टसूत्रे द्वितीया कण्डिका ॥ २ ॥

इति प्रतिज्ञापरिशिष्टसूत्रभाष्ये द्वितीया कण्डिका
समाप्ता ॥ २ ॥

अयोगवाहस्यानुस्वारस्यादेशं वक्तुमारभते ॥

अथानुस्वारस्य ठ०मित्यादेशः

शपसहरेफेषु ॥ १ ॥

अथोष्मादेशोपदेशानन्तरं अनुस्वारस्य ठ०मिति
ठ०कार आदेशः स्याद्रोष्मसु परेषु इति सूत्रात् ठ०-
मित्युपदेशः सनिमित्तमादेशं विभजते ॥

तस्य त्रैविध्यमाख्यातठ० ह्रस्वदी

र्घगुरुभेदैर्दीर्घात्परो ह्रस्वो ह्रस्वा-

त्परो दीर्घो गुरौ परे गुरुः ॥ २ ॥

तस्य ठ०कारस्य ह्रस्वदीर्घगुरुभेदैस्त्रैविध्यं त्रिः प्रका-
रत्वमाख्यातमुक्तम् । ह्रस्वादीनां लक्षणान्युक्तानि “ए-
कमात्रो ह्रस्व” इत्यादिना । वस्तुतस्तु गुरुदीर्घयोर्भेदो
नास्ति तथाऽप्युपाधिभेदाद्भेदो मन्तव्यः । अस्ति चात्रो

अधिः । सञ्ज्ञाभेदो निमित्तभेदो लिपिर्भेदश्च ।
 द्वितीयस्तु इदानीं प्रायशः परिश्रेष्ठस्तथापि प्राचीन-
 सम्प्रदायानुरोधाद्विज्ञायते । तत्र दीर्घादक्षरात्परो
 दीर्घो भवति गुरौ संयुक्ताक्षरे परे गुरुर्भवति न तु
 दीर्घे परे असम्भवात् । अत एव दीर्घादक्षरादित्य-
 व गुरोरक्षरादिति न भवति । क्रमेणोदाहरणानि ।
 यथा (१) त्रिंशद्द्वाम इत्यत्र त्रिंशत्० शद्द्वाम । (२) पिठं०
 पन्तेति । (३) भूयास्र्ठं० सुगृहपतिः । (४) शतर्ठं०
 हिमाः । (५) स्र्ठं० रायस्प्रोषेण । इत्यादिषु द्विस्वात्म-

(१) ३ । ८ ॥

(२) हवियर्ज्ञाकण्डस्य १ प्रपाठकस्य ६ ब्राह्मणस्य ४ खण्डस्य । अनुस्वाररूपस्य
 ठं०कारस्यार्द्धमात्रिकता भवति व्यञ्जनं चार्द्धमात्रिकमिति शास्त्रात्, तथापि प्राति-
 क्षारस्य ४ अ० १४८ । १४० “अनुस्वारो ह्रस्वपूर्वोऽध्यर्द्धो मात्रा पूर्वा चार्द्धमात्रे-
 ति” । “दीर्घादर्द्धमात्रा पूर्वा चाध्यर्द्धेति” द्वाभ्यां सूत्राभ्यां सार्द्धकमात्रा प्रतिपादिता,
 अत एव याज्ञवल्क्यमहर्षिणा शिक्षायां गुरौ ठंकारे लघौ एकारे दीर्घे ठंकारे च क्रमे-
 णाकुशाकुलिप्रक्षेप उक्तः । अनुस्वारेऽकुशक्षेपश्चाकुशकुञ्चनं लघौ । दीर्घे रङ्गे च
 तर्जन्याः प्रसारः परिकीर्तित इति । रङ्गलक्षणं पाणिनिनोक्तं यथा सौराष्ट्रिका नारी
 तर्का इत्यभिभाषते । एवं रङ्गाः प्रयोक्तव्याः स्वे अरौ ऽइव स्वेदया । १ । एवं कडट-
 षतनपमेषु हलवर्णेषु तर्जन्यकुल्यधो नामनं मुष्याकारं वरग्रहणं कुण्डलाकारं पञ्च-
 कुलिमेहनमेतत्सर्वं क्रमशो हस्तप्रदर्शनमूर्द्धरतसां योगिनां त्रिकालज्ञानं महर्षिणाम्-
 नुभवसिद्धमिति । आसामकुलिमुद्राणां शिक्षोक्तं लक्षणं मया । प्रातिशाख्येऽष्टमाध्या-
 ये लिखितं विदुषां मुदे । १ । इति ॥

(३) २ । २० ॥

(४) २ । २७ ॥

(५) ३ । २० ॥

दी दीर्घः । (१) एषिक्त्वाएव तेन साधैः । (२) यजुः
एषि नाम । (३) समुवाएसः । (४) बहिरङ्क्ताथ ह
विषा । (५) विषाए रयीणाम् । इत्यादिषु दीर्घात्परो
ह्रस्वः । (६) भेषजए यिया । (७) कल्पताए श्रोत्रम् ।
(८) दण्डाभ्याम् । (९) पुरोडाशैर्हवीण्या । (१०)
सोमानए स्वरणम् । (११) समुप्रीणाए खुतेन । (१२)
सिंहयसि । एवं रेफे परे संयोगोदाहरणमथोक्त-

(१) १ । २५ ॥

(२) १२ । ४ ॥

(३) ८ । १८ ॥

(४) २ । २२ ॥

(५) ३ । १३ ॥

(६) २१ । ३८ ॥

(७) ३२ । ३३ ॥

(८) ११ । ७८ ॥

(९) १९ । २० ॥

(१०) ३ । २३ ॥

(११) ३ । २० ॥

(१२) ५ । १० । अत्रापि कश्चिद्विशेषोऽमोषनान्दिन्या शिक्षयाम् । अनुस्वारो

द्विमात्रः स्याद्वर्णव्यञ्जनोदये । उदाहरणं १६ । ४६ । देवानां हृदयेभ्यः । २५

३६ । यन्नीक्षणं मौस्पर्चन्या इत्यत्र तु न ठकारोच्चारणम् । अनुस्वाराभावात् ।

ऋग्वेदप्रातिशाख्यसूत्रेण नकारलोपादिस्वरानुनासिकत्वयोर्विधानाच्चदनुस्वारस्यैवौचित्या-

त् । अत्र विशेषानुक्तेः । प्रातिशाख्ये “अलोपो मौस्पर्चन्या” इति सूत्रदिप्पण्या । सया

ऋग्वेदप्रातिशाख्यस्य सूत्रमुक्तं तस्मादत्र नोक्तमिति ॥

न । शषसहदेफेभिविति किम् । (१) भागं प्रजावतीः ।
 (२) शतधारम् । सहस्रधारम् । अत्र मा भूत् । ए-
 तादृक्स्थले किं स्यादत आह ॥

परसवर्णेष्वप्यत्र चान्यत्र ॥ ३ ॥

अन्यत्र यत्परस्वाभावे परसवर्णेष्वप्यत्र चान्यत्र परस-
 वर्णा ईषती चासौ प्रकृतिश्च तथा उच्चारणं भवति । य-
 था (३) युञ्जान इत्यत्र किञ्चित् जकारोच्चारणमनु-
 स्वारस्यादेशः परसावर्ण्यात् । (४) भागम्प्रजावतीः
 (५) तन्वा समिद्धिः । (६) त्वाङ्गन्धर्वा इत्यादि । अ-
 योगवाहप्रसङ्गादाह ॥

विसर्गेष्वपि षट्द्विरामः ॥ ४ ॥

विसर्गेषु अः इत्यादिषु ईषद्विरामः किञ्चिद्विरम्य-
 ते विसर्गस्य षट्ठोच्चारणार्थम् । यथा (७) वसोः प-

(१) १ । १ ॥

(२) १ । ३ ॥

(३) १ । १ । १ ॥

(४) १ । १ ॥

(५) ३ । ३ ॥

(६) १ । २ । २ ॥

(७) १ । २ ॥

वित्तम् । (१) पुनः सीसावहम् । ईषत्सङ्ख्याऽऽह ।

पदाद्यस्य संयुक्ताकारस्येषद्दी-

र्घ्यता च भवति ॥ ५ ॥

अकारस्य ईषद्दीर्घता भवति ईषद्दीर्घोऽप्युच्चारणं कर्त्तव्यम् । (२) अश्मन्नुर्जम् इत्यत्र मा भूदत आह संयुक्तेति । अत्रापि संयुक्तशब्देन योगः व्यञ्जनयुक्तस्येत्यर्थः । (३) व्यायवस्थेत्यत्र मध्यमवकारान्तर्गताकार-

(१) ४० । १७ । अयोगवाहा विज्ञेया आश्रयस्थानभागेन इति । पाणिनीय-
शिक्षायामुक्तत्वादेकमात्रिकस्याग्रे एकमात्रिको विसर्गः प्राप्तः परन्तु स्थानत्वेन विभागः
कृतः पाणिनिना न तूच्चारणत्वेन उच्चारणं तु विसर्गस्य नान्तर्रीयकार्द्धमात्राकाङ्क्षे-
क्षया किञ्चिदधिकमवसानं कृत्वाऽभिमुखोच्चारणं कार्यमित्यदोषः । अत्रापि कश्च-
न विशेष उक्तो महर्षिणा भगवता योगियाज्ञवल्क्येन । ऊर्ध्वक्षेपाच्च यक्षोष्मा अध-
क्षेपाच्च यो भवेत् । एकैकामुत्सृजेद्धीरः स्वरिते तूभयं क्षिपेत् । १ । द्विमात्रिके भवेदे-
कां मात्रिके तूभयं क्षिपेत् । स्वरितं यद्वैत्किञ्चिद्वकारसङ्घं संयुतम् । २ । तत्रो-
ष्मणि विजानीयान्निक्षेप उभयोरपि । कर्त्तव्यस्तूभयोः क्षेपो वायव्यैरिति दर्शनम् ।
३ । जात्ये च स्वरिते चैव यकारो यत्र दृश्यते । कर्त्तव्यस्तूभयोः क्षेपः सदस्यैरिति
दर्शनम् । ४ ॥ अस्यार्थः । उदात्तात्परे विसर्गे तर्जन्यङ्गुल्याः प्रसारणम् । तत्र हेतुः
उदात्तं प्रदेशिनीं विद्यादिति पाणिनीयशिक्षोक्तत्वात् । अनुदात्तात्स्वरात्प्रचयाच्च परे
कनिष्ठिकाया अङ्गुल्याः प्रसारणम् । ह्रस्वात्स्वरितस्वरात्परे विसर्गे सत्युभयोस्तर्जनी-
कनिष्ठिकयोरङ्गुल्योः प्रक्षेपः । दीर्घात्स्वरात्परे विसर्गे कनिष्ठिकाङ्गुल्याः प्रक्षेपः । वका-
रयुक्तादीर्घादपि परे विसर्गे उभयोः प्रक्षेपः । यकारयुक्तजात्यस्वरात्तादीर्घादपि परे विस-
र्जनीये द्वयोरङ्गुल्योः प्रक्षेपः कर्त्तव्य इति ॥

(२) १७ । १ ॥

(३) १ । १ ॥

स्य मा भूदत आह पदायस्येति । (१) विव्भाडित्यत्र
मा भूदत आहकारस्येति । यथा (२) व्वसोः पवि-
त्तम् । अत्र वकारपकारयोरीषद्दीर्घोच्चारणं यथा
भवति तथा पठनीयम् । एवं (३) परमेणेत्यादिषु ज्ञे-
यम् । अत एवाध्यायसमाप्तौ संहितायां दीर्घपाठे
इति सम्प्रदायविदो लिखन्ति ॥

ईषद्दीर्घता च भवति ॥ ६ ॥

द्विरव्यासो ग्रन्थपरिसमाप्तिस्त्वचकार्थः । (४) अन्ये
विस्तरशः स्वरसंस्काराः पञ्चदशशाखासाधारण्येन
प्रातिशाख्ये उपनिबद्धा इति ॥

इति श्रीकात्यायनकृतौ प्रतिज्ञा-
परिशिष्टसूत्रे तृतीया कण्डिका
समाप्ता ॥

इति श्रीमदनन्तदेवयान्निकविरचिते प्रतिज्ञापरि-
शिष्टसूत्रभाष्ये तृतीया कण्डिका समाप्ता ॥

(१) ३३ । ३० ॥

(२) १ । २ ॥

(३) १ । २ ॥

(४) ईषद्दीर्घत्वं नाम किम् । एकमात्राकालापेक्षया किञ्चिदधिककालोच्चारणीयं
स्यात् । इति प्रतिज्ञापरिशिष्टसूत्रभाष्यटिप्पणी समाप्ता ॥

अथ भाषिकपरिशिष्टसूत्रम् ॥

अथ भाषिकपरिशिष्टसूत्रभाष्यं लिख्यते ॥

वन्दे विष्णुं सदानन्दं भक्तकल्पमहीरुहम् । यच्चा-
यामाश्रितैर्लुब्धं नदैरर्थचतुष्टयम् ॥ १ ॥ कुपिताहिफ-
णाच्छाया समीकृत्यापरं सुखम् । सेवन्ते तत्पदं धी-
रास्तमनन्तं भजेऽन्वहम् ॥ २ ॥ याज्ञवल्क्यं मुनिं न-
त्वा कात्यायनमुनीनपि । व्याख्यास्ये भाषिकं सूत्रं
कात्यायनमुनीरितम् ॥ ३ ॥ मन्त्रलक्षणभिन्नत्वाच्छ-
तपथब्राह्मणस्य तु । तल्लक्षणाय मुनिना प्रणीतं भा-
षिकं खलु ॥ ४ ॥ तस्येदमादिमं सूत्रम् ॥

अथ ब्राह्मणस्वरसंस्कार-

नियमः ॥ १ ॥

अथशब्दज्ञानन्तर्यार्थः । अथ मन्त्रलक्षणप्रणयना-
नन्तरं शतपथब्राह्मणस्वरसंस्कारनियमः क्रियतइति
सूत्रशेषः । मन्त्रलक्षणानन्तर्यञ्चैतस्य भाषिकलक्ष-
णस्य सूत्रप्रस्थानादेव ज्ञायते । तथा हि वक्ष्यति ।
“जात्याभिनिहितक्षैप्रप्रसृष्टाश्चे”ति सूत्रेण पूर्वसिद्धं
जात्यादिकमनूय भाषिकसञ्ज्ञाम् । तथा स्वरितानु-
दात्तौ चेति सूत्रेण पूर्वसिद्धस्वरितानुदात्तावनूय ब्रा-
ह्मणे उदात्तं विधास्यति । तेन तदुपजीव्यत्वात्तदान-
न्तर्यमेतस्य साधूक्तम् । “द्वौ” ब्राह्मणे उदात्तानुदात्तौ

हावेव स्वरौ वेदितव्यौ । न नु मन्त्रलक्षणे द्वितीयाध्या-
यादौ स्वरनियमस्याभिहितत्वान्नेदमारब्धव्यम् । निरा-
काङ्क्षत्वादित्यतश्चाह ॥

उक्तो मन्त्रस्वरः ॥ २ ॥

न च पूर्वोक्तेनेदमन्यथा सिद्धम् । पूर्वोक्तलक्षणस्य
मन्त्रविभागविषयत्वात् । अतो नैराकाङ्क्षाभावाद्भक्त-
व्यमेवेदम् । किं च (१) “कण्व्य ऋकारे ह्रस्व” मिति
विद्यमाने यत्किञ्चर्तुषु क्रियते । (२) “तथर्षीणां तथा
मनुष्याणाम्” । तथा (३) “यवयोः पदान्तयोः स्वरम-
ध्ये लोप” इति सूत्रे विद्यमाने (४) “इन्द्रश्चैव प्रजापति-
स्त्वयस्त्रिर्थाविति” । तथा (५) “व्वायविहता विसु-
ञ्चे” त्येवमादौ संस्कारवैलक्षण्यदर्शनाच्चारब्धमेवेद-
म् । ननूक्तो मन्त्रस्वर इति न वक्तव्यम् । प्रकृते प्रयोज-
नाभावादित्यतश्चाह ॥

तेनात्र सिद्धम् ॥ ३ ॥

तेन मन्त्रस्वरलक्षणेन सिद्धं स्वरमनूद्यात्र शतपथ-
ब्राह्मणे स्वरलक्षणं प्रणीयते इति सूत्रशेषः । तत्रा-

(१) प्राति० अ० ४ । सू० ४९ ॥

(२) ब्रा० का० २ प्रपा० ३ ब्रा ४ । कण्डिका ५ ॥

(३) प्रा० अ० ४ । सू० १२५ ॥

(४) ब्रा० का ३ प्रपा० । ब्रा ६ । कण्डिका ८ ॥

(५) २१ । ३३ ॥

दौ सञ्ज्ञोच्यते ॥

उदात्तानुदात्तौ भाषिकस्तत्स-

न्धिः ॥ ४ ॥

उदात्तश्चानुदात्तश्चेत्युदात्तानुदात्तौ पूर्वं कथितौ त-
योः सन्धिसत्सन्धिः एकवर्णरूपः स भाषिकसञ्ज्ञः
स्यात् । सञ्ज्ञाप्रयोजनमुत्तरत्र भविष्यति । यथा (१)
अ॒र्य्य॒मा आ॒युः । मा नो॑ मि॒त्रो व॒रु॒णोऽअ॒र्य्य॒मायुः
तथा (२) भा॒सा । अ॒न्तरि॑क्षम् । भा॒सान्तरि॑क्ष॒मा ष॒ण्ण ॥
(३) ग॒व॒ह॒रे॒ष्टा । उ॒ग्रम् । ग॒व॒ह॒रे॒ष्टो॒ग्रम् । इत्या-
दि स्वबुद्ध्या ज्ञेयम् । उदात्तग्रहणं किम् । (४) बु॒ध्य-
स्व । अ॒ग्ने । उ॒द्बु॒ध्य॒स्वाग्ने । अत्र द्वयोरनुदात्तयोर्भा-
षिकसञ्ज्ञा मांभूदिति । उदात्तानुदात्तौ किम् । (५)
जा॒तवे॒दः । अ॒वाट् । त्वम॑ग्न उ॒द्दि॒डि॒ते जा॒तवे॒दोऽवाट् ।
अनुदात्तोदात्तसन्धित्वान्न भाषिकसञ्ज्ञा । सन्धिरि-
ति किम् । ध्रु॒वा । अ॒स॒दन् । (६) ध्रु॒वा ऽअ॒स॒दन् ।

(१) २५ । २४ ॥

(२) १७ । ७२ ॥

(३) ५ । ८ ॥

(४) १५ । ४८ ॥

(५) १२ । ५६ ॥

(६) २ । ६ ॥

(१) काऽईमरे । अत्रासन्धित्वान्न भाषिकसञ्ज्ञा ।
कथं भवितव्यम् । (२) उद्दिष्टस्तभानान्तरिक्षमि-
त्यादौ । इत्यत आह ॥

अनुदात्तावन्तरेणोदात्तः ॥ ६ ॥

अनुदात्तोदात्तयोः पूर्वमेकादेशः । तस्मिन्सति
“उदात्तवानुदात्त” इत्युदात्त एव । तत्र भवतीति सू-
त्रव्युत्पत्त्यादेकदेशसन्धिर्भाषिकसञ्ज्ञो भवतीत्युक्तवान् ।
एवं भाषिकसञ्ज्ञासुक्ता कचिदपवादमाह ॥

आ प्र पूर्वआख्यातपरो न ॥ ७ ॥

आ प्र उपसर्गौ पूर्वौ यस्य स आ प्र पूर्वः । आ-
ख्यातपरं यस्य स आख्यातपरः । आ प्र पूर्व आख्या-
तपर उदात्तान्तानुदात्तसन्धिर्भाषिकसञ्ज्ञो न स्या-
त् । यथा (३) आ । अप्राः । आप्रा द्यावापृथिवी
(४) प्र उक्षामि । अग्नये त्वा जुष्टं प्रोक्षामि । (५)
प्र अर्पयतु । प्रार्पयतु । आ प्र पूर्व इति किम् । (६)

(१) २३ । ५५ ॥

(२) ५ । २७ ॥

(३) ७ । ४२ ॥

(४) २ । १ ॥

(५) १ । १ ॥

(६) १३ । १६ ॥

ध्रुवा । असि । ध्रुवाऽसिध्रुवणा । (१) पूषाऽसि । (२)
यन्ताऽसि । (३) स्वधया कृतासि । आख्यातपरइति
किम् । (४) आ अयम् । आऽयङ्गौ । दृशिन्नरक्कसीत् ।
(५) एदमंगन्म । प्रेषे भगाय । अत्र न निषेधः ॥

समासश्चानाख्यातपरो न ॥ ८ ॥

चकार आ प्रयोरुपसर्गयोरनुकर्षणार्थः । आ प्र
पूर्वः समासश्च अनाख्यातपरोऽपि न भाषिकसञ्ज्ञः
स्यात् । अनाख्यातग्रहणं आख्याताधिकारनिवृत्त्यर्थ-
म् । अपिशब्द आख्यातपरो यदि समासो दृश्यते सो-
ऽपि न भाषिकसञ्ज्ञः स्यात् । इत्येतदर्थः (६) आ
इष्टः । एष्टा रायः । आ सम्यक् इष्टा एष्टा इति
समासः । (७) आ इष्टयः । एष्टयो नाम । (८)
प्र इष्टः । प्रेष्टो ऽअग्ने । (९) प्र इत्यै । आ इत्यै ।

(१) ३० । ३ ॥

(२) १९ । २२ ॥

(३) ११ । ७१ ॥

(४) ३ । ६ ॥

(५) ४ । १ ॥

(६) ५ । ७ ॥

(७) इदमपि तथैवोदाहरणम् ॥

(८) १० । ४३ ॥

(९) २७ । ४५ ॥

त्रेधाऽएत्यै । समास इति किम् । (१) एदम्बर्हिर्नि-
दीदते । (२) प्रेषे भगाय ॥

अपूर्वश्च समासो नैव ॥ ९ ॥

अ इति ह्रस्वाकारो गृह्यते । तथा च अकारः
पूर्वो यस्य सन्धेः सोऽयमपूर्वः तादृशसमाससन्धिर्न
भाषिकसञ्ज्ञः स्यात् । (३) विश्व । आयुः । सर्व ।
आयुः । स नो विश्वायुः सप्रथाः स नः सर्वायुः
सप्रथाः । विश्व आयुर्यस्येति वज्रब्रीहिः समासः ।
तथा (४) शता आयुषम् । शतायुषं कणुहि ची-
यमानः । (५) चित्रः । जतयः । चित्रोतयो वाम-
जाताः । (६) दृढ आयुम् । दृढायुमनु दृढयो
जुष्टा भवन्तु जुष्टयः । अपूर्व इति किम् । (७) दिवी-
व चक्षुराततम् । ह्रस्वपूर्व इति किम् । (८) मातेव

(१) ७ । ३४ ॥

(२) ५ । ७ ॥

(३) ३० । २० ॥

(४) १३ । ४१ ॥

(५) १२ । १०० ॥

(६) ५ । २९ ॥

(७) ६ । ५ ॥

(८) १२ । ६१ ॥

पुत्रम् । (१) पितेव सूनुवे । (२) व्यस्नेव विस्त्री-
णावहै । समासइत्यनुवर्त्तमाने पुनः समासग्रहण-
मपूर्वसन्धिमात्रप्रतिपत्त्यर्थम् । तेन । (३) इहेहैषां क-
ण्वि भोजनानीत्यादि सर्वमुदाहरणं ज्ञातव्यम् । न
शब्दैवकारौ अनवधारणार्थौ । (४) नेव वा इदमग्रे
सदाऽऽसीन्नेव सदाऽऽसीत् । नेत्यनुवर्त्तमाने पुनर्नेति-
वचनमुत्तरत्र प्रतिषेधनिवृत्त्यर्थम् ॥

जात्याभिनिहितक्षैप्रप्रशिष्टलष्टा-

इच्च ॥ १० ॥

चशब्दो भाषिकसञ्ज्ञानुकर्षार्थः । जात्यादयश्च-
त्वारः स्वरिता भाषिकसञ्ज्ञाः स्युः । तल्लक्षणानि तु
पूर्वमेवाभिहितानि । “एकपदे नीचपूर्वः सयवो जा-
त्यः” । “एदोद्व्यामकारो लुगभिनिहितः” । “युवर्णौ य-
वौ क्षैप्रः” । “इवर्ण उभयतो द्वस्वः प्रशिष्टः” । इति क्रमे-
णोदाहरणानि । तत्र जात्यो यथा । (५) धान्यमसि । (६)

(१) ३ । २४ ॥

(२) ३ । ४९ ॥

(३) १० । ३२ ॥

(४) शतपथब्राह्मणस्य दशमकाण्डाग्निरहस्यस्य तृतीयप्रपाठकस्य पञ्चमब्राह्मणस्य
प्रथमलण्डस्योदाहरणम् ॥

(५) १ । २० ॥

(६) ३ । ३७ ॥

भूर्भुवः स्वः सुप्रजाइत्यादि अभिनिहितो यथा (१)
 प्रसवेऽश्विनोः । (२) पृषोऽग्नये । (३) वेदोऽसि ।
 (४) कोऽसि । इत्यादि । क्षैप्रो यथा (५) अम्बकंय्यजा-
 महे । (६) द्रवन्तः सर्पिरासुतिः । इत्यादि । प्रस्नि-
 द्यो यथा (७) अभीन्वतामुखे । (८) द्विवीच चक्षुः ।
 जात्यक्षैप्रयोः 'स्वरितानुदात्तौ च' त्यनेनौबोदात्तत्वे सि-
 द्धे पुनर्ग्रहणं निघातसिद्ध्यर्थम् । अभिनिहितप्रस्निष्टयो-
 स्तूदात्तानुदात्तसन्धित्वाङ्गाषिकसञ्ज्ञायां प्राप्तायाम-
 न्यत्र भाषिकसञ्ज्ञाया अनित्यत्वज्ञापनार्थं पुनर्ग्रहण-
 म् । तेनात्र न सम्भवति । यथा (९) सविताऽसि सत्य
 प्रसवः । (१०) इत्यादि सोम इन्मदेविताऽसि सुन्वतो
 दत्तवर्हिष इति । (११) आहमजानि गर्भधम् ॥

(१) १ । १० ॥

(२) ४ । ७ ॥

(३) २ । २१ ॥

(४) ७ । २९ ॥

(५) ३ । ६० ॥

(६) ११ । ७० ॥

(७) ११ । ६१ ॥

(८) ६ । ४ ॥

(९) १० । २९ ॥

(१०) इदमुदाहरणम् काण्वानाम् ॥

(११) २३ । १९ ॥

उतो यो मो नो सो च ॥ ११ ॥

उतो यो मो नो सो इत्येतेषां प्रश्नानामोकारो भा-
षिकसञ्ज्ञः स्यात् । यथा (१) उतो तऽइषवे नमः ।
(२) यो मम तनूः । (३) मोऽअहन्तव । (४) नोऽ-
एवासाधुना कनीयान् । (५) सोऽदेशेऽभवत् ॥

ओञ्चैकेषाम् ॥ १२ ॥

ओङ्कारश्च केवलो भाषिकसञ्ज्ञः स्यात् । एकेषा-
माचार्याणां मतेन । एकशब्दोऽत्रैकदेशवचनः । तेन
काण्वाचार्यमतेन न भाषिकसञ्ज्ञ इत्यर्थः । यथा
(६) सप्तदशाक्षरारायोः आवयेति । (७) बोधयताति-
थिम् । आस्मिन् । एकेषां किम् । काण्वानां मा भू-
दिति । यथा (८) ता वा एताः पञ्च व्याहृतयः, ओं
आवयास्तु औषट् यज ये यजामहे वौषडिति । अथे-
दानीं भाषिकसञ्ज्ञाप्रयोजनमाह ॥

(१) १६ । १ ॥

(२) ५ । ६ ॥

(३) ४ । २२ ॥

(४) इदमपि काण्वानाम् ॥

(५) ३४ । ११ ॥

(६) इदमुदाहरणं तथैव ज्ञेयम् ॥

(७) ३ । १ ॥

(८) इदमुदाहरणं तथैवेति ॥

(१) उदात्तमेतत् ॥ १३ ॥

यदेतदुदात्तानुदात्तावित्यादिप्रबन्धेन भाषिकस-
ङ्गसुप्रक्रान्तं तदुदात्तं स्यात् । यथा क्रमेणोदाहर-
णानि । (१) अय्यमायुः । (२) भासान्तरिक्षं मा पृ-
थक् । (३) चित्रामाऽह्वृष्टे । (४) सिर्ठं हर्ठं सेम-
स्यात् । (५) घान्यमसि । (६) भूर्भुवः स्वः
सुप्रजाः । प्रसवेऽश्विनोः । वेदोसि । (७) कुमार्यः
परियन्ति । (८) द्यम्बकय्यामहे । (९) द्रवः स-
प्तिरामुतिः । (१०) अभीन्वतामुखे ॥

स्वरितानुदात्तौ च ॥ १४ ॥

मन्त्रविषये यौ स्वरितानुदात्तावुक्तौ तावपि शतप-

(१) १७ । ७० ॥

(२) १७ । ७४ ॥

(३) १ । १० ॥

(४) १ । २० ॥

(५) ३ । ३७ ॥

(६) १ । १० ॥

(७) इदमपि तथैव ॥

(८) ३ । ६० ॥

(९) ११ । ७० ॥

(१०) ११ । ६१ ॥

यत्राह्मणे उदात्तौ स्तः । तत्र स्वस्त्यो यथा (१) अक्-
 न्कर्म कर्मकृतः । (२) वाजेवाजेऽवत (३) अग्ने नय
 सुपथा रायेऽअस्मान् । अनुदात्तो यथा (४) एष ते
 रुद्र भागः । (५) एष ते निर्वृते भागः । (६) सह
 वाजा मयोभुवा ॥

उदात्तमनुदात्तमनन्त्यम् ॥ १५ ॥

मन्त्रधर्मेण यदुदात्तमभिहितं तच्छतपथब्राह्मणेऽ-
 नुदात्तस्यात् । अनन्त्यम् । अन्ते स्थितमन्त्यं तद्वर्ज्यमन-
 न्त्यम् । अनवसितमित्यर्थः । यथा (७) हव्ये । काम्ये । इ-
 षे । रन्ते । चन्द्रे । अदिति । सरस्वति । महि । यथा
 (८) खान । भाज । अङ्गारे । वम्भारे । हस्तेत्यादि ।
 अनन्त्यमिति किम् । (९) चक्षुर्मित्तस्य वरुणस्या-
 गने । (१०) विश्वानि देव व्युनानि विद्वान् ।

(१) ३ । ४७ ॥

(२) २ । १८ ॥

(३) ५ । ३६ ॥

(४) ३ । ५६ ॥

(५) २ । ३५ ॥

(६) ३ । ४७ ॥

११) विश्वं जगदभि पित्वै मनीषा । एवमेकोदा-
त्तानुदात्तत्वं मभिधाय ब्रह्मदत्तेषु नियममाह ॥

अन्त्यठ० सठ० हतानाम् ॥ १६ ॥

इयोर्ब्रह्मनामुदात्तानामेकत्र युक्तानां पौर्वापर्येणाव-
स्थितानां मध्ये यदन्यमुदात्तं मन्त्रे तद्वाणेऽनुदात्तं स्या-
त् । पूर्वेषामुदात्तानां स्वरविशेषानुपदेशान्मन्त्रस्वर-
एव भवति । यथा (१) आ ब्रह्मन् । (२) व्रते तवाना-
गसोऽदितये । (३) लाजीञ्छाचीन्यव्ये गव्ये ।
(४) आयाद्यान्मास्यां पृथिवीम् । (५) अग्ने युद्धा हि
ये तवाश्वासः । इत्यादि विवेक्तव्यम् । अथेदानीं भा-
षिकसूत्रे परे विशेषमाह ॥

भाषिके चोभयेषाम् ॥ १७ ॥

उदात्तानुदात्तौ भाषिकस्तत्त्वन्विरित्यादिना भा-
षिक उक्तः । तस्मिन्परे उभयेषामुदात्तानामनुदात्ता-

(१) ३३ । ३५ ॥

(२) २२ । २२ ॥

(३) १२ । १३ ॥

(४) २३ । ८ ॥

(५) १५ । ५७ ॥

(६) १३ । ३६ ॥

नां च । अनुदात्त एव स्यात् । तत्रोदात्तानां यथा (१)
चित्रामाह्वरेणे । (२) सिठं हठं सेमस्यात्त्वठं
सः । इत्यादि । अनुदात्तानां यथा (३) भासान्तरिच-
मा षण । (४) अर्थमायुः । (५) धान्यमसि । (६)
वैष्णव्यौ । (७) सवितारमोरायोः । (८) निग्राभ्या-
स्य । (९) पयस्या बृहस्पतये (१०) स्तऽउषस्याः । इ-
त्यादिमन्त्रलक्षणेनानुदात्तत्वे सिद्धे पुनरनुदात्तवि-
धानम् । 'स्वरितानुदात्तौ चे'त्यस्यापवादार्थम् ॥

एकस्यापि ॥ १८ ॥

एकशब्दोचोक्तान्यवचनः । आभ्यामेक इति वत् ।
तदन्यच्च स्वरित एव । तथा चोदात्तानुदात्ताभ्यामेको-
ऽन्यः स्वरितस्तस्यापि भाषिके परेऽनुदात्तादेशः स्या-

(१) १७ । ७४ ॥

(२) १९ । १० ॥

(३) १७ । ७२ ॥

(४) २५ । २४ ॥

(५) १ । २० ॥

(६) १ । १३ ॥

(७) ४ । २५ ॥

(८) ६ । २९ ॥

(९) २९ । ६० ॥

(१०) २४ । ४ । इमान्युदाहणानि शुक्लयजुराच्यसंहिताया बोध्यानीति ॥

त । यथा (१) भूत्यै । येदम् । नमो भूत्यै येदं चकार । (२) रायः । प्रेषे । एष्टा रायः प्रेषे भगाय । (३) भुवः । स्वः । भूभुवः स्वः । स्वरितस्योदात्तानुदात्तोभयसंप्रयोगे जाते तद्भाषिके चोभयेषा'मित्यनेनैकनिघाते सिद्धेऽपि येदारभ्यते । पुनस्तद्भाषयति निश्चयमानोऽपि केन चित्रकरणेन । केन चित्रिमित्तेनायं स्वरितएवेति । किमेतस्य ज्ञापने प्रयोजनम् । उच्यते ॥

स्वरितस्य चाभिनिहितत्वम् ॥ १९ ॥

स्वरितस्वरस्य भाषिकस्याभिनिघातः स्यात् । एवं निघातेऽपि सति स्वरितत्वं स्वरितस्य चाभिनिहितत्वम् । अभिनिहितस्य भाषिकसञ्ज्ञा भवतीति भावः । यथा (४) प्रसवेऽश्विनोः । (६) पृष्टेऽग्निमन्त्रादम् ॥ (७) सरस्वत्यै पूष्णेऽग्नये ॥

तेषां च प्रागुत्तमादनन्तराणां च

(१) १२ । ६५ ॥

(२) ५ । ७ ॥

(३) ३ । ३७ ॥

(४) १ । १० ॥

(५) ३ । ५ ॥

(६) ४ । ७ ॥

किम्पन्नम् ॥ २० ॥

तेषां च प्रागुक्तानां बहूनां पौर्वापर्येणावस्थिता-
नामुत्तमात्पूर्वेषामनन्तराणां जात्यन्तरेणाव्यवहिता-
नामनुदात्तानां कम्पन्नं स्यात् । कम्पन्नं नामानुदात्ता-
दथनुदात्तत्वम् । यथा (१) प्रतिष्ठाप्रयति स्वर्गां-
खाहेति । (२) यदेवोदेत्यथ वसन्तः । (३) अद्वा हि
तद्यन्मन्त्रोद्वा तद्यदात्मा (४) आदित्यो ह त्वैवेशोऽ-
ग्निश्चतः । (५) सैषा त्रय्येव विद्या तपन्ति । (६)
एवम्बिकेष्टकः । (७) सोऽनुवीक्ष्य नान्यदात्मनोऽपश्य-
दित्यादि ॥

उदात्तपूर्वस्यानुदात्तस्य च ॥ २१ ॥

उदात्तः पूर्वा यस्यानुदात्तस्य सोऽयमुदात्तपूर्वः ।
तादृशानुदात्तस्य भाषिके परे कम्पन्नं स्यात् । यथा (८)
किञ्च न । आसमत् । मो च नः किञ्च नामसमत् । (९)

(१) तयोदाहरणम् ॥

(२) तथा ॥

(३) तथैव ॥

(४) तथा ॥

(५) २० काण्डे । ३ प्रपाठके । ४ ब्राह्मणे । २ द्वितीयखण्डे ॥

(६) तथा २२ खण्डे ॥

(७) तथा ॥

(८) तथा ॥

(९) तथैवोदाहरणं बोध्यम् ॥

दास्ये । उत । इमाम् । । स दाधार धृतिवीन्द्यासुते-
माम् ॥

उदात्तपूर्वस्य स्वरितस्यापि

च ॥ २२ ॥

उदात्तः पूर्वा यस्य स्वरितस्य स उदात्तपूर्वः । तादृ-
शस्य स्वरितस्यापि भाषिके परे कम्पनं स्यात् । अनु-
दात्ततरं भवतीत्यर्थः । यथा (१) नमो भूतै येदं च-
कार । (२) एष्टा रायः प्रेषे भगाय ॥

अत्रान्त्यस्योदात्तस्यानुदात्ततां प्र-
त्येके विवदन्ते ॥ २३ ॥

अत्रान्त्यस्योदात्तस्य सतः अनुदात्ततां प्रत्येके आ-
चार्या विवदन्ते । एकशब्दोऽत्र मुख्यवचनः । तेन का-
खानां मतमिदमिति गम्यते । यथा (३) तस्माद् कु-
र्याद्वैतस्य पुरुषस्य बाह्व । तथा । (४) रोचनास्य
प्राणादपानतीत्यादि ॥

(१) १२ । ६५ ॥

(२) ४ । ७ ॥

(३) शतपथब्राह्मणादाहरणम् ॥

(४) ३ । ७ ॥

॥ १३ ॥ हि ॥ ४ ॥

हिशब्दात्परमाख्यातं विक्रियते । यथा (१) आपो
हिष्ठा मयोभुवः । (२) विहीमिद्वोऽन्नकस्यत् । (३)
शिरो हि प्रथमं जायमानस्य जायते । हिशब्दात्पूर्व-
मपीति वक्तव्यम् । यथा (४) इन्द्रवो वामुशन्ति हि ॥

हन्त ॥ ५ ॥

हन्तशब्दात्परमाख्यातं विक्रियते । यथा (५) हन्त-
तेऽनघा कात्यायनान्तं करवाणीति । (६) हन्ताहमिमं
द्वौ प्रश्नौ प्रवक्ष्यामि । (७) हन्तैनं ब्रह्मौघमाह्वयामहा-
इति । (८) हन्तास्येन्द्रियं वीर्यठं सोमपीथमन्नाद्यठं
हराणीति । अत्र परत्वमर्थतो द्रष्टव्यम् ॥

नेत् ॥ ६ ॥

नेदित्यस्मात्परमाख्यातं विक्रियते । यथा (६) ने-

(१) १२ । ६ ॥

(२) ७ । ८ ॥

(३) ब्राह्मणोदाहरणम् ॥

(४) इदमपि तथैव ॥

(५) तथा ॥

(६) तथैव ॥

(७) ३ । १६ ॥

(८) ब्राह्मणोदाहरणम् ॥

(९) १० । ३२ ॥

स्वदपचेतयातै । (१) नेदन्योन्यर्थं हि न सानीति ।
(२) नेदति रेचनीति ॥

कुवित् ॥ ७ ॥

कुविदित्यस्मात्परमाख्यातं विक्रियते । यथा (३)
कुविदङ्ग यवमन्तो यवञ्चिद्यथा दान्ति । (४) कुविन्मे
पुत्रमधीदिति । (५) कुविन्मेऽनुषङ्गतः सोममवमञ्च-
दिति ॥

अह ॥ ८ ॥

अह इत्यस्मात्परमाख्यातं विक्रियते । यथा (६) न-
क्षत्रमाहास्य भवतीत्यादि ॥

समुच्चये ॥ ९ ॥

समुच्चयार्थाच्चकारात्परमाख्यातं विक्रियते । यथा
(७) शर्म च स्योब्धर्म च स्य इति । (८) सुच्या चासि

(१) ब्राह्मणोदाहरणम् ॥

(२) इदमपि तथा ॥

(३) १० । ३२ ॥

(४) ब्राह्मणोदाहरणम् ॥

(५) इदमपि तथा ॥

(६) ११ । ३० ॥

(७) १ । २८ ॥

(८) ३ । ५६ ॥

अ-कामयेत । (१) यतमथा कामयेत । (२) यादृशं
जायते । इत्यादि ॥

विनियोगः ॥ १५ ॥

विनियोगार्थकमाख्यातं विक्रियते । विनियोगो
नाम मन्वादित्वदेवतापदादित्वादिकः । यथा (३)
स वा इन्द्राग्निव्यामुप दधाति । (४) विश्वकर्माणां
सादयति । (५) तूष्णीं दर्भस्तम्बमुप दधाति । (६)
यजुषाऽभि जुहोति । (७) तूष्णीमुदचमसान्निनयति ।
(८) यजुषा वपति ॥

वाक्यशेषः ॥ १६ ॥

वाक्यशेषो यस्मिन्नाख्यात उपलभ्यते तदाख्यातं वि-
क्रियते । यथा (९) अथ प्रातरग्नेयः पुराडाशो भव-
त्यैन्द्रो सान्नाय्यम् ॥ (१०) द्वावुत्तरस्यां वेदां प्रादौ

(१) तथा ॥

(२) तथैव ॥

(३) तथा ॥

(४) तथा ॥

(५) तथा ॥

(६) तथैव ॥

(७) तथा ॥

(८) तथा ॥

(९) तथैव ज्ञेयम् ॥

(१०) ब्राह्मणस्य ॥

भवतो द्वौ दक्षिणस्याम् (१) चितो गार्हपत्यो भवत्यो
भवत्यचित आहवनीयः ॥

अनुबन्धइति ॥ १७ ॥

अनुबध्यतेऽनेनेत्यनुबन्धः । आख्यातार्थस्य नित्यतां
यः शब्दो ब्रवीति सोऽनुबन्धः । तस्मात्परमाख्यातं
विक्रियते । यथा अः अः श्रेयान्भवति । इतिकरण-
माख्याताधिकारपरिसमाप्त्यर्थम् । एवं यत्र यत्र स-
मान्नाये आख्यातविकारो दृश्यते तत्र तत्र तथैव द्रष्ट-
व्यम् । न्यायसाध्यात् । यथा (२) इमं मे वरुण शुधी
हवम् ॥

एतआषोडशादक्षरात्पदं विकु-

र्वन्ति ॥ १८ ॥

एते हि शब्दादय आषोडशाक्षरादाख्यातपदं वि-
कुर्वन्ति । आषोडशादभिविधिर्मर्यादा वा । तमेवा-
रम्य आषोडशादक्षरात् । यथालाभमुदाहरणानि
दीयन्ते (३) हन्तास्येन्द्रियं वीर्य्यठं सोमपीथमन्ना-
द्यठं हराणीति । स यो हवमेतठं सवत्सरमध्यात्मं
प्रतिष्ठितं वेद । नेदति रेचयानीति । नेत्त्वदपचेत

(१) शतपथब्राह्मणस्यैवोदाहरणम्बोध्यम् ॥

(२) २१ । १ ॥

(३) ब्राह्मणोदाहरणम् ॥

प्राप्तैः ॥

आपञ्चविंशति भारद्वा-

जः ॥ १९-॥

ह्यादय आपञ्चविंशदाख्यातप्रदं विकुर्वन्तीति
भारद्वाजआचार्यो मन्यते । यथा (१) येना नः पूर्वं
प्रितरः पदज्ञाऽऽर्चन्तो गाऽऽर्चन्तु । तथा (२) क-
न्निर्हिजा रेक्खसा प्राट्ठस्य रातिं गृभीतां मुखलौ
नयन्ति । इति ॥

आद्वाविंशतिशतित्यौपशविः ॥ २० ॥

ह्यादय आद्वाविंशतिशतित्यौपशविः विकुर्व-
न्ति । इत्यौपशविराचार्यो मन्यते । यथा (३) सँय्यो
ह्वैवमेतठं सप्तदशं प्रजापतिमधिदेवतं चाध्यात्मं च
प्रतिष्ठितं वेद ॥

आमर्त्यादास्थतयोः पदयोर्बहूनां चा-

पूर्वपदं विक्रियते ॥ २१ ॥

मर्त्यादा विधा । षोडशाक्षरा । पञ्चविंशत्यक्ष-

(१) ३४ । १७ ॥

(२) २५ । २५ ॥

(३) शतपथब्राह्मणस्यैवोदाहरणम् ॥

रा । द्वाविंशदक्षरायाम् । द्वात्रिंशदक्षरायां पक्षे
विक्रियते । पाक्षिकत्वादपरिपूर्णं इतरे मर्यादे ।
अत्राङ्गीषदर्थे वर्तते । आमर्यादा ईषन्मर्यादेत्यर्थः ।
ईषन्मर्यादायां तिष्ठतइत्यामर्यादास्ये । तयो रामर्यादा-
स्थयो राख्यातपदयोः पूर्वमाख्यातमपि द्वात्रिंशदक्षरा-
नृतं विक्रियते । ह्यादिभिर्योगे सतीत्यनुवर्तते । तत्र
द्वयोर्यथा । (१) स यत्सायमस्तमिते जुहोत्यग्नावेवै-
भ्यऽएतत्प्रविष्टेभ्यो जुहोति । अथ यत्प्रातर्जुहोत्यस्य
जीवनस्य देवेभ्यो जुह्वामि । बहूनामाख्यातानां य-
था (२) स यत्सायमस्तमिते जुहोति गर्भमेवैतत्सन्त-
तमभि जुहोति गर्भं ० सन्ततमभि करोति । (३) अथ
यत्प्रातरनुदिते जुहोति प्रजनयत्येवैनमेतत्सोऽयं ते-
जो भूत्वा विभ्राजमान उदेतीति ॥

सर्वाणित्यौपशविः ॥ २२ ॥

अत्र सर्वाण्ययामर्यादास्थितान्याख्यातपदानि ह्या-
दियोगे विक्रियन्ते । इत्यौपशविराचार्यो मन्यते ।
यथा (४) यस्मिन्नर्द्धे यजन्ते तेषां वा उन्नेतौत्तमो दी-
क्षते प्रथमोऽवभृथादुदायतामुदैति । (५) ये देवासो

(१) इदमपि तथैव ॥

(२) तथा ॥

(३) तथा ॥

(४) ब्राह्मणोदाहरणम् ॥

(५) ७ । १९ ॥

दिव्यिकां दशस्थं पृथिव्यामिति ॥

इति कात्यायनकृतौ भाषिकपरिशि
ष्टसूत्रे द्वितीया कण्डिका ॥

इत्यनन्तदेवकृते भाषिकपरिशिष्टसूत्रभाष्ये द्विती-
या कण्डिका ॥

विनियोगे तु पूर्वपदम् ॥ १ ॥

विनियोगेऽर्थे गम्यमाने पूर्वमाख्यातं विक्रियते नो-
त्तरं तु शब्दोऽवधारणे । यथा (१) तूष्णीं दर्भस्तम्बमु-
प दधाति । यजुषाभि जुहोति । (२) तूष्णीमुदचम-
सान्निनयति । यजुषा वपति । (३) स वाऽइन्द्रा-
ग्निस्यामुपदधाति । (४) विश्वकर्म्मणा सादयति ॥

जिज्ञासितयोश्च ॥ २ ॥

जिज्ञासितयोराख्यातयोः पूर्वमाख्यातं विक्रियते
नोत्तरं यथा । (५) जुह्वानीश्माहौषाश्मिति । (६)

(१) शतपथस्यैवोदाहरणम् ॥

(२) तथा ॥

(३) तथा ॥

(४) तथा ॥

(५) तथैव ॥

(६) तथा ॥

कतमस्यैतत्कर्मा सँवत्सरमग्निमाप्नोति । (१) कथर्थः
स वरेणाग्निना सम्पद्यते ॥

अन्तरहितयोश्च ॥ ३ ॥

अन्तर्हितं भिन्नजातीयेन व्यवहितमित्यर्थः । अन्य-
जातीययोराख्यातयोः पूर्वमाख्यातं विक्रियते न द्वि-
तीयम् । यथा (२) पुरुषो ह नारायणं प्रजापतिरुवा-
च । (३) यजस्व यजस्वेति । (४) अथ यज यजेत्येवो-
त्तरानाह ॥

विचारितसमुच्चयोश्च ॥ ४ ॥

विचारिते समुच्चिते चेति द्वन्द्वसमासः । विचारा-
र्थकयोः समुच्चयार्थकयोश्चाख्यातयोः पूर्वं विक्रियते न-
द्वितीयम् । तत्र विचारयोर्यथा (५) यजेदाज्यभागौ
ज्या३ इति यजेता३ न यजेता३ इति । समुच्चयो-
र्यथा (६) शर्मा च सत्योर्वर्मा च सत्यः । (७) मुञ्जा
चासि शिवा चासि ॥

(१) तथा ॥

(२) तथा ॥

(३) तथा ॥

(४) तथा ॥

(५) तथा ॥

(६) ११ । ३० ॥

(७) १ । २८ ॥

निर्वचनेऽनुबन्धो वाक्यशेषोऽवध्य-
 र्थश्चावधारणो न विकुरुत इति
 भारद्वाजः ॥ ५ ॥

निर्वचनं नामार्थस्यान्वाख्यानम् । तच्च विधिरूपेण
 वाऽनुवादरूपेण वा पूर्वपदस्थानमित्यर्थः । अनुबन्ध इ-
 त्यनुबन्धः । पुनः पुनरावर्त्तनमित्यर्थः । अनुबन्ध इ-
 त्यत्र “अन्येषा मपि दृश्यते” इति प्राणिनीयसूत्रेण
 दीर्घः । निर्वचनेऽनुबन्धो वाक्यशेषो यस्मिन्नाख्याते
 तदाख्यातं न विकुरुते । इति भारद्वाजाचार्यो मन्य-
 ते । तथाऽवध्यर्थो योऽवधारणो यस्मिन्नाख्याते दृश्य-
 ते तदपि न विक्रियते । इति भारद्वाजो मन्यते । अ-
 वधिरत्र कालविशेष उच्यते । विनियोगो वाक्यशेष
 इति प्राप्तपवादोऽयम् । क्रमेणोदाहरणानि । (१)
 देवा दीक्षां निरमिनादित्यै प्रापणीयम् । इत्यग्रे कृष-
 त्यथेति । भारद्वाजोक्तिर्विक्रियते वा । वस्ताजिने पु-
 ष्टिकाममभिषिञ्चेत्कृष्णाजिने ब्रह्मवर्चसकाममुभयो-
 रुभयकाममिति । प्रथमस्योदाहरणम्, द्वितीयोदाह-
 रणं यथा (२) एवमेव मध्यन्दिने सवनगृहीतएवैत-
 स्मादच्छावाक्ययोत्तमो ग्रहो भवत्यथ तृतीयां वसती

(१) ब्राह्मणोदाहरणानि ॥

(२) इमान्यपि तथा ॥

वरीणामवनयतीति ॥

भूयोवादी वरीयोवादी कनीयो-

वादी चानवधारणाः ॥ ६ ॥

भूयो बज्जतरं वदतीति भूयो वादी, गुरुतरं वद-
तीति वरीयो वादी, कनीयोऽल्पतरं वदतीति कनी-
योवादी । एते भूयोवाद्यादयोऽनवधारणाः । अव-
धारणकार्यकारिणो न स्युः । भूयोवाद्यादयः परं भूत-
माख्यातं न विकुर्वन्तीत्यर्थः । क्रमेणोदाहरणानि (१)
तस्य भूयोभूयएव तेजो भवति । परः परएव वरीय-
स्तेषो भवति कनीयः कनीयस्तेषो भवतीति 'अनुबन्ध-
इति प्राप्तस्यापवादकमेतत् । नेत्यनुवर्त्तमाने पुनरव-
धारणार्थ इति नञ् अनित्यत्वसूचनार्थः । तेन शा-
खान्तरे पूर्वोक्तोदाहरणे आख्यातपदं विक्रियतेऽ-
पीति गम्यते । अनवधारणा इति किम् । अन्यत्रापि
यत्र विकारो दृश्यते तत्रावधारणेऽपि सति न विका-
रो माभूदिति । यथा (२) एवठं० सउह्रीपयति । ए-
वठं० हैव श्रिया यशसा भवति । एवठं० हैव स जा-
यते । एवठं० हैवं कीर्त्या यशसा श्रिया श्वः श्वः श्वे-
यान्भवतीत्यादिज्ञेयानि ॥

(१) तथाभूतानि ॥

(२) एतान्यप्युदाहरणानि शतपथब्राह्मणस्य बोध्यानि ॥

परिसमाप्त्यर्थश्चान्यतमो ह्यादी- नां न विकरोति ॥ ७ ॥

हिहन्तेत्यादयो विकारकारिण इत्युक्तम् । क्वचित्त-
स्यायमपवादः । ह्यादीनां मध्येऽन्यतमएकतमः परि-
समाप्त्यर्थश्चेदाख्यातं न विकरोति । बज्जष्वप्याख्याते-
षु येनाख्यातेन सम्बध्यते तदेवाख्यातं विकरोति ।
समीपस्थितान्यप्यन्याख्यातानि न विकुर्वन्ति । तस्मि-
न्नेव स्वसम्बद्धाख्याते परिसमाप्त्यर्थत्वात् । यथा (१)
किठं० हि हरेद्यदन्तरिच्छठं० हरामि दिवं हराम-
मीति हरेत् । हन्तास्यै प्रतिष्ठां कल्पयानीति सस्मि-
यठं० हि न सानीत्याह । कुन्मे पुत्रमवधीदिति चु-
क्रोधेत्यादि ॥

यमपदयोः स्वराद्योरल्पस्वरतरं प्रकृत्या ॥ ८ ॥

द्विरुक्तं पदं यमपदमित्युच्यते । स्वरआदिर्ययोः प-
दयोस्ते स्वरादी । अतिशयेन अल्पाः स्वरा यत्र पदे
दृश्यन्ते तदल्पस्वरतरमिति विग्रहः । स्वराद्ययोर्मध्ये
यदल्पस्वरतरं तत्प्रकृत्या स्यात् । अत्र सूत्रे तरग्रहणं
तुल्यसङ्ख्येष्वपि मात्राधिक्यादुत्तरस्य नाल्पस्वरत्वमि-

ति भावः । यथा (१) तदेकैक्यैवेमाँल्लोकान्त्स तनो-
ति । एकैक्यैवेमाँल्लोकान्त्सृणु ते । तस्मादेकैकामेवा-
नवानमनुब्रूयात् । अत्र पूर्वस्यैकशब्दस्योत्तरैकशब्दापे-
क्षया मात्राल्पत्वात्प्रकृतिस्वरत्वं ज्ञेयम् । अत्रैका चैका
चेति समासे सति “स्त्रियाः पुंवङ्गाषितपुंस्कादनूङ्
समनाधिकरणे स्त्रियामपूरणीप्रियादि”ष्विति सूत्रेण
टाप् । लोपे पूर्वस्यैकशब्दस्यैकमात्रत्वमुत्तरस्य द्विमा-
त्रत्वमिति विवेकः । यमाख्यातप्रसङ्गादनाख्यातयमा-
र्थोऽयमारम्भः ।

स्वराद्यस्वराद्योश्च सममात्रयोः पूर्व-
नेष्टमिति भारद्वाजः ॥ ९ ॥

स्वरआदिर्ययोः पदयोस्ते स्वरादी तादृशे ये न भ-
वतस्ते अस्वरादी । चकारः समुच्चयार्थः । समाः सम-
मात्रा ययोस्ते सममात्रे । स्वराद्योरस्वराद्योश्च सम-
मात्रयोर्यमपदयोर्मध्ये पूर्वपदं प्रकृतिस्वरं नेष्टमिति
भारद्वाजो मन्यते । अस्वरादिसममात्रार्थोऽयमार-
म्भः । तत्र स्वराद्योः सममात्रयोर्यथा (२) उपोपेन्नु मं-
घवन् । अस्वराद्योः सममात्रयोर्यथा (३) प्रप्रायम-

(१) इदमपि तथा ॥

(२) ३ । ३४ ॥

(३) १२ । ३४ ॥

ग्निः । (१) स॒ठं • स॒मिदु॑वसे दृष॑न् । सम॒मात्र॑योः
किम् । उप । उत । उपोत । प्रप्रति ॥

यथार्थं चतुर्विधं पदं विपर्यय-

स्तम् ॥ १० ॥

नामाख्यातोपसर्गनिपातरूपं चतुर्विधं पदं यथार्थं
मन्त्रे स्वरतो व्याख्यातम् । तद्ब्राह्मणे स्वरतो विपर्यय-
स्तं स्यात् । स च विपर्यासो व्याख्यातः पूर्वभाषिके ।
उदात्तमेतत् । स्वरितानुदात्तौ च । उदात्तमनन्त्य-
म् । अन्य॑ठं • संह॑तानाम् । भाषिके चोभयेषामिति ॥

कण्व्यस्वरोऽर्द्धसवर्णे ॥ ११ ॥

‘अथ ब्राह्मणस्वरसंस्कारनियम’ इति प्रतिज्ञा त-
योः स्वरसंस्कारयोर्मध्ये पूर्वं स्वरनियममुक्त्वा । अथे-
दानीं संस्कारमाह । ‘कण्व्यस्वरोऽर्द्धसवर्णे’ । इति ।
कण्ठे भवः कण्व्यः । कवर्गादिव्युदासार्थं स्वरग्रह-
णम् । कण्व्यस्वरो वर्णे ह्रस्वो दीर्घो वाऽर्द्धस्यादुत्त-
रेण ऋवर्णेन सह । ब्राह्मणे इत्यनुवर्तते । यथा
(२) यत्किञ्च ऋतुषु । यत्किञ्चर्तुषु क्रियते च । य-
त्किञ्चर्तसत्याभ्यां ज्य॑ष्ठं • सर्व॑ष्ठं • हैवमेतज्जयतीत्या-

(१) १५ । २८ ॥ इमान्युदाहरणानि यथायोग्यानि ज्ञेयानि ॥

(२) शतपथस्योदाहरणम् ॥

दि ह्रस्वोदाहरणम् । दीर्घोदाहरणं यथा (१) तथा
ऋषीणाम् । तथा ऋषीणान्तथा मनुष्याणाम् । यथा ऋतुं
प्राप्य । यथा तुं प्राप्य । कण्ठस्वर इति किम् । यदि
ऋक्तः । यद्युक्तो भूरिति । चतुर्गृहीतमाज्यं गृहीत्वाऽ-
ऽहवनीये जुज्ज्वय । सवर्णे किम् । ऋतवः संवत्सरो
यजमानस्तस्य तवो याजयन्ति । ब्राह्मणे किम् । (२)
यत्रा सप्तऽऋषीन्परऽएकमाज्जः ॥

वकारस्य पदान्तस्य स्वरमध्ये

लोपः ॥ १२ ॥

स्वरयोर्मध्ये वर्त्तमानस्य पदान्तस्य वकारस्य ब्राह्मणे
लोपः स्यात् । यथा (३) द्वौ इति । द्वा इति । कत्येव
देवा याज्ञवल्क्येति द्वा इत्योमिति होवाच । त्रयस्त्रि-
ठं शौ इति । इन्द्रश्चैव प्रजापतिस्त्रयस्त्रिठं शावि-
ति । वायो इह । नियुङ्गिष्वीयविह ता विमुञ्चेत्या-
दि । ब्राह्मणे किम् । मन्त्रे तु “नियुङ्गिष्वीयविह ता
विमुञ्च ॥

शेषं सामान्यशास्त्रात् ॥ १३ ॥

(१) इदमपि तथैव ॥

(२) १७ । २४ ॥

(३) इमानि सर्वाण्युदाहरणानि शतपथब्राह्मणस्यैव सम्यक् ज्ञातव्यानीति ॥

धैवतनिषादाः ॥ १७ ॥

षड्जऋषभश्चेत्यादिद्वन्द्वः समासः । प्रसङ्गात्तेषां
स्थानान्याह ॥

तेषां योनयः ॥ १८ ॥

तेषां षड्जादिसप्तसामस्वराणां योनयः कारणभू-
तानि स्थानान्युच्यन्ते इति सूत्रशेषः । विशिष्य तान्ये-
वाह ॥

कण्ठात्षड्जः ॥ १९ ॥

कण्ठस्थानात्षड्जस्वरोऽभिव्यज्यते ॥

शिरसऽऋषभः ॥ २० ॥

शिरस्थानादृषभोऽभिव्यज्यते ॥

नासिकायां गान्धारः ॥ २१ ॥

नासिकास्थानाद्गान्धारोऽभिव्यज्यते ॥

उरसो मध्यमः ॥ २२ ॥

उरस्थानान्मध्यमोऽभिव्यज्यते ॥

धैवतो ललाटात् ॥ २३ ॥

खलाटस्थानाद्वैवतोऽभिव्यज्यते ॥

निषादः सर्व्वतइति ॥ २४ ॥

निषादः खरस्तु कण्ठादिसर्व्वस्थानादभिव्यज्यते ।
इतिशब्दः सामखरप्रकरणज्ञापनार्थः । प्रसङ्गात्तैत्ति-
रीयब्राह्मणखरमाह ॥

मन्त्रस्वरवद्ब्राह्मणस्वरश्चरका-

णाम् ॥ २५ ॥

चरकाणां ब्राह्मणस्वरो मन्त्रेण तुल्यो भवति ।
तेषामेव विशेषमाह ॥

तेषां खाण्डिकेयौखेयानां चातुस्व-

र्य्यमपि क्वचित् ॥ २६ ॥

तेषां चरकाणां मध्ये खाण्डिकेयौखेयानां ब्राह्मणे
चत्वारः स्वरा उदात्तानुदात्तस्वरितप्रचिताख्या भव-
न्ति । क्वचिद्ग्रहणात्त्रैस्वर्य्यमपि । अत्र चत्वारः स्वराः
समाहृता इति चातुस्वर्य्यमिति विग्रहः । तदन्यशा-
खिनां ब्राह्मणखरमाह ॥

ततोऽन्येषां ब्राह्मणस्वरः ॥ २७ ॥

अन्येषामुक्तव्यतिरिक्ताशाखिनां आश्वलायनादीनां

तानो ब्राह्मणस्वरो भवति । तान एकस्रुतिरित्यर्थः ।
अथाङ्गोपाङ्गानां स्वरमाह ॥

तानऽएवाङ्गोपाङ्गानां तानऽए-
वाङ्गोपाङ्गानामिति ॥ २८ ॥

शिक्षा कल्पो व्याकरणं नैरुक्तं छन्दो ज्यौतिषमिति
षडङ्गानि प्रतिपदमनुपदं छन्दो भाषा धर्मो मीमां-
सा न्यायस्तर्कद्वयपाङ्गानि । तेषामङ्गोपाङ्गानां तान
एव स्वरो भवति । द्विरभ्यासः शास्त्रपरिसमाप्त्यर्थः ।
इतिशब्दः शास्त्रवेदिनामभ्युदयसूचनार्थः । तदेते
श्लोका भवन्ति । उदात्तः स्वर्यते नीचो नीच उच्च-
स्वरो भवेत् । ब्राह्मणस्य स्वरो ह्येष ज्ञायते वेदपा-
रगैः । १ ॥ ऋषिप्रोक्त्यनुसारेण स्वरसञ्ज्ञां द्विजः
पठेत् । स वेदफलमाप्नोति ह्यन्यथा नरकं व्रजेत् ।
२ । एकं तु ब्राह्मणं सम्यक्स्वरार्थं ज्ञानपूर्वकम् ॥ यो-
ऽधीते वेदवित्स स्यादन्यथा स्याणुरुच्यते ॥ ३ ॥ अस्मा
भागीरथी यस्य नागदेवात्मजः सुधीः ॥ तेनानन्तेन
विष्टतं भाषिकं सूत्रमुत्तमम् ॥ ४ ॥ अनेन प्रीयतां दे-
वो रमानाथः सदा मम ॥ ब्रह्मादिवन्दितपदो देव-
देवशिखामणिः ॥ ५ ॥ वचनप्रसूनयाऽनन्ताख्येन
सूरिणा रचिता ॥ ध्रियतां हृदये सदये कमलाम-
हिलेन पुरुषेण ॥ ६ ॥

इति कात्यायनकृतौ त्रिकण्डिका-
भाषिकपरिशिष्टसूत्रे तृतीया क-
ण्डिका समाप्ता ॥

इति श्रीमत्प्रथमशाखिना नागभट्टात्मजेन श्रीमदन-
न्तभट्टेन विरचितं त्रिकण्डिकाभाषिकपरिशिष्टसूत्र-
भाष्यं समाप्तम् ॥



अथ जटाद्यष्टविकृतीनां लक्षणानि लिख्यन्ते । तत्र
विकृतीनां पाठे फलं पङ्क्तिपावनत्वम् । जटादिवि-
कृतीनां ये पारायणपरायणाः ॥ महात्मानो द्विजश्चे-
ष्टास्ते ज्ञेयाः पङ्क्तिपावनाः । १ । इत्यादित्यपुराणात् ।
अन्यान्यपि विष्णुलोकादिफलानि वाराहपुराणमा-
राशरस्मृत्यादिषु । तासां विकृतीनां नामानि प्रदर्श्य-
न्ते । जटा माला शिखा रेखा ध्वजो दण्डो रथो घ-
नः ॥ अष्टौ विकृतयः प्रोक्ताः क्रमपूर्वा महर्षिभिः ॥
२ ॥ क्रमः पूर्वो यासां ताः आसां क्रमः प्रकृतिरित्य-
र्थः । तत्र प्रथमत्वाज्जटालक्षणमाह ॥

क्रमं यथोक्तं प्रब्रूयाद्व्युत्क्रमेण
क्रमेण च ॥

सलक्षणं सर्वसन्धौ जटा सा प्रो-
च्यते बुधैः ॥ १ ॥

क्रमं यथोक्तं द्वित्रिचतुष्क्रमात्मकं पुनश्च तमेव वै-
परीत्येन पुनश्च क्रमेण एवं त्रिवारं त्रिवारं सर्वस-
न्धिषु लक्षणयुक्तं पठेत्सा जटा तत्त्वज्ञैरुच्यते । उदा-
हरणं यथा (१) व्यायवस्त्य स्त्यव्यायवो व्यायवस्त्य ॥

स्वापूर्वांशं पदद्वन्द्वं स्वागर्भे त्रिचतु-
ष्क्रमे ॥ पुनरुक्तमसन्देहार्थं ज-
टात्वं न चार्हति ॥ २ ॥

सु आ इति पदद्वयगर्भे त्रिक्रमे “सोमपूणा”
“सोमेनातनन्चिम” इत्यादौ तथा चतुष्क्रमे “गोम-
दूषुणा सत्या” इत्यादौ सु आ पूर्वांशं पदद्वयं असन्दे-
हार्थं द्विपदत्वभ्रमवारणाय “सुन-” “आतनन्चिम” इ-
ति पुनरुच्चारितं जटाभावं नार्हति । असन्देहार्थं इ-
ति हेतुगर्भं विशेषणम् । यथा (२) “उदुत्यम्” इत्या-
दौ द्विपदत्वभ्रमवारणाय “ऊँइत्यूँ” इति मध्यस्थस्य वे-

(१) १ । १ । पदपाठे ज्ञातव्यामिदमुदाहरणम् ।

(२) ७ । ३८ ॥

एतन् । तथा इदं न तु क्रमः । अतो न जटा कार्यो ।
इति ॥

अथ जटायां कति सन्धय इति प्रदर्शनार्थं जटायां
पद्यमानान् क्रमान्नामतो निर्दिशति ॥

अनुक्रमश्चोत्क्रमश्च व्युत्क्रमोऽभि-
क्रमस्तथा ॥

सङ्क्रमश्चेति पञ्चैते जटायां क-
थिताः क्रमाः ॥ ३ ॥

व्वायवस्तथ । इत्यनुक्रमः, । स्थस्तथ । इत्युत्क्रमः, ।
स्थ व्वायवः । इति व्युत्क्रमः, व्वायवो व्वायवः ।
इत्यभिक्रमः, । व्वायवस्तथ । इति सङ्क्रमः । कस्मिन्क्र-
मे किं प्रमाणमित्याह ॥

न स्थितोपस्थिते ये स्युर्जटायां व्यु-
त्क्रमे न ते ॥

ये विधयः स्थितोपस्थिते न भवन्ति ते जटायां
व्युत्क्रमे न पठनीयाः । उदाहरणं यथा (१) जास्प-

तत्त्वर्ठः सुयमर्ठः सुयमं जाः पत्यं जास्पत्यर्ठः सुय-
मम् । (१) वसवेऽहर्षितयेऽहः पतये वसवे वस-
वेऽहर्षितये । (२) इतन्मूर्षाहौ धूसहावितमितन्मू-
र्षाहौ । (३) दाव्वाघाटस्ते ते दाव्वाघातो दाव्वाघाट-
स्ते । (४) व्यायवो वनर्षदो वनसदो व्यायवो व्याय-
वो वनर्षदः । (५) कृतस्मते त्वष्टुस्त्वष्टुर्कृतपतः-
कृतस्मते त्वष्टुः । (६) उभेसुश्चन्द्र सुचन्द्रोभेऽउभे
सुश्चन्द्र । (७) बृहतीन्दुदुज्जन्दुधुज्जम्बृहतीम्बृहतीन्दु-
धुज्जन् । (८) श्रेयस्कर भूयस्कर भूयःकर श्रेयस्कर
श्रेयस्कर भूयस्कर । (९) आयुष्माऽआयुरायुरायुः
पाऽआयुष्माऽआयुः । (१०) सिषासन्तो वनासहे व-
नामहे सिषासन्तुः सिषासन्तो वनासहे । (११) अ-

(१) ३ । २० ॥

(२) ४ । ३३ ॥

(३) २४ । ३५ ॥

(४) ३३ । १ ॥

(५) २७ । ३४ ॥

(६) १५ । ४३ ॥

(७) ३३ । २८ ॥

(८) १५ । २९ ॥

(९) २२ । १ ॥

(१०) २६ । १७ ॥

(११) ११ । ६२ ॥

ऋःऽ पुरीषवाहणः पुरीषवाहनोऽग्नेरग्नेःऽ पुरीष-
वाहणः । (१) एनमायुनगयुनगेनमेनमायुनक् । (२) मा-
महन्तामदितिरदितिर्ममहन्ताममहन्तामदितिः । (३)
देवीऽ उपासाऽउपसौ देवी देवीऽउपासौ । (४) पर्जन्यो
वृष्टिमां २ ॥ इव वृष्टिमानिव पर्जन्यः पर्जन्यो
वृष्टिमां २ ॥ इव । एतस्यापवादमाह ॥

वर्जयित्वा विष्पतीव ॥

इदमुदाहरणं वर्जयित्वा अत्र स्थितोपस्थिते अ-
नुष्ठार्यमाणेऽपि एकादेशो व्युत्क्रमे उच्चारणीयः । (५)
विष्पतीव वीरिटे वीरिटे विष्पतीव विष्पतीव वी-
रिटे ॥

विशेषविषयान्विधीन् ॥ ४ ॥

वैकल्पिकान्वयाकरणं ॥

प्रमाणं मध्यगतये ॥ सन्धौ ॥

उत्क्रमव्युत्क्रमाभिक्रमेषु सविषये व्याकरणे वै-

(१) २० । २३ ॥

(२) ३३ । ३० ॥

(३) २१ । ५० ॥

(४) ७ । २९ ॥ इमान्यासु विकृतिषु पदपाठस्योदाहरणानि बुधैर्विधानीति ॥

(५) ३३ । ४० ॥

कल्पिकान् जिह्वामूलीयोपध्मादीन् प्रातिशाख्ये विशेष-
 षविषयान् “प्रकृत्या कखयोः पफयोश्चे” त्यादिविशेष-
 विहितान् त्यक्त्वा अन्यत्र व्याकरणं प्रमाणं पूर्वोक्तोषु प्रा-
 तिशाख्यमेव । कामधुच्चो धुच्चः काङ्कामधुच्चः । च पु-
 ष्पिणीः पुष्पिणीश्च च पुष्पिणीः । अत्रोदाहरण-
 द्वये जिह्वामूलीयोपध्मानीयौ न । सहस्रधारन्देवो दे-
 वः सहस्रधारठं सहस्रधारन्देवः । अत्र “वा शरी”-
 त्यस्य वैकल्पिकत्वात्पक्षे सत्त्वं “अविकारठं शाकल्यः
 शषसेषु” इति विशेषविहितत्वान्न । स्थमहो महस्य-
 स्य महः । अत्र “खर्षरे शरि विसर्गस्य विसर्ग” इ-
 त्यस्य वैकल्पिकत्वात्पक्षे सत्वविसर्गौ “लुङ्मुदि जि-
 त्यरे” इत्युक्तत्वान्न । चक्रे व्यायव्यान्व्यायव्यांश्चक्रे च-
 क्रो व्यायव्यान् । “अत्रानुनासिकात्परोऽनुस्वार” इति
 पक्षेऽनुस्वारः । “अनुनासिकमुपधेत्युक्तत्वान्न । औच्य-
 नुष्टुबनुस्तुप्यौची औच्यनुष्टुप् । अत्र “शञ्छोटी”ति
 तवर्गा “त्परश्चास्पर्शपरञ्छम्” इति विशेषविधाना-
 न्न । सम्भ्रयमाणः सम्भ्राट् सम्भ्राट्त् सम्भ्रयमाणः
 सम्भ्रयमाणः सम्भ्राट् । अत्र “ङः सिधुट्” इति “ङ्नौ
 ताभ्यां सकारे” इति विशेषविहितत्वान्न । उदुत्यन्य-
 स्तुदुदुत्यम् । अत्र “मय उजो वो वा” इत्यस्य वैकल्प-

कृत्वात्यच्चे प्रकृतिभावः “उकारोऽष्टक्तोऽस्पृशति” इत्यु-
 क्तवान् । कृत्सदंनृतसदनमृतसदनमृतसदनृतसद-
 नृतसदनम् । अत्र “कृत्यक” इति पाक्षिकः प्रकृति-
 भावो न । “कण्ठ्य कृत्कारे ह्रस्वम्” इति विशेषवि-
 धानात् । अत एव । कृताषाडृतधामऽकृतधामऽकृ-
 ताषाडृतधामा । अत्र पाक्षिको गुणो न । कृ-
 श्यानालभते लभतऽअकृश्यानृश्यानालभते । अत्रार्-
 इति न प्रातिशाख्यस्थत्वात् । “उपसर्गादिति धातौ”
 इत्यस्य तु धातुत्वाभावान्न प्राप्तः । पोषेण रायो रा-
 यः पोषेण पोषेण रायः । अत्र “रायः सहसस्पौषपु-
 त्रयो” । इति न प्रातिशाख्यस्थत्वात् । दूपऽआप्यतऽ-
 आप्यते दूपो दूपऽआप्यते । ऊरू पादौ पादाऽऊरूऽऊ-
 रू पादौ । अत्र “लोपः शाकल्यस्ये”त्यस्य वैकल्पिकत्वा-
 त्यच्चे अवर्णं प्राप्तं “यवयोः पदान्तयोः स्वरमध्ये लोप”
 इत्युक्तवान्न भवति । अस्मिन्योनौ योनावस्मिन्नस्मि-
 न्योनौ । अत्र पूर्वोक्तेन वकारलोपः प्राप्तः । “न वका-
 रस्याऽसस्त्यान एकेषाम्” । इति विहितत्वान्न भव-
 ति । कृन्त्यर्वन्तर्वञ्छन्ति च्छन्त्यर्वन् । रुक्कमोऽअ-
 न्तरन्ता रुक्कमो रुक्कमोऽअन्तः । षोडशाक्षरेण षोड-
 शठं षोडशठं षोडशाक्षरेण षोडशाक्षरेण षोडश-

म् । इत्यादौ व्याकरणानुसृतत्वाच्च । “चक्षुर्योः शम्”
 “रेफे लुप्यते दीर्घं चोपधा” “अनुस्वारठं० रोष्म-
 सु मकार” इत्यादि भवति । एवमन्यदष्षूक्ष्मम् ॥

आद्यान्त्ययोः प्रातिशाख्यं मानम् ॥

अनुक्रमसङ्क्रमयोस्तु प्रातिशाख्यं प्रमाणम् । सं-
 हिताधर्मवत्वात् । उक्तान्युदाहरणानि । समेष्वपि प्र-
 तिज्ञासूत्रगा धर्माः । सर्वेष्वपि पञ्चसु क्रमेषु जका-
 रादिपठनरूपा धर्माज्ञेयाः । प्रतिज्ञासूत्रगा इत्युपलं-
 चणं शिक्षास्थधर्माणामपि । उक्तान्येवोदाहरणा-
 नि (१) ॥

(१) “क्रमः स्मृतिप्रवर्जनः” इत्युक्तं तत्र स्मरणं पदसन्धिस्वरसन्ध्यादिना दृढं
 जातं इति व्याहिराचार्यः क्रमप्रकृतिका अष्टौ विकृतीराह जटामालैति पद्येन तत्राद्यां
 जटाविकृतिस्तत्त्वलक्षणमाह । ब्रूयात्क्रमविपर्यासं क्रममीदृग्विनिर्दिशेत् । जटास्थ्यां विकृ-
 तिं धीमान् विज्ञाय क्रमलक्षणम् । स्पष्टार्थः । क्रमविपर्यासक्रममित्यस्यैवप्रपञ्चं विवक्षुः
 पूर्वोक्तमर्थमनूय धर्मविशेषमाह । अनुलोमविलोमाभ्यां त्रिवारं हि पठेत्क्रमम् ॥ विलो-
 मे पदवत्सान्धिरनुलोमे यथा क्रमम् । अनुलोमे आद्यन्तक्रमयोः पाठे यथा क्रमं प्राति-
 शाख्योक्तलक्षणविशिष्टक्रमकालीनसन्ध्यनतिक्रमेण सन्धिर्ज्ञातव्यः । विलोमेऽनुपदवत्
 पदेन तुल्यम् । पदपाठे यथा पदानि वर्त्तन्ते तादृशपदानामेव सन्धिः कर्त्तव्येति । ह्य-
 ग्रीवोऽप्यमुमर्थमाह । यथा । क्रमे यथोक्ते पदजातमेव द्विरभ्यसेदुत्तरमेव पूर्वम् ॥ अ-
 भ्यस्य पूर्वं च तथोचरे पदेऽवसानमेवं हि जटाभिधीयते ॥ १ ॥ क्रमे यथोक्ते “द्वेद्वे
 पदे सन्ध्यात्युत्तरेणोत्तरमावसानादपृक्तवर्जं” मित्यादिनोक्ते पदजातं पदद्वयं वा
 पदत्रयं वा द्विरभ्यसेत् द्विवारं पठेदुत्तरं पदं पूर्वं च ततः प्रथमे द्विरभ्यस्य उत्तरेऽवसेत् ।
 अभिक्रमे क्रमशास्त्रं प्रधानं स्यादव्युत्क्रमे व्याकरणं प्रमाणम् । उक्तः क्रमे व्युत्क्रमणे
 विशेषः स्वराः प्रकाराद्वितयेऽप्यभिज्ञाः । निगदव्याख्यानम् । पूर्व्वेण “स्वरसंस्कारयो-
 र्छन्दसि नियम” इति. संस्कारादिना नानारूपतायां विलोमपाठे विशेषमाह । यत्वं

सर्वस्वरेषु तु ॥ ५ ॥

सर्वेषु स्वरविषयेषु तु पुनः प्रातिशाख्यमेव प्रमाणं
तद्विचारस्तु स्वरप्रकरणे उक्तः । यान्युदाहरणानि
संहितायां न दृश्यन्ते तानि प्रदर्शयन्ते । अञ्जानाऽअभ्य-
ञ्जानाऽअञ्जानाऽअभि । विस्वः स्वर्ष्विस्वः ।
यञ्जोऽभ्यभि यञ्जो यञ्जोऽभि । तेऽप्सरसामप्सर-

णत्वं च दीर्घत्वं क्रमसन्धौ यदुच्यते । व्युत्क्रमे तत्र कर्त्तव्यं स्वरं क्षैप्रादिकं भवेत् । क्र-
मसन्धौ अनुलोमपाठे षट् “भावम्वः सषर्ठ० समानपदे” इति । णत्वम् । “ऋष-
रेभ्यो नकारो णकार्ठ० समानपदे” इत्युक्तम् । तथा दीर्घत्वं “दीर्घमि”त्यधिकृत्य
“अश्वरश्मिसुमती”त्यादिसूत्रसन्दर्भेण विहितं विलोमपाठे तत्र कर्त्तव्यम् । पदस्वरूपं
व्याकरणेतिविधिना पठेदित्यर्थः । एवं चकासात् लोपागमविकारप्रकृतिभावापि वि-
लोमपाठे न भवन्ति तुल्याधिकारात् । “अनितावध्याये” इत्यस्यापवादः । उदाहरणं तु
प्रातिशाख्योक्तं ज्ञेयम् । स्वरं क्षैप्रादिकं भवेदिति । स्वरसन्ध्यादि “उदात्तवानुदात्तः” ।
“स्वरितवान्स्वरितः” इत्यादिक्षैप्रादिषु “युवणौ यवौ क्षैप्रः” इत्यादि । अनुलोम-
वत्प्रतिलोमेऽपि भवति यथा त्रगुम्बकैद्यजामहे यजामहे त्रगुम्बकन्त्रगुम्बकैद्यजाम-
हे । इत्याद्युदाहरणानि सर्वत्रैव बोध्यानीति ॥ अक्सानेऽर्द्धे च ऋभु यजुषु वा
स्थितोपस्थितं कर्त्तव्यम् । वेष्टनापरपर्यायेण भवतीत्यर्थः । त्रिक्रमे चतुष्क्रमे च जटापा-
ठे हयग्रीवो विशेषसाह “त्रिभिः पदैः स्यादुत्क्रमणं यत्र तत्र मध्यं त्वनभ्यस्य च पूर्वम-
भ्यसेत् । अर्थाच्च मध्यस्य भवेद्विस्तृता सन्देहदं त्विङ्गनेन प्रदर्शयेत् । अस्त्यर्थः ।
यत्र त्रिभिः पदैः क्रमणं स्यात्तत्रान्त्यपदं द्विस्तृता पश्चान्मध्यपदं त्वनभ्यस्य सकृदेव
चोक्त्वा आद्यं अभ्यसेत् । द्विर्ब्रूयात् तत्र पदत्रयं गृहीत्वा अनभ्यस्य अभ्यासरहितस्य
मध्यस्य तत्सन्धानद्वारा पूर्वमभ्यस्य क्रमवदन्तेऽवसानं कुर्यात् । उत्क्रमणम् व्युत्क्र-
मणतो मध्यस्य द्विस्तृता भवेत् । अन्ते पदेऽवसाय ततः सन्देहदं सन्दिग्धं मध्य-
मपदं निश्चयेन इङ्गनेन पृथक्कालेन प्रदर्शयेत् पदस्वरूपं प्रकटीकुर्यात् यथा । कर्मणऽ
आर्ष्यायदध्वम्यायदध्वमा कर्मणे कर्मणऽआर्ष्यायदध्वम् ॥

सान्ते तेऽप्सरसाम् । अमीन्वतामीन्वतामस्यमीन्व-
ताम् । इत्यादिप्रकारेण बोध्यम् । प्रातिशाख्येऽनुक्त-
त्वाद्याकरणस्यान्विधीन्द्रर्शयति ॥

सवर्णोऽपृक्त उः स्पर्शात्स्वरे याति वतामिह ॥

जटायां सवर्णे स्वरे परे स्पर्शात्परः उ इति शब्दो
वकारभावं याति । यथा उदुत्यन्त्यम्बुदुदुत्यम् । अत्र
“मय उओ वो वे”ति वकारो भवति । (१) ॥

(१) त्रिचतुष्क्रमपञ्चक्रमादौ जटाप्रकारं हयग्रीवोऽप्याह । चतुष्क्रमे त्रिक्रमे च
तथा पञ्चक्रमेऽपि च ॥ आद्यन्ताभ्यां त्रिवृन्मध्यं ब्रूयात्क्रमविपर्ययैरित्यस्य स्पष्टार्थः ॥
उकारस्योदाहरणं यथा “उदुत्यन्त्यम्बुदुदुत्यम् । इत्यादि चतुष्क्रमेऽपि यथा ऊर्ध्वऽ-
ऊष्णो नः (ःसूऊर्ध्वऽऊर्ध्वऽऊष्णं + । पञ्चपदक्रमजटोदाहरणं त्वृग्वेदिनां भवति न
वाजसनेयिशाखिनाम् । अथ गलत्पदे विशेषमाह व्याडिर्भगवान् । समयादौ क्रमे यद्वत्स-
मयात्परतस्तथा ॥ जटायां समयादिस्थं शुद्धेन परिवर्त्तयेत् । अस्यार्थः । समयशब्दो
गलत्पदवाचकोऽध्येतृप्रसिद्धः । गलत्पदादौ क्रमाध्ययने यद्वयेन प्रकारेण “यथा
समाप्नातं क्रमावसानार्थं सङ्क्रमेष्वि”त्यादिना विधानं अङ्गीक्रियते जटायामपि तादृ-
गेवाङ्गी कर्त्तव्यम् । समयाद्युदाहरणम् । सा विवश्वायुर्विवश्वायुः सा सा विवश्वायुः + ।
समयात्परतस्त्योदाहरणं यथा विवश्वायुर्विवश्वकर्म्म विवश्वकर्म्म विवश्वायुर्विवश्वायु-
र्विवश्वकर्म्म । मध्यपदस्य विशेषमाह स एव । समयक्रमणं नास्ति समयाद्विक्रमं विना ॥
त्रिक्रमं समयादिस्थमादिना संहितां पठेत् ॥ समयस्य गलत्पदस्य क्रमणं पुनः पुनरुच-
रोत्तरपदसन्धानं शुद्धक्रमवज्रास्ति समयादिपदं वर्जयित्वा ततः समयादौ यदि क्रमो
भवति तं त्रिक्रमव्युत्क्रमसङ्क्रमैरित्यादिपदेन सह त्रिवारं पठेदित्यर्थः । दूरऽउऽअ-

स एव सन्धिनान्यैक्यमापन्नोऽपि

प्रगृह्यकः ॥ ६ ॥

सन्धिविधायकेन शास्त्रेण अन्येन सहैक्यमापन्नोऽ-
पि उ इतिशब्दः प्रगृह्यः । यथा ऊर्ध्वऽऊर्ध्वो नः सू
ऊर्ध्वऽऊर्ध्वऽऊर्ध्वः । उदुत्वात्तोउदुत्वा । अत्र उका-

न्तिकेऽन्तिकऽउदूरे दूरऽउऽअन्तिके । इत्यादि ज्ञेयम् । स्वरे यातिवतामिहेत्यत्र वता-
मिति षष्मन्तो न बोध्यः । किन्तु वकारस्य भावो वता इति भावार्थस्ता प्रत्ययः । तां
वकारतां याति प्राप्नोतीत्यर्थः १ । अथ विलोमशेषजटायां कथं सन्धिः कार्य इत्याह ।
व्युत्क्रमे पदवत्सन्धिः स्वरक्षैप्रादिरिष्यते ॥ उकारादिविधानं तत्स्वरान्तः परि-
वर्त्तनम् । अस्यार्थः । विलोमक्रमसन्धौ अनुलोमपदपाठवत्सन्धयः क्षैप्रादिस्वराश्च
भवन्ति तल्लक्षणानि तु प्रथमाध्याये जात्याभिनिहितक्षैप्रप्रक्षिप्यतैरोव्यञ्जनतै-
रोविरामपादवृत्तानां स्वराणामुक्तानि । तद्वज्जटादिविकृतिष्वपि । आद्येषु चतुर्षु
स्वरितेषु ऋग्वेदिनामेव भवति अन्येष्वनु स्वरमात्रमेव तेषामुदाहरणानि पूर्वो-
क्तवज्जातव्यानि । तथा ङइयोः स्थाने ल्हौ समानपदे “ङ्ढौल्लहावेकेषां”
मित्यनेन सूत्रेण परिवर्त्तनपाठो जटायामनुलोमविलोमे च संहितावत्काण्वाः पठन्ति
न तु माध्यन्दिनाः कुतो वाजसनेयिनां “तस्मिँल्लल्लहेत्याद्यष्टमाध्यायस्थसूत्रेण निषेधा-
त् । अथ विलोमे प्रगृह्यं यत्पदं तन्निमित्ततः प्रकृतिभावश्च केषामस्ति केषाम्नास्तीति
विशेषमाह । वज्रक्षरान्तं प्रगृह्याणामुकारामन्त्रितस्य च ॥ विलोमे पदसन्धौ तु प्र-
गृह्यत्वं न विद्यते ॥ विलोमे यथावस्थितएव पाठः । विलोमे पदवत्सन्धिर्विरत्यस्या-
पवादभूतं यथा “इदुदेद्विचनं प्रगृह्य”मित्यनेन वेष्टने एव प्रगृह्यसञ्ज्ञायां प्रकृतिभाव-
नियमो नान्यत्रेति कात्यायनोक्तमेवार्थं वदति । ङकारस्य तु स्पर्शात्परस्य न द्रष्टव्यः ।
उदाहरणानि पूर्वोक्तानि बोधयान्तीति, नवधा कम्पलोपविषयो नोक्तस्तद्विधश्च दौर्मन्त्रा-
चार्योक्तिनिषेधोऽपि ऋग्वेदीयैर्ज्ञानकोक्तत्वात् । सङ्क्रमं व्युत्क्रमवद्ब्रूयादिति गार्ग्यवच-
नं तदपस्तम्बादिविषयम् । ननु जटाद्यष्टविकृतीनां लक्षणानि प्रातिशाल्ये न प्रोक्तानि
महर्षिणा कात्यायनेन तदप्रमाणमिति, उच्यते “बबह्लपं वा स्वगृह्योक्तं यस्य कर्म प्र-

रस्य ओकारस्य च “अन्तादिवस्त्रे”त्यनेन परादिव-
त्वादेकाज्निपातत्वेन “निपातएकाजनाङ्” इति प्र-
गृह्यत्वम् (१) ॥

ओकारान्तनिपातानां व्युत्क्रमेऽस्ति
प्रगृह्यता ॥

यथा उपो ते तऽउपो ऽउपो ते । अथो ये येऽथोऽअ-
थो ये । “ओत्” इत्यनेन प्रगृह्यत्वम् । “ओकारश्च”
इत्यनेन विहितप्रगृह्यत्वनिमित्तप्रकृतिभावस्तु इतौ प्र-
कृतिभावविधानादन्यत्र न । अत एव विष्णवेते इत्यत्र
अवादेशः । अथोऽअन्नस्येत्यादौ तु “प्रकृतिभाववृत्तु”
इत्यनेन प्रकृतिभावत्वम् ॥

सपूर्वाकारओङ्कारः प्रयात्योम्भा-
वमत्र हि ॥ ७ ॥

पूर्वेण अकारेण सहितः ओं शब्दो जटायां ओ-

कीर्तितम् ॥ तस्य तावति शास्त्रार्थे कृते सर्वः कृतो भवेत्” इति क्रमपर्यन्तलक्षणोक्त-
मेवाध्ययनमस्ति न जटादिबृकृतीनामतआह आलस्येन कात्यायनेनानुक्तत्वात् ।
कात्यायनसमानकालीनमहर्षिणा व्याडिना सामान्येनेतिहासमुखेन च प्रतिपादनादवि-
रोधाच्चेति शम् ३ ॥

इति पाठकोपावहयुगलकिशोरव्याससङ्कलितप्रातिशाख्यकीर्तिप्रकाशटिप्पण्यां जटा-
यष्टावकृतिशास्त्रार्थः समाप्तः । संवत् १९४४ कार्तिकशुक्लपूर्णिमायाम् ॥

स्मावं प्रयाति । यथा ओम्प्रप्रोमोम्प्र । अत्र “ओमा-
डोश्च” इत्यनेन पररूपत्वम् ॥

अयमेव हि शास्त्रार्थः सर्वासु विकृ-
तिष्वपि ॥

जटोक्त एव शास्त्रार्थो मालादिसप्तसु विकृतिषु
बोध्यः ॥

माला मालेव पुष्पाणां पदानां
ग्रन्थिनी हि सा ॥

आवर्त्तन्ते त्रयस्तस्यां क्रमव्युत्क्रम-
सङ्क्रमाः ॥ ८ ॥

अस्यार्थः । यथा पुष्पाणां माला ग्रन्थिनी परस्पर-
सम्बद्धकारिणी तथा पदानां परस्परसम्बद्धकारिणी
या विकृतिः सा मालेत्युच्यते । तस्याः पठनप्रकारमा-
ह । तस्यां मालायां जटोक्तपञ्चक्रममध्ये त्रयः क्रम-
व्युत्क्रमसङ्क्रमा आवर्त्तन्ते पदादृत्या प्रव्यन्ते । यथा ।
सुसमिद्वाय शोचिषे । शोचिषे सुसमिद्वाय । सुसमि-
द्वाय शोचिषे । सुसमिद्वायेति सु । समिद्वाय । शो-
चिषे दृतम् । दृतठं० शोचिषे । शोचिषे दृतम् । दृतं

पदोत्तरां जटामेव शिखामार्याः प्र-
चक्षते ॥

अस्यार्थः । पूर्वोक्तां जटामेव अन्ते एकपदाधिकां
शिखां विकृतिं बुद्धिमन्त आहुः । यथा । अन्तश्चरति
चरत्यन्तरन्तश्चरति रोचना । अन्तरित्यन्तः । चरति
रोचना रोचना चरति चरति रोचनास्य । अस्य प्रा-
णात्प्राणादस्यास्य प्राणादपानती । प्राणादपानत्यपा-
नती प्राणात्प्राणादपानती । अपानतीत्यप । अन-
ती ॥ व्यकल्यदकल्यद्विकल्यकल्यन्महिषः । अकल्यन्म-
हिषो महिषोऽकल्यदकल्यन्महिषो दिवम् । महिषो-
दिवन्दिबन्महिषो महिषो दिवम् । दिवमिति दिव-
म् ॥ अथ रेखात्तक्षणमाह ॥

कूमाद्द्वित्रिचतुःपञ्चपदकूममुदाहरेत् ।
पृथग्पृथग्विपर्ययस्य रेखामाहुः पुनः
कूमात् ॥ १० ॥

अस्यार्थः । क्रमेण द्विपदत्रिपदचतुष्पदपञ्चपदक-
मानुक्ता प्रतिक्रमे पृथक् पृथक् विपर्यासेन पठित्वा
पुनः क्रमं पठेत् । तां विकृतिं रेखामाहुः । यथा । म-

धु नक्तम् । नक्तमधु । मधु नक्तम् । नक्तमुतोषसः । उ-
 षसउत नक्तम् । नक्तमुत । उतोषसः । उषसो म-
 धुमत्पार्थिवठं० रजः । रजः पार्थिवमधुमदुषसः ।
 उषसो मधुमत् । मधुमत्पार्थिवम् । मधुमदिति मधु ।
 मत् । पार्थिवठं० रजः । रजइति रजः ॥ मधु द्यौ-
 रस्तु नः पिता । पिता नोऽस्तु द्यौर्मधु । मधुद्यौः । द्यौर-
 स्तु । अस्तुनः । नः पिता । पितेति पिता । अथ ध्व-
 जलक्षणमाह ।

ब्रूयादादेः क्रमं सम्यगन्तादुत्तारये-
 दिति ॥ वर्गे वा ऋचि वा यस्य

पठनं स ध्वजः स्मृतः ॥ ११ ॥

अस्यार्थः । वर्गे ऋचि वा आदेः क्रमं अन्तर्पर्यन्तं
 ब्रूयात् । अन्तात्सम्यग्यथोक्तं क्रममेव उत्तारयेत् आदि-
 पर्यन्तं पठेत् । एवं यस्य पठनं स ध्वजः ध्वजाख्यविक्र-
 तिर्बोद्धा । यथा । बिष्णोः कर्माणि । सखेति सखा ।
 कर्माणि पश्यत । युज्यः सखा । पश्यत यतः । इन्द्रस्य
 युज्यः । यतो व्रतानि । पस्पशइति पस्पशे । व्र-
 तानि पस्पशे । व्रतानि पस्पशे । यतो व्रतानि ।
 पस्पशइति पस्पशे । व्रतानि पस्पशे । व्रतानि प-

स्पृशे । यतो व्रतानि । पस्पृशइति पस्पृशे । पश्यत
यतः । इन्द्रस्य युज्यः । कर्माणि पश्यत । युज्यः स-
खा । विष्णोः कर्माणि । सखेति सखा ॥ अथ क्रम-
दण्डलक्षणमाह ॥

क्रममुक्ताविपर्ययस्य पुनश्च क्रममु-
त्तरम् ॥ आऽर्द्धर्चादेवमुक्तोऽयं क्रम-
दण्डोऽभिधीयते ॥ १२ ॥

क्रममनुलोमसुक्ता विपर्ययस्य विलोमसुक्ता पुनः
क्रमं पठित्वा चकारादनुलोमविलोमैः अर्द्धर्चसमाप्ति-
पर्यन्तं ब्रूयात् । द्वितीयार्द्धर्चादेवमेवोक्ताऽनुलोमविलो-
मैरर्द्धर्चोन्तस्पठित्वा एवं क्रमदण्डइत्युच्यते । स यथा ।
यजा नः । नो यज । यजा नः । नो मित्रावरुणा ।
मित्रावरुणा नो यज । यजानः । नो मित्रावरुणा ।
मित्रावरुणा यज । यज मित्रावरुणा नो यज । यजा-
नः । नो मित्रावरुणा । मित्रावरुणा यज । यजा देवा-
न् । देवान्यज मित्रावरुणा नो यज । यजानः । नो मि-
त्रावरुणा । मित्रावरुणा यज । यजा देवान् । देवा २॥
ऽकृतम् । कृतन्देवान्यज मित्रावरुणा नो यज । यजानः ।
नो मित्रावरुणा । मित्रावरुणा यज । यजा देवान् । दे-

वाँ २॥ ऽऋतम् । ऋतम्बृहत् । बृहदृतं देवान्यज मित्रा-
वरुणा नो यज । यजानः । नो मित्रावरुणा । मित्राव-
रुणा यज । यजा देवान् । देवाँ २॥ ऽऋतम् । ऋतम्बृह-
त् । बृहदिति बृहत् ॥ अग्ने यक्षि । यक्ष्यग्ने । अ-
ग्ने यक्षि । यक्षि स्वम् । स्वय्यक्ष्यग्ने । अग्ने यक्षि । य-
क्षि स्वम् । स्वन्दमम् । दमँ स्वय्यक्ष्यग्ने । अग्ने य-
क्षि । यक्षि स्वम् । स्वन्दमम् । दममिति दमम् ॥ अथ
रथलक्षणमाह ॥

पादशोऽर्द्धर्चशो वाऽपि सहोक्त्या

दण्डवद्रथः ॥

पादे पादे अर्द्धर्चे वा क्रमविपर्ययासौ दण्डवत्सह
उक्तौ चेत्स विकृतिविशेषो रथइत्युच्यते । यथा ।
समिधाग्निम् । समिधेति सम् । इधा । अग्निर्ठ०
समिधा । हतैर्बोधयत् । बोधयत हतैः । समिधाऽ-
ग्निम् । समिधेति सम् । इधा । अग्निन्दुवस्यत । दु-
वस्यताग्निर्ठ० समिधा । हतैर्बोधयत । बोधयताति-
थिम् । अतिथिम्बोधयत हतैः । समिधाग्निम् । स-
मिधेति सम् । इधा । अग्निन्दुवस्यत । दुवस्यत हतैः ।
हतैर्बोधयत । बोधयतातिथिम् । अतिथिमित्यतिथि-

मिति॑ पू॒त । द॑क्षम् । व्व॒रुणञ्च॑ । च॒ रि॒शाद॑सम् । रि॒-
 शाद॑स॒मिति॑ रि॒शा । द॑सम् । इत्ये॒कः प्र॑का॒रः । अथ॑ द्वि-
 ती॒यः प्र॑का॒रः । मि॒त्रो व्व॒रुणः॑ । इन्द्रो॑ बृ॒हस्प॑तिः ।
 व्व॒रुणो मि॒त्रः॑ । बृ॒हस्प॑तिरिन्द्रः । मि॒त्रो व्व॒रुणः॑ ।
 व्व॒रुणो भवतु॑ । इन्द्रो॑ बृ॒हस्प॑तिः । बृ॒हस्प॑तिर्विष्णुः ।
 भवतु॑ व्व॒रुणो मि॒त्रः॑ । विष्णुर्बृ॒हस्प॑तिरिन्द्रः । मि॒-
 त्रो व्व॒रुणः॑ । व्व॒रुणो भवतु॑ । भव॒त्वर्थ्य॑मा । इन्द्रो॑ बृ॒-
 हस्प॑तिः । बृ॒हस्प॑तिर्विष्णुः । विष्णु॑रु॒क्क्रमः॑ । अ-
 र्थ्य॑मा भवतु व्व॒रुणो मि॒त्रः॑ । उ॒क्क्रमो॑ विष्णुर्बृ॒ह-
 स्प॑तिरिन्द्रः । मि॒त्रो व्व॒रुणः॑ । व्व॒रुणो भवतु॑ । भव॒-
 त्वर्थ्य॑मा । अ॒र्थ्यमे॒त्यर्थ्य॑मा ॥ इन्द्रो॑ बृ॒हस्प॑तिः । बृ॒ह-
 स्प॑तिर्विष्णुः । विष्णु॑रु॒क्क्रमः॑ । उ॒क्क्॒क्रमऽइत्यु॑क् ।
 क्र॒मः॑ ॥ उ॒भयो॑रपि तृती॒यः प्र॑का॒रः । अ॒न्तश्च॑रति ।
 च॒रत्य॑न्तः । अ॒न्तश्च॑रति । अ॒स्य प्रा॑णात् । प्रा॒णाद॑स्य ।
 अ॒स्य प्रा॑णात् । च॒रति रो॒चना । रो॒चना च॑रत्य॑न्तः ।
 अ॒न्तश्च॑रति । अ॒न्तश्च॑रति । अ॒न्तरि॑त्य॑न्तः । च॒रति-
 रो॒चना । प्रा॒णाद॑पान॒ती । अपा॑न॒ती प्रा॒णाद॑स्य ।
 रो॒चना॑स्य । अ॒स्य प्रा॑णाद॑पान॒ती । अपा॑न॒तीत्य॑प ।
 अ॒न॒ती । इत्ये॒कः । अथ॑ द्विती॒यः । धा॒नाव॑न्तं क॒रन्मि॑-

यम् । करम्भिणन्धानावन्तम् । धानावन्तं करम्भि-
यम् । इन्द्रं प्रातः । प्रातरिन्द्र । इन्द्रं प्रातः । कर-
म्भिणमपूपवन्तम् । अपूपवन्तं करम्भिणं धानावन्तम् ।
धानावन्तं करम्भिणम् । करम्भिणमपूपवन्तम् । प्रात-
र्जुषस्व । जुषस्व प्रातरिन्द्र । इन्द्रं प्रातः । प्रातर्जु-
षस्व । अपूपवन्तसुक्विक्यनम् । उक्विक्यनमपूपवन्तं कर-
म्भिणं धानावन्तम् । धानावन्तं करम्भिणम् । धानाव-
न्तमिति धाना । वन्तम् । करम्भिणमपूपवन्तम् ।
अपूपवन्तसुक्विक्यनम् । अपूपवन्तमित्यपूप । वन्तम् ।
उक्विक्यनमित्युक्विक्यनम् । जुषस्वनः । नो जुषस्व प्रात-
रिन्द्र । इन्द्रं प्रातः । प्रातर्जुषस्व । जुषस्व नः । नऽइ-
ति नः ॥ अथ द्विविधघनलक्षणमाह ॥

अन्तात्क्रमं पठेत्पूर्वमादिपर्यन्तमा-
नयेत् ॥ आदिक्रमं नयेदन्तं घनमा-

हुर्मनीषिणः ॥ १४ ॥

यथोक्तं क्रममेव अन्तमारभ्य आदिपर्यन्तं पूर्वं पठेत् ।
तत आदिमारभ्य अन्तपर्यन्तं क्रमं पठेत् पण्डितास्तं
घनमाहुः ॥ यथा अतिथिमित्यतिथिम् । बोधयताति-

थिम् । दृतैर्बोधयत । दुवस्यत दृतैः । अग्निन्दुवस्य-
 त । समिधाग्निम् । समिधेति सम् । इधा । अग्नि-
 न्दुवस्यत । दुवस्यत दृतैः । दृतैर्बोधयत । बोधयताति-
 थिम् । अतिथिमित्यतिथिम् । जुहोतनेति जुहोतन ।
 हव्या जुहोतन । आस्मिन्हव्या । आस्मिन् । अ-
 स्मिन्हव्या । हव्या जुहोतन । जुहोतनेति जुहोत-
 न । इति प्रथमः प्रकारः । अथ लोकप्रसिद्धद्वितीयव-
 नलक्षणमाह ॥

शिखामुक्ता विपर्ययस्य तत्पदानिपु-
 नः पठेत् ॥ अयं घन इति प्रोक्तः-
 इत्यष्टौ विकृतीः पठेत् ॥ १५ ॥

अस्यार्थः । शिखां पूर्वोक्तामुच्चार्य विपर्ययेन ता-
 नि पदान्युच्चार्य पुनः क्रमेण तानि पदान्युच्चारयेत् ।
 अयं विकृतिविशेषो घनइति प्रोक्तो महर्षिभिर्व्याडि-
 भिरिति । उदाहरणं यथा । दस्वा युवाकवो युवाक-
 वो दस्वा दस्वा युवाकवः सुताः सुता युवाकवो दस्वा
 दस्वा युवाकवः सुताः । युवाकवः सुताः सुता यु-
 वाकवो युवाकवः सुता नासत्या नासत्या सुता यु-

वाकवो युवाकवः सुता नासत्था । सुता नासत्था
 नासत्था सुताः सुता नासत्था वृक्तबर्हिषो वृक्तबर्हिषो
 नासत्था सुताः सुता नासत्था वृक्तबर्हिषः । नासत्था
 वृक्तबर्हिषो वृक्तबर्हिषो नासत्था नासत्था वृक्तबर्हि-
 षः । वृक्तबर्हिषऽइति वृक्त । बर्हिषः ॥ आयातय्यातमा-
 यातठ० रुद्रवर्त्तनी रुद्रवर्त्तनी यातमायातठ० रु-
 द्रवर्त्तनी । यातठ० रुद्रवर्त्तनी रुद्रवर्त्तनी यातं
 व्यातठ० रुद्रवर्त्तनी ॥ रुद्रवर्त्तनीऽ इति रुद्र वर्त्त-
 नी ॥ एवं प्रकारेणाष्टौ विकृतीः प्रठेत् ॥ वेदवेदाङ्गे-
 न्दुवर्षे मार्गे मास्यसिते दले ॥ पञ्चम्यां रविवारे तु
 गुरुमे कर्कचन्द्रके ॥ १ ॥ विश्वेश्वरस्यानुजेन सुतेन सु-
 धिया सुदे ॥ युगलप्राक्शिरोरेण पाठकेन कृता स-
 ताम् ॥ २ ॥ टिप्पणी प्रातिशाख्यस्य सम्यक्कीर्त्तिप्र-
 काशिका ॥ तां मुद्रयित्वा प्रथिता लोके लौहाक्षरैः
 शुभैः ॥ ३ ॥ कात्यायनकृतं सूत्रं प्रतिज्ञानामकं शुभम् ॥
 अनन्तदेवरचितं सङ्गाध्येणैव संयुतम् ॥ ४ ॥ भाषिकं
 परिशिष्टं च तत्कृतं भाष्ययुक्तया ॥ शतपथब्राह्मणस्य
 स्वरादिज्ञानकारणम् ॥ ५ ॥ जटादिविकृतीनां तु स-
 म्यज्ज्ञानव्यथाऽऽप्यते ॥ महर्षिणा व्याडिना यज्ज-
 टापटलसञ्ज्ञकम् ॥ ६ ॥ तद्भावं समनुज्ञाय हयग्री-
 वेण भाषितम् ॥ दौर्मित्रिणा गौतमेन रामेणापि सु

भाषितम् ॥ ७ ॥

॥ श्रीगणेशमहन्मजे ॥

अथ कात्यायनमहर्षिप्रणीतमृग्यजुः
परिशिष्टनवमं प्रातिशाख्योपयुक्तं
शिष्याणां परिज्ञानार्थं च ऋग्यजुः-

लक्षणविशिष्टमारभ्यते ॥

अथादित्ये यजुर्वेदे भेदे माध्यन्दिनीयके (१) ॥
वक्ष्याम्यृग्यजुषां सम्यग्विभागं तु यथाश्रुतम् ॥ १ ॥ ऋ-
गादेशे यजुर्ज्ञेयमनादेशे तु केवलम् ॥ क्रतौ यजुरुदा-
हारे (२) शेषा विद्यादृचः कविः ॥ २ ॥ उपयामः स-

(१) अथ शिक्षां प्रवक्ष्यामि वासिष्ठस्य मतं यथा । इति पद्यं क्वचित्पुस्तके लि-
खितं तदसमीचीनं कुतः शिक्षालक्षणधर्मरहितत्वात् । शिक्षालक्षणं तु महर्षिणा का-
त्यायनेन प्रसवोत्थानपरिशिष्टे सप्तदशाख्येऽभिहितम् । तद्यथा स्वरसंस्कारलघ्व-
नुनासिकानुस्वारबिसर्जनीयदन्त्यमूर्ध्वन्यतालुकुण्डलोष्ठयमोपधमानीयजिह्वामूलीयानां
यज्ञस्वरसंस्कारोच्चारणार्था शिक्षेति ॥ अथेति । अथज्ञादो मङ्गलार्थः । पार्षदपरिशि-
ष्टानन्तरमेतस्य कथनमित्यानन्तर्यार्थश्चेति । आदित्य इति । आदित्यात्सूर्यनारायणा-
त्प्राप्तो यजुर्वेदो येन महर्षिणा योगिना याज्ञवल्क्येनासावादित्यस्तास्मिन्नादित्ये ।
तत्र प्रमाणं शतपथब्राह्मणस्य चतुर्दशकाण्डे बृहदारण्यके “आदित्यानीमानि शुक्रानि
यजुर्ष्वि वाजसनेयेन याज्ञवल्क्येन ख्यायन्ते । इति ॥

(२) ऋते यजुरुच्चादरे इति ‘स्व’ पुस्तकपाठः । भेदे इति । यजुर्वेदस्य षडशीति
भेदाऽऽक्ता महर्षिणा कात्यायनेन चरणव्यूहपरिशिष्टे, परन्तु शुक्लयजुर्वेदस्य षड्विंश भेदा
भवन्ति तन्मध्ये तृतीया शास्त्रा माध्यन्दिनीयकमिति तस्मिन्माध्यन्दिनीयके ऋग्यजुः
परिशिष्टमुच्यते ॥

योनिश्च स्वाहाकारश्च योऽन्यभाक् ॥ ऋक्सम्बन्धं य-
जुर्ज्ञेयं यज्ञं वक्ष्याम्यतोऽब्रुवन् ॥ ३ ॥ द्यवसाना ऋचः
सर्वा यजुरन्यत्तदाश्रितम् ॥ वर्गादिष्टासु नैवं स्वात्त-
त्रादिष्टे यजुर्भवेत् ॥ ४ ॥ ज्ञेयान्येकावसानानि स्वाध्या-
योपरमात्कचित् ॥ अवसानानि वक्ष्यामि द्विपदैकप-
दां तथा ॥ ५ ॥ ऋगर्ध्वं चानुवाकानामन्तेषु यजुषां (१)
तथा ॥ अवसानं विजानीयादान्नायनियमेन तु ॥ ६ ॥
पुरा क्रूरस्येत्येका प्रथमे, वीतिहोत्रमित्येषा ते, मरुतां
ष्टपतीरिति च, यम्परिधिमिति यजुरन्ताऽग्नेः प्रिय-
मिति यजुः, स ९ सुवभागास्त्येषेति स्वाहा व्याडि-
ति यजुर्ह्रैवा गातु विदऽइति द्वे, सँवर्धसेत्येका, ये
रूपाण्येका,ऽन्ते द्वे ॥ १ ॥ समिधाग्निमिति चतस्रः,
आयङ्गौरिति तिस्रो,ऽग्निज्योतिरिति सप्त पूर्वा
पञ्चैकपदा, उप प्रयन्तऽइति षड्विंशाना इति अथ-
सानो,पत्वेति सप्तपदाश्चतस्रो द्विपदाः, सोमानमिति

(१) एतस्य ऋग्यजुःपरिशिष्टस्य प्रातिशार्वये प्रयोजनं किमित्यपेक्षायाम् । प्रा०
४ सू० “प्रकृतिभावऋक्षु” अस्मिन्तसूत्रे ऋकपदेन ऋग्लक्षणं वक्तुमुचितं तद्यथा निय-
ताक्षरपादावसानत्वमवक्तव्यम् ॥ एवमेव प्रा० अ० ४ सू० यजुषु चेत्यस्मिन्तसूत्रे
च यजुःपदेन यजुर्लक्षणं यथा अनियताक्षरपादावसानत्वं यजुष्ववम् । केचन एतेषां
छन्दो न विद्यत इति प्रवदन्ति तन्मतं पादो नास्ति यजुषि पादाभावाच्छन्दो नास्ति
परन्तु छन्दसोऽभावे मन्त्रत्वन्न तन्मन्त्रकृतकर्मभिः कर्तुः फलमपि न भवति । तत्र
अर्षाणां कातीयसर्वानुक्रमे प्रथमखण्डे “एतान्यविदित्वा योऽधीतेऽनुब्रूते जपति जुहो-
ति यजते याजते तस्य ब्रह्म निर्वर्षीत्यर्थात्तयामं भवत्यथान्तराऽश्वगर्भेऽवापद्यते
स्थाणुं वर्धति प्रमीयते वा पापीयान्भवाति । अथ विज्ञायैतानि योऽधीते तस्य वीर्य-
वदथ योऽर्धवित्तस्य वीर्यवचरं भवति जपित्वा हुत्वेष्ट्वा तत्फलं पुन्यते इति ॥

नवाऽऽगन्मेति तिस्रो, गृहा मेति तिस्रः, उपहृता
इति च्यवसाना, प्रघासिनश्चतस्रः, पूर्णा दर्वि द्वे, अ-
क्षन्तमीमदन्त षड्, वरुद्दमिति चतस्रः, स्यायुषमि-
त्येका ॥ २ ॥ एदमिति द्वे च्यवसाने, ऽआपऽइत्येका,
ऽऽपो देवोरिति द्वे, दैवीन्धियः, आत्ताः पीता, ऽअ-
ग्नेत्वं, न्वमग्नऽएषा ते, व्वस्यसि, समक्ख्ये, ऽभित्य-
मेकशः, परिमेति तिस्रः, ऽअस्तब्नादिति चतस्रौ, न-
मो मित्तस्येत्येका, यातऽइति च ॥ ३ ॥ भवतन्नऽइति
द्वे, अठं० श्रुति चतुरवसाना, युञ्जन्ति तिस्रो, वि-
ष्णोर्न कमिति च पूर्वे यजुरन्ते विष्णवे त्वेति यजुरुभ-
यतः, परित्वेत्येका, त्वठं० सोमेति पञ्च, जुषाणऽ इ-
त्येकपदो, रु विष्णवित्येका, ॥ ४ ॥ देवामिति यजुः,
कोऽसीत्येको, दुत्यमिति चतस्रः, कदा चनेति तिस्रो
यजुरन्ता, ऽआदित्येभ्यस्त्वेति यजुरन्तेऽर्था, ऋदस्मा,
अहं परस्ता, त्वँवर्चसेत्येकशः, समिन्द्रणऽइति सप्तो,
रुठं० ह्रीत्येका, ऽअग्नेरनोकमिति चतस्रः, ऽएजतु द्वे
पूर्वा च्यवसाना, मरुतो यस्येति द्वे, यस्मान्नेति च द्वि-
तीया यजुरन्ता, सह प्राणेनेति यजु, राजिगधेति द्वे,
ऽउपसृजन्निति तिस्रोऽन्त्या च्यवसाना, जयोरोजसे-
त्येका, चतुस्त्रिठं० श्रुदिति चतस्रः ॥ ५ ॥ देव सवि-
तरेका, ध्रुवसदमिति त्रीणि यजूंषि, पुरोरुषि पु-
रोरुक्त्यान्धेषु, वाजस्य न्वित्येका, ऽस्वन्तरिति च,
वातो वेति तिस्रः, एषस्य वाजी, वाजस्ये ममिति

सप्त,ग्ने सहस्रेत्येकाऽपो देवाः, सधमादऽइत्येक-
 शो, हिरण्यरूपाविति, मित्रोऽसि वरुणोसीति यजु-
 षी, प्रपर्वतस्येत्येका, प्रजापतेनेति यजुर्माध्या त्वन्याऽ-
 श्वमेधे व्याख्याताऽयममुष्य पिताऽसावस्य पितेति
 यजुर्मा ते, हठं० सो, निषसादेत्येकशो, व्यायुः पू-
 तो, युवठं० सुराममिति द्विशः ॥ ६ ॥ युञ्जतऽइति
 सप्त,र्वा स्तोममित्येका, हस्तऽ आधायेति यजुरन्ताऽनु-
 ष्टुमेनेति यजुः, प्रतूर्वन्निति चतस्रोऽन्या यजुर्गर्भो,
 ऽर्षन्तरिचँवोहीत्येतावद्यजु,रन्वग्निरित्येकादशा,पा-
 मृष्टमिति तिस्र,स्वामग्नऽ इति षडपो देवीरि-
 ति दश, नवमी अयसानाऽन्यैकपादौ,प्रधयऽइति
 तिस्रऽ, आपो हीत्यष्टौ, कृत्वायेत्येका, मित्रस्येति ति-
 स्रो, विश्वो देवस्येत्यध्यायान्ताः ॥ ७ ॥ विष्णोः
 षक्रमोऽसि, विश्वकर्माणे, सञ्ज्ञानं, चिदसि, सजू-
 रब्दऽइत्युद्गतानि यजूंषि, द्वितीये सुपर्णोऽसीति
 चतुरवना, नमो भूत्याऽइत्येकपदा, मयि गृह्णामीति
 त्रयोदशा, ऽग्निर्मादेत्येका, भुवो यज्ञस्येति च, ध्रुवासी-
 ति तिस्रः, काण्डारकाण्डादिति चतस्रो,ऽषाढाऽसी-
 त्येका, मधु वाताऽइत्येकादश, सम्यक्कस्ववन्ति न-
 वेमन्मा षड, पान्त्वा, पञ्चानाञ्चाध्यायान्तानां नाना-
 दिगुपरमान्तेषु यजूंषि लोकन्ताऽइन्द्रमिति तिस्रः ॥
 ८॥ ध्रुवक्षितिरिति पञ्चाश्विनीनामेकं लोकन्ताऽइन्द्र-
 मिति तिस्र, ऽइन्द्राग्नीऽइत्येका, मूर्धाऽसीति द्वे, लो-

कन्ताऽइन्द्रमिति, लोकन्ताऽइन्द्रमिति चाऽग्ने जा-
 तानिति हे, अग्निर्भृङ्गत्येकचिठं० शदग्निठं० होता-
 रमिति च्यवसाना द्विपदा व्याख्याता, येनऽकृषयो-
 ऽष्टौ, लोकम्पणेति चतस्रो, नमस्तऽइति प्राङ्मस्का-
 रेभ्यो, द्रापेऽअन्धसस्पतऽइति प्राक् प्रत्यवरोहेभ्योऽ,
 शस्मन्निमा मे, नृषदेवेडिन्द्रन्दैवीरित्युद्धृतानि यजू-
 षि सप्त सप्तेति ॥ ९ ॥ वाजस्य न्विति सप्त, स नो-
 भुवनस्येत्येका, यास्तऽइति चतस्रो,ऽग्निंय्युनज्ज्मीत्य-
 ध्यायान्ता, ऋचोनामेत्युद्धृत्य यजुरेकोऽपरः, स्वादी-
 न्वेत्येका, परितऽइति षड्, या व्याघ्रमिति हे, दे-
 वा यज्ञमित्याध्यायान्ता, त्पितृभ्यः स्वधा नम इत्युद्धृते
 यजुरेकमपर, मिदठं० हविरिति च्यवसाना, रेती
 मून्त्वमिति च हे, छत्रस्य योनिरेका, कोऽसीति ष-
 डन्त्या च्यवसाना, त्रया देवाऽइति च्यवसाना, लो-
 मानीत्येका, यद्देवाऽइति तिस्रो, यदापऽइत्येका, सु-
 मिच्छिया नऽइति, द्विपदादिवेति तिस्रो,ऽभ्यादधा-
 मीत्याध्यायान्तादिमस्मऽइति प्राक् प्रैषेभ्यः ॥ १० ॥
 इमामगृभ्णन्तित्येका, योऽअर्वन्तमित्येका, हिरण्य-
 पाणिर्नव, युञ्जन्तीति तिस्रः, कः स्विदिति चतस्रः,
 सठं० शितऽइति तिस्रो,ऽम्बऽइत्येको, रसक्कथ्याऽइत्य-
 ध्यायान्तादुद्धृत्य प्रैषठं०, हिरण्यगर्भऽइत्याद्याश्च सठं०
 हिताध्यायान्ता, इमा नु कमिति च षड्द्विपदाः, प्रि-
 यो देवानामित्येका, तँवइत्यध्यायान्ताः, समास्त्विति

प्रागग्न्यभिमर्शनात्समिद्धोऽअञ्जनिति प्रागग्नेयाहे-
 न सवितरिति प्राक्प्रैषेभ्यः ॥ ११ ॥ सहस्रशीर्षेत्स-
 प्ययस्त्रदेवेति च, न तस्येति द्विपदा, अस्याजरास-
 इत्यध्यायो, यज्जाग्रतऽइति च, व्यायुः पुनातु, प्रजा-
 पतौ, सुमित्रिया नोऽप नः शोशुचदधमित्युदृष्टता-
 नि यजूंषि दश, यन्मऽइत्येका, तत्सवितुरिति षड-
 न्येकपदा, शन्नऽइति नवा, हानीति द्विपदा, नमस्त-
 इति तिस्त्रो, युञ्जतऽइत्येका, प्रैत्विति च, धर्त्ता दिव-
 इति, हृदे त्वा, यस्ते, विश्वाऽआशाऽइत्येकशोऽ-
 श्विना धर्म्ममिति द्वे, अभीममिति व्यवसाना, चत्र-
 स्येति चतस्र, उद्वयमित्येका, यावतीति द्वे, मनसः
 काममित्येका, मयिच्यदित्येको, ग्रश्चैति च ॥ १२ ॥
 ईशा वास्यमिति चतुर्दशान् नयेति द्वे, यथोक्तरी-
 त्या च काचिदनियतावसाना स्यात्तासाष्टचानामञ्च-
 रसङ्ख्यया विद्याह्वा स्तोममिति दृश्येज्ञायत्री प्रियो
 देवानामित्यनुष्टुप् तदप्येते श्लोकाः ॥ १३ ॥ पादा यत्रा-
 वियुक्ताः स्युरक्षरैर्निग्रहो भवेत् ॥ छन्दसां परिमा-
 णस्य दृश्यते हि यथा क्वचित् ॥ १ ॥ परमेष्ठ्यऽऋगा-
 दीनामाग्नेयं ब्राह्मणन्तथा ॥ नाना छन्दर्ग्यजुर्भ्यं च
 ब्राह्मणस्य सदा स्मृतम् ॥ २ ॥ देवा यज्ञमिति चैत-
 द्ब्राह्मणनैककर्मभाक् ॥ सोमसौत्त्रामणी सम्पत्यै
 तदभावाहचोऽब्रुवन् ॥ ३ ॥ अथ वा सर्वमन्त्राणाष्टह्वा-
 मेवं प्रकल्पयेत् ॥ उत विद्वान्ग्रशंसीयश्छन्दोविचिति-

यं प्रति ॥ ४ ॥ छन्दोभूतमिदं सर्वं वाङ्मयं स्याद्वि-
 जानतः ॥ नाच्छन्दसि न चाष्ट्रे शब्दश्चरति कश्चन ॥
 ५ ॥ अपि चास्मिन्यजुर्वेदे सर्वो मन्त्रो यजुर्भवेत् ॥
 यजुषाऽध्वर्युकर्मेति श्रुतौ कल्पेऽति कीर्तितम् ॥ ६ ॥
 यजुषाऽनङ्गाहौ युनक्ति यजुषा क्रियते यजुषा ॥ जप-
 ति यजुर्भिर्जुहोति यजुष्यत्यै यज्ञस्य सम्बद्धौ ॥ ७ ॥
 यः कश्चित्पादवान्मन्त्रो युक्तश्चाक्षरसङ्ख्यया ॥ (१)
 सुवियुक्तावसानां च ताम्ब्रं परिचक्षते ॥ ८ ॥ यः
 कश्चित्करणो मन्त्रो न च पादाक्षरैर्युतः ॥ अनियु-
 क्तावसानश्चतं यजुः परिकल्पयेत् ॥ ९ ॥ व्यवसिता
 नियताऽक्षरार्द्धमाना सुविभक्तावसाना पादाक्षरपादा
 ऋचः ॥ यजुरन्यदुपैत्यस्य कश्चिदतः स्वयमेव शतैर्वि-
 विक्त्यामयोः ॥ १० ॥ ऋचो यजूंषि प्रतिवेदशाखं
 दृष्टं विपर्यस्य ऋषिप्रसादात् ॥ एतद्धितं ब्रह्म सना-
 तनाद्यतं तानृषिर्वेद नमोऽस्तु तस्मै ॥ ११ ॥ हे
 सहस्रे शते न्यूने मन्त्रे वाजसनेयके ॥ ऋग्गणः प-
 रिसङ्ख्यातः शेषमन्यदृचो यजुः ॥ १२ ॥ अष्टौ सह-
 स्राणि शतानि चाष्टावशीत्यन्यान्यधिकानि यजूं-
 षि ॥ एतन्मात्रं यजुषां तु केवलं सशुक्रियं सखिलं
 याज्ञवल्क्यम् ॥ १३ ॥ हारीतमाद्यं परमं पवित्रं बि-
 द्यात्ममाणं यजुषाम्ब्रं यः ॥ स ब्रह्मसन्तानमिहाब्र-
 वीच्च सालोक्यताम्यजुषां च गच्छतीति सालोक्यता-

मृग्यजुषां च गच्छतीति ॥ १५ ॥ इति महर्षिकात्या-
यनप्रणीतमष्टादशपरिशिष्टान्तर्गतं नवममृग्यजुःपरि-
शिष्टं समाप्तम् ॥

अथाष्टादशपरिशिष्टान्तर्गतं चतुर्थमनुवाकाध्यायपरिशि- ष्टमारभ्यते ॥

अथानुवाकान्वक्ष्यामि ब्रह्मणा विहितान्पुरा(१) ॥
विप्राणां यज्ञकालेषु जपहोमार्चनादिषु ॥ १ ॥ इषे
त्वैका, वसोः पवित्रं तिस्रो, ऽग्ने व्रतपते सप्त, पवि-
त्रे स्यो द्वे, शर्माऽसि तिस्रो, धृष्टिरसि शर्माऽसि
द्विकौ, देवस्य त्वा तिस्रो, देवस्य त्वा पञ्च, प्रत्युष्टृठं
रक्षस्त्रिस्रो, दशैकत्रिठं शत् ॥ १० । ३१ । १ ॥
कृष्णोऽसि षड्, ग्ने वाजजित्त्रिस्रो, मयीदमग्नीषो-
मयोः पञ्चका, वग्ने दध्यायो चतस्रः, सँवर्चसा पञ्चा-
ग्नये कव्यवाहनाय षट्, सप्त, चतुस्त्रिठं शत् ॥
७ । ३४ । ३ ॥ समिधाग्निन्भूर्भुवः स्वश्चतुष्का, व-
ग्निज्ज्योतिर्द्वे, ऽउपप्रयन्तः षड्विठं शति, भूर्भुवः
स्वश्चतस्रो, गृहा मा तिस्रः, प्रवासिनः पञ्च, पूर्या दर्वि
द्वे ऽअक्षन्मीमदन्त षडे, षते सप्त, दश, त्रिषष्टिः ॥

(१) एतदपरिशिष्टस्यापि प्रातिशारव्ये प्रयोजनम् ४ अ० सू० १६७ द्विपदैकपदा-
न्यप्यनुवाके इति ॥

१० । ६३ । ३ ॥ एदग्ने, महीनां पयश्चतस्रः, ऽआकू-
 रयाऽकृक्कसामयो द्विकौ, व्रतं कृणुत षडे, प्राते च-
 तस्रो, वस्यसि तिस्रः, ऽएष ते द्वे, शुक्क्रगत्वा चतस्रो,
 ऽदिश्यास्त्वगष्टौ, दश, सप्तविंशं शत् ॥ १० । ३७ ।
 ४ ॥ अग्नेस्तनूरापतये चतुष्कौ, तप्तायनी द्वे, इन्द्रघो-
 षस्तिस्त्रो, युञ्जतेऽष्टौ, देवस्य त्वा चतस्रो, देवस्य त्वा
 पञ्च, विभूरसि चतस्रो, ज्योतिरसि षड्, ऋ विष्णो
 तिस्रो, दश, त्रिचत्वारिंशं शत् ॥ १० । ४३ । ६ ॥
 देवस्य त्वा षड्, पावीरसि पञ्च, माऽहिः षट्, सन्ते ति-
 स्रः, समुद्रद्रुक्च्छ हविष्मतीर्द्विकौ, हृदे त्वा पञ्च,
 देवस्य त्वाऽष्टौ, वष्टौ, सप्तविंशं शत् ॥ ६ । ३७ । ६ ॥
 वाचस्पतयऽउपयामगृहीतोऽसि त्रिका, वावायोऽयं-
 व्वान्द्विकौ, या वामेका, तम्प्रक्लृथा चतस्रो, ऽयं व्वेजो ये
 देवासस्त्रिका, विन्द्राय मूर्ध्नीनन्द्विकौ, यस्तऽएका, प्रा-
 णाय तिस्रो, मधवऽ, इन्द्राग्नीऽआगत, माघौ, मा-
 सश्चर्षणीधृतो, विश्वेदेवासऽआगते, न्द्रमरुत्वो, म-
 रुत्त्वन्तं वृषभं, मरुतान्त्वौजसे, सजोषाऽइन्द्र, मरु-
 त्वां २ ॥ ऽइन्द्र, महां २ ॥ ऽइन्द्रो, महां २ ॥ इन्द्रऽ-
 एकैको, दुर्यमष्टौ, पञ्चविंशं शति, रष्टाचत्वारि-
 ण्शं शत् ॥ २५ । ४८ । ७ ॥ उपयामगृहीतोऽस्यादि-
 श्येव्यः पञ्च, व्वाममद्य द्वे, सुशर्माऽस्येका, बृहस्पति
 सुतस्य द्वे, हरिरसि चतस्रः, समिन्द्रणोऽष्टौ, माऽहि,
 रेजतु दशमास्यः पञ्चका, वातिष्ठ, युधवा ही, न्द्रमिदे-

कैका, यदस्मान्न हे ऽअग्ने प्रवस्यो, तिष्ठन्तदृश्यमुदुत्य-
मेकैका, ऽऽजिग्घ हे, विनऽइन्द्र, वाचस्पतिं, वि-
श्वकर्मानैकैका, ऽग्नेयेत्वा चतस्र, ऽइह रतिस्त्रिः,
परमेष्ठी दश, त्रयोविठं शति, स्त्रिषष्टिः ॥ २३ ।
६३ । ८ ॥ देव सवितश्चतस्र, ऽइन्द्रस्य वज्रः पञ्च,
देवस्याहं दशा, पये तिस्रो, वाजस्येममष्टा, वग्निरे-
काक्षरेणैष ते चतुष्को, सविता हे, अष्टौ, चत्वारि-
ठं शत् ॥ ८ । ४० । ६ ॥ अपो देवाश्चतस्रः, सोमस्य
त्रिषिः पञ्चा, वेष्टाः सप्त, सोमस्य त्वा चतस्रऽइन्द्रस्य
वज्रः पञ्च, स्योनाऽसि चतस्रः, सवित्तैका, ऽश्वि-
भ्यां चतस्रो, ऽष्टौ, चतुस्त्रिठं शत् ॥ ८ । ३४ । १० ।
११६ ॥ युञ्जानऽएकादश, प्रतूर्तठं षोडश, देवस्य
त्वा दशा, पो देवीर्द्वादशा, ऽऽपो ह्येकादशा, दिति-
द्वा पञ्चा, कूतिमष्टादश सप्त, व्यशीतिः ॥ ७ । ८३ ।
११ ॥ दशानः सप्तदश, दिवस्पतिरि द्वादश, समिधा-
ग्निं पञ्चदशा, पेत सप्तदशासुगन्वन्तं त्रयोदश, याऽ-
ओषधीः सप्तविठं शति, मा मा षोडश, सप्त, सप्तद-
शठं शतम् ॥ ७ । ११७ । १२ ॥ मयि गृह्णामि प-
ञ्चदश, ध्रुवाऽसि मधु, वाताऽएकादशकौ, समस्य
वक्षस्ववन्ति नवे, मस्मा षड, पान्त्यैका, ऽयस्युरः पञ्च,
सप्ता, द्वापञ्चाशत् ॥ ७ । ५८ । १३ ॥ ध्रुवक्षितिः
षट्, सजूर्तुभिर्भूर्द्वावयो द्विका, विन्द्राग्नीऽआयुर्मे
षट्का, वाशुस्त्रिदशैका, ऽग्नेर्भागोऽष्टैकया चतुष्का,

वष्टा, वैकविठं ० शत् ॥ १ । ३१ । १४ ॥ अग्निं जाता-
 न्पञ्च, रश्मिना सत्याय चतस्रो, रात्र्यस्य यम्पूरः पञ्च-
 का, वाग्निम्भूर्द्वैकोनविठं ० शब्देन ऽष्टषयोऽष्टौ, तपश्च
 नव, सप्तपञ्चषष्टिः ॥ ७ । ६५ । १५ ॥ नमस्ते षोड-
 श, हिरण्यबाहवऽउष्णीषिणे, तक्षत्र्यो, ज्येष्ठाय, प-
 ञ्चकाः, सत्याय चतस्रः, शम्भवायैका, पार्थ्याय प-
 ञ्च, द्रापेऽअश्वसो विठं ० शतिर्नव, षट्षष्टिः ॥ ८ ।
 ६६ । १६ ॥ अश्वत्थान् नूज्जन्दश, नमस्ते पञ्चा, ग्निस्ति-
 गमेन नव, चक्षुषः पिताष्टा, वाशुः शिशानः सप्तदशो,
 देनं क्रमद्वमग्निना पञ्चदशकौ, शुक्लक्रज्योतिः सप्ते
 मस्तनं त्रयोदश, नवै, कोनशतम् ॥ ९ । ६६ ।
 १७ ॥ व्याजः सत्यमूक्कचं चतुष्का, ऽअश्वग्निस्ति-
 का, वठं ० शुः पञ्चैका चतस्रो, व्याजाय द्वे, व्याजस्य
 न्वष्टा, वृताष्टा त्रयोदशा, ग्निं न्युनज्जिम सप्त, यदाकू-
 ताद्वात्तर्हत्याय दशकौ, त्रयोदश, सप्तसप्ततिः ॥ १३ ।
 ७७ । १८ ॥ ६७ ॥ स्वादीन्त्वैकादश, देवा यज्ञं विठं ०
 शतिः, सुरावन्तठं ० सप्तदशो, दीरतां त्रयोदशा, च्या-
 जानु दश, सोमो राजाऽष्टौ, सीमेन तन्वठं ० षोडश,
 सप्त, पञ्चनवतिः ॥ ७ । ६५ । १९ ॥ क्षत्रस्य योनिः
 त्वयोदश, यद्देवा दशा, ऽभ्यादधाम्यष्टौ, यो भूतानां
 चतस्रः, समिद्धऽइन्द्रऽएकादशा, यात्वष्टौ, समिद्धोऽअ-
 ग्निर्द्वादशा, शिञ्चना हविस्त्वयोदशा, शिञ्चना तेजसै-
 कादश, नव, नवतिः ॥ ८ । ६० । २० ॥ इमस्मै समि-

द्वोऽग्निरेकादशकौ, वसन्तेनऽवृत्तुना षड्ढोता य-
 क्षत्समिधाऽग्निं द्वादशाग्निश्चनौ च्छागस्य सप्त, देवं
 बर्हिश्चतुर्दश, षडेकषष्टिः ॥ ६ । ६१ ॥ २१ ॥ २२ ॥
 तेजोऽसि पञ्चा, ग्नयऽएका, हिङ्गाराय द्वे, तत्सवि-
 तुर्दश, विभूर्मात्रैका, काय द्वे, शेषास्त्वयोदशैकैका,
 एकोनविठंशतिश्चतुस्त्रिंशत् ॥ १६ । ३४ ।
 २२ ॥ हिरण्यगर्भो यः प्राणतो द्विकौ, युञ्जन्त्यष्टौ
 वायुद्वा पञ्च, प्राणाय तिस्रः, उत्तरसक्क्या द्वादश,
 गायत्री कस्त्वा षट्कौ, कः स्विदष्टौ, कास्विदश, सुभूः
 स्वयम्भूस्त्रिंशः, एकादश, पञ्चषष्टिः ॥ ११ । ६५ । २३ ॥
 अश्वस्तूपरो, धूम्रान्वसन्ताय, समुद्राय शिशुमा-
 रान्मयुः प्राजापत्यो, दशकाश्चत्वारश्चत्वारिठं
 शत् ॥ ४ । ४० । २४ ॥ शादन्द्विर्नवैकैका, हिरण्य-
 गर्भश्चतस्रः, आनो दश, मा नो मित्तो, यदशश्चा-
 ष्टकौ, यत्ते षडिमानु कन्दे, पञ्चदश, सप्तचत्वारिठं
 शत् ॥ १५ । ४७ । २५ ॥ ४६ ॥ अग्निश्च पञ्चदशो-
 ष्चा तऽएकादश, द्वौ, षड्विठंशतिः ॥ २ । २६ ॥
 २६ ॥ समास्त्वा दशो, द्वौऽअस्य, प्रोवोऽअन्ता द्वादश-
 का, वभि त्वैकादश, चत्वारः, पञ्चचत्वारिठं शत् ॥
 ४ । ४५ । २७ ॥ होतायक्षदेकादश, देवं बर्हिर्द्वा-
 दश, पुनरप्येवं, चत्वारः, षट्चत्वारिठं शत् ॥ ४ ।

४६ । २८ ॥ समिद्धोऽग्नश्चत्वेकादश, यदक्नान्दस्त्रयो-
 दश, समिद्धोऽग्नश्च द्वादश, केतुङ्क्षणंश्चतुर्विंश-
 श्रुतिः, चत्वारः, षष्टिः ॥ ४ । ६० । २९ । देव सवि-
 तः षट्, तपस्वे कौलालर्ठं० षोडश, द्वौ, द्वाविंशं श-
 र्तिः ॥ २ । २२ । ३० ॥ सहस्रमीषीं षोडशा, दध्यः
 सन्भृतः षड्, द्वौ, द्वाविंशं श्रुतिः ॥ २ । २२ । ३१ ॥
 तदेव सप्त, अनेस्तन्मव, द्वौ, षोडश ॥ २ । १६ ।
 ३२ ॥ अस्याजरासः सप्तदशा, पश्चिद् द्वादश, विष्णा,
 दचतुर्दश, प्रवाहजऽएकादश, प्रवायुं, प्रवीरया पञ्च-
 दशका, वानस्त्रयोदश, सप्त, सप्तनवर्तिः । ७ । २७ ।
 ३३ ॥ यज्जागृतः, पञ्चनद्यः, सोमो धेनु, मातृष्णेन,
 पूषन्तव, दशका, नतदष्टौ, षड्, द्वापञ्चाशत् ॥ ६ ।
 ५८ । ३४ ॥ अपेतो दशा, पादं द्वादश, द्वौ द्वाविंशं
 श्रुतिः ॥ २ । २२ । ३५ ॥ ऋचं चार्चं० षोडश, द्यौः
 शान्तिरष्टौ, द्वौ, चतुर्विंशं श्रुतिः ॥ २ । २४ । ३६ ॥
 देवस्य त्वा दश, यमाय च्चैकादश, द्वा, वेकविंशं श्रुतिः ॥
 २ । २१ । ३७ ॥ देवस्य त्वाऽष्टौ, यमाय त्वा, चक्षस्य
 त्वा दशकौ, चयो, ऽष्टाविंशं श्रुतिः ॥ ३ । ३८ ॥
 स्वाहा प्राणेभ्यः षड्, अग्नश्च, सप्त, द्वौ, चयोदश ॥
 २ । १३ । ३९ ॥ ईशा वास्यमष्टावन्धन्तमो नव, द्वौ
 सप्तदश ॥ २ । १७ । ४० । ११ ॥ दशाध्याये समा-
 ख्याता अनुवाकास्तु सङ्ख्यया ॥ शतं दशानुवाका-

अ नवान्ये च मनीषिभिः ॥ १ ॥ ११६ ॥ सप्तषष्टिञ्चि-
 तौ क्षेयाः ६७ सौत्रे द्वाविठं शतिलथा ॥ २२ ॥ अ-
 ष्वऽएकोनपञ्चाश ४६ त्यञ्चविठं शतिले ३५
 स्मृताः ॥ २ ॥ शुक्क्रियेषु तु विज्ञेया एकादश ११
 मनीषिभिः ॥ एकीकृत्य समाख्यातं त्रिशतं अधिकं
 ३०३ मतं त्रिशतं अधिकं मतम् ॥ ३ ॥ इति महर्षि
 कात्यायनप्रणीतमष्टादशपरिशिष्टान्तर्गतं चतुर्थमनुवा-
 काध्यायपरिशिष्टं समाप्तम् ॥

अथ शौनकोक्तं चरणव्यूहपरिशिष्टं सभाष्यैल्लिख्यते ॥

नत्वा श्रीशसुमेशं च गणेशं श्रीयुतं गुरुम् ॥ शाखा-
देरिदमाख्यानं क्रियतेऽन्वेष्य यत्नतः ॥ १ ॥ यथाऽना-
दिर्हरिः ख्यातो निदानं जगतां परम् ॥ तथा वेदोऽपि
शास्त्राणां स्मृत्यादीनां महाशयः ॥ २ ॥ तमगाधं च
को वेत्ति विस्तीर्णत्वं विनेश्वरम् ॥ तस्मात्सङ्क्षेपतो व-
क्ष्ये वैदिकादिमुदे मुदा ॥ ३ ॥ ओमित्येकाक्षरं ब्र-
ह्म नादबिन्दुकलात्मकम् ॥ त्रिदेवत्वं त्रिमात्रं च स्फु-
टं विष्णुसनातनम् ॥ ४ ॥ तं सर्वज्ञं जगत्सेतुं पर-
मात्मानमेश्वरम् ॥ वन्दे नारायणं देवं निरवद्यं निर-
ञ्जनम् ॥ ५ ॥ कृष्णद्वैपायनं वन्दे गुरुं वेदमहानिधि-
म् ॥ येन चरणव्यूहेषु शाखाभेदमितं कृतम् ॥ ६ ॥
तच्छिष्यं शौनकगुरुं वेदज्ञं लोकविश्रुतम् ॥ नत्वा तु
शाकलाचार्यं तथैव चाश्वलायनम् ॥ ७ ॥ एवं पर-
म्पराप्राप्तं बालकृष्णं महागुरुम् ॥ यस्य प्रसादाद्-
व्याख्यामि चरणव्यूहसञ्ज्ञकम् ॥ ८ ॥

अथातश्चरणव्यूहं व्याख्यास्या-

मः ॥ १ ॥

अथशब्दो मङ्गले प्रस्तावे च । अथशब्दः पूर्वमेव

मङ्गलार्थ इत्यर्थः । अतो हेत्वर्थः । वेदराशेः पारायण-
चतुर्विभागाच्चरण उच्यते । तस्य व्यूहः समुदायः ।
चतुर्वेदानां समुदायं व्याख्यास्यामइत्यर्थः । कथमेक-
वेदः । तदुक्तमारण्यके “सर्वे वेदाः सर्वे घोषा एकैव
व्याहृतिः प्राणा एव प्राण ऋच एवं विद्यादिति” त-
स्य चतुर्विभागाः कृताः । तथा चोक्तं द्वादशस्कन्धे ष-
ठाध्याये भागवते । तेनासौ चतुरो वेदांश्चतुर्भिर्वदनैः
प्रभुः ॥ सव्याहृतिकान्तोङ्कारांश्चातुर्होत्रविवक्षया ॥
१ ॥ पुरानध्यापयत्तांस्तु ब्रह्मर्षीन्ब्रह्मकोविदान् ॥ ते
तु धर्मोपदेष्टारः स्वपुत्रेभ्यः समादिशन् ॥ २ ॥ ते प-
रम्परया प्राप्तास्तत्तच्छिष्यैर्धृतव्रतैः ॥ चतुर्युगेष्वथ व्य-
स्ता द्वापरादौ महर्षिभिः ॥ ३ ॥ क्षीणायुषः क्षीणस-
त्वान्दुर्मेधान्वीक्ष्य कालतः ॥ वेदान्ब्रह्मर्षयो व्यस्यन्हृ-
दिस्थाच्युतनोदिताः ॥ ४ ॥ अस्मिन्नप्यन्तरे ब्रह्मन्तस्व-
र्गत्वाल्लोकभावनः ॥ ब्रह्मेशदौर्लोकपालैर्याचितो ध-
र्मगुप्तये ॥ ५ ॥ पराशरात्सत्यवत्यामंशांश्चकलय वि-
भुः ॥ अवतीर्णो महाभाग वेदं चक्रे चतुर्विधम् ॥ ६ ॥
ऋगथर्वयजुःसाम्नां राशीरुद्धृत्य वर्गशः ॥ चतस्रः सं-
हिताश्चक्रे सूत्रे मणिगणा इव ॥ ७ ॥ तासां स चतु-
रः शिष्यानुपाह्वय महामतिः ॥ एकैकसंहितां ब्रह्म-
न्नेकैकस्मै ददौ विभुः ॥ ८ ॥ पैलाय संहितामाद्यां
बह्वचाख्यामुवाच ह ॥ वैशम्पायनसञ्ज्ञाय निगदाख्यां
यजुर्गणम् ॥ ९ ॥ साम्नां जैमिनये प्राह तथा च्छन्दो-
गसंहिताम् ॥ अथर्वार्द्धिरसां नाम स्वशिष्याय सुमन्त-

वे ॥ १० ॥ पैलः स्वसंहितामूचे इन्द्रप्रमितये मुनिः ।
 बाष्कलाय च सोऽप्याह शिष्येभ्यः संहितां स्वकाम् ॥
 ११ ॥ चतुर्द्धा व्यस्य बोध्याय याज्ञवल्क्याय मार्गव ।
 पराशरायान्निमित्रे इन्द्रप्रमितिरात्मवान् ॥ १२ ॥
 अध्यापयत्संहितां स्वां माण्डूकेयमृषिं कविम् ॥ तस्य
 शिष्यो वेदमित्रः सौभर्यादिभ्यञ्जचिवान् ॥ १३ ॥ शा-
 कल्यस्तत्सुतः स्वां तु पञ्चधा व्यस्य संहिताम् ॥ वात्स्य-
 मौङ्गल्यशालीयगोसत्यशिशिरेष्वधात् ॥ १४ ॥ जातू-
 कर्णश्च तच्छिष्यः सनिरुक्तां स्वसंहिताम् ॥ व्यलीक-
 पैङ्गिपैलालविरजेभ्यो ददौ मुनिः ॥ १५ ॥ बाष्कलिः
 प्रतिशाखाभ्यो बालखिल्याख्यसंहिताम् ॥ चक्रे बाला-
 य निर्भज्य कासाराश्चैव तां दधुः ॥ १६ ॥ बह्वृचाः
 संहिता ह्येता एभिर्ब्रह्मर्षिभिर्धृताः ॥ श्रुत्वैतच्छन्दसां
 व्यासं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ १७ ॥ अस्यार्थः । व्यासा-
 त्पैलः संहितां पदक्रमं च त्रिविधरूपं पठित्वा इन्द्रप्र-
 मितये बाष्कलाय च ददौ इन्द्रप्रमितिसप्ततुर्धा जटान्तं
 व्यासं कृत्वा स्वसुताय माण्डूकेयाय बोध्याय याज्ञव-
 ल्क्याय पराशरायान्निमित्रे च ददौ । माण्डूकेयस्य-
 शिष्यो वेदमित्रस्तस्य पुत्रेभ्यः सौभर्यादिभ्यस्तैः स्वसुता-
 य शाकल्याय ददौ । शाकल्यः संहितापदक्रमज-
 टादण्डरूपं च पञ्चधा व्यासं कृत्वा वात्स्यमुङ्गलशा-
 लीयगोसत्यशिशिरेभ्यो ददौ । शाकल्यशिष्यो जा-
 तूकर्णः सनिरुक्तां संहितां व्यलीकपैङ्गिपैलालविर-
 जेभ्यो ददौ । पूर्वोक्तबाष्कलपुत्रो बाष्कलिः पूर्वोक्त

सर्वशाखाभ्य उद्धृत्य वालखिल्याख्यसंहितां चक्रे तां नाम्ना वालखिल्यसंहितां वालायनिप्रभृतयोऽधीतवन्तः ॥ इति पदेषु संहितात्वमिति करणवेष्टनं, उदात्तस्वरितस्वराणां सिद्धिः, एतच्छ्रृण्वसां व्यासं विस्तारं श्रुत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यत इत्यर्थः । तथा च विष्णुपुराणे । ब्रह्मणा चोदितो व्यासो वेदान्यस्तु प्रचक्रमे ॥ अथ शिष्यात्स जग्राह चतुरो वेदपारगान् ॥ १ ॥ ऋग्वेदश्चावकं पैलं सञ्जग्राह महामतिः ॥ वैशम्पायननामानं यजुर्वेदस्य चाग्रहीत् ॥ २ ॥ जैमिनिः सामवेदस्य तथैवाथर्ववेदवित् । सुमन्तुस्तस्य शिष्योऽभूद्देव्यासस्य धीमतः ॥ ३ ॥ तथा च गृह्यसूत्रम् ॥ सुमन्तुजैमिनि वैशम्पायनपैलसूत्रभाष्यभारतमहाभारतधर्माचार्या इति । जानन्ति बाह्वित्यारभ्य मारुडूकेया इत्यन्तं मारुडूकगणसमुदायः । गार्गी वाचक्रवीत्यारभ्य शाङ्खायनमित्यन्तेन शाङ्खायनगणः । एतेषां कौषीतकीब्राह्मण्यमारण्यकं शाङ्खायनसूत्रं चेति । ऐतरेय इत्यारभ्य आश्वलायनान्ता आश्वलायनगणाः । एषामैतरेयब्राह्मणमारण्यकमाश्वलायनसूत्रं चेत्यर्थः ॥ (१)

(१) अमुमेवार्थं श्रीमद्देव्यासः प्रथमस्कन्धे चतुर्थोऽध्याये आह ॥ सूत उवाच ॥ द्वापरे समनुप्राप्ते तृतीययुगपर्यये ॥ जातः पराशराद्योगी वासव्या कलया हरैः ॥ १ ॥ स कदाचित्तरस्वत्याउपस्पृश्य जलं शुचिः ॥ विवाक एक आसीनउदिते रविमण्डले ॥ २ ॥ परावरज्ञः स ऋषिः कलिनाव्यकरं हसा ॥ युगधर्मव्यतिकरं प्राप्तं भुवि युगे युगे ॥ ३ ॥ भौतिकानां च भावानां शक्तिहासं च तत्कृतम् ॥ अभ्रह्मणान्निःसत्त्वान्दुर्मेधान्द्रुसितायुषः ॥ ४ ॥ दुर्भगश्च जनान्वीक्ष्य मुनिर्दिव्येन चक्षुषा ॥ सर्वधर्माश्रयाणां यदध्यायं चिरममोघदह् ॥ ५ ॥ चातुर्होतॄन् कर्मशुद्धं प्रजानां वीक्ष्य वैदिकम् ॥ व्यदधाद्यज्ञसन्तत्यै वेदमेकं चतुर्विधम् ॥ ६ ॥ ऋग्यजुःसामाथर्वीत्या वेदाश्चत्वा-

तत्र यदुक्तं चातुर्विद्यं चत्वारो वेदा
विज्ञाता भवन्ति ॥ २ ॥

अस्मिन् ग्रन्थे यदुक्तं चातुर्विद्यं तेऽत्र चत्वारो वेदा
विज्ञाता भवन्ति ॥

ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेद-
श्चेति ॥ ३ ॥

रुद्रकृताः । इतिहासपुराणां च पञ्चमो वेद उच्यते । ७ । तत्रर्ग्वेदधरः पैलः सामगो
जैमिनिः कविः । वैशम्पायन एवैको निष्णातो यजुषां मुने । ८ । अथर्वाङ्गिरसामा-
सीत्सुमन्तुर्वारुणो मुनिः । इतिहासपुराणानां पिता मे रोमहर्षणः । ९ । तएव ऋ-
षयो वेदं स्वं स्वं व्यवसन्ननेकधा । शिष्यैः प्रशिक्ष्यैस्तच्छिष्यैर्वेदास्ते शास्त्रिनो भवन् ।
१० । तएव वेदा दुर्मैषैर्धार्यन्ते पुरुषैर्यथा । एवं व्यवस्यद्भगवान्व्यासः कृपणवत्सलः ।
११ । अस्यार्थः । कृतयुगापेक्षया तृतीये युगपर्यवसाने समनुप्राप्ते सति हरेः कलाशेन
पराशरात्पराकृतः शरो हिंसा येन स तथोक्तस्तद्भासव्या वसोदपरिचरस्य पुत्र्या सत्यव-
त्या योगी नित्यज्ञानी नाम्ना व्यासो जातोऽवतीर्णो भगवान् स कदाचिच्छुद्धः सर-
स्वत्या नद्या जलमुपस्पृश्य सन्ध्याक्रियां निर्वर्त्य पश्चाद्भविमण्डले उदिते सति तच्छटे
एकान्ते एकाकी कालत्रयज्ञानी युगधर्मसाङ्ख्यं कालकृतभूतकार्याणां शक्तिह्रासं च ता-
त्पर्यशून्याङ्गिरस्ताहान्दुष्टमेधान्धारणाशक्तिशून्यानल्पायुषो दुष्टभाग्यान्वीक्ष्य मौनवान्
अपरोक्षज्ञानेन सर्वाश्रमाणां यद्विदं तच्चिरं चिन्तितवान् । होत्रध्वर्यूद्गातृब्रह्मणो यस्मि
स्तत्तथोक्तं दर्शहोत्रादिचातुर्होत्रपर्यन्तैर्मन्त्रैः प्रकाश्यं वा अग्निष्टोमादिकं कर्मप्रजानां
वैदिकीनां शुद्धिकरं वीक्ष्य अग्निष्टोमादियज्ञपरम्पराप्रवर्त्तनाय आविभक्तं ऋगादिभेदेन
चातुर्विधं वेदं व्यदधात् । वेदव्यासेन मूलवेदसमुद्भाच्चत्वारो वेदा उद्धृता न तु कृताः
तदर्थज्ञानाय कृतं इतिहासपुराणं च वेदार्थावेदकत्वात्पञ्चमो वेदो रचितोऽर्थतो न
किन्तु शब्दतः । जैमिनस्थापत्यं जैमिनिः साम गायति शिष्येषु गमयति प्रवर्त्तयति, क-
विः सूक्ष्मज्ञानी । यजुर्वेदप्रवर्त्तकतया वैशम्पायनः । वरुणपुत्रः सुमन्तुः । रोमहर्षणः
इतिहासपुराणानां प्रवचकः । किमर्थं दैन्यजनःस्निग्धः शास्त्रोपशालाभेदेन व्यवस्यत्
चकार तस्माद्व्यास इति नाम बोध्यम् ।।

इति स्पष्टार्थः । “वेदा हि यज्ञार्थमभिप्रवृत्ताः ।
 तथा च विष्णुपुराणम् । आद्यो वेदश्चतुष्पादः शत-
 साहस्रसंमितः । ततो दशगुणः कृत्स्नो यज्ञोऽयं स-
 र्वकामधुक् ॥ १ ॥ अब्रैव मत्सुतो व्यास अष्टाविंशति-
 मेऽन्तरे ॥ वेदमेकं चतुष्पादश्चतुर्धा व्यभजत्प्रभुः ॥ २ ॥
 अस्यार्थः । आद्यो वेदो वेदविभागात्पूर्वकानीतो
 वेदश्चतुष्पादः ऋगादिचतुष्टयसमूहरूपः । शतसाह-
 स्रसंमितः । दश दश तच्छतं दशशतानि “तत्साहस्रं
 तत्सर्वमिति श्रुतेः । अनन्तसङ्ख्याकः । “अनन्ता वै वेदा
 इति श्रुतेः । ततो वेदात्प्रवृत्तः कृत्स्नोऽयं दशगुणः ।
 दशविधः । “स एष यज्ञः पञ्चविधोऽग्निहोत्रं दर्शपौ-
 र्णमासौ चातुर्मास्यानि पशुः सोमइति श्रुतेः । तथा
 च “पञ्च वा एते महायज्ञा इत्युपक्रम्य ब्रह्मयज्ञो देव-
 यज्ञः पितृयज्ञो भूतयज्ञो मनुष्ययज्ञइति श्रुतेश्च ।
 वैतानिका गार्ह्याश्च दशयज्ञाः । अवान्तरे वैवस्वत-
 मन्वन्तरे अष्टाविंशतिमे द्वापरयुगे इति शेषः । मत्सु-
 तो व्यासः कृष्णद्वैपायनश्चतुर्धा व्यभजत् । ऋग्वेदा-
 दिरूपेण चतुर्धा विभक्तवान् । पाकयज्ञास्त्रिविधाः ।
 अवगृह्यम् । “ऊता अग्नौ हूयमाना अनग्नौ प्रज्ज-
 ता ब्राह्मणभोजने ब्रह्मणि ऊताइति । अत्र वृत्ति-
 कृत् । ऊता अग्नौ हूयमाना हविष्यस्य जुज्जयादि-
 त्वेवमादयो ऊताः । अनग्नौ क्रियमाणा अथ बलिह-
 रणमित्येवमादयः प्रज्जताः । ब्राह्मणभोजनं यत्रास्ति
 ब्राह्मणान्भोजयित्वेति ब्रह्मणि ऊताः इति । नित्या-

व्यासो ब्रह्मयज्ञः पारायणं च । अत्र गृह्यसूत्रम् ।
ब्रह्मयज्ञखण्डे । यदृचोऽधीते पय आहुतिभिरेव त-
द्देवतास्तर्पयति यद्यजंषि घृताहुतिभिर्यत्सामानि स-
ध्वाहुतिभिर्यदथर्वाङ्गिरसः सोमाहुतिभिर्यद्ब्राह्म-
णानि कल्पान् गाथा नाराशंसिरितिहासपुराणा
नीत्यमृताहुतिर्यदृचोऽधीते पयसः कुल्या अस्य पि-
तृन्स्वधा उपक्षरन्तीति ॥

तत्र ऋग्वेदस्याष्टौ स्थानानि भव-
न्ति ॥ ४ ॥

तत्र ऋग्वेदस्याष्टभेदा भवन्ति शाकलबाष्कलौ ऐत-
रेयब्राह्मणारण्यकौ ४ शाङ्खायनमाण्डूकौ ६ कौषीत-
कीब्राह्मणारण्यकौ ८ अन्येऽष्टभेदा यथा “वेदा वि-
कृतिशाखाश्च भेदस्तु त्रिविधस्तथा ॥ पृथङ्नाना विधा-
नेन व्यासेन कथितं पुरा । इति । अत्राष्टभेदेनाष्टस्थानेन
वा विकृतिर्ग्राह्या । विकृतिस्तु अग्रे वक्ष्यामः । तस्मा-
द्ब्रह्मयज्ञार्थं पारायणार्थं च ऋग्वेदस्याध्ययनं कर्त्त-
व्यम् । ततश्चतुष्पदेन वक्ष्यति ॥

चर्चा श्रावकश्चर्चकः श्रवणीय-

पारः ॥ ५ ॥

चर्चाअध्ययनम् । तत्र औणादिसूत्रे । चिन्ति पूजि-
कथि कुम्बि चर्चश्च । एभ्योऽङ्गस्त्रियां भावादौ । चि-

न्ति स्मृत्याम् । पूजि पूजायाम् । कथि वाक्यप्रबन्धे ।
 कुम्बि आच्छादने । चर्चाध्ययने । चुरादय इति । अ-
 ष्ठाध्यायीसूत्रे तात्त्वोष्ठपुटव्यापारेण शब्दस्य अवर्णं
 क्रियते सा चर्चा । तदध्ययनस्य आवको गुरुः । तस्य
 चर्चकः शिष्यः । अवर्णीयपारः अवर्णीयो वेदः तस्य
 पारः समाप्तिः । इति चतुष्पदेन अध्ययनं सूचितम् ।
 अग्रे चतुष्पदेन चत्वारि पारायणानि सूचयति । त-
 त्पारायणं द्विविधं प्रकृति विकृति रूपम् । का प्रकृ-
 तिः । का विकृतिः । प्रकृतिः संहिता सा द्विविधा
 रूढा योगा । रूढा यथा “अग्निमीडे पुरोहित-
 मिति । योगा यथा अग्निमीडे । ईडे पुरोहितम् ।
 इति शौनकीयप्रातिशाख्यद्वितीयपटले उब्बटभाष्यका-
 रेण व्याख्यातम् । अथ चतुष्पारायणं यथा ॥

क्रमपारः क्रमपदः क्रमजटः क्रमदण्ड-

श्चेति चतुष्पारायणम् ॥ ६ ॥

क्रमशब्द उभयसंहिता वाच्यः । स कथम् । अनु-
 लोमविलोमाभ्यां त्रिवारं हि पठेत्क्रमम् । विलोमे
 पदवत्सन्धिरनुलोमे यथाक्रमम् । यथाक्रमं यथा सं-
 हिता इत्यर्थः । अन्यच्च । वर्णक्रमः । अक्षरसमाम्नाय
 एवेत्यारण्यके । कथमभिष्टुयादित्यक्षरशः । चतुरक्ष-
 रशः । पच्छः । अर्द्धर्द्धशः । ऋक्शः । इति ब्रा-
 ह्मणम् । भूयांसि तु समाम्नानात् व्यञ्जनमात्रं तु त-
 त्तस्याभिधानस्य भवतीति नैरुक्ताः । क्रमः संहिता-

वाची कथम् । पदप्रकृतिः संहितेति निरुक्तवचनात्सा
क्रमरूपा इत्यर्थः । क्रमपदः क्रमः संहिता तस्याः
पदानि । इति द्वे प्रकृतिपारायणे द्वे विकृतिरूपे । वि-
कृतिरष्टविधा भवति । तच्च । जटा माला शि-
खा रेखा ध्वजो दण्डो रथो घनः । अष्टौ वि-
कृतयः प्रोक्ताः क्रमपूर्वा महर्षिभिरिति । आसां
मध्ये जटा दण्डयोः प्राधान्यम् । तत्कथम् । जटा-
नुसारिणी शिखा । दण्डानुसारिणी माला लेखा
ध्वजो रथश्च । घनस्तूभयानुसारित्वात् । अस्या निय-
मवाक्यानि व्याडीकृतजटापटले उदाहरणानि च ।
तत्र जटावाक्यम् । क्रमे यथोक्ते पदजातमेव द्विरभ्य-
सेदुत्तरमेव पूर्वम् ॥ अभ्यस्य पूर्वं च तथोत्तरे पदेऽव-
सानमेवं हि जटाभिधीयते । १ । अस्यार्थः । क्रमे
यथोक्तेसति “क्रमो द्वय्या”मित्याद्युक्ते क्रमप्रकारे पद-
जातं पदद्वयं वा पदत्रयं वा द्विवारमभ्यसेत् । द्विवारं
पठेत् अभ्यासप्रकारः । उत्तरमेव पूर्वं क्रमवत्पदद्वयं
गृहीत्वा पूर्वं नाम प्रथमं उत्तरपदमभ्यसेत् । तत उ-
त्तरपूर्वपदयोः सन्धानद्वारा पूर्वं द्विरभ्यस्योत्तरे पदे-
ऽवसानं एवं प्रकारेणाध्ययनं जटाभिधीयते कथ्यते ।
ह्येति निश्चयार्थम् । उदाहरणन्दर्शयति । अग्निमी-
डईडेग्निमग्निमीडे ईडे पुरोहितं पुरोहितमीडऽ
ईडे पुरोहितम् । इत्यादि ज्ञेयम् । अथ दण्डलक्ष-
णम् । क्रममुक्त्वा विपर्यस्य पुनश्च क्रममुत्तरम् ।
अर्द्धर्चादेवमुक्तोऽयं क्रमदण्डोऽभिधीयते । उदाहरणं

यथा । अग्निमीडे । ईडेग्निम् । अग्निमीडे । ईडेपु-
 रोहितम् । पुरोहितमीडेग्निम् । इत्यादि ज्ञेयम् ।
 अथमाला लक्षणम् । ब्रूयात्क्रमविपर्यासावर्धचस्थादि-
 तोऽन्तः । अन्तं चादिं नयेदेवं क्रममालेति गीयते ।
 माला मालेव पुष्पाणां पदानां ग्रन्थिनी हि सा ॥ आव-
 र्तन्ते त्रयस्तस्यां क्रमव्युत्क्रमसङ्क्रमाः । अथ शिखा-
 लक्षणम् । पदोत्तरां जटामेव शिखामार्याः प्रचक्षते ।
 अथ रेखालक्षणम् । क्रमाद्द्वित्रिचतुष्पञ्चपदक्रममु-
 दाहरेत् । पृथक्पृथक्विपर्ययस्य लेखामाज्जः पुनः क्रमा-
 त् ॥ अथ ध्वजलक्षणम् । ब्रूयादादेः क्रमं सम्यगन्ता-
 दुत्तारयेद्यदि ॥ वर्गे च ऋचि वा यत्र पठनं स ध्वजः
 स्मृतः । अथ रथलक्षणम् । पादशोऽर्धशो वाऽपि
 सहोक्त्या दण्डवद्रथः । अथ घनलक्षणम् । जटामुक्त्वा
 विपर्ययस्य तत्पदानि पुनः पठेत् । अयं घन इति प्रोक्तः
 इत्यष्टौ विक्रतीः पठेत् । अन्वञ्च घनस्य द्वितीयलक्षण-
 म् । अन्तात्क्रमं पठेत्पूर्वमादिपर्यन्तमानयेत् । आदि-
 क्रमं नयेदन्तं घनमाज्जर्मनीषिणः । इत्यष्टविक्रतिलक्ष-
 णान्युक्तानि अध्ययने संहितापारायणम् । १ । पदपा-
 रायणम् । २ । जटापारायणम् । क्रमदण्डपाराय-
 णञ्च । ४ । एतत्पारायणचतुष्टयमित्यर्थः ॥

एतेषां शाखाः पञ्च विधा भव-

न्ति ॥ ७ ॥

एतेषां वेदपारायणानां पञ्च शाखा भवन्तीत्यर्थः ॥

॥ कादृत्यत आह ॥

शाकला बाष्कला आश्वलायनाः

शाङ्खायना माण्डूकायना-

श्रुति ॥ ८ ॥

इति प्रसिद्धाः ॥ तेषामध्ययनम् । तेषां आश्वला-
यनीयादिशाखानां समानाध्ययनं सूचयति ॥

अध्यायाश्चतुःषष्टिर्मण्डलानि दशैव

तु ॥ ९ ॥

अध्यायाश्चतुःषष्टिः । अग्निमीळे । अयं देवायेत्या-
दि चतुःषष्टिरध्यायादित्यर्थः । मण्डलानि दशैव तु ।
अग्निमीळे । कुपुम्भक इत्याद्युपाकर्मप्रसिद्धानीत्यर्थः ॥

एकश्च एकवर्गश्चैकश्च नवकस्तथा

द्वौ वर्गौ तु द्वृचौ ज्ञेयौ न्यूनं तृच-

शतं स्मृतम् । वर्गाणां परिसङ्ख्या-

तं द्वे सहस्रे षडुत्तरे । ऋचां दश स-

हस्राणि ऋचां पञ्च शतानि च ।

ऋचामशीतिपादश्चैतत्पारायणमु-

च्यते ॥ १ ॥ इति शौनकीये चर- णव्यूहपरिशिष्टे प्रथमा कण्डिका समाप्ता ॥

वर्गादि आश्रयान्ताः सङ्ख्या बालखिल्यैर्विना ज्ञे-
या । षडुत्तरसहस्रद्वयवर्गादित्यर्थः । सहस्रमेकं सू-
क्तानां निर्विशङ्कं विकल्पितम् । दशसप्तसु पञ्चान्ते
सप्तदशाधिकसहस्रसूक्तानीत्यर्थः । सङ्ख्यातं वै पदक्रमं
एकशतसहस्रं वा द्विपञ्चाशत्सहस्रार्धमेतानि चतुर्दश
वासिष्ठानामितरेषां पञ्चाशीतिः । एकलक्षद्विपञ्चा-
शत्सहस्रपञ्चशतचतुर्दश, वासिष्ठानाम् । १५२५१४ ।
वासिष्ठगोत्रीयाणां “इन्द्रोतिभिरेकसप्ततिपदात्मको
वर्गो नास्ति । इतरगोत्रीयाणां पञ्चाशीत्यधिकप-
दानीत्यर्थः । ८५ । अथ बालखिल्यसंहिता पदसङ्ख्यो-
च्यते । लक्षैकं तु त्रिपञ्चाशत्सहस्रं शतसप्तकम् । प-
दानि च दिनवतिः प्रमाणं शाकलस्य च । १ । एकलक्ष-
त्रिपञ्चाशत्सहस्रसप्तशतदिनवतिश्चाधिकानि पदानीत्य-
र्थः । १५३७६२ । पदानि बालखिल्यस्य ह्यर्कसङ्ख्याश-
तानि च । अधिकानि तु सप्तैव । १२०७ । वर्गा अष्टा-
दश स्मृताः । सप्ताधिकद्वादशशतानि पदानीत्यर्थः । इ-
त्याश्वलायनानाम् । शाङ्खायनानां तु बालखिल्यसंहित-
पदसङ्ख्योच्यते । शाकल्यदृष्टे पदलक्षमेकसार्धन्तु वेदे
त्रिसहस्रयुतम् । शतानि सप्तैव तथाऽधिकानि चत्वा-

त्रिंशच्च पदानि चर्चा । शाकल्यो माण्डूकगणस्थः ।
 संहिता पदानि एकलक्षत्रिपञ्चाशत्सहस्रसप्तशतचतु-
 स्त्रिंशदधिकानि पदानीत्यर्थः । १५३७४३ ॥ पदानि
 वालखिल्यस्य रुद्रसङ्ख्याशतानि च । षट्पञ्चाशदधि-
 कानि वर्गाः सप्तदशास्तथा । एकादशशतषट्पञ्चा-
 शदधिकवाल्खिल्ये पदानीत्यर्थः । ११४६ । अष्टप-
 ञ्चाशत्पादात्मकृक्त्रयस्य । यमृत्विजो वर्गो नास्ति ।
 न तु हविष्यान्तीयसूक्ते द्वे समीचीवर्गे त्रिकृत्तानन्तर-
 मेक एवाग्निर्कृक् । यमृत्विजो कृक् । खिलरूपेण
 पठन्ति । ज्योतिष्मन्तमृचाभावः । कृक्त्रयस्य तेषाम-
 न्ते पदाभावत्वात् । अन्ते वर्गसमाप्तौ यावन्मात्रमृचं
 पठन्ति । एवं द्वे समीचीति षड्कृचो वर्गः । आश्व-
 लायनानां चतुर्कृचात्मको वर्गः । इत्याश्वलायनशा-
 ङ्खायनशाखयोर्भेदइत्यर्थः । यस्य मन्त्रस्य पदाभाव-
 स्तस्य खेलिकत्वं सिद्धम् । तर्हि अम्बकं व्यजामह इ-
 ति मन्त्रस्य पदाभावात्तस्य खेलिकत्वं सिद्धम् । न हि
 उ मा नागात् । उपलेखायां अम्बकं प्रथमं भद्रं नः प्र-
 जायते ऋतं चेति पदक्रममिममुपयामि गीतमर्द्धर्चान्ते
 पदम् । तस्मात्पदकाले क्रमकाले च पठन्ति । “क्रमो
 द्वै पदश्च” इति वचनात् । अत्र द्वितीयपदं नास्ति अर्द्ध-
 र्चान्तसमापनात् । क्रमाभावस्तस्मात्पदकाले क्रमकाले
 पठनं स एव पदक्रम इत्यर्थः । क्रमकाले तु वेष्टनं कर्त्त-
 व्यं चतुस्त्रिंशत्सहस्राणि । षत्वे णत्वे च दीर्घत्वे आकारे
 सानुनासिके ॥ त्रिचतुष्पञ्चक्रमे अर्द्धर्चान्ते च वेष्टयेत् ।

क्रमेणोदाहरणानि ज्ञातव्यानि । “सुषुमायातम् ।
 मो घृणः । वाजेषु सा सहिर्भव । आ उपानसः । न्या-
 विध्यदिलीशस्य । अगादारैगुह्यणा । निरुस्वसारम-
 स्कृतोषसम् । अग्निमीडेः ऋत्विजमित्यृत्विजमिति ।
 चतुस्त्रिंशत्सहस्राणि क्रमकाले वेष्टनानीत्यर्थः ।
 ३४००० । द्विखण्डानां सहस्राणि द्वात्रिंशत्षोडशो-
 त्तरम् । षोडशोत्तरद्वात्रिंशत्सहस्राणि द्विखण्डानी-
 त्यर्थः । ३२०१६ । चत्वारिंशत्सहस्राणि द्वात्रिंशतं
 चाक्षरसहस्राणि । चतुर्लक्षद्वात्रिंशत्सहस्राक्षराणी-
 त्यर्थः । ४३२००० । द्वात्रिंशतं चाक्षरसहस्राणीत्यर्थ-
 समाप्तेः पुनर्वचनमुक्तम् । अथ पारायणे ऋक्परिमा-
 णा उच्यन्ते । ऋचां दशसहस्राणि ऋचां पञ्चशतानि
 च । ऋचामशोतिपादश्च पारायणं प्रकीर्तितम् । ए-
 तत्पारायणं वालखिल्यैर्विना सङ्घातम् । वालखिल्या-
 नि पारायणे न सन्ति तदुच्यते । ऋग्वेदान्तर्गतवाल-
 खिल्यमेकादशसूक्तम् । ११ । सूक्तं १०० सप्तदशाधि-
 क १७ मिल्यत्र ऋचां दशसहस्राणीत्येतत्सङ्ख्याव्यति-
 रिक्तानि वालखिल्यानीति प्रसिद्धिः । तत्र यज्ञानुष्ठा-
 ने ब्राह्मणे सूत्रे च श्रूयते । “वालखिल्याः शंसन्ति
 प्राणा वै वालखिल्या” इति । अग्निं प्र वः सुराधसमि-
 ति षड्वालखिल्यानां सूक्तानामिति ब्राह्मणे आरण्य-
 के । अथ वालखिल्याविहरेत्तदुक्तं षोडशिनेति सू-
 त्रकारः श्रौतस्मार्त्तसर्वकर्मानुष्ठाने वालखिल्यप्रसि-
 द्धिः । वेदपारायणे वर्जमित्यर्थः । शौनकाचार्यवच-

नात् । यथा प्रैषाध्यायकुन्तपाध्यायनिविदाध्यायसुप-
 र्णाध्यायश्चेति तद्वालखिल्याध्यायइत्यर्थः । वालखिल्यसं-
 हितासर्वानुक्रमणीयमन्त्ररूपीसङ्ख्योच्यते । द्विप-
 ञ्चादधिकपञ्चशतदशसहस्राणीति १०५५२ । वा-
 लखिल्यव्यतिरिक्तकृत्कसङ्ख्या तु । दिसप्तत्यधिकचतुः-
 शतमन्त्रः सहस्रकृत् १०४७२ । एतत्सङ्ख्या नित्या
 द्विपदा नैमित्तिकद्विपदासहित उक्तहवनाभ्यां समाना
 सा नित्या द्विपदा । आसां सङ्ख्या उपलेखायाम् ।
 तच्च 'साधुरसिकन्यां सिषक्तु न उरौ देवा विद्वेषां-
 स्यथा वाजं सहिराध आवां सुमन्ते ते देवाय रायस्का-
 मः प्रति न स्तोमं स्वायुधासः पितुर्न पुत्रः स नोवाजे-
 शु गावो न यूथं पवस्व सोममन्द्यन्निति तिस्रः परि-
 सुवानो नभिर्ये मा नः प्रत्यञ्चमर्कमनयच्छचीभिरिति
 द्विपदैकपदा द्वाविंशतिस्तासां सप्तदश द्विपदा १७
 एकपदाः पञ्चइति । हवनाध्ययने विपरीता सा नै-
 मित्तिकद्विपदा ता आह वर्गरूपेण । पञ्चानतायुं दश-
 रयिर्न दश । श्रीणान्दश शुक्रः शुशुक्रां दश वनेम पू-
 र्वीर्दशान्ने त्वन्नश्चत्वार्यग्ने भव षट् प्रशुक्रैतु दश राजा
 राष्ट्रानां दशक ईक्ताव्य दश बभ्रुरेका दश परिशधन्व
 दश तन्ने सोतारो द्वादशेमा नुकं चत्वार्यायाहि वन-
 सा चत्वारितीति नैमित्तिकद्विपदा चत्वारिंशोत्तरश-
 तमिति १४० । हवने एकैका अध्ययने द्वे द्वे आसा-
 मन्या एका उर्वरिता सा नित्या द्विपदा । उक्तं च
 परिभाषायाम् । विंशिका द्विपदा विराजस्तदर्द्धमेक-

पदा द्विद्विपदास्तृचः समामनन्ति । आयुध्वन्त्या द्विपदै-
वेति । द्विद्विपदास्तृचः समामनन्ति । यस्य सूक्तस्य
द्विद्विपदाः समामनन्ति । ता ऋचोऽध्ययने चतुष्पदाः
कृत्वेत्यर्थः । आयुध्वन्त्या द्विपदैव सूक्तस्यार्चा युजो या
न भवति तास्त्वन्त्या नित्या द्विपदैव । एवमध्ययने द्वा-
वर्द्धं ऋगेव प्राधान्यम् । त्रीण्यर्द्धर्चायाः कथम् । तत्रा-
पि द्वावर्द्धर्चावेका ऋचा । अर्द्धर्चा एका कर्तव्या अ-
ध्ययनसम्प्रदायबलात् । अनादेशे अष्टाक्षराः पादा-
श्चर्चाइति परिभाषायाम् । अध्ययने त्रीण्यर्द्धर्चं ऋगे-
व सम्प्रदायो नास्ति । असां परिमाणमाह । अग्निं
होतारं पञ्च सहिषर्द्धो नषडयं जायत पञ्च विश्वो
विहायास्तिस्त्रोऽयं त्वं रथं पञ्च प्रतद्वोचे यं षडिन्द्रा-
याक्षुप नः पञ्चेमां ते वाचं चत्वारि स नो नव्येभिर्व-
र्जमिन्द्राय हि द्यौः सप्त त्वया वयं षड्वर्म ह एका व-
नीति हि एका त्वा जुषः षट् स्तोत्रं पञ्चेमे वांसोमा
एका इमे ये ते सुवायवे का प्रसुज्येष्ठं षडिति देवानां
वर्जम् । सुषुमायातं त्रीणि प्रप्रपूषाश्चतुष्कमस्तु औष-
ट् चत्वारि शचीभिर्नोर्वर्ज्यं वृषानिन्द्रपञ्च ये देवासो
वर्जं तवत्यं नयमेका सखे सखायमेकया ऋचा त्री-
ण्येतास्त्रोणि त्रीण्यर्द्धा ऋचा हवनीयाश्चतुर्नवतिस-
ङ्ख्येत्यर्द्धर्चं ऋग्धवने । अध्ययने अर्द्धर्चद्वयेन ऋगे-
का । अर्द्धर्चनैकैव ऋग्द्वये कर्तव्य इत्यर्थः । एकर्चस्य
ऋग्द्वयं विराट् छन्दो विना कथं भवतीत्याशङ्क्य त-
त्रोच्यते । विराट्छन्दः सर्वच्छन्दसि व्याप्तं वर्त्तते । ३

क्तं चारण्यके । “चत्वारः पुरुषा इति व्याधः शरीर-
 पुरुषश्छन्दःपुरुषो वेदपुरुषो महापुरुषइति । तस्यो
 ष्णिग्लोमानि त्वचं गायत्री त्रिष्टुप् मांसमनुष्टुप् स्ना-
 वान्यस्थि जगती पङ्क्तिर्मज्जा प्राणो ब्रूहीति याग्ये-
 तानि विराट् चतुर्थीग्येवसु हैवैवं विदुष एतदहः
 सर्वैश्छन्दोभिः प्रतिपन्नं भवतीति” प्राप्तो भवतीत्य-
 र्थः । “गायत्री पङ्क्तिश्च व्यतिषजति गायत्री वै पुरुषः
 पाङ्क्ताः पशव” इति ब्राह्मणम् । अत्रोदाहरणम् ।
 “पवस्व सोम मन्दश्न्निति तिस्रो नित्या द्विपदा गाय-
 त्र्य” इति सर्वानुक्रमणायाम् । द्विपादौ पुरुषो वीर्यं वि-
 ष्टुष्विराड्भ्यामनयोर्द्वाविंशयोर्द्विपदयोरयं पुरुषः ।
 अत्रोदाहरणानि । आवां सुम्ने वरिमन् । प्रत्यक्षम-
 र्कमनयन् । परिसुवानो गिरिः । जगती पादइति ।
 एवं सर्वव्याप्तो भवतीत्यर्थः । “छन्दाश्च जज्ञिर”
 इति श्रुतिः । तथा च शतपथब्राह्मणे “किञ्छन्दः का
 देवता प्रतिष्ठे” । यथा विष्णुः सर्वव्याप्तस्तथा विराट्-
 छन्दइत्यर्थः । विराट् छन्दसु चतुष्पदा । त्रीण्यूर्ध्व-
 र्चायां पञ्चपदा ऋक्संख्येति । किं प्रमाणं तत्रोच्यते ।
 “एकपाद्भयो द्विपदो विचक्रमे द्विपात्त्रिपादमभ्येति
 पञ्चात् । चतुष्पादेति द्विपदामभिखरे सम्पश्यन्पङ्क्ती-
 रुपतिष्ठमानः” । एकपदा द्विपदा नित्या द्विपात्त्रि-
 पादमभ्येति । एकीभूता भवन्तीत्यर्थः । अत्रोदाहरण-
 म् । “अग्निं होतारं मन्ये० दसम् । यऽऊर्ध्वया० छ-
 पा” । अग्रे अर्धर्चा “ष्टस्य विष्वाष्टिमनुवष्टि० सर्पि-

षः” । इति द्विपदा । चतुष्पदा तु । पञ्चानतायुम् ।
 एकाद्वर्चा त्रिपदा । एकाद्वर्चा द्विपदा । एका ऋक्
 पञ्चपदा अध्ययने । द्विद्विपदास्त्वचः समामनन्तीत्यत्र
 समपादग्रहणात् । असमानपादा विरुद्धा तर्हि प-
 ङ्क्तिच्छन्दः पञ्चपदा भवति तस्य द्वितीयभेदो विरा-
 ट् तस्मात्पञ्चपादत्वं प्राप्तम् । समपादा वा असमपा-
 दा विराट् छन्द इत्यर्थः । अत्र श्रुतिः । “समौ चिह्न-
 स्तौ न समं विविष्टः सस्मातरा चिन्नं समं दुहाते” इ-
 त्यनश ऋचा परिहारः । दक्षिणवामहस्तौ समौ क-
 र्त्तवे असमाप्तावित्यर्थः । अथाध्ययने ऋक्सङ्ख्यो-
 च्यते । प्रसूतव्यधिकचतुःशतदशसहस्राणीति । १०-
 ४६६ । ताः सहितनैमित्तिकद्विपदाश्चत्वारिंशोत्त-
 रशतसहितदशसहस्राणीति । १०५६६ । सञ्ज्ञा-
 नमुशनावदत्सूक्तस्य पञ्चदशचैकीकृत्य पारायणे ऋ-
 क्सङ्ख्या । १०५८० । ऋचां दशसहस्राणि इति
 वचनस्य सङ्ख्या पूर्णा भवतीत्यर्थः । एका उर्व-
 रिता सा “भद्रन्तो अपि वातयमनः” इति पादाधि-
 क्यमनुक्रमणिकावृत्तावप्युक्तेः । भद्रं पुच्छमित्यारण्य-
 के । अथ सञ्ज्ञानसूक्तम् । सञ्ज्ञानमुशनावदत्स-
 ङ्ज्ञानं वरुणोऽवदत् । सञ्ज्ञानमिन्द्रश्चाग्निश्च सञ्ज्ञा-
 नं सविता वदत् । १ । सञ्ज्ञानं न स्वेभ्यः सञ्ज्ञान-
 मरणेभ्यः । सञ्ज्ञानमश्विना युवमिहाम्नासु निय-
 च्छताम् । २ । यत्कक्षीवासं वननं पुत्रो अङ्गिरसा
 मवे । तेन नोऽद्य विश्वेदेवाः सम्प्रियां समजीजन-

तु । ३ संवी मनांसि जानतां समाकूतिर्मनामसि ।
 असौ यो विमना जनस्तं समावर्त्तयामसि । ४ । तच्छं-
 यीराट्णीमहे गातुं यज्ञाय गातुं यज्ञपतये दैवी
 स्वस्तिरस्तु नः स्वस्तिर्मानुषेभ्यः । ऊर्ध्वं जिगातु भेषजं
 शन्नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे । ५ । नैर्हस्त्यं सेनादरणं
 परिवर्त्तं तु यद्वक्त्रिः । तेनामित्राणां बाहू हविषा शोष-
 यामसि । ६ । परिवर्त्तान्येषामिन्द्रः पूषा च सस्रुतः ।
 तेषां वो अग्निदग्धानामग्निमूढानामिन्द्रो हन्तु करं
 वरम् । ऐषु न ह्यष्टषाजिनं हरिणस्य धियं यथा ।
 परां अमित्रां एष त्वर्वाची गौरुपेजतु । ७ । प्राध्वराणां
 पते वसो होतर्वरेण्य क्रतो । तुभ्यं गायत्रमृच्यते । गो-
 कामो अन्नकामः प्रजाकामउत कश्यपः । ८ । भूतं भ-
 विष्यत्प्रस्तौति महब्रह्मैकमक्षरं बज्रं ब्रह्मैकमक्षरम् ।
 यदक्षरं भूतक्रतो विश्वेदेवा उपासते । ९ । महर्षिभि-
 श्च गोप्तारं जमदग्निमकुर्वत । जमदग्निराप्यायते कृ-
 न्दोभिश्चतुरुत्तरैः । १० । राज्ञः सोमस्य भक्षेण ब्रह्मणा
 वीर्यावता । शिवा नः प्रदिशो दिशः सत्या नः प्रदिशो
 दिशः । ११ । अजो यत्तेजो ददृशे शुक्रं ज्योतिः परो
 गुहा । तदृषिः कश्यपः स्तौति सत्यं ब्रह्म चराचरम्
 ध्रुवं ब्रह्मचराचरम् । १२ । आयुषं जमदग्नेः कश्यपस्य
 आयुषमगस्त्यस्य आयुषम् । यद्देवानां आयुषं तन्मे-
 अस्तु आयुषं । १३ । तच्छंयीराट्णीमहे । १४ ।
 इति सञ्ज्ञानसूक्तं पञ्चदशर्चात्मकम् । अस्य ग्रहणे
 प्रमाणमाश्वलायनसूत्रम् । तच्च । “समानीव” इत्येका ।

तच्छंख्योराट्णीमह” इत्येकेति । तथा च शाङ्खायन-
 सूत्रम् । “अथोपाकर्माषधीनां प्रादुर्भावे हस्तेन श्व-
 येन वाऽक्षतसक्तूनां धानानां च दधिघृतमिश्राणां प्र-
 त्यूचं वेदेन जुञ्ज्यादिति हैक आहुः सूक्तानु-
 वाकाद्याभिरिति वाऽध्यायार्षयाद्याभिरिति माण्डूके-
 योऽथ ह स्म कौषीतकिरग्निमीडे पुरोहितमित्येका
 कुपुष्पकलदम्बीदावदंस्त्वं शकुने भद्रमावद गृणाना
 जमदग्निना धामन्ते विश्वं भुवनमधिष्यितं गन्तानो
 यज्ञं यज्ञियाः सुशमि यो नः खोऽअरणः प्रतिचक्ष्व-
 विचक्ष्वाने याहि मरुत्सखा यत्ते राजञ्छृतं हविरिति-
 हृचास्तच्छंख्योराट्णीमहइत्येका हुतशेषाद्विः प्रा-
 शन्तीति” । पञ्चशाखानां पारायणं तच्छंख्योराट्-
 णीमह इत्यत्र समाप्तिरेकवेदत्वात् । उक्तञ्च । सा-
 ङ्ख्याश्वलायनौ चैव माण्डूका बाष्कलस्तथा । बह्वृचा
 ऋषयः सर्वे पञ्चैते ह्येकवेदिनः ॥ अथ पारायणे चर्चा-
 सङ्ख्योच्यते । “एकर्व एकवर्गश्च एकर्वनवकस्तथा” । एकर्व
 एकवर्गो जातवेदसइत्यर्थः । नवर्व एकवर्गोऽप्यो हि
 छेति । द्वौ वर्गौ तु हृचौ ज्ञेयौ, द्वौ वर्गौ हृचावित्य-
 र्थः । अग्ने त्वन्नोऽअन्तमः । आयाहि वनसा स-
 हेति । ऋक्त्रयस्य शतं स्मृतम् । ऋचो वर्गाः शत-
 मित्यर्थः । उदुत्यं चमसं नवमित्यादि । चतुर्ऋचां प्र-
 ञ्चसप्तत्यधिकं च शतं तथा । चतुर्ऋचवर्गाः पञ्च-
 सप्तत्यधिकशतमित्यर्थः । १७५ । यदङ्ग दाशुषे त्व-
 मित्यादि । पञ्चर्वं तु दिशतकं सहस्रं रुद्रसंयुतम् ।

पञ्चर्चवर्गा एकादशाधिकद्वादशशतानीत्यर्थः ।
 १२११ । अग्निमीळे इत्यादि, । पञ्चचत्वार्यधिकं तु
 षड्ऋचां तु शतत्रयम् । षड्ऋचवर्गाः पञ्चचत्वा-
 रिंशदधिकशतत्रय इत्यर्थः । ३४५ । अश्विना पञ्च
 रीरिषइत्यादि, । सप्त ऋचां शतं ज्ञेयं विंशतिश्चा-
 धिकाः स्मृताः । सप्तर्चवर्गा विंशत्यधिकशतत्रय इत्य-
 र्थः । १२० । यच्चिद्धि सत्यसोमपा इत्यादि, । अष्टऋ-
 चां तु पञ्चाशत्पञ्चाधिकास्तथैव च । अष्टर्चवर्गाः प-
 ञ्चाधिकपञ्चशतं इत्यर्थः । ५५ । इन्द्रं विश्वाऽश्वी-
 षधन्नित्यादि, । एवं दशाधिकसहस्रद्वयवर्गा इत्य-
 र्थः । २०१० । पञ्चशाखासु निश्चिताः । पञ्चशाखा-
 नां पारायणे निश्चयेन इत्यर्थः । वर्गाः सञ्ज्ञानसू-
 क्तस्य चत्वारश्चात्र मीलिताः । सञ्ज्ञानसूक्तस्य चत्वारो
 वर्गाश्चात्र मिलित्वा दशाधिकसहस्रद्वयमित्यर्थः । एवं
 पारायणे प्रोक्ता ऋचां सङ्ख्या न न्यूनतः । एवं पू-
 र्वोक्तप्रकारेण वर्गस्य ऋक् न्यूनसङ्ख्येन दशर्चस्य
 पञ्चऋक् त्रीण्यर्चस्य ऋक्कर्त्तव्येत्यर्थः । एवं चतुर्वि-
 धपारायणेऽपि ज्ञेयम् । “समानीव इति” शाकलानां
 “तच्छ्रूयोरिति” बाष्कलानामित्यत्र बाष्कलशाखाध्य-
 यनमनुक्रमणिकावृत्तावृत्तम् । “गौतमादौशिजः कु-
 त्सा दीर्घतमेत्येव बाष्कलाध्ययनक्रमः” । अस्या-
 र्थः । गौतमादौशिजः कुत्सः । उपप्रयन्तो । नासत्या-
 भ्याम् । अग्निं होतारम् । इमं स्तोमम् । वेदिष-
 दे । एष बाष्कलक्रमइत्यर्थः । अत्रैवमुक्ते उत्तम-

मण्डले नवके अनुक्रमविपर्यासः । तच्च । स्वादोरम-
 क्षि सूक्तान्ते अभिप्रवः सुराधसम् । प्र सुश्रुत"मिति
 सूक्तद्वयं पठित्वा । अग्नऽआयाह्यग्निभिरिति पठेत् ।
 ततः आप्र द्वाध्याये गौर्धयत्यनुवाको दशसूक्तात्मकः
 शाकलस्य । पञ्चदशसूक्तात्मको बाष्कलस्य । तत्रो-
 च्यते । गौर्धयति सूक्तानन्तरं "यथा मनौ सांवरणौ ।
 यथा मनौ विवस्वति । उपमन्वा । एतत्तऽइन्द्र ।
 भूरिदिन्द्रस्य । इत्यन्तानि पञ्चसूक्तानि पठित्वा "आत्वा
 गिरो रथीरिवेति" पठेयुः । अन्ते संसमित्सूक्तान-
 न्तरं पञ्चदशऋचात्मकं "सञ्ज्ञानमुशनावदत्तच्छंध्यो-
 राष्टणीमह" इत्यन्तं वेदसमाप्तिरिति बाष्कलशाखा-
 ध्ययनम् । एवमध्ययनाभावाच्छाखाऽभाव इत्यर्थः ।
 सूक्तसहस्रसप्तदशाधिकात् अष्टौ सूक्तानि बाष्कल-
 स्याधिकानीत्यर्थः । प्रति ते । युवं देवाः । यमृत्वि-
 जः । इमानि वामिति चत्वारि वालखिल्यसूक्तानां
 लोपइत्यर्थः । यस्तानृग्विवेद चैवाप्यधीते स नाकष्टं
 भजते ह शश्वत् । अस्यार्थः । यः तान् ऋगर्थवित् वे-
 द, ततः हवनपारायणं च अधीते सः वेदिताऽध्येता च
 नाकष्टं शश्वत्सदा भजते । ह प्रसिद्धौ । इतोऽमुं लोक-
 मेत्युत तस्मान्न प्रच्यवते हीत्यर्थः । अथ पारायणफलं
 तदुक्तमारण्यके । "यद्वि सन्धि विवर्त्तयति तं निर्भुजस्य
 रूपमथ यच्छुद्धे अक्षरे अभिव्यवहरति तत्प्रहस्यस्या-
 ग्रऽउऽएवोभयमन्तरेणोभयव्याप्तं भवत्यन्नादकामो नि-
 र्भुजं ब्रूयात्स्वर्गकामः प्रहस्यसुभयकाम उभयमन्त-

रेणेति” । अस्यार्थः । द्वयोः पदयोरक्षरयोर्वाऽपि सन्धिस्य अविच्छेदाध्ययनं तन्निर्भुजं संहितापारायणमुच्यते । शुद्धे द्वे पदे अक्षरे वा सन्धिमकुर्वतोच्चारणं तत्प्रवृत्तं पदपारायणम् । संहितापदाभ्यामुभाभ्यां व्याप्तसुभयमन्तरेण क्रमपारायणमित्यर्थः । तथा च सति त्रिभिः कृत्वा स्वरस्वरं विजानाति मात्रामात्रां विभजते सा संहितेति । एवमेतां यो वेद सन्धीयते प्रजया पशुभिर्यशसा ब्रह्मवर्चसेन स्वर्गेण लोकेन सर्वमायुरेतीति । तस्मात्क्रमावृत्ते द्वे पदे संहिता द्वे पदे स्वरश्च न सिध्यति । द्वे पदे सिद्धे उत्तरारम्भः कर्तुं न शक्यते । अतश्च पादार्द्धच ऋक् सूक्तसिद्ध्यर्थं भगवता पाञ्चालेन स्थापितानां पारायणकर्मणां क्रमपारायणमुत्तमं भवतीति चात्र श्लोकः । प्रागाथेन पुरा दानं दृष्ट्वा क्रुद्धो महामुनिः । अर्थवन्तं क्रमं ब्रूयादेवतायाश्च शास्त्रतः । अत ऋग्यजुषां बृंहणं पदैः स्वरैश्चाध्ययनं तथा त्रिभिः । अतोऽपि अस्मादपि हेतोः क्रमः अर्थवान्भवति । क्रमेण कृत्वा ऋग्वेदपारायणे ऋचां बृंहणं साधारणं भवति । इदमित्यं सर्वं पाठ इति । स्वरमात्रादिरूपेण निश्चयो भवति तथा यजुर्वेदपारायणे यजुषां बृंहणं नाम साधारणं स्वरमात्रादिरूपेण इदमित्यमेव पाठ इति निश्चयो भवति । इत्यतिदेश इत्यलं प्रपञ्चेन ॥ अथ पारायणविधिः । अत्रादौ कलशस्थापनाद्युक्तं महार्णवे । तीर्थं देवालये गेहे प्रशस्ते सुपरिष्कृते ॥ कलशं सुदृढं

तत्र सुनिर्णीतं सुभूषितम् । १ । पुष्पपल्लवमालाभिश्च-
 न्दनैः कुङ्कुमादिभिः । मृत्तिकायवसम्भिष्यं वेदमध्ये
 न्यसेत्ततः । २ । पञ्चाशद्भिः कुशैः कार्यो ब्रह्मा प-
 श्चान्मुखस्थितः । स्नापितः स्थापितः कुम्भे चतुर्बाहुश्च-
 त्सुमुखः । ३ । वत्सजान्वाक्यतिर्वेद उत्तराग्रैः कुशैः
 कृतम् । ब्रह्मोपधाने दत्त्वा तं ततः स्वस्त्ययनं पठेत् ।
 ४ । प्रतिष्ठां कारयेत्पश्चात्पूजाद्रव्यमथोच्यते । यज्ञो-
 पवीतं नैवेद्यं वस्त्रं चन्दनकुङ्कुमैः । ५ । स्वर्गधूपदीप-
 ताम्बूलैरेतैश्चापि पितामहम् । ब्रह्म जज्ञानमिति वा
 गायत्र्या वा प्रपूजयेत् । ६ । उपाध्यायं च सम्पूज्य
 यथा पाठं पठेत्ततः । ततो होमादि वक्ष्यमाणं कृत्वा
 पठेदित्यर्थः । तत्रैव बौधायनः । स्यंडिलं कल्पयित्वा-
 ग्निमुपसमाधाय तं परिस्तीर्याज्येनैताभ्यो देवताभ्यो
 जुहोत्यग्नये सोमाय विश्वेभ्यो देवेभ्यो ब्रह्मणे ऋषि-
 भ्यो ऋग्भ्यो यजुर्भ्यः सामभ्यः श्रद्धायै मेधायै प्रज्ञायै
 धारणायै श्रियै द्वियै सावित्र्यै सवित्रे प्रजापतये
 काण्डऽऋषयेऽग्नये काण्डऽऋषये विश्वेभ्यो देवेभ्यः
 काण्डऽऋषिभ्यः सांहितीभ्यो देवताभ्यऽउपनिषद्भ्यो
 यान्त्रिकीभ्यो देवताभ्यऽउपनिषद्भ्यो वारुणीदेवताभ्यऽ
 उपनिषद्भ्यो हव्यवाहाय विश्वेभ्यो वरुणेभ्योऽनुमत्यै
 खिष्टकृते च पृथक् स्वाहाकारेण ऊत्वा व्याहृति
 भिश्च ऊत्वा पुनः परिषिञ्चति समाप्ते चैव यजुषा त-
 र्पयति । अन्ते एताग्निसोमाद्या यजुषा प्रदेन सह
 तर्पयेत् । यद्वा “भूर्देवांस्तर्पयामि” इत्यादि यजुषा त-

र्पयित्वाऽग्न्यादींस्तर्पयेदित्यर्थः । महार्णवः । एवञ्च-
 वेदिनां काण्डऽक्तष्यादिवर्जमास्विष्टकृतस्तेषां स्थाने
 शतर्चिभ्यो मध्यमेभ्यो गृत्समदाय विश्वामित्राय वाम-
 देवायात्रये भरद्वाजाय जमदग्नये गौतमाय वसिष्ठा-
 य प्रगाथेभ्यः पावमानीभ्यः क्षुद्रसूक्तेभ्यो महाना-
 न्नीभ्य इति ततो वेदादिमारभ्य सन्ततमधीयीतेत्याह
 भगवान्बोधायनः । पुनर्महार्णवे । अथातः पाराय-
 णविधिं व्याख्यास्यामन्नासमाप्तेर्नाग्नीयाद्यथाशक्तिं वा-
 ऽपः पयः फलान्योदनं हविष्यं मातमन्नमल्पं भुक्त्वा त-
 दाऽशेषमधीयीत ग्रामात्याच्यामुदीच्यां वा दिश्युपनि-
 षत्स्याग्निमुपसमाधाय परिस्तीर्यैध्मं प्रज्वाल्यार्ज्यनैता-
 भ्यो देवताभ्यो जुहोत्यग्नये सोमायेन्द्राय प्रजापतये
 बृहस्पतये विश्वेभ्यो देवेभ्यो ब्रह्मणे ऋषिभ्यऽक्तम्य-
 जुर्भ्यः अद्वायै मेधायै प्रज्ञायै धारणायै सदसस्पतयेऽ-
 नुमतये श्रियै ह्रियै सावित्र्यै सवित्रे प्रजापतये का-
 ण्डऽक्तषये सोमाय काण्डऽक्तषयेऽग्नये काण्डऽक्तषये
 विश्वेभ्यो देवेभ्यः काण्डऽक्तषिभ्यः सांहितीभ्यो देव-
 ताभ्यऽउपनिषद्भ्यो यान्त्रिकीभ्यो देवताभ्यऽउप-
 निषद्भ्यो वारुणीभ्यो देवताभ्यऽउपनिषद्भ्यो ह-
 व्यवाहाय विश्वेभ्यो वरुणेभ्योऽनुमत्यै स्विष्टकृते च
 पृथक् स्वाहाकारेण ऊत्वा व्याहृतिभिश्च पुनः प्र-
 र्षिषन्निति समाप्ते चैव यजुषा तर्पयतीति अन्ते ए-
 ताग्निर्सोमाद्या यजुषा पदेन सह तर्पयेत् । यद्वा
 भूर्द्देवांस्तर्पयामीत्यादियजुषा तर्पयित्वाऽग्न्यादींस्तर्पये-

दित्यर्थः । महार्णवः । एवमष्टवेदिनां काण्डऽऽष्टादि-
वर्जमास्विष्टकृतस्तेषां स्थाने "शतर्चिभ्यइत्यादिमहा-
नान्नीभ्यइत्यन्तं प्राग्वत् । ततो वेदादिमारभ्य सन्तत-
मधीयीत नैतस्यान्तराऽनध्यायो नास्यान्तरा जनन-
मरणे अशुचि आशौचं नेत्यर्थः । नान्तरा व्याहरेन्
विरमेद्यावन्तमधीयीत । यावत्पर्यन्तं पठेत्तावत्पर्यन्तं
न विरमेन्नान्यच्च वदेदित्यर्थः । यदन्तरा विरमेत् त्री-
न्प्राणानायस्य प्रणवं वा प्रविधाय यावत्कालमधीयी-
त । ततः सर्वनिशान्तरं सङ्ग्रामारण्यसलिलं लोप्य
परिदध्यात् । निशान्तरं सन्ध्यानिशादींल्लोप्य विहा-
य समापयेदित्यर्थः । आदावन्ते च ब्राह्मणभोजनं द-
क्षिणां च दद्यादिति महार्णवोक्तं विधानम् ॥ अथ
कमलाकरः । य एतेन विधिना वेदमधीयीत सन्ततः
पूतो वेदो भवति मनः शुद्धिश्च भवति वेदरूपो भव-
तीत्यर्थः । द्वाभ्यां पारायणाभ्यां ऋग्भिश्चाभोजन इ-
हाधीतेऽनृतेभ्यः प्रमुच्यते त्रिभिर्बज्जभ्यः पतनीयपा-
तकेभ्यः शूद्रायां रेतः सिक्त्वा गङ्गाऽशु वन्निमज्ज्यश्च
भवति चतुर्थ्यः शूद्रान्नभोजनात्स्त्रीसेवनाच्च पञ्चभि-
रयाज्ययाजनादग्राह्यग्रहणात् षड्भिर्ब्राह्मणस्य लो-
हितकरणात्पशुहननात्सुवर्णस्तेयात्पतिसंयोगाच्च स-
प्तभिः प्राजापत्यस्य हीनचरणाद्यज्ञोपबन्धनाच्चाष्टभि-
श्चान्द्रायणशुरुतल्यगमनाद्रजस्वलागमनाच्च नवभिः
सुरापानाद्दशभिः पुनर्जन्मेह जन्मकृतैः सर्वैः पापैः
प्रमुच्यते स्वर्गं ल्लोकं गच्छतीति । अग्निष्टोमादिक्रतु-

भिरिष्टं भवति । पितृन्स्वर्गं ल्लोकं गमयति । वेदाध्या-
यी सदैव स्यादपाप्मा सत्यवाक् शुचिः । यं यं कामं
कामयते तं तं वेदेन साधयेत् । असाध्यं नास्ति य-
त्किञ्चिद्ब्रह्मणो हि फलं महत् । ऋग्विधाने । आदा-
वेव तु सावित्र्या कर्म कुर्वीत शान्तये । पुष्टये प्रशुला-
भाय धनलाभाय भूतये । एषा हि संहिता देवैः स-
र्वब्रह्ममयी निचृत् । उग्रेण तपसा दृष्टा विश्वामित्रे-
ण धीमता । होमांश्च जपयन्नांश्च नित्यं कुर्वीत वै त-
था । सर्वकामप्रसिद्ध्यर्थं परं ब्रह्मेदमुच्यते । एषा वै
प्रतिलोमोक्ता शत्रुपक्षविनाशिनी । अक्षरप्रतिलो-
मेयमभिचारेषु शस्यते । सर्वसंहितया प्रत्युचं होम
आज्येन तिलेन वा । “आज्यं द्रव्यमनादेशे जुहोतिषु
विधीयते” इति ब्राह्मोक्तेः । सर्वपापहरो होमस्तिलैः
सर्वत्र शस्यते । इति विष्णुधर्मोत्तराच्च । शातातपः ।
छच्छो देव्ययुतं चैव वेदपारायणं तथा । तिलहोम-
सहस्रं च सममेतच्चतुष्टयम् । इदं केवलम् । अन्ये-
चान्द्रमसम् । इति कमलाकरभट्टकृतो वेदपारायण-
विधिः समाप्तः । व्याख्या चरणव्यूहस्य आद्यखण्डस्य
तेन वै । यथामति विरचिता महादेवप्रसादतः ॥

इति चरणव्यूहपरिशिष्टव्याख्यायां प्रथमखण्डस्य
व्याख्या समाप्ता ॥

यजुर्वेदस्य षडशीतिभेदा भवन्ति त-

त चरका नाम द्वादश भेदा भवन्ति
 चरका आव्हरकाः कठाः प्राच्यक-
 ठाः कपिष्ठलकठाश्चारायणीया वा-
 रायणीया वात्तान्तवीया श्वेताश्वत-
 रा औपमन्यवः पाताण्डनीया मैत्रा-
 यणीयाश्चेति तत्र मैत्रायणीया नाम
 षड्भेदा भवन्ति मानवा वाराहा दुन्दु-
 भाश्छगलेया हारिद्रवीया श्यामाय-
 नीयाश्चेति तेषामध्यनं द्वे सहस्रे शते
 न्यूने मन्त्रे वाजसनेयके । ऋग्गणः
 परिसङ्ख्यातं ततोऽन्यानि यजूंषि
 च, अष्टौ शतानि सहस्राणि चाष्टा-
 विंशतिरन्यान्यधिकश्च पादमेतत्प्र-
 माणं यजुषां हि केवलं सवालखि-

ल्यं सशुक्रियं ब्राह्मणं च चतुर्गुणं ।
 तत्र तैत्तिरीयका नाम द्विभेदा भव-
 न्त्यौखेयाः खाण्डिकेयाश्चेति तत्र
 खाण्डिकेया नाम पञ्चभेदा भवन्ति
 कालेता शाढ्यायनी हैरण्यकेशी
 भारद्वाज्यापस्तम्बी चेति तेषाम-
 ध्ययनमष्टादशयजुःसहस्राण्यधीत्य
 शाखापारो भवति तान्येव द्विगुणा-
 न्यधीत्य पदपारो भवति तान्येव
 त्रिगुणान्यधीत्य क्रमपारो भवति
 षडङ्गान्यधीत्य षडङ्गविद्वति ।
 त्रिगुणं पठ्यते यत्र मन्त्रब्राह्मणयोः
 सह यजुर्वेदः स विज्ञेयः शेषाः शाखा-
 न्तराः स्मृताः ॥

अथ द्वितीयखण्डं व्याख्यायते ॥ यजुर्वेदस्य षड-

शीतिर्भेदा भवन्ति अत्र शाखाभेदो ग्राह्यः । षट् अ-
शीतिर्भेदादित्यर्थः । तत्र चरकानां द्वादश भेदा भव-
न्तीति स्पष्टार्थः । ते के भेदाः । चरकाः । आह्वरकाः ।
कठाः । प्राच्यकठाः कपिष्ठलकठाः । चारायणीया ।
वारायणीया । वार्त्तान्तवेया । श्वेताश्वतरा । औपम-
न्यवः । पाताण्डनीया । मैत्रायणीयाश्चेति । मैत्रायणी-
यानां केचित्सप्त भेदा भवन्ति इति वदन्ति श्यामा इ-
त्यधिकं तदधिकमेव । मैत्रायणीयस्तु वाजसनेयवे-
दाध्यायी । मानवं कर्मसूत्रम् । तेषामध्ययनमष्टोत्त-
रशतं यजुः सहस्राण्यधीत्य शाखापारो भवति तेषा-
मध्ययने द्विचत्वारिंशदध्यायाः । अष्टशताधिकसह-
स्रमन्त्वा इत्यर्थः । तान्येव द्विगुणान्यधीत्य पदपारो
भवति । द्विवारपठनात्पदपारायणफलं भवतीत्यर्थः ।
तान्येव त्रिगुणान्यधीत्य क्रमपारो भवति । त्रिवारप-
ठनात्क्रमपारायणफलं भवतीत्यर्थः । पदक्रमाध्ययनं
भवतीत्यर्थः । षडङ्गान्यधीत्य षडङ्गविद्भवति तानि का-
नि षडङ्गान्युच्यन्ते ॥

शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छ-
न्दो ज्योतिषमिति षडङ्गानि । छन्दः
पादौतु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पद्म-
ते । ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रो

तमुच्यते । शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य
मुखं व्याकरणं स्मृतम् । तस्मात्सा-
ङ्गमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते । त-
था प्रतिपदमनुपदं छन्दो भाषा धर्मो
मीमांसा न्यायस्तर्क इत्युपाङ्गानि, तत्र
परिशिष्टानि भवन्ति यूपलक्षणं छा-
गलक्षणं प्रतिज्ञाऽनुवाकसङ्ख्या
चरणव्यूहश्चाद्वकल्पशुल्बकानि पा-
र्षदमृग्यजूंषीष्टकापूरणं प्रवराध्या-
योक्थशास्त्रक्रतुसङ्ख्या निगमा य-
ज्ञपार्श्वहौत्वकं प्रसवोत्थानं कूर्मलक्ष-
णमित्यष्टादश परिशिष्टानि भवन्ति,
तत्र कठानां योगा येन विशेषस्तत्र
प्राच्योदीच्यनैर्ऋत्यवाजसनेया ना-

म पञ्चदश भेदा भवन्ति जावाला
 बौद्धायनाः काण्वा माध्यन्दिनेयाः
 शाफेयास्तापनीयाः कपोलाः पौ-
 ण्डरवत्सा आवटिकाः परमावटि-
 काः पाराशरा वैणेया अद्धा बौधे-
 याश्चेति तेषामध्यनं सौक्तिकं प्रव-
 चनीयाश्चेति । मन्त्रब्राह्मणक-
 ल्पांनामङ्गानां यजुषामृचाम् । ष-
 ण्णां यः प्रविभागज्ञः सोऽध्वर्युः कृ-
 त्सनमुच्यते ॥ २ ॥

शिवादीनि षड्भवन्ति, षडुपाङ्गान्यपि प्रतिपदादि-
 तर्कोन्तानि भवन्ति, तस्मिन्वज्रुर्वेदे यूपलक्षणादि कूर्म-
 लक्षणान्तान्यष्टादशपरिशिष्टसूत्राणि भवन्ति । ए-
 तेषां व्याख्यानान्यग्रे वक्ष्यामः । तत्र प्राच्योदीच्यां नै-
 ऋत्यां निऋत्यस्तत्र वाजसनेयानां पञ्चदशभेदा भव-
 न्ति । प्राच्योदीच्यनैऋत्येषु तिसृषु दिक्षु वाजसनेय-
 वेदोत्पत्तिरग्रे वक्ष्यामः । इतरदेशेषु वेदशाखयोर्वि-

भाग उच्यते । तच्च महार्णवे । पृथिव्या मध्यरेखा च
नर्मदा परिकीर्तिता । दक्षिणोत्तरयोर्भागे शाखा
वेदाश्च उच्यते । १ । नर्मदादक्षिणे भागे आपस्त-
म्ब्याश्चलायनी । राणायनी पिप्पला च यज्ञकन्यावि-
भागिनः । २ । माध्यन्दिनी शाङ्खायनी कौथुमी शौ-
नकी तथा । नर्मदोत्तरभागे च यज्ञकन्याविभागि-
नः । ३ । तुङ्गा कृष्णा तथा गोदा सद्याद्रिशिखराव-
धि । आ आन्ध्रदेशपर्यन्तं बह्वचम्प्याश्चलायनी । ४ ।
उत्तरे गुर्जरे देशे वेदो बह्वच ईरितः । कौषीतकी-
ब्राह्मणं च शाखा शाङ्खायनी स्थिता । ५ । आन्धा-
दिदक्षिणाम्नेयी गोदा सागरआवधि । यजुर्वेदस्तु
तैत्तिर्य आपस्तम्बी प्रतिष्ठिता । ६ । सद्याद्रिपर्वता-
रम्भाहिषां नैर्ऋत्यसागरात् हिरण्यकेशी शाखा च
पर्शुरामस्य सन्निधौ । ७ । मयूरपर्वताच्चैव यावद्गुर्ज-
रदेशतः । व्याघ्रा वायव्यदेशात्तु मैत्रायणी प्रतिष्ठि-
ता । ८ । अङ्गवङ्गकलिङ्गश्च कानीनो गुर्जरस्तथा ।
वाजसनेयो शाखाच माध्यन्दिनी प्रतिष्ठिता । ९ ।
ऋषिणा याज्ञवल्क्येन सर्वदेशेषु विस्तृता । वाजसने-
यवेदस्य प्रथमा काण्वसञ्ज्ञका । १० । व्यासशिष्यो
वैशम्पायनो निगदाख्यं यजुर्वेदं पठित्वा शिष्याञ्चका-
र । तच्च भागवते (१) । वैशम्पायनशिष्या वै चरकाध्व-
र्यवोऽभवन् । यच्चेरुर्ब्रह्महत्याहः क्षपणाय गुरोर्व्रतम् ।
१ । याज्ञवल्क्यस्तु तच्छिष्य आहांहो भगवत्कियत् ।

(१) द्वादशस्कन्धे इ अष्टमाये षड्विंशत्यध्यायमारभ्य त्रयस्त्रिंशलपर्वतपर्यन्तम् ॥

चरितेनाल्पसाराणां चरिष्येऽहं सुदुश्चरम् । २ । इत्यु-
क्तो गुरुरप्याह कुपितोऽपि ह्यलं त्वया । विप्रावमन्त्वा
शिष्येण मदधीतं त्यजाम्बिति । ३ । देवरातमुतः सो-
ऽपि कृष्ट्वा यजुषां गणम् । ततो गतोऽथ मुनयो-
ददृशुस्तान्यजुर्गणान् । ४ । भूत्वा तित्तिरयो ब्रह्मस्त-
ल्लोलुपतवा ददुः । तैत्तिरीया इति यजुःशाखा आस-
न्मुपेशलाः । ५ । यान्नवलक्यस्ततो ब्रह्मन् कृन्दांस्य-
धिगवेषयन् । गुरोरविद्यमानानि सूतस्थेऽर्कमीश्व-
रम् । ६ । यान्नवलक्य उवाच । ओं नमो भगवते आ-
दित्यायेत्यार(१) व्य यातयामयजुः काम उपसरामी-
ति । सूत उवाच । एवं स्तुतः स भगवान्वाजिरूप-
धरो हरिः । यजूंष्ययातयामानि मुनयेऽदात्प्रसाद-
तः । ७ । यजुर्भिरकरोच्छाखा दशपञ्च तथा विभुः ।
जगृज्जवांसन्यस्ताः काण्वमाध्यन्दिनादयः । ८ ।
इत्यादिग्रन्थपर्यालोचनया यजुर्वेदत्यागानन्तरं देवरा-
तमुतेन अब्राह्मणत्वाभिया सविता सूर्यो वाजिरू-
पेण वाजेभ्यः केसरेभ्यः वाजेन वेगेन वा सन्यस्ता-
स्यक्ताः शाखा वाजसनेयी सञ्ज्ञा । शाखारण्डत्वप-
रिहारार्थं चातुर्वेद्यत्वसङ्घासंरक्षणार्थं च वाजिरूपे-
ण सूर्येणयातयामानि (२) यजुंषि मुनये वृत्तानि तै-
र्यजुर्भिरपरतैः समुचिता (३) वाजसन्यः पञ्चदश-

(१) जीर्णभुक्ते उच्छिष्टवान्ते यातयामशब्द इति निघण्टुः ॥

(२) अयातयामानि अगतसाराणि वीर्यवन्तीत्यर्थः ॥

(३) वाजसनः सूर्यस्तत आगताः शाखा वाजसन्यस्ताः शाखाः काण्वादयो माध्य-
न्दिनादयश्चेत्यर्थः कृतो भागवतव्याख्याकारेण विजयध्वजेनेति स्फुटमवलोकयन्तु

शाखा अकरोत् । तस्माच्च मुनेः सकाशात्काखा मा-
 ध्यन्दिनादय अध्ययनं चक्रुः । ते पञ्चदश भवन्ति ।
 अथ प्रसङ्गायजुर्वेदस्य शाखाप्रणयनविचारः किञ्चि-
 दुच्यते । तत्र यजुर्वेद एव प्रथमः । तथा च विष्णुपु-
 राणे । एक एव यजुर्वेदस्तं चतुर्धा व्यकल्पयदिति ।
 यजुर्वेदो यज्ञोपयोगित्वसूपयोगात्सर्वोऽपि वेदो
 यजुर्वेद इत्युच्यते । यजुर्वेदस्य शाखाभेदं सविस्तर-
 माह । यजुर्वेदतरोः शाखाः सप्तविंशन्महामुने ।
 वैशम्पायननामासौ व्यासशिष्यश्चकार वै । १ । शि-
 ष्येभ्यः प्रददौ ताञ्च जग्रज्जस्तेऽप्यनुक्रमात् । याज्ञव-
 ल्क्यस्य तस्याभूद्ब्रह्मरातः सुतो द्विजः । २ । शिष्यः
 परमधर्मज्ञो गुरुवृत्तिरतः सदा । ऋषिर्यश्च महा-
 मेरौ समाजेनागमिष्यति । ३ । तस्य वै सप्तरावं त-
 द्ब्रह्महत्या भविष्यति । पूर्वमेनं मुनिगणैः समयोऽयं
 कृतो द्विजं । ४ । वैशम्पायन एकस्तु तं व्यतिक्रान्त-
 वांस्तथ । स्वस्त्रियं बालकं सोऽथ पदाष्टष्टमघातय-
 त् । ५ । शिष्यानाह च भोः शिष्या ब्रह्महत्यां परा-
 वृते । चरध्वं मत्कृते सर्वे न विचार्यमिदं तथा । ६ ।
 अथाह याज्ञवल्क्यस्तं किमेतैर्बज्जभिर्द्विजैः । क्लेशि-
 तैरल्पतेजोभिश्चारिष्येऽहमिदं व्रतम् । ७ । ततः क्रु-
 द्धो गुरुः प्राह याज्ञवल्क्यं महामुनिम् । मुच्यतां य-
 च्चयाधीतं मत्तो विप्रावमानकः । ८ । निस्तेजसा
 वदस्येतान्यस्त्वं ब्राह्मणपुङ्गवान् । तेन शिष्येण नार्थो-

ऽस्ति समान्नाभङ्गकारिणः । ९ । याज्ञवल्क्यस्ततः
 प्राह भक्त्यैतत्ते मयोदितम् । समाप्यत्वं त्वयाऽधीतं
 यन्मया तदिदं द्विज । १० । श्रीपराशर उवाच ।
 इत्युक्त्वा रुधिराक्तानि स्वरूपाणि यजूंष्यथ । कर्हयि-
 त्वा ददौ तस्मै ययौ च स्वेच्छया मुनिः । ११ । यजूं-
 ष्यथ विस्मृष्टानि याज्ञवल्क्येन वै द्विजः । जगृज्जस्तित्ति-
 रा भूत्वा तैत्तिर्यास्तु ततः स्मृताः । १२ । ब्रह्महत्या-
 व्रतं चीर्णं गुरुणा नोदितं तु यैः । चरकाध्वर्यवस्ते तु
 चरणान्मुनिसत्तम । १३ । याज्ञवल्क्योऽपि मैत्रेण
 प्राणायामपरायणः । तुष्टाव प्रणतः सूर्यं यजूंष्यभि-
 लषत्ततः । १४ । अस्यार्थः । यजुर्वेदतरोरित्यादिना
 सप्तविंशतिः । इयं च प्रधानशाखानां सङ्ख्या । ब्र-
 ह्माण्डपुराणोक्तषडशीतिशाखाभेदस्तु प्रतिशाखवि-
 वक्षया ताश्च शुक्लयजुः पञ्चदशकं सहेत्येकशाखा
 आपस्तम्बोक्ता इति द्रष्टव्यम् । याज्ञवल्क्येन कर्हितैर्यै-
 र्यजुर्भित्तैस्तिरीयशाखा बभूव । ते याज्ञवल्क्यव्यति-
 रिक्ता वैशम्पायनशिष्या याज्ञवल्क्येन कर्हितं विप्र-
 येण गृहीतुमनुचितमिति तित्तिरपक्षिणो भूत्वा या-
 ज्ञवल्क्यविस्मृष्टानि यजूंषि जगृज्जः । ततस्ताः शाखास्तै-
 त्तिरीया बभूवरित्यर्थः । याज्ञवल्क्यव्यतिरिक्तानां चर-
 काध्वर्युसञ्ज्ञां निर्वर्त्ति । चरकाध्वर्यवस्ते वै चरणान्मु-
 निसत्तम । चरकाध्वर्यव इति पाठे वरणाद्यजुषां ग्रह-
 णात् । आध्वर्यवं चक्रुरित्यर्थः । यजूंषि वैशम्पायनेना-
 धीतानि । याज्ञवल्क्यस्ततो ब्रह्मञ्चन्दांस्यधिगवेषयन् ।

गुरोरविद्यमानानि सूत्रपतस्थेऽर्कमीश्वरम् । इति भा-
गवतोक्तेः । याज्ञवल्क्य उवाच । नमः सवित्रे हाराय
मुक्तोरमिततेजसे । ऋग्यजुःसामरूपाय त्रयीधामा-
त्मने नमः । १५ । इत्येवमादिभिस्तेन स्तूयमानः स
वै रविः । वाजीरूपधरः प्राह ब्रूयतामभिवाञ्छित-
म् । १६ । याज्ञवल्क्यस्तथा प्राह प्रणिपत्य दिवाकरम् ।
यजूंषि तानि मे देहि यानि सन्ति न मे गुरौ । १७ ।
पराशर उवाच । एवमुक्तो ददौ तस्मै यजूंषि भगवान्
रविः । अथातयामसञ्ज्ञानि यानि वेत्ति न तद्गुरुः
। १८ । यजूंषि यैरधीतानि तानि विप्रैर्द्विजोत्तम ।
वाजिनस्ते समाख्याताः सूर्याश्वाः स भवेद्यतः । १९ ।
शाखाभेदस्तु तेषां वै दशपञ्च च वाजिनाम् । कणा-
द्यास्तु महाभाग याज्ञवल्क्यप्रकीर्त्तिताः । २० । इति ।
तद्गुरुर्वैशम्पायनो यानि न वेत्ति तेषां व्यासेनानुपदि-
ष्टत्वादिति भावः । वाजिनः समाख्याता वाजिरूपसूर्य-
प्रोक्तसंहिताध्यायित्वात् । अग्निपुराणेऽपि । काण्वा-
माध्यन्दिनीसञ्ज्ञा कठी माध्यकठीतथा । मैत्राय-
ण्यसञ्ज्ञा च तैत्तिरीयाभिधानका । वैशम्पायनि-
केत्याद्याः शाखा याजुषसञ्ज्ञिता इति । आदिशब्देन-
एतदन्यशाखाग्रहणम् । तदुक्तं नृसिंहपराशरे । प्रथ-
मो याज्ञवल्क्यश्च आपलम्बो द्वितीयकः । तृतीयो मूल-
घटकश्चतुर्थो वाणसः स्मृतः । पञ्चमः सहवासश्च षष्ठः
स्याङ्गोत्रपाण्डितः । समानुजः सप्तमोक्त अष्टमश्च गया-
वलः । त्रिदण्डो नवमः प्रोक्तो नवशाखाः प्रकीर्त्ति-

ताः । तन्मध्ये सहवासस्तु कर्मनिष्ठो द्विजाग्रणीः । एवं शाखादेशभेदादबहवस्तु द्विजातयः । तत्रापि कर्मनिष्ठाश्च ग्राह्या यज्ञादिकर्मसु । हीना द्विजातयः सर्वे त्याज्याः सर्वत्र कर्मसु । हीना द्विजातयः अभीरादयः । परदेशे त्रिदण्डवेषधारिणः । सन्यासिनः स्वग्रामे परिग्रहयुक्तास्ते त्रिदण्डिनः । गोत्रप्रण्डितो वैश्ययाजकः । मूतघटको नागवल्लीरोपकः । निर्गूलाइति प्रसिद्धाः । अन्ये वाणसादि प्रसिद्धाः । केचिद्धर्मशास्त्रानभिज्ञा वानप्रस्थाज्जाता वाणसा इति वदन्ति तद्वाक्यमाखण्डपतितपरम् । तदुक्तं कूर्मपुराणे वानप्रस्थाश्रमधर्मे । यस्तु पत्न्या वनं गत्वा मैथुनं कामतश्चरेत् । तद्व्रतं तस्य लुप्येत प्रायश्चित्तीयते द्विजः । तत्र यो जायते गर्भो न संस्पृश्यो द्विजातिभिः । न हि वेदेऽधिकारोऽस्य तद्वर्गेऽप्येवमेव हि । आखण्डपतितः प्रोक्तो मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिरिति । वाजसनीयवेदोत्पत्तिरित्यर्थः । काण्वाः । माध्यन्दिनाः । शाफेयाः । तापायनीयाः । कपोलाः । पौण्ड्रवत्साः । आवटिकाः । परमावटिकाः । पाराशर्याः । वैशेयाः । वैधेयाः । अद्वाः । बौधेयाः । (१) इति पञ्चदशशाखा इत्यर्थः । प्रतिपदे अनुपदे अन्यत्पदं कर्तव्यमित्यर्थः । छन्दः शास्त्रं पिङ्गलोक्तमध्यायाष्टकम् । भा-

(१) 'क' 'ख' पुस्तकयोः पाठा यथा । शार्वेयाः । स्थापनीयाः । कपालाः । पौण्ड्रवत्साः । पराशराः । वैनेयाः । वैजवाः । गालवाः । कात्यायनभ्याश्चेति । शास्त्रात्रितयस्थाने मूले न दृश्यन्तेऽतो मूलोक्ताः प्रामाणिकाः पाठा इति बुधैरवगन्तव्यम् । इत्यर्थः ॥

षाशब्देन भाष्यतेऽर्थः पर्यायशब्दैर्निघण्टुरध्यायपञ्च-
कः ॥ त्रयोदशाध्यायात्मकं निरुक्तम् । धर्मशास्त्रं
मन्वाद्यनेकमहर्षिप्रणीतम् । मीमांसा जैमिनिमह-
र्षिकृतमध्यायद्वादशकम् । न्यायशब्देन काणादसूत्र-
म् । तर्कशब्देन गौतमसूत्रम् । इति षडुपाङ्गानि ।
उपज्यौतिषं ज्यौतिः शास्त्रं साङ्गलक्षणं सामुद्रका-
दि ॥ यूपलक्षणं छागलक्षणं च यज्ञे प्रसिद्धम् । प्रति-
ज्ञासूत्रं खण्डवयात्मकम् । अनुवाकाध्यायः । वेदशा-
खापरिज्ञानम् । श्राद्धसूत्रं नवखण्डात्मकम् । श्रौत-
यज्ञार्थमण्डपरचनात्मकं शुल्वसूत्रम् । पार्षदप-
रिशिष्टसूत्रम् । ऋग्यजुर्निर्णयात्मकम् । इष्टकापूर-
णपरिशिष्टसूत्रम् । गोत्रप्रवरनिर्णयार्थः । प्रवराध्या-
यः । उक्थशास्त्रपरिशिष्टम् । निगमयज्ञपार्ष्व, हौत्र,
क, प्रसवोत्थान, कूर्मलक्षणपरिशिष्टपञ्चकं यज्ञेषु प्र-
योजनं प्रसिद्धम् । एतानि परिशिष्टान्यष्टादशस-
ङ्ख्यकानि कात्यायनमहर्षिप्रणीतानि । द्वे सहस्रे श-
ते न्यूने मन्वे वाजसनेयके । ऋग्गणः परिसङ्ख्यातमेत-
त्सर्वं सशुक्रियम् । वाजसनेयके वेदे नवशताधिकसह-
स्रमन्वा इत्यर्थः । एतत्सकलं शुक्रियमन्वसृचंवाचमि-
ति षट्त्रिंशदध्यायोक्तचतुर्विंशद्व्यात्मकसहितं, मध्या-
न्हे शुक्लवर्णेन सूर्येण दत्तः सशुक्रयज्ञः परिसङ्ख्यात
इत्यर्थः । वेदोपक्रमणे चतुर्दशीपौर्णिमाग्रहणाच्छुक्ला-
यजुः । प्रतिपदायुक्तपौर्णिमाग्रहणात्कृष्णयजुरिति
वा । ऋक्सङ्ख्या १६० २५ । पञ्चविंशत्युत्तरैकोनविं-

शतिः । खिलमन्त्रा अग्निश्चेति षड्विंशत्यध्यायोक्ताः ।
यजुःसङ्ख्या अष्टाविंशत्युत्तराष्टशतान्यष्टौ सहस्रा-
णि । वेदचतुर्गुणं शतपथब्राह्मणमित्यर्थः । यजु-
र्वेदतरोरासन् शाखा एकोत्तरं शतम् । तत्रापि च
शिवाः शाखाः दशपञ्च च वाजिनाम् । तत्रापि सु-
ख्या विज्ञेया शाखा या कण्वसञ्ज्ञका । इति । ग्रन्था-
न्तरे, । तैत्तिरीयकानां द्विभेदा भवन्ति । औखेया ।
खाण्डिकेयाश्चेति । खाण्डिकेयानां पञ्चभेदा भव-
न्ति । आपस्तम्बी । बौधायनी । सत्याषाढी । हिर-
ण्यकेशी । भारद्वाजीति, कालेता शाखायनीति द्वे मू-
लोक्ते तयोः स्थाने बौधायनी औधेयाइति बोध्ये ।
तेषामध्ययनपरिमाणम् । काण्डास्तु सप्त विज्ञेयाः
प्रश्नाश्चाधिरुकाश्चतुः । चत्वारिंशत्तु विज्ञेया अनुवाकाः
शतानि षट् । १ । एकपञ्चाशदधिकाः सङ्ख्याः पञ्चा-
शदुच्यते । द्विसहस्रञ्चैकशतमष्टानवति चाधिका । २ ।
लक्षैकं तु द्विनवति सहस्राणि प्रकीर्तितम् । पदानि-
नवतिश्चैव तथैवाक्षरमुच्यते । ३ । लक्षद्वयं त्रिपञ्चा-
शत्सहस्राणि शताष्टकम् । अष्टषष्ठ्यधिकं चैव यजुर्वे-
दप्रमाणकम् । ४ । काण्डाः । ७ । प्रश्नाः । ४४ । अ-
नुवाकाः । ६५१ । पञ्चोनाशी । २१६८ । प-
दानि १६२६० । अक्षराणि । २५३८ । शाखावाक्या-
न्ययुतानि सहस्राणि नवानि च । चतुःशतान्यशीति-
श्च अष्टौ वाक्यानि गण्यते १ । इति ब्राह्मणे अष्टौ वा-
क्यसङ्ख्या । १६४८० । इति तैत्तिरीयनिगदवेदा-

ख्यंसङ्ख्योक्ता इत्यर्थः । तत्र कठानां तूपेगा यजुर्विंश-
 पञ्चतुश्चत्वारिंशदुपग्रन्थाः । मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदस्त्रिगुणं
 यत्र पठ्यते । यजुर्वेदः स विज्ञेय अन्ये शाखान्तराः स्मृ-
 ताः । चतुश्चत्वारिंशदुपग्रन्था अध्यायाः समीपे उक्ताः ।
 मन्त्रश्च ब्राह्मणं च मन्त्रब्राह्मणे तयोर्मन्त्रब्राह्मणयोर्वे-
 दइति सञ्ज्ञा । तदुक्तं मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदइति नाम-
 धेयमित्यवेदीयप्रातिशाख्यभाष्यकारेणोष्बटेन । आ-
 पस्तम्बसामान्यसूत्रभाष्यकारेण कपर्दिना धूर्तस्वामि-
 ना च । तथा मन्त्रो नाम संहितामन्त्रस्तादृमन्त्ररूप-
 पसंहितायास्तन्मध्ये एव तदग्रे ब्राह्मणत्वेन पठनमि-
 त्यभयथाऽपि संहितात्वेन पदत्वेन क्रमत्वेन च पठनं
 त्रिगुणं पठनमिति, मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदस्त्रिगुणं यत्र
 पठ्यते इत्यस्यार्थः । एतादृशपठनं शाखाया अध्ययनं
 स यजुर्वेदस्तच्च तैत्तिरीयशाखायामेवास्ति । तथा हि ।
 सम्प्रश्यामि । “प्रजाऽअहमिह प्रजसो मोनकीरिति”
 संहितामन्त्रः । एतस्यैव ब्राह्मणसंहितायामेव तदग्रे-
 सम्प्रश्यामि । “प्रजाअहमित्याह यावन्ते एवेति” ब्रा-
 ह्मणमित्युभयोरपि संहितात्वेन पदत्वेन क्रमत्वेन पठनं
 त्रिगुणितं पठनं भवति । एतादृशमुदाहरणान्तरमा-
 ह । “इमामगृभ्णन्मृशनामृतस्य पूर्वऽआयुषि विद-
 धेष्विति संहितामन्त्रः । “इमामगृभ्णन्मृशनामृतस्ये-
 त्यश्वाभिधानीमादत्त”इति ब्राह्मणम् । अनयोरपि
 त्रिगुणत्वेन पठनम् । “उदात्तश्चानुदात्तश्च स्वरितश्च स्वे-
 रास्त्वय”इति त्रिगुणेन पठनं भवति । एते त्रिगुणाः क-

स्यां अपि शाखायां न भवन्ति किन्तु गाथा सङ्ग्रह्यत्वा-
 त् । एवमन्यान्यपि बहूनि वाक्यानि सन्ति तानि वि-
 स्तरभयान्नोक्तानि । अतः कारणादन्ये शाखान्तराः
 स्मृताः । 'तेषामध्यनं प्रवचनीयाश्चेति' तेषां शुक्लकृष्ण-
 यजुषां पठनं प्रवचनीयाः प्रतिवचनत्वेन आर्षीयपाठत्वे-
 न च समाप्तमित्यर्थः ॥ इति महिदासद्विजन्मना कृते च-
 रणव्यूहपरिशिष्टसूत्रव्याख्याने द्वितीयखण्डः समाप्तः ॥
 अन्यान्यपि पुराणवाक्यानि सङ्गृहीतानि । अग्निमीडे
 नमस्तुभ्यमिषे त्वोर्जं लसत्तनुः । अग्नः आयाहि
 वीतये शन्नो देवी स्वरूपवान् । १ । इषे त्वोर्जं यजुर्वे-
 दशब्दः पुरुष एव च । नभश्च पूर्णिमासूर्य उदयव्या-
 पिनी तथा । २ । सङ्गृह्यमाणश्च वेदं प्रतिवर्षव्रतं
 चरेत् । यातयामनिष्टत्यर्थं वेदस्य च विशेषतः । ३ ।
 तस्योष्णिकछन्दसा मेदा गायत्री च त्वचा स्मृता । मां-
 सेषु त्रिष्टुभं विद्यादनुष्टुब्रुधिरः स्मृतः । ४ । अस्थिषु
 जगती चैव मज्जासु पङ्क्तिरेव च । प्राणेषु बृहती
 छन्दो यजुर्वेदस्य लक्षणम् । ५ । एतदर्थे ऐतरेयश्रुतिः ।
 "शुक्लकृष्णकनीनिकेति स यद्यपि ऋषा वदति ।
 यएवमेतं छन्दसां छन्दस्त्वं वेदेत्यन्तम्" । पुण्याहवा-
 चने मन्वात्मोक्षणे ऋक्णस्य च । सभायां ब्रह्मयज्ञे
 च इषे त्वोर्जं यजुः पठेत् । शाङ्ख्यायनं ब्रह्मयज्ञे इषे
 त्वोर्जं यजुः स्मरेत् । श्रौते स्मार्त्ते च पूर्त्ते च सर्वक-
 र्मसु योजितः । २ । ऋग्यजुःसामाथर्वाञ्च सभायां
 कुण्डमाण्डपे । ब्रह्मयज्ञे प्रतिसरे पठेद्वै स्वस्तिवाच-

ने । ३ । अन्यत्र समुदायश्च प्रायश्चित्ते सभासु ते । य-
जुर्वेदोपनिषदे मन्त्राः शाकलसञ्ज्ञकाः । ४ । उप-
दिष्टाः शौनकेन आत्मशिष्याय वृद्धये । तेषां शाकल-
मन्त्राणां यजुःसञ्ज्ञा समीरिता । ५ । व्याख्या चर-
णव्यूहस्य यजुःखण्डस्य तेन वै ॥ विस्तारिता यथा
बुद्धिं महादेवप्रसादतः । ६ ॥ इति शौनकोक्तयजुर्वे-
दीयद्वितीयखण्डस्य चरणव्यूहपरिशिष्टसूत्रस्य व्याख्या
समाप्ता ॥

अथ तृतीयखण्डस्य व्याख्या प्रार-
भ्यते ॥

सामवेदस्य किल सहस्रभेदा भवन्त्ये-
ष्वनध्यायेष्वधीयानास्ते शतक्रतुव-
ज्रेणाभिहताः शेषान्व्याख्यामस्तत्र
राणायनीया नाम सप्त भेदा भवन्ति
राणायनीयाः शाक्यमुग्राः कालोपा
महाकालोपा लाङ्गलायनाः शार्दू-
लाः कौथुमाश्चेति तेषामध्ययनमशी-

तिशतमाग्नेयं पावमानं चतुः शतमै-
 न्द्रं तु षट्शतितर्यानि गायन्ति साम-
 गास्तान्यधीत्य चडात्प्रचण्डतरो भ-
 वति शिष्टान्यधीत्य शिष्टाऽऽविंशति-
 को भवति तत्र कोचित्पुनर्ऋक्तन्त्रं
 साम तन्त्रं सज्ज्ञाधातुलक्षणमिति
 विधीयन्ते । अष्टौ सामसहस्राणि सा-
 मानि च चतुर्दश । अष्टौ शतानि न-
 वतिदशतिर्वालखिल्यकम् । सरहस्यं
 ससुपर्णं प्रेक्ष्यस्तत्र वालखिल्याः ।
 सारण्यकानि सौर्याणि ह्येतत्साम-
 गणं स्मृतम् ॥ इति शौनकोक्तचरण-
 व्यूहपरिशिष्टसूत्रे तृतीयखण्डः स-
 माप्तः ॥

अथ तृतीयखण्डस्य व्याख्यानम् ॥

सामवेदस्येति । किलेति प्रसिद्धौ सहस्रभेदा आसीत् । सहस्रभेदमध्ये शक्रेण वज्रेणाभिहताः प्रणष्टाः । अनध्यायेष्वधीयाना ज्ञीयन्ते विद्युताः खलु इति । शेषान् शाखाप्राठकाव्याख्यास्यामः । आसुरायणीया । वासुरायणीया । वार्त्तान्तरेया । प्राञ्जल ऋग्वेनविधाः । प्राचीनयोग्याः । राणायनीयाश्चेति, तत्र राणायनीयानां नव भेदा भवन्ति । राणायनीयाः । शाक्यायनीयाः । शाक्यसुग्राः । खल्वलाः । महाखल्वलाः । लाङ्गलाः । कौथुमी । गौतमी । जैमिनीयाश्चेति । (१) । तेषामध्ययनं अष्टौ सामसहस्राणि सामानि च चतुर्दशान्यष्टौ शतानि दशभिर्दशसप्तसु बालखिल्यः सुपर्णः प्रेक्ष्यसेतत्सामरणं स्मृतम् । अथ प्रकारान्तरेणाह । तत्र राणायनीयानां सप्त भेदा भवन्ति । राणायनीयाः । सासत्यसुग्राः । कालेयाः । महाकालेयाः । लाङ्गलायनाः । शादृर्दूलाः । कौथुमाश्चेति । तत्र कौथुमानां षड्भेदा भवन्ति कौथुमाः । आसुरायणाः । वातायनाः । प्राञ्जलिद्वैवभृतः । प्राचीनयोग्याः । नैगमीयाः । इति तेषां कौथुमादीनामध्ययनम् । अशीतिशतमाग्नेयं पावमानं चतुःश-

(१) कालोपा । महाकालोपा । इत्यनयोर्द्रव्योः स्थाने, खल्वला महाखल्वला इति 'ल्व' पुस्तकपाठः । अपरं मूले सप्त भेदा, व्याख्यायां नव भेदा भेदद्वयमधिकं च दशमिति 'य' पुस्तकपाठ इति ॥

शिष्या आसन्पञ्चशतानि वै । पौष्यज्यावन्त्ययोश्चा-
 पि तांश्चोदीच्याग्रचक्षते । ३७ । लौगाचिलोङ्गलिः
 कुल्यः कुसीदः कुक्षिरेव च । पौष्यञ्जिशिष्या जगृज्जः
 संहितास्ते शतं शतम् । ३८ । कृतो हिरण्यनाभस्य
 चतुर्विंशतिसंहिताः । शिष्य ऊचे स्वशिष्येभ्यः शेषा
 आवन्त्यआत्मवान् ३९ अस्यार्थः । सामगस्य जैमिनेः
 पुत्रः सुमन्तुर्नाम तस्य सुमन्तोः सुतः सुमन्वानाम
 ताभ्यां सुमन्तुसुमन्वभ्यां पुत्रपौत्राभ्यां क्रमेणैकैकां प्रा-
 ण् । सुकर्मापि तस्य जैमिनेः शिष्यो महानतिप्रज्ञा-
 वान् त्नामवेदाख्यतरोः साम्नां सहस्रसंहितारूपं भेदं
 चक्रे । कोसलपुत्री हिरण्य नाभश्च पौष्यञ्जिश्च सुक-
 र्मणः शिष्यौ सामशाखां जगृहतुः । अन्ये आवन्त्य
 उदीच्यश्च सामशाखां जगृहतुः, पौष्यज्यावन्त्ययो-
 श्चापि सामगाः पञ्चशतानि शिष्या आसन् । तेषां-
 समुदितानां मतानां नामानीति पौष्यञ्जिशिष्या लौ-
 गाद्यादयो नाम्ना शतं शतं संहितां जगृज्जः, हिर-
 ण्यनाभस्य शिष्यो नाम्ना कृतश्चतुर्विंशतिसंहिताः स्व-
 शिष्येभ्य ऊचे शेषाअन्या संहिता आत्मज्ञानवानाव-
 न्त्यः स्वशिष्येभ्य ऊचे । इत्यर्थः ॥ व्याख्याचरणव्यूहस्य
 सामखण्डस्य तेन वै ॥ विस्तारिता यथाबुद्धिं महादे-
 वप्रसादतः ॥

इति चरणव्यूहपरिशिष्टसूत्रस्य तार्त्तीयखण्डस्य
 व्याख्या समाप्ता ॥

अथ चरणव्यूहपरिशिष्टसूत्रस्य च-
तुर्थखण्डः प्रारभ्यते ॥

अथर्ववेदस्य नव भेदा भवन्ति पि-
पलाः शौनका दामोदात्तोत्ताय-
ना जावाला ब्रह्मपलाशा कुनखी
देवदर्शी चारणविद्याश्चेति द्वादशैव
सहस्राणि पञ्चकल्पानि भवन्ति
कल्पे कल्पे पञ्चशतानि भवन्ति न-
क्षत्रकल्पो विधानकल्पः संहिता-
विधिरभिचारकल्पः शान्तिकल्प-
श्चेति तत्र वेदानामुपवेदाश्चत्वारो
भवन्त्यग्वेदस्यायुर्वेद उपवेदो यजुर्वेद-
स्य धनुर्वेद उपवेदः सामवेदस्य गा-
न्धर्ववेदोऽथर्ववेदस्यार्थशास्त्रं चेत्याह

भगवान्व्यासःस्कन्दो वा य इमे वे-
 दाश्चत्वारस्तेषामेकैकस्य कीदृशं रू-
 पं वर्णविधोच्यते ऋग्वेदः पद्मपत्रा-
 क्षः सुविभक्तग्रीवः कुञ्चितकेश-
 इमश्रुः श्वेतवर्णो वर्णेन कीर्तितं प्र-
 माणं तावत्तिष्ठन्वितस्तीः पञ्च ; य-
 जुर्वेदः पिङ्गाक्षः कृशमध्यस्थूलगल-
 कपोलस्ताम्रवर्णः कृष्णवर्णो वा प्रा-
 देशमात्रः षड्दीर्घत्वेन सामवेदो नि-
 त्यं सूर्वा सुप्रयतः शुचिवासाः श-
 भी दान्तो बृहच्छरीरः शमीदण्डी
 कातरनयन आदित्यवर्णो वर्णेन न-
 वारत्निमात्रोऽथर्ववेदस्तीक्ष्णः प्रच-
 ण्डकामरूपी विश्वकर्त्ता क्षुद्रकर्त्ता

स्वशाखाध्यायी प्राज्ञश्च महानीलो-
 त्पलवर्णो वर्णेन दशारत्निमात्र ऋ-
 ग्वेदस्यात्रेयसगोत्रं सोमदैवत्यं गा-
 यत्रीछन्दो, यजुर्वेदस्य काश्यपस-
 गोत्रमिन्द्रदैवत्यं त्रिष्टुप्छन्दः, साम-
 वेदस्य भारद्वाजसगोत्रं रुद्रदैवत्यं ज-
 गतीछन्दोऽथर्ववेदस्य वैतानसगो-
 त्रं ब्रह्मदैवत्यमनुष्टुप्छन्दो, य इमे वे-
 दानां नामरूपगोत्रं प्रमाणं छन्दो-
 दैवतं वर्णं वर्णयन्ति । अविद्यो ल-
 भते विद्यां जातिस्मरोऽथ जायते ।
 जन्मजन्मवेदपारगो भवत्यव्रतीव्रती
 भवत्यब्रह्मचारी ब्रह्मचारी भवति न-
 मः शौनकाय नमः शौनकाय ॥

य इदं चरणव्यूहं गर्भिणीं श्रावये-
 त्स्रियम् ॥ पुमांसं जायते पुत्रमृषि-
 भिवेदपारगम् । य इदं चरणव्यूहं
 श्राद्धकाले पठेद्द्विजः । अक्षय्यं तद्भ-
 वेच्छ्राद्धं पितृभ्यैवोपतिष्ठते । य इदं
 चरणव्यूहं पठेत्स पङ्क्तिपावनः ।
 तारयेत्प्रभृतीन्पुत्रान्पुरुषान्सप्तसप्त-
 च । य इदं चरणव्यूहं पठेत्पर्वसु प-
 र्वसु । विधूतपाप्मा स स्वर्गी ब्रह्म-
 भूयाय गच्छति । रतिर्धृतिश्शिवा
 श्यामाश्चत्वारो वेदपत्निकाः । ज्ञा-
 तव्या यज्ञकालेषु ईशानादिव्यव-
 स्थिताः । लक्षं तु चतुरो वेदा लक्षं

चतुर्लक्षं तु ज्यौतिषं चतुर्लक्षं तु
ज्यौतिषम् ॥ ५ ॥

इति शौनकोक्तचरणव्यूहपरिशिष्टसू-
त्रे चतुर्थपञ्चमखण्डः समाप्तः ॥

अथ चतुर्थपञ्चमखण्डस्य विवृत्ति-
रारभ्यते ॥

अथर्ववेदस्येति । अथर्ववेदस्य नव भेदा भवन्ति नव
शाखा भवन्तीत्यर्थः । तानाह । पैप्पला । दान्ता । दा-
मोदान्ता । औतापना । जावाला । शौनका । ब्रह्म-
पलाशा । कुनखी । देवदर्शी । चारणविद्याश्चे-
ति(१) ॥ तेषामध्ययनं द्वादशैव सहस्राणि मन्त्राणा-
म् । कीदृशानि पञ्चकल्पानि भवन्ति । अत्र वज्रवच-
नात्ते बहवः । यत्र एकवचनं स एकः । तेषामध्ययनं
शाखया उच्यते । द्वादशसहस्राणि मन्त्राणां कीदृ-
शानि । एकस्मिन्कल्पे कल्पे पञ्चशतानि मन्त्राणाम् ।
कल्पान्याह । नक्षत्रकल्पः । विधानकल्पः । संहिता-
विधिकल्पः । अभिचारकल्पः । शान्तिकल्पः । इति

(१) दान्ता प्रदान्ता इति 'ल' पुस्तकेऽधिकपाठो मूलसूत्राद्धोषः ॥ वेददर्शीति 'ग'
पुस्तकपाठः । चरणविद्याश्चेति 'ब' पुस्तकपाठः । 'ब्रह्मदायश' इति 'क' पुस्तकपा-
ठश्च ॥

पञ्चकल्पाः । तत्र वेदानां चत्वारोपवेदा भवन्ति ।
यथा ऋग्वेदस्योपवेद आयुर्वेदः चिकित्साशास्त्रम् । य-
जुर्वेदस्योपवेदो धनुर्वेदो युद्धशास्त्रम् । सामवेदस्योप-
वेदो गान्धर्ववेदस्सङ्गीतशास्त्रम् । अथर्ववेदोऽर्थशास्त्रं
नीतिशास्त्रम् । शस्त्रशास्त्रं विश्वकर्मादिप्रणीतशिल्प-
शास्त्रम् । इति भगवान्वेदव्यासः स्कन्दः कुमारो वाऽऽ-
ह । य इमे चत्वारो वेदा उक्तास्तेषां मध्ये एकैकस्य
कीदृशं रूपं आकारः । तत्तद्वर्णं सितासितादि । वर्ण-
विभ्रः प्रकारश्चोच्यते । तत्रादौ ऋग्वेदस्वरूपमाह ।
ऋग्वेदः पद्मपत्रायताक्षः । पद्मपत्रं कमलदलं तद्वदक्षि-
णो नेत्रे यस्य सः । सुविभक्तः । सुविभक्ता रेखात्रया-
ङ्किता ग्रीवा यस्य सः । कुञ्चितकेशश्मश्रुः । कुञ्चिता-
वलीमन्तः केशाः शिरसिजाः श्मश्रूणि मुखरोमाणि
यस्य सः । श्वेतवर्णो । वर्णेन तु ककुब्बर्णो न, श्वेतवर्णः
श्वेतो वर्णो यस्य सः । कीर्तितं प्रमाणं तार्वात्तिष्ठन्वि-
तस्तीः पञ्च, तावत्साकल्येन, पञ्च वितस्तीर्भवन्ति ह्ये-
तत्प्रमाणं ऋग्वेदस्य कीर्तितमुक्तं' वितस्तिशब्दो द्वाद-
शाङ्गुलात्मकः । सार्द्धं हस्तद्वयप्रमाणमित्यर्थः । यजुर्वे-
दस्वरूपमाह । यजुर्वेदः पिङ्गे पोते अक्षिणीयस्य सः ।
कृशं मध्ये कटिप्रदेशे यस्य सः । स्थूलौ गलकपोलौ य-
स्य सः । ताम्रवदाचरितो रक्तो वर्णो यस्य सः । यद्वा-
कृष्णवर्णो यस्य सः । दीर्घत्वेनोच्चत्वेन षट्प्रादेशमात्र-
प्रमाणं यस्य सः । प्रादेशस्तु प्रदेशिन्येत्यभिधानोक्तेः ।
अङ्गुष्ठप्रदेशिन्योर्विहितत्वात्प्रमाणप्रादेशो दशाङ्गुलः ।

तादृशाः षट्प्रादेशाः प्रमाणं षष्ठ्यङ्गुलं सार्द्धद्वयहस्त-
मित्यर्थः । सामवेदस्वरूपमाह । सामवेदो नित्यं स्र-
ग्वी स्रजो माला यस्य सन्तीति स्रग्वी । “अस्त्रायामे-
धास्रजो विनिः” । इति सूत्राद्विनि प्रत्ययः । नित्यं
पुष्पमालाधारी । यमनियमवान् । सुप्रयतः शुचिः ।
पवित्रः । शुचि शुद्धं वासो वस्त्रं यस्य स शुद्धवस्त्रधारी ।
शमः शान्तिरस्यास्तीति शमी शान्तमनाः । दान्तो
नियतबाह्येन्द्रियः । बृहन्महच्छरीरं यस्य सः । शमीत-
रोर्दण्डो यस्य सः शमीदण्डो ॥ (१) कातरेऽल्पेऽ-

(१) श्रीमद्भागवतेऽपि अथर्ववेदाचार्याः कथिता यथा । अथर्ववित्सुमन्तुश्च शिष्य-
मध्यापयत्स्वकम् । संहिता सोऽपि पथ्याय वेददर्शाय चोक्तवान् । १ । शौक्याय निर्त्र-
ह्वालिर्मोदोषः पिप्पलायनिः । वेददर्शस्य शिष्यास्ते पथ्यशिष्यानधो गृणु । २ । कुमुदः
शैलिको ब्रह्मन् जाजलिश्चाप्यथर्ववित् । बभ्रुः शिष्योऽप्यङ्गिरसः सैन्धवायनएव
च । ३ । अधीयेतां संहिते द्वे सावर्ण्यास्तासथाऽपरे । नक्षत्रकल्पः शान्तिश्च कश्य-
पाङ्गिरसादयः । ४ । एते आथर्वणाचार्याः गृणु पौराणिकान्मुने । टीकाकारः ।
शुनकस्तु द्विषां कृत्वा ददयेकां तु बभ्रवे । द्वितीयां संहितां प्रादात्सैन्धवायनसज्जिते
५ ॥ इति अथर्ववेदाचार्याः सम्यगुदीरिताः द्वादशस्कन्धे ६ अध्याये ॥ अन्या-
न्यपि ऋग्वेदयजुर्वेदसामवेदाधर्वायुर्वेदधनुर्वेदगान्धर्ववेदार्थवेदानां शिक्षादिषडङ्गा-
नां च धर्मशास्त्राद्युपाङ्गानां पुराणेतिहासादीनां च लक्षणानि हेमाद्रुक्तानि लिख्यन्ते ।
ऋग्वेदः श्वेतवर्णः स्यादद्विभुजो रासभाननः । अक्षमालामयः सौम्यः प्रीतिश्चाध्ययनो
द्यतः । १ । अजात्यः पीतवर्णः स्याद्यजुर्वेदोऽक्षसूत्रधृक् । वामे कुलिशपाणिस्तु भूति-
दो मङ्गलप्रदः । २ । नीलोत्पलदलाभासः सामवेदो हयाननः । अक्षमालान्वितो
दक्षे वामे कम्बुधरः स्मृतः । ३ । अथर्वणामिधो वेदो भवन्नो मर्कटाननः । अक्ष-
सूत्रं च खट्वाङ्गं विभ्राणोऽयं जपप्रियः । ४ । आयुर्वेदो हरिद्राभो वानरास्यो विशा-
लदृक् । अक्षसूत्रं सुधाकुम्भं विभ्रदारोग्यदो भृशम् । ५ । अस्य धन्वन्तरिर्भगवान्क-
र्त्ता । पीतवर्णो धनुर्वेदः पिकवत्को महातनुः । रत्नमालावलिं धत्ते मस्तके भूषिता
जटा । ६ । अस्य कर्त्ता महर्षिर्विश्वामित्रः । गीतशास्त्रं सितं रम्यं मृगं वक्रं जटाधरम् ।
अक्षसूत्रं त्रिशूलं च विभ्राणं च त्रिकोचनम् । ७ । अस्य कर्त्ता महर्षिर्भरतः ।
अर्थशास्त्रं भवेन्नौरं सारिकास्यं सुचन्दनम् । अक्षसूत्रं पृदाकुं च भारयन्कुण्डला-

दैवत्यं सोमादि ६ वर्णं श्वेतादि च ७ इत्यादि यो जा-
 नाति स अविद्यो विद्याहीनः सन्विद्यां लभते प्राप्नो-
 ति जातिस्मररोऽथ जायते । अथ जन्मान्तरे उत्तम-
 जातिर्जायते पूर्वजातिं स्मरति । जन्मजन्म प्रतिजन्म-
 वेदपारगः । वेदपाठी भवति । अत्रती व्रती भवति ।
 व्रतहीनोऽपि व्रतवान्भवति व्रतम् ब्रह्मचर्यहीनो ब्रह्म-
 चर्यफलं प्राप्नोति । शौनकाचार्याय नमः । पदावृत्तिर्ग्र-
 न्थसमाप्त्यर्थः । श्रवणपठनफलमाह । यद्दमिति ।
 यः पुमान् इदं चरणव्यूहं गर्भिणीं स्त्रियं आवयति
 सा स्त्री पुमांसं पुरुषलक्षणोपेतं पुत्रं जनयेत् यः श्रा-
 द्धकाले द्विजः इदं चरणव्यूहं पठेत् तच्छ्राद्धं पितृहन्त-
 र्पयतीत्यर्थः । य इदं प्रत्यहं पठेत्स पङ्क्तिपावनो भ-
 वति । यस्यां पङ्क्तौ द्विजा आस्ते तां सर्वां पङ्क्तिं पा-
 वयतीत्यर्थः । स च पुरुषः पुत्रान्प्रभृतीन्पुत्रादिकान्सप्त
 सप्त च पुनः सप्तवारानाद्यादीन्पितादींश्च आत्मा-
 नं चैव पञ्चदशपुरुषान्तारयति । यद्दं पठेत्पर्वसु ।
 अष्टमीभूतदर्शपौर्णमासीसङ्क्रान्तिषु च पठति स-
 धूतपाप्मा दूरीकृतः पापं येन सः । स स्वर्गवासी प्र-
 वित्रः सन् ब्रह्मभावाय गच्छति । “कर्मणि चेति” च-
 तुर्थी । ब्रह्मभावं प्राप्नोतीत्यर्थः । ‘ख’ पुस्तके पाठवि-
 शेषो यथा । यो नामानि पुरा वेदा अमृतत्वं च ग-
 च्छति । लोकातीतं महाशान्तममृतत्वं च गच्छति ।
 ओं नमः इत्याह भगवान्पाराशर्य्यः । ओं नमः पर-
 मर्षिभ्यो नमः । तं वेदशास्त्रपरिनिश्चितशुद्धबुद्धिं च-

१ मीम्बरं सुरमुनीन्द्रतनुं कवीन्द्रम् । कृष्णद्विपं कनक
पिङ्गजटाकलापं व्यासं नमामि शिरसा तिलकं मु-
नीनाम् । १ । इति शौनकमहर्षिप्रणीतचरणव्यूहप-
रिशिष्टसूत्रभाष्ये चतुर्थपञ्चमखण्डव्याख्या समाप्ता ॥
विदशाङ्गधरा १६१३ मिते गतेन्द्रे मधुमासे दशमी-
तिथौ सुधांशौ ॥ महीदासबुधः परोपकृत्यै चरणव्यू-
हमिदं व्यकारि काश्याम् ॥ १ ॥ विद्वद्भिः प्रार्थितेने-
यम्माहिदासद्विजन्मना ॥ चरणव्यूहविवृत्तिर्विधिना तु
मया कृता ॥ २ ॥

तां संविशोध्य सहसा विदुषा पाठके न तु ।
युगलप्राक्किशोरेण ख्यापिता विवृतिर्मुदा ॥ १ ॥
श्रीकाश्यां वैश्ववर्येण कन्नूलालाभिधेन वै ।
मुद्रिता सीरीजभागे धीवो शिष्टानुसारतः ॥ २ ॥
संवत् १८४५ आवणशुक्ल ७ सप्तम्यां भौमवासरे ॥

अथ शुद्धाशुद्धिस्तुचीपत्रम् ॥

| शुद्ध | अशुद्धि | पङ्क्ति | पृष्ठ | शुद्ध | अशुद्धि | पङ्क्ति | पृष्ठ | |
|---------------------|-----------------|---------|-------|------------------|-------------------|----------------|-------|-----|
| प्रयोजनपूर्वकाणां | पूर्वकाणां | १ | २ | अति | विस्तृतम् | ३ | ६६६ | |
| विभक्तियोः | विभक्तियोः | २० | ७ | पाङ्त्रानिति | पाङ्त्रामिति | ३ | ३७५ | |
| यकाराकारयोः | यकारवृद्धाः | | | पञ्चमोऽध्या- | चतुर्थोऽध्या- | ताम- | | |
| | रयोः | १४ | १४ | चः । | यः | पङ्क्तौ | ३२९ | |
| गृहीतौ | ग्रहीतौ | ७ | २३ | " | " | " | ३३१ | |
| अग्नेपूर्व | पूर्व | ९ | २५ | " | " | " | ३३३ | |
| भवति | भवति | १५ | ३६ | " | " | " | ३३५ | |
| ह्रस्वाकारः | ह्रस्वाकारः | ४ | ५० | " | " | " | ३३५ | |
| आविर्निरिडः | आविर्निरिडः | ५ | ७३ | " | " | " | ३३७ | |
| सकारोऽकारमा | सकारमा | ३ | १०२ | " | " | " | ३३९ | |
| ओकारमितः | उकारमितः | ५ | १२० | " | " | " | ३४१ | |
| व्याकरणस्य | व्याकरणस्य | ४ | १२९ | " | " | " | ३४३ | |
| उदात्ताच्चानुदात्तं | उदात्तानुदात्तं | १७ | १२९ | साधारण्येन | साधारण्येन | ४ | ४१९ | |
| परेश्च सिञ्चतेः | परोत्थेतत्पदं | १३ | १३१ | भाषिक | प्रतिज्ञा | नामपं. | ४६५ | |
| परीत्येतत्पदं | परोत्थेतत्पदं | १३ | १३४ | भाषिक | प्रतिज्ञा | " | ४६७ | |
| अवग्रहवर्जिते | अवग्रहवर्जिते | ४ | १५२ | भाषिक | प्रतिज्ञा | " | ४६९ | |
| छन्दमाशवा | छन्दमाशवा | १ | १६१ | आस्मिन्न्ह- | आस्मिन्मह- | | | |
| चतुर्थोऽध्यायः | तृतीयोऽध्यायः | १ | १६५ | व्या | व्या | ५ | ४९२ | |
| औणादिवशाप- | औणादिकशत्र- | | | आस्मिन् | आस्मिन् | ५ | ४९२ | |
| त्यये | त्यये | ९ | १६५ | अस्मिन्न्ह- | व्या | अस्मिन्न्हव्या | ६ | ४९२ |
| जहीमोऽम्बिके | जहीमोम्बिके | ८ | १९९ | शिखामुत्तका | शिखामुत्तका | ९ | ४९२ | |
| स्पर्शैर्भवन्ति | स्पर्शैर्भवन्ति | १४ | २०० | चतुरवसाना | चतुरवना | १६ | ४९७ | |
| त्वकारमात्रे | त्वकारात्रे | २४ | २४४ | वाशुस्त्रिवृदेका | वाशुस्त्रिवृदेका | २३ | ५०३ | |
| विसर्जनीया- | | | | अनुवाकाध्या- | शुक्लयजुः प्राति- | | | |
| द्वयज्जनप | | | | यपरिशिष्टम् | शाख्ये | नाम- | | |
| रः । १०६ | पङ्क्तौविस्मृ- | | | ५०५ | ५०४ | पङ्क्तौ | ५०५ | |
| सू । | तम् | १२ | २५० | अपाधं | अपाधं | १३ | ५०५ | |
| पुरोऽनुवाक्या | राऽनुवाक्या | ८ | २६५ | शुक्लयजुः प्राति | ऋग्यजुः परि- | | | |
| श्रुतिधरा | श्रुतिधरा | ९ | २६६ | शाख्ये | शिष्टम् | नाम- | | |
| सु नः | पदद्वयं विस्मृ- | | | ५०६ | ५०५ | पङ्क्तौ | ५०६ | |
| | तम् | ७ | २७१ | ५०७ | ५०६ | " | ५०७ | |
| प्रत्ययेषु | सुप्रत्ययेषु | १२ | २७१ | वैशम्पायन | वैशम्पायन | १२ | ४ | |
| ऋलृवर्ण | ऋलृवर्णा | ८ | ३२२ | व्रीण्यद्वार्चया | व्रीण्यद्वार्चया | १७ | १७ | |
| गोपतौ | गोपतौ | ११ | ३३९ | कण्वाद्यास्तु | कण्वाद्यास्तु | १३ | ३७ | |
| कनीनाम् | कनीनम् | २ | ३६४ | | | | | |

इति शुभम् ।